पं. भवानीशंकर शास्त्री संकलित

शालग्रामरहस्यम्

(नेपालतीर्थमाहात्म्य)

एवं

पं. त्रिपुरानाथ शर्मा संकलित

शालग्रामपरीक्षा

हिन्दी भाषाटीका सहित

प्रकाशक
सुब्बा मोहनमान सेरचन्द
काठमाडौं, नेपाल

पिडीएफ कर्ता : अक्लेश केशवशरण

द्वितीय संस्करण १२००   विक्रम संवत् २०४५

पं. भवानीशंकर शास्त्री संकलित

शालग्रामरहस्यम्

(नेपालतीर्थमाहात्म्य)

एवं

पं. त्रिपुरानाथ शर्मा संकलित

शालग्रामपरीक्षा

हिन्दी भाषाटीका सहित

प्रकाशक

सुब्बा मोहनमान् सेरचन्द
काठमाडौं, नेपाल

पिडीएफ कर्ता : अक्लेश केशवशरण

द्वितीय संस्करण १२००   विक्रम संवत् २०४५

ॐ श्रीमुक्तीश्वराय नमः ॐ

नेपालराज्यस्थमुक्तिक्षेत्रगण्डकीप्रभृतिविविधतीर्थमाहात्म्यपुरःसरं

शालग्रामरहस्यम् ।

उपाध्यायोपाह्व पर्वतीय पं० ईश्वरीप्रसादशर्मकफल्लकतनयेन,
इलाम-नामानं नेपालजनपदमधिष्ठितेन व्याकरणधर्मशा-
स्त्राऽऽचार्य साहित्यरत्नायुर्वेदोपाध्यायेन श्रीभवानी-
शङ्करोपाध्यायशास्त्रिणा कफल्लकेन नाना-
तन्त्राण्यवलोक्य सङ्कलितं हिन्दी-
भाषायामनुदितञ्च ।

किञ्च

पं० त्रिपुरानाथशर्मसंगृहीतया शालग्रामपरीक्षया च संवलितम्

तदेवमिदम्

थाकटुकुचियाग्रामवास्तव्य पर्वतीय सुब्बा—

श्रीमोहनमान सेरचन्द नेपालिमहोदयेन

द्वितीय बार १२००   वैक्रमीय संवत २०४५

SHALAGRAM RAHASYAM

(Nepal Tirth Mahatmyam)

(COLLECTED AND TRANSLATED)

by
BHAWANI SHANKER SHASTRI, PARVATIYA

प्रकाशक
विजयमान सेरचन रीणा तुलाचन
लाजिम्पाट, काठमांडो
नेपाल

Aklesh Books

प्रकाशक :—
सुब्बा मोहनमान सेरचन्द एवं शंकरमान सेरचन्द
ठि० थाव दुकुचे, नेपाल ।

मूल्य : ने० रु० ६५/–

मुद्रक :—
एजुकेशनल प्रिन्टर्स
गोला दीनानाथ, वाराणसी–२२१००१

Aklesh Books

ग्रंथकर्ता पं० भवानीशंकर शास्त्री

श्री सुब्बा मोहनमानजी

श्री

निवेदन

"अर्चावतार श्री विष्णो शालग्रामाख्यमद्भुतम्"

पूजा के लिए भगवान् श्री विष्णु शालग्राम रूप में प्रगट हुए वह भी अद्भुत रूप से ये सब पुराण इतिहासों में प्रसिद्ध बातें हैं। "स्थावराणां हिमालय:"--शाकम्भरी का सप्तर्षियों को दान, गण्डर्षि का दिव्य तप, शालग्राम क्षेत्र में महादेवी 'देव्या: पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते' रूप में शालग्राम साक्षात् मुक्तिनाथ, आदिहोता ब्रह्माजी की दिव्य अग्नि कुण्ड ज्वाला, उदर डोरी से बँधे और अज्ञानपाश को दूर कर देनेवाले कृष्ण की लीला दामोदर कुण्ड नील और धवलागिरि के मध्य स्थित त्रिवेणी अमरावती गंगा रूपी नारायण जल के, धधकती ज्वाला अग्नि के रूप में शंकर, घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा दर्शन गोविन्द जी को। मीराबाई, यह सब अलौकिक दर्शन और वर्णन सहस्रजिह्वा शेष भी नहीं कर पाए, फिर हम कैसे ? लीला प्रभु की दिव्य है।

कामधेनु मात्र गाय नहीं, तुलसी मात्र पौधा नहीं, गंगाजल मात्र पानी नहीं, शालग्राम मात्र पत्थर नहीं इसी परिप्रेक्ष में पंडित प्रवर त्रिपुरानाथ शर्मा द्वारा संगृहीत और पं० भवानी शंकर शास्त्री द्वारा हिन्दी व्याख्या और अनुवाद का हम चालीस वर्षों के बाद द्वितीय प्रकाशन कर रहे हैं।

इसका प्रथम संस्करण सुब्बा मोहनमान थकाली महोदय की ओर से हुआ था, पर दैव संयोग से उनका देहावसान हो गया। वे अपनी कृति देख न पाए। तत्पश्चात् उनके पुत्रों ने उन पुस्तकों को शालग्राम और दक्षिणा सहित निःशुल्क वितरण कर दिया। इस समय यह पुस्तक अप्राप्य है। इसलिए इसकी आवश्यकता और पाठक वर्ग की माँग को ध्यान में रखकर और पुनः छपवा के वितरण करें और साथ ही काठमाण्डू में होने वाले विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन के लिए दो हप्ते के भीतर छपवा के तैयार होना था इसी जल्दी में अर्थ व्यय की बहुलता और विविध प्रकार की त्रुटियों के लिए सज्जन पाठक वृन्द हमें अवश्य ही क्षमा करेंगे।

साथ ही सुब्बा मोहनमान जी के पुत्र और पौत्रों ने पुनः इसके प्रकाशन के लिए रूचि दिखाई वह सराहनीय है। और आगे इस पुस्तक का अंग्रेजी और नेपाली भाषा में भी अनुवाद करके प्रकाशित करने का विचार रखे है जिससे प्राप्त रकम को सुब्बा मोहनमान के नाम से ट्रस्ट बना के इस दुर्गम मुक्ति क्षेत्र में यात्रियों को सुविधा पहुँचाने हेतु व्यय किया जायेगा। इस पुनीत कार्य में हम उन सब सज्जनों की अपेक्षा रखते है जो इस मुक्ति क्षेत्र में धार्मिक सहयोग देना चाहते हैं जिसमें मुख्यतया यात्रियों को भोजन, वस्त्र और आवास हो।

साथ ही हम एक विशेष प्रकार की सूचना, या कहिए अनुरोध, समस्त हिन्दू धर्मावलम्बियों से यह करेंगे कि शालग्राम शिला (गण्डकी मणि) जिसे कहते हैं उसको अपने प्राकृतिक रूप से तैयार होने में हजारों वर्ष का समय लग जाता है जिसे आजकल कुछ अर्थलोलुप पाखण्डी लोग तोड़ते, फोड़ते, जलाते, व्यापार करते, विदेशों में खिलौना बना खेलते इत्यादि अनेक प्रकार से नुकसान पहुँचा रहे हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि इस समय शालग्राम शिलायें बहुत कम मिल रही हैं और भविष्य में बिलकुल अप्राप्य हो जायेंगी क्योंकि सही शालग्राम प्रकृति लाख वर्षों में बनायेगी। इसलिए समस्त श्रद्धालु जनों से हमारी विनम्र प्रार्थना है इस काम के लिए जहाँ जो कहना या करना पड़े सो कहेंगे करेंगे। यही ठाकुर पूजा होगी। इसके लिए हमने नेपाल शासन के पास अरजी भी की है कि इस सांस्कृतिक, ठोस ऐतिहासिक और प्राकृतिक संपदा को बचाने के लिए विशेष इन्तजाम करें। वातावरणीय प्रदूषण से प्रकृति को सुरक्षित रखें पूर्वकाल में भी शासकों ने इस विषय में इस क्षेत्र में अच्छी व्यवस्था कर रक्खी थी, नियम

कानून बना रखे थे; पर आजकल कतई इसका संरक्षण नहीं हो रहा, पालन नहीं हो रहा। व्यय भार अधिक पड़ने से पुस्तक का मूल्य बढ़ गया है अतः पाठक वर्ग ठाकुर जी की भेंट समझ पुस्तक लेंगे।

अब मुक्तिनाथ दामोदर कुण्ड के मार्ग का दिग्दर्शन एक रास्ता तो वह है जो गोरखपुर से सुनौली, भैरहवा, बुटवल, तानसेन होकर रिडी बाजार तक मोटर से आगे पैदल मुक्तिनाथ दामोदर कुण्ड का है। दूसरा रास्ता वह है जो भैरहवा, बुटवल, तानसेन, पाल्पा, स्याङ्जा, नाउँ डाँडा तक मोटर आगे पैदल बाग्लुङ्ग, बेनी होके मुक्तिनाथ को जाता है। नाउ डाँडा मोटर से न उतर कर पोखरा शहर जाके वहाँ से पैदल मुक्तिनाथ भी जाया जाता है। एक रास्ता वह है जो भैरहवा, बुटवल से नारायण घाट होके पोखरा मोटर से उसके बाद मुक्तिनाथ जाते हैं। और तीन स्थानों से मुक्तिनाथ तक हवाई सर्भिस भी है जो दस किलो मीटर की दूरी पर जोमसोम नाम के जिला सदर मुकाम में एयर पोर्ट है वे तीन स्थान हैं (१) भैरहवा (२) पोखरा (३) काठमाण्डू।

इस मुक्ति क्षेत्र में विदेशी पर्यटक अधिक मात्रा में चलते हैं तदर्थ टिकट अग्रिम बुकिङ्ग से सुविधा रहती है। सामान्य यात्रियों को पोखरा से पैदल ही चलना ठीक रहता है। रास्ते में पर्यटकों के अधिकता से होटल वगैरा खाने बैठने के स्थान मुक्तिनाथ तक पर्याप्त मिल जाते हैं। पोखरा से मुक्तिनाथ तक कुल ६-७ दिन लगते हैं। यदि जिनको मुक्तिनाथ से आगे ६ दिन चलकर दामोदर कुण्ड पहुँचना हो उनको चाहिए कि अपनी हर प्रकार की व्यवस्था पहले से ही तैयार कर लें। क्योंकि आगे रास्ता खतरे से खाली नहीं है।

खाने पीने के सामानों में चाय और हल्के फुल्के रेडिमेड (बिस्किट आदि) रखें। जहाँ भी अग्नि और पानी की सुविधा देखी तुरन्त बनाया खाया पिया चल दिया। बर्फानी तेज हवा और विषाक्त जड़ी-बूटियों के गैस से जी मिचलाता है, शिर दर्द और चक्कर आने लगते हैं जो तत्काल स्नान, गर्म चाय, स्वच्छ भोजन से आराम मिलता है। मार्ग दर्शक के ले जाने पर तो रास्ता दिखायेगा ही। अगर अकेला बिना पथ प्रदर्शक के जाना हो तो मुक्तिनाथ, कागबेनी, छुक्साङ्ग, सामर चराङ्ग गाउँ से यारा घारा तक ही गाँव मिलेंगे। आगे करीब दो दिन जाते दो दिन आते, चार दिन तक कोई गाँव बस्ती नहीं है। अतः विशेष ध्यान रखकर ही जाना पड़ेगा। वैसे आज-

कल दामोदर कुण्ड के पास एक धर्मशाला भी बना है और जहाँ मार्ग खतरनाक था वहाँ काटकर मार्ग भी बन गया है। बीच में एक रात्रि कन्दरा में ही ठहरना पड़ता है। इस प्रकार ठीक चलने पर २५-३० दिन में पोखरा, मुक्तिनाथ, दामोदर कुण्ड से लौटकर पोखरा पहुँचेंगे।

इत्यलम्--किमधिकम्, विज्ञेषु

निवेदक– श्री खप्तड स्वामीजी का कृपा-पात्र

ब्र० गौरी शङ्कर डोटियाल

॥ श्रीः ॥

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

भूमिका

संसार परिवर्तनशील है, चाहे अभी हो, चाहे सौ वर्ष के बाद, प्राणियों की मृत्यु अवश्य होती है। "जन्मादयो विकाराः षट् जायन्ते भावयंनयः।" इस कारिका के अनुसार आत्मा का अस्तित्व, कर्मानुसार जन्म, जातककी वृद्धि, प्रकृत देहका परिवर्तन और उसका ह्रास एवम् अन्ततो विनाश ये छः विकार प्रत्येक जीव पर क्रमशः लगे रहते हैं। इनके अनुसार जन्म से लेकर मरण पर्यन्त प्रत्येक जीवोंकी प्रकृति बदलती रहती है परन्तु किसी को होश नहीं है कि मैं जन्मकाल में कैसा रहा ? अभी कैसा हूं ? और क्या होने जा रहा हूँ ? क्यों कर और किस वास्ते मेरी आकृति बदलती जाती है ? इस तरह प्रकृति बदला करती है तो मेरा शरीर इस संसारमें कब तक ठहरेगा ? फिर मैं क्यों विषय पर मर मीट रहा हूं ? आजतक मेरे सामने ही कितने गुजर गये तो मुझेही सुध क्यों नहीं आरही है ? मैं भी तो प्राणी ही हूँ ? बस, देखते-देखते जान-बूझकर होश में न आना इससे महान अज्ञान या आश्चर्य दूसरा कौनसा हो सकता है ? किन्तु इसे आश्चर्य न कहकर दैवीमाया कहनाही अच्छा है, भगवान का वचन है "दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।" जैसे कभी-कभी मनुष्यों को शुक्तिपर रजत की, रस्सी पर साँपकी एवम् स्थाणु पर पुरुषकी भ्रान्ति हो उठती है जैसेकि दुर्योधन को मायागृहमें जल-स्थलपर विपरीत भ्रम हुआ था। वास्तव में वे अपने शुद्ध स्वरूप के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ हैं ही नहीं, वैसेही प्रत्येक जीवों को रूप रसादिक क्षणिक मिथ्या सुख पर सच्चा ज्ञान रखने के कारण कोई भी जन्म-मरण रहित सदा आनन्दमय सत्पदार्थ की खोजमें न रहकर आत्मजाया सुतादिक में मोह वश असत् मोहजाल के संसार पर प्रायः उद्भ्रान्त ही उद्भ्रान्त पाए जाते हैं। इन्हें ज्ञान का उपदेश सुनाया जावे तो, मम भाव के कारण स्वयं पण्डित बनकर उपदेशकजी के सिरपर ही चढ़ बैठने को तैय्यार होते हैं। हठी बनकर बात ही के सीख जाने से ज्ञान के

सच्चे स्वरूपका बोध नहीं हो सकता है। अत एव देहकी समाप्तिकाल में इन्हें भारी पश्चात्ताप होता है। यदि हम लोगों को आहार, निद्रा, भय, मैथुनादिक व्यवहार की खोजमें ही व्यस्त रहकर तत्वसे विमुख रहना होतो हम पशुकी अपेक्षा और अधम हुए क्योंकि उतने काम तो पशुके भी हैं। वे तो सिखाए-सधाए भी जासकते हैं किन्तु अभिमानी व्यक्ति किसी की सद् बात पर नहीं आता है फिर वैसे धराभार मनुष्य से क्या ? जिसने अपनी आत्माके सुधार में सच्छिक्षाको धोखे की बात समझी उससे परायेका क्यों कर कल्याण होसकता है। यदि जीता जागता रहकर धन सुतादिक में अभिमान रखता हो तो, क्या वृक्ष जीते नहीं हैं, सोनारों की धोकनी ही दम लेती नहीं है, पशुपक्षी सब खाते-पीते मलमूत्रादियों का त्याग करते नहीं हैं। क्या इस तरह से जीना कोई जीना है ? जैसे श्रीमद्भागवत द्वितीय-स्कन्ध में कहा है कि "तरवो किंनु जीवन्ति भस्त्राः किंनु श्वसन्त्युत। न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्राम्यपशवः परे॥" इत्यादि। अत एव अधिक से अधिक सौ वर्षकी हद तक रहने वाले क्षणभङ्गुर भौतिक शरीर सम्बन्धी विषयों की चिन्ता में व्यग्रचित्त हो असच्छिक्षाके कारण अभिमान, ममता, तामसिक जोश और भ्रान्ति वा मोहमें आकर शास्त्रकी मर्यादा को उल्लङ्घन किये इसी व्यवहार मात्र में लागू बने रहना भौतिक तत्वोंके संयोग मात्रको विज्ञान समझ कर अध्यात्म वा शास्त्रीय विज्ञान से रहित अपनेको वैज्ञानिक व शिक्षित समझना यह तो केवल अपनी आत्माको धोखा देना ही नहीं बल्कि देहके पश्चात् उसका अधःपात करना ही है। जैसे कहावत है कि "एक माघ से जाड़ा नहीं जाता" वैसेही इस शरीर के नाश होते ही आत्मा का नाश नहीं होता, जो लोग अभिमान वा मोहवश आत्माकी सत्ता पर ध्यान नहीं देते हैं वा शरीर के बाद कुछ है ही नहीं है इत्यादि कहते हैं उन आसुरी विचारवश वेही सब लक्षचौरासी के भागी होते हैं। क्योंकि आपको आत्मा की सिद्धिकरने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो ज्यों ही स्वयम्भू है त्योंही अनादिकालसे सदा सर्वत्र सिद्ध है। इसमें विशेषता यही है कि परमात्मा तो ज्ञान व आनन्दमय है, जीवात्माको कर्मवश अनेकों योनियों पर जन्ममरणकी प्रतीति होती है। वास्तव में आत्माकी मृत्यु नहीं किन्तु कर्मवश देहकी मृत्यु होती है। हमारी आत्मसंबन्धी उपाधियाँ कर्मवासनाके मिट जाते ही हमारी आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप उसी परमात्मासे लवलीन होकर सर्वज्ञ जन्ममरणादिक उपाधियोंसे रहित आनन्दमय हो जाती है। जैसे कि कुँएका पानी गङ्गासे संयुक्त हुआ तो वह भी तत्काल में गङ्गामय हो जाता है। गीताजी में आत्मविषयपर भगवान ने "अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम् ...॥" इत्यादि कहा है। कर्मवासनासे

रहित शुद्ध स्वयंप्रकाश ज्ञानमय ज्योतिस्वरूप आत्मप्राप्ति को ही मोक्ष कहते हैं। अत एव महामुनि अष्टावक्रजीने महाराज जनक के प्रति शुरूमें कहा है कि "मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत् त्यज" इत्यादि। यह तो आत्मतत्वका दिग्दर्शनमात्र हुआ। देखिये हमको मनुष्यत्व मिला है, लक्षचौरासी योनियों में मनुष्यसे बढ़कर दूसरा उच्च जीव कोई नहीं है। सोचिये कि कौनसा जीव न चाहता होगा कि मैं भी मनुष्य हो जाऊँ। इस कर्मभूमि में आर्यावर्त वा ब्रह्मर्षिदेशपर दुर्लभ अन्य जीवोंकी अपेक्षा चैतन्यमय मनुष्यत्व को पाकर हम मुक्त ही न होसकें तो कमसे कम देवत्व तक का तो साधन होना चाहिये। उतना भी यत्न न कर यदि मोहवश अपनी दीन आत्मा का अपने से खुद उद्धार न कर उसे नरकमें डुबो दिया तो हमसे बड़ा अज्ञानीजीव कौन होसकता है। अपनी आत्मा का तो हमने जान-बूझकर अधःपतन कराया तो फिर हमसे दूसरे का क्या उपकार होसकता है। इसलिये हम सब को किसी तरह इस संसार में अपनी प्राणयात्रा मात्र को चलाकर परत्र में आत्मशान्ति की प्राप्ति के लिये भगवान की भक्तिपर विशेष जोर देना चाहिये। हमको शास्त्रीय वचनसे सुनने में आया है कि पहले कई युग मन्वन्तर और कल्प भी बीत गये हैं। इस समय वैवस्वतमन्वन्तर है। अट्ठाईसवाँ कलियुग है एवम् श्वेत वाराह कल्प चल रहा है। ऐसे किन-किन कल्पों, मन्वन्तर और युगोंमें हमारे किन किन योनियों में जन्म हो चुके हैं, इसका क्या ठिकाना है? अब जाकर हमको मनुष्यत्वका लाभ हुआ है। अब भी हम मोहवश भगवद्भक्ति से रहित होकर तत्वविज्ञान की लापरवाही कर दें तो हमसे बड़ा आत्मघाती व कृतघ्न कोई नहीं है, और नरककुण्डसे कभी हमारा उद्धार नहीं हो सकता है। वर्तमान जो युग जारी है इसके क्रमशः पहले तीन युग बीत गये हैं। जैसे सत्य, त्रेता और द्वापर। सत्यमें संसार भर सत्यही सत्य रहा। उस समय सभी ब्रह्मज्ञानी व सत्यवादी होकर अपने-अपने आश्रम वर्णव्यवस्थामें रहते हुए योगबल के द्वारा ब्रह्मभाव को पहुँच जाते थे। त्रेतामें योगबल कुछ कम हुआ और वे उपासनामें रहकर भगवत् साक्षात्कार के जरिये आत्मबल व ब्रह्मज्ञान का सम्पादन करते थे, द्वापर में तपोयोग और उपासना की मात्रा और कुछ घट गयी। जो रही उसके अतिरिक्त अश्वमेध, वाजपेय, राजसूयादि यज्ञों की प्रथा रही, वह भी कालक्रमसे एकदम उठ गयी। यह कलियुग है। इसे कोई कलका युग, कोई कल याने झगड़ा या कारुका युग भी बताते हैं। मगर है कालपरम्परासे चले हुए वेही अनवच्छिन्न अहोरात्र, अतः इनदिनों में भी सद्व्यवहार में रहकर इसी समयको हम अपने जीवन के सत्य, त्रेता वा द्वापरयुगभी बना सकते हैं। राजा परीक्षित-

कलिसम्वादसे पता चलता है कि कलियुग पापियों को बुरा लगता है। धार्मिकों का तो विचार होता है कि हमारे कलियुगमें ही जन्म हों क्योंकि इसयुग में एकाग्रमनसे किये हुए सभी सत्कर्मों की सिद्धि के लिए कोई देर नहीं लगती है, अत्यल्प कर्म भी अक्षय्य पुण्यफलदायक होता है, कारण कि मनुष्यके आयु, कर्म, वित्त और अभ्यास वगैरह अल्पही होते हैं, वैसेही अल्पकालमें ही सिद्धि न हो तो फिर इन सबका कैसे निस्तार होसकता है? अतः सत्ययुग में दशों हजार के तपकी अपेक्षा दत्त चित्त मनुष्य अहोरात्रहीमें भगवानका साक्षात्कार कर सकता है। अब समझे कि कलि कैसा उत्तम युग है? हाँ, दुष्कर्मियों का तो सचमुच कालसर्प है। पूर्ववत् थोड़ेसे दुराचार से भी कल्पान्तनरकों की ओर भेज देता है। अतः हम लोगों से तपोयोग, उपासना, बड़े-बड़े यज्ञ वगैरह नहीं बन सकें तो भगवद्भक्ति पर निर्भर रहकर कर्मकाण्डमें डट जाना चाहिये। कहा भी है कि "श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः" इत्यादि। कल्पशास्त्र के अनुसार यद्यपि जन्मप्रभृति मरणपर्यन्त कर्मकाण्ड के कई क्रियाकलाप हैं तथापि षोडश संस्कार के अतिरिक्त काम्यकर्मों की अपेक्षा निष्काम कर्म ही प्रधान हैं। उनमें से भी भगवान की आराधना, अतएव भगवान ने अर्जुन के प्रति कर्मकाण्ड की प्रधानता दिखलाते हुए गीताजीमें यह भी कहा है कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इत्यादि। यों तो व्रतविधि, अनुष्ठान, उपासना और उनकी प्रतिष्ठा, उद्यापन, अर्चा, पञ्चकर्म वगैरह कई प्रकार के कर्मों से भगवान की भक्ति की जा सकती है तो भी प्रकृतिके अनुसार उन सुकर्मों में पहली बात तो यह है कि मन ही नहीं लगता है, जब किसीतरह मन के वेगको रोकना चाहे तो अजितेंद्रिय के कारण संसार भरके कुतर्कों कि बातें उसी वख्त सूझने लगती हैं। दूसरी बात यह है कि आयु अत्यल्प है और शुभकर्म में रहते विघ्नों के पहाड़ अपने ही शिरपर आकर टूट पड़ते हैं। अतएव, सबसे सुगम, सरल, भक्तिवर्द्धक अत्यल्पकाल में ही सिद्धि व भुक्ति-मुक्तिदायक ये ही पदार्थ हैं "गङ्गा तुलसी शालग्राम" शास्त्र में कहा है कि राम-कृष्ण शिव-हरिहरादिक भगवान के नाम अति सुन्दर व सरल हैं। जिह्वा को दूसरे से मोल लेनी नहीं पड़ती, अपने मुख पर ही है (गूँगे नहीं हैं) तब भी तो उनके भजन न कर नरक को जाते हैं ऐसे नराधमों को अनेकों धिक्कार हैं। "सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी। तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान्॥" ग. पु. सा॥ यह भगवत्कीर्तन के सम्बन्ध में कहा गया है। उनकी सेवा-पूजा-वन्दना इत्यादि के सम्बन्ध में भी तो कोई उक्त प्रकार का सरल उपाय होना चाहिये? इस पर सरल ये ही तीन उपाय हैं—गङ्गा, तुलसी और शालग्राम।

मनुष्य सौ योजन दूर रहकर भी गङ्गाजल की बिन्दुओं का पान कर सकता है. और वहाँ से भी भक्ति पूर्वक "गङ्गे-गङ्गे" पुकारता हो तो सभी पापों से रहित होकर विष्णुलोक को चला जाता है एवम् तुलसो का क्या वर्णन किया जावे। तुलसी व भगवान एक साथ रहते हैं। तुलसी दर्शन से पापों का हरण करती, स्पर्श से शरीर को पवित्र करती, प्रणाम से रोगों को दूर भगाती, जल सेचन से यमराज को त्रास दिलाती, भगवान को समीप में बुला देती, भगवान कृष्णचन्द्र से रोपित अतएव उनके चरण पर चढ़ाई जावे तो भुक्ति-मुक्ति फल को देती है। अब इस सम्बन्ध में इतना ही कहकर शालग्राम मूर्तियों के विषय में कुछ कहना है। गण्डकी नदी के गर्भ व शालग्राम पर्वत की शिलाएँ सभी शालग्राम नाम की होती हैं। उनमें चक्राङ्कित शिलाएँ विष्णुनाम और अचक्राङ्कित शिवनाम कहलाती हैं। इनके भी मत्स्य, कूर्म, लक्ष्मीनारायण, अनन्त, नृसिंहादि व शिव, हरिहर, गणेश, सूर्य इत्यादि कई भेद होते हैं, क्योंकि गण्डकी ने पहले स्वयं विष्णु वा गौरी के गण्डस्थल से उत्पन्न होकर उन्हीं की तपश्चर्या से अपने गर्भ में भगवान के निवास की वर-प्रार्थना की और भगवान ने स्वीकार कर अनेकों देवताओं के साथ वहाँ पर आसन जमाया। नदीपर के शालग्राम तो यों हुए और पर्वत परके मुनिदेव सालङ्कायन जी की तपश्चर्या से। इन बातों का रहस्य ग्रन्थ पर स्पष्ट है, अतएव वहाँ की शिला मात्र भगवान की स्वरूप नहीं किन्तु नदी, पर्वत, वृक्ष, लता तक वन्दनीय हैं। किसी खास स्थान पर तो मछली तक चक्राङ्कित पायी जाती हैं तो औरों की क्या बात है? अब इस जगत में हिन्दू जातिका मनुष्य होकर किसने शालग्राम को न देखा होगा या न सुन रखा होगा? यदि न भी होतो सबकी सुगमता के लिए त्रिकालदर्शी भगवान वेदव्यासजी ने शास्त्र-पुराणों पर इनका यथार्थ रहस्य बताया है। उन्होंने यह भी कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सत् शूद्रों का ही शालग्राम पर अधिकार है, औरों का नहीं। उनमें से भी स्त्री-शूद्रों को स्पर्श रहित दूर से ही पूजा करना बताया है। क्योंकि "शालग्रामं न स्पृशेत् हीनवर्णो वसुन्धरे! स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥" इत्यादि। आगे जाकर उन्होंने यह भी बताया है कि यद्यपि अभाव अवस्था में "खण्डिताः स्फुटिता वाऽपि शालग्रामशिलाः शुभाः" ऐसा वचन है परन्तु यह वचन गृहस्थ से अतिरिक्त आश्रमियों के लिये ही है। उनमें मूर्तिभेद से फलभेद भी बताया है कि कितनी मूर्तियों की पूजा से स्त्री, पुत्र, धन-धान्यादिक भुक्ति व मुक्ति पर्यन्त के शुभ फल मिलते हैं और कतिपयलक्षणों की मूर्तिपूजा से गृहस्थों के सब के सब सत्यानाश हो जाते हैं, जैसे लक्ष्मीनारायण से सर्वैश्वर्य, अघोरनृसिंह से सत्यनाश इत्यादि। अब तो भय के कारण वे कहेंगे कि "तब

तो सबलक्षणों के विना जाने शालग्राम शिला की पूजा ही गृहस्थों को नहीं करनी चाहिये" सो बात नहीं है, क्योंकि शालग्राम की पूजा काम्य नहीं किन्तु नित्य कर्म है। यदि निषेध वाक्य से भय उत्पन्न और फल-श्रुति से श्रद्धा भी पैदा होती हो तो उनके लक्षणों को जानने की आवश्यकता है। लक्षणों के विषय ये ही होते हैं कि किन-किन वर्णों, किन-किन चिन्हों, कितने चक्रों की या चक्ररहित शिलाएँ कैसी होती हैं? किन-किन वर्णों की पूज्य हैं, कितनी संख्या में पूजा करनी चाहिये, तत्तल्लक्षण लक्षितों के, तत्तन्नाम क्या हैं? और उनकी पूजा से क्या-क्या फल प्राप्त होते हैं? जिनको नित्यकर्म पर श्रद्धा नहीं है, उन्हें फलश्रुति से श्रद्धा उत्पन्न होती है। अतएव "शालग्रामशिलापूजां विना योऽश्नाति मानवः। सचाण्डालोऽपि विष्ठायामाकल्पं जायते कृमिः" अपि च "पत्रं पुष्पं फलं मूलं तोयं दूर्वाक्षताः सुत! जायते मेरुणा तुल्यं शालग्राम शिलाऽर्पितम्।" तथा च "म्लेच्छदेशेऽशुचौ वाऽपि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति। योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे!" अर्थात् चाहे किसी वर्ण का हो बिना शालग्रामशिला की पूजा किये जो भोजन करता हो वह जीवित चाण्डाल है। अन्त में कल्पपर्यन्त विष्टा पर कृमि होकर रहता है। पत्र, पुष्प, फल, कन्द, मूल, जल, दूर्वाक्षत जो भी हो, हे पुत्र! शालग्राम शिला पर चढ़ाये जाने से सुमेरु तुल्य होता है। अपवित्र म्लेच्छ देश में भी जहाँ पर चक्राङ्कित शिला स्थापित हुई है वह देश भी तीन योजन तक मेरा क्षेत्र है। इत्यादि।

किञ्च "निवृतास्यं वामचक्रं वर्तुलं कपिलप्रभम्। नारसिंहं गृहस्थानां भीतिदं बिन्दुभिर्वृतम्" "बहुभिश्चिह्नितैश्चक्रैः शुक्लवर्णादि शोभितैः। दैत्यारिः कमलाक्षश्च गदापाणिरधोक्षजः॥ पद्मनाभश्च देवःस्यात्प्रसभं दुःखदायकः"॥ भाव यह है कि जिस शिला का मुँह फटा हो, बायीं तरफ चक्र हो, कपिल वर्ण बिन्दु युक्त व गोलाकार हो वह नृसिंह संज्ञक होती है। वह गृहस्थों को दुःख देती है। बहुत शङ्खादि चिन्ह व चक्रों से युक्त, शुक्ल पीतादिवर्णों से शोभित, दैत्यारि पुण्डरीकाक्ष, गदापाणि, अधोऽक्षज इत्यादि नाम के शिलादेव हठात् दुःखदायी होते हैं। इत्यादि।

अतः प्रत्येक सज्जन को इनके लक्षण जानने की परम आवश्यकता है। उक्तप्रमाणों द्वारा यह बात सिद्ध हुई है कि लक्षणों के ज्ञान रखते हुए शालग्राम शिला की पूजा करना प्रत्येक शुद्ध व्यक्ति व प्रत्येक आश्रमियों का नित्य कर्म है, जिनकी विधिवत् पूजा से इसलोक में अनेकों सुख, भोग व अन्त में योगिदुर्लभ मोक्ष ये दोनों, दोनों हाथ पर आ टपकते हैं।

यद्यपि शालग्राम शिला के लक्षण स्कान्द, वाराहादि कई पुराणों में पाये

जाते हैं परन्तु सबलोगों से अनेकों पुराण पढ़कर उनका पता लगाना आसान बात नहीं है; इसलिये सकल शास्त्र के धुरन्धर विद्वान सबके हितैषी श्री त्रिपुरानाथ जी पर्वतीयने अनेकों ग्रन्थों से उद्धृत प्रमाणश्लोकों के अतिरिक्त दृष्टान्त वाक्यों को भी संस्कृत ही में लिखकर श्रीमान् विद्यावृहस्पति काशीस्थ रमानाथ शास्त्री जी की सहायता द्वारा "शालग्राम परीक्षा" नामक इस लक्षण ग्रन्थ को काशीस्थ हितचिन्तक प्रेस से कतिपय वर्षों के पहले प्रकाशित किया था। समयानुसार आधुनिक कितने लोगों की संस्कृत में गति न देखकर टूटे-फूटे शब्दों से ही क्यों न हो सबकी जानकारी के लिये उस उत्तमोत्तम ग्रन्थ का हिन्दी में भाषानुवाद करना मैंने उचित समझा, अतएव भगवानकी प्रेरणा से थोड़े ही दिनों में सरल हिन्दी में सिर्फ विषय मात्र का बोध कराने के लिए भाषाऽनुवाद लिखकर निम्नलिखित प्रकाशक जी के पास में न्यौछावर किया। तब उनकी इच्छा हुई कि "शालग्राम महात्म्य, उनके लक्षण के अतिरिक्त उत्पत्ति स्थान, गण्ड की प्रभृति नदियाँ, शालग्राम पर्वत, वहाँ के प्रसिद्ध-कुण्डादि वा गुप्ततीर्थ, मुक्ति क्षेत्रादि के तीर्थों का वर्णन, गुप्त गङ्गा, खोरका वर्तमान पहाड़, जल, मट्टी व केवल पत्थर मात्र से अग्निका प्रादुर्भाव, उनकी ज्वालामुखी इत्यादि संज्ञा, रुरुक्षेत्र का वर्णन, दामोदरादि कुण्ड इत्यादि पुराणान्तर संग्रह के अनुसार कल्प वा युग भेद से विभिन्न गण्डक्यादि नदियों की उत्पत्तियों का वर्णन, इन सब विषयों के संग्रह के साथ और एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा जाता तो क्याही अच्छा होता! सबलोग उन उन तीर्थों से वञ्चित न रहकर संक्षेप में ही अपने जन्म लाभ का परम स्वार्थ उठा सकते! जब शास्त्र में कहा है कि जिस स्थान के वृक्ष तक पूज्य होते हैं तो उस तीर्थ पर की यात्रा से मनुष्य देव स्वरूप क्यों न होंगे? इत्यादि॥"

अतएव इस युग में तीर्थाटन व शालग्राम पूजा सम्बन्धी विषयमात्र को सुगम तथा सुखसाध्य समझ उनको दर्शन, स्पर्शन, जलपान, नैवेद्यभक्षण वा केवल नामकीर्तन से मृत्यु जैसे देव को भय दिलानेवाले स्वर्गापवर्गफलदायक देखकर अल्पकाल ही में सरल उपाय से सब अल्पायु जीवों के लिये हित की ओर ख्याल रखते हुए श्री भगवान वेदव्यासजी ने मुक्तकण्ठ से अनेकों पुराणों पर बता दिया है। उन्हीं के लिखी, नेवारी लिपी में १६ वीं शताब्दी की हस्तलिखित स्कन्दपुराणान्तर्गत हिमवत्खण्ड नाम की एकमात्र पुस्तक को गलित-पलित अक्षरों में पाकर उससे तथा हस्तलिखित वाराहपुराण इत्यादि ग्रन्थों से उपयोगी विषयों के संग्रह मैंने ग्रन्थावलोकन में अपने अनुज पं० धरणीधर उपाध्याय कफलक से सहयोग लेकर यथामति स्वयं लिखित हिन्दी भाषानुवाद के

साथ इसकी समाप्ति की। उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में वर्तमान नेपालराज्यस्थ कतिपय शास्त्रोक्त वा सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान, दृश्यस्थान, देवमन्दिर व उनमें जानेके विभिन्नमार्ग, मुक्तिक्षेत्रादिक तीर्थों पर हिन्दुस्तान वा नेपाल में जाने के विभिन्न मार्ग तथा वासस्थानों की तालिका एवम् शालग्राम पर्वत, गण्डकी नदी वगैरह के चित्रों के दिग्दर्शन भी कराये गये हैं। जहाँ तक हो अपनी समझ से सम्पूर्ण भुक्ति-मुक्तिजनक उपयोगी विषयों से इस ग्रन्थ को अलंकृत करने का उदेश्य रक्खा गया है। अतः प्रजावत्सल श्री ३ महाराज मोहन शमशेर जङ्गबहादुर की जय पुकारते हुए वैद्य विष्णुधर राजवंशी के मकान १०।४२० वटुटोल, नेपाल, पशुपतिपुरी में रहकर इसे लिख प्रकाशनार्थ शालग्राम पर्वत के समीप थाक ग्राम निवासी सुब्बा मोहनमान सेरचन्द थकाली से प्रकाशनार्थ अनुरोध किया गया है। ग्रंथ में कई प्रकार से गलतियाँ रह जा सकती हैं जैसे लेखक के प्रमाद वा अल्पज्ञता से, संशोधक के दृष्टि दोष से, अक्षरों के योजक वर्ग से वा छापते-छापते अक्षरों के भङ्ग व घर्षण से भी। इसलिये त्रुटि वा दृष्टिदोष का रह जाना मनुष्यमात्र से संभव हो सकता है। कहावत है कि "जमीन में बैठा हुआ कोई नहीं गिरता है, गिरता तो वह है जो उच्च स्थान पर चढ़ गया हो।" इन उपरोक्त विषयों के सम्बन्ध में मुझे बहुत कुछ कहना था पर ग्रन्थ विस्तार के कारण न हो सका। अब अधिक न कह कर मैं एक ही श्लोक से अपना वक्तव्य समाप्त करना चाहता हूँ, वह यह है कि—शालग्राम शिला को छोड़कर जो अन्य देवताओं की उपासना करता है वह मूढ नर अपने घर में पके हुए खीर को छोड़कर भिक्षाटन को जाता है। "शालग्रामशिलां हित्वा योऽन्यदेवमुपासते। स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः"॥ नर्मदेश्वर, शोणभद्र, गोमतीचक्र व शालग्राम सम्बन्धी शिलाओं की पूजा को छोड़कर अन्य मूर्तियों की तलाशी लगाना या उनपर मुग्ध होना राख में ही घी डालना है। अतः सज्जनवर्ग से अनुरोध है कि जहाँ तक होसके कम से कम एक वार इस ग्रन्थ के अवलोकन के लिये अपने अमूल्य समय का व्यय करने से न झिझकें क्योंकि "जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणः स्मृतिः" यह भगवान का ही वचन है। और मैं यह वादा करता हूँ कि इस ग्रन्थ के अनुसार कार्यवाही द्वारा जरा भी श्रीभगवद्भक्ति की ओर आपलोगों की चित्तवृत्ति प्रवृत्त होगी और दोषदर्शी न हो कर पत्थर की कोयलों से हीरे के टुकड़ों की तरह गुणग्राही मात्र बनेंगे तो आप लोगों की साफल्यता प्राप्ति से मैं अपना जन्म भी सफल समझूँगा॥

आपलोग व भक्तजनों का विनयग्राही—

भवानीशङ्कर, इलाम बाजार, (नेपाल)

प्रकाशक का वक्तव्य

प्रारब्धादिकर्मों का क्षय व इसलोक में नाना सुख भोगों के साथ अन्त में अपनी आत्मा को शान्ति दिलाने के लिये शालग्राम-शिलाओं की सेवा के अतिरिक्त कोई दूसरा सुगम उपाय नहीं है, क्योंकि सब की धारणा तो भौतिक पदार्थों पर लुढ़कती जारही है। इन दिनों में तप, योग वा लम्बे-चौड़े कर्मकाण्ड वगैरह करते कम मनुष्यों से बनते हैं।

शास्त्र प्रमाण से शालग्राम-शिलाएँ ऐसी चीज हैं जो म्लेच्छ देश को भी तीन योजन तक विष्णुक्षेत्र बना देती हैं। फिर खास उनके उत्पत्ति स्थानों का कहाँ तक वर्णन किया जाये। वे हैं शालपर्वत सम्बन्धी मुक्तिक्षेत्र व गण्डकी-प्रभृति नदियाँ। अतः कतिपय वर्षों के पहले पं० त्रिपुरानाथजी पर्वतीय से संगृहीत "शालग्रामपरीक्षा" नाम की पुस्तक के अतिरिक्त और भी व्या० आ; ध० आ; सा० र; आ० उ; श्रीभवानी शङ्कर उपाध्यायजी पर्वतीय ने शालग्रामपर्वत, उक्तशिलाओं की परीक्षा, उनके महात्म्य, गण्डकी प्रभृति नदियाँ, उनके सङ्गम, त्रिवेणी, काकवेणी (हंसतीर्थ), दामोदरादि अनेकों कुण्ड, पुलस्त्य प्रभृति ऋषियों के आश्रम, जलेश्वर (वर्तमान-गलेश्वर) दानवों की तपोभूमि, मुक्तिक्षेत्र, ज्वाला देवी, पायस पर्वत, रुरुक्षेत्र (रीड़ी), देवघाट और हरिहरक्षेत्र इत्यादि तीर्थस्थान के महात्म्य को अनेकों प्राचीन ग्रन्थों से लेकर सबकी सुगमता के लिये स्वलिखित-हिन्दी भाषानुवाद के सहित इस अपूर्व ग्रन्थरत्न का संग्रह किया है। उपरोक्त विषयों के सिवा इसमें तत्तस्थान के व और कई चित्रपट, नेपाल राज्य के अन्योन्य तीर्थों का संक्षिप्त दिग्दर्शन, उन-उन स्थानों पर जाने का रास्ता तथा वासस्थान इत्यादि विषयों के विवरण एवम् तालिका वगैरह का समावेश भी किया गया है। उक्त शास्त्रीजी ने इसे उत्तमोत्तम तथा सरल बनाने की चेष्टा की है। जिसके आद्योपान्त अवलोकन करने से स्पष्ट बोध होता है कि किस वास्ते संसार में हमलोगों का जन्म हुआ है, और देहधारियों का उभयत्र क्योंकर सुखपूर्वक निस्तार हो सकता है? इत्यादि। इस विषय में अधिक कहना तो पिष्टपेषण ही है।

अतएव मेरे वृद्ध प्रपितामह श्री कृपानन्द दानी व प्रपितामह सुब्बा बलवीर के जवाने से ही शालग्राम पर्वत (धवलगिरि) के समीपवर्ति थाक टुकुचिया ग्रामनिवासी सुब्बा कविराज का पौत्र एवम् सुब्बा हर्षमान का ज्येष्ठ पुत्र मैं

सुब्बा मोहन मान सेर चन्द ने अपने पुत्र सुब्बा ललित मान, सुब्बा नगेन्द्रमान, शङ्करमान, समशेर मान तथा पौत्र विष्णुमान प्रभृति वर्तमान तथा भावी सन्तानों की सदुपदेश सम्बन्धी धार्मिक शुभकामना व भक्तजनों की सेवा के लिये सज्जनवृन्द व पाठकवर्ग के करकमलों में सहर्ष सादर समर्पण किया है।

अतः परिश्रमी लेखक महोदय को शतशः धन्यवाद समर्पण करते हुए आप लोगों से अनुरोध किया जाता है कि एक बार सहर्ष इस ग्रन्थ का अवलोकन करें। श्रद्धाभक्ति तो आप लोगों ही पर निर्भर है। श्रीमद्भागवत का प्रमाण है कि "आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थायाऽप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीभक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः" अर्थात् अपनी आनन्दमय आत्मा ही पर रमण करनेवाले (जीवन्मुक्त) मुनि-लोग भी अन्य कारणों की अपेक्षा न रखकर जीवत्वमात्रको छुटाने के लिये विराट् स्वरूप भगवान की भक्ति किया करते हैं, (यद्यपि उन्हें भक्ति करने की कोई आवश्यकता न थी परन्तु) भगवान भक्तिस्वरूप हैं, अर्थात् उनके गुण ही ऐसे हैं।

यद्यपि हमारे जैसे कतिपयलोग रुपये-पैसे से गरीब हो सकते हैं परन्तु दिल से कोई गरीब नहीं हैं। अतः द्रव्य न हो तो भगवान की भक्ति भी नहीं बन सकती है, ऐसा कोई नियम नहीं है। सिर्फ कुछ देर के लिये अपने मनको विषयों से खींच कर जरा सा इस तर्फ लगा देना है। क्योंकि "श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः। निष्किञ्चनाऽपि मुनयो श्रद्धावन्तो दिवं गताः" ऐसा शास्त्रप्रमाण है। भाव यह है कि श्रद्धा से धर्म की धारणा की जाती है क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है ऐसे मुनि लोग भी श्रद्धावान होकर परमधाम को प्राप्त हुए हैं। उसके पास धन की राशि ही हो कर क्या करेगा जिसके शुभकर्मों में हाथ नहीं उठते हैं। सारांश यह है कि भगवान की श्रद्धाभक्ति से रहित उसके क्षणिक धन से ही क्या प्रयोजन है? जो देह की समाप्ति होते ही डूब जाते हैं। इत्यादि॥

अतः मेरी आशा है कि यदि आप लोग इस ग्रन्थ रत्न को अपनाकर भगवद्भक्ति की ओर तनिक मात्र भी ध्यान देंगे तो मैं अपने को अनुगृहीत समझूँगा॥

भक्तजनों का दासानुदास
ग्रन्थ प्रकाशक
श्रीमोहनमान सेरचन्द

नेपाल राज्यान्तरगत कुछ और देवस्थल व पुण्यतीर्थों का दिग्दर्शन

(१) श्री भगवान पशुपतिनाथजी का ज्योतिर्लिङ्ग, नेपाल काठमाण्डू राजधानी में वाग्मती तट पर।

(२) श्री जगदम्बिका गुह्येश्वरी जी का पीठ, उपरोक्त वाग्मती तट पर।

(३) श्री वृद्ध नीलकण्ठ नारायण (शेषशायी) काठमाण्डू से करीव ४ मील उत्तर। मूर्ति स्वयं प्रकाश, दिव्यसुन्दर एवम् बड़ी विशाल है।

(४) राजधानी की चारों ओर चारों दिशाओं में श्री नारायण की मूर्तियाँ, श्री वज्रयोगिनी, दक्षिण कालिका इत्यादि प्रसिद्ध देवियों के पीठ एवम् सूर्य विनायकादि चार गणेश हैं।

(५) काठमाण्डू में वाग्मती के अतिरिक्त विष्णुमती, रुद्रवती, इच्छावती प्रभृति और भी सरिताएँ बह आई हैं। इनमें जल कम है परन्तु पुण्य बड़ा है।

(६) श्रीकृष्ण मन्दिर (स्थापित) काठमाण्डू-ललितपुर।

(७) श्री दत्तात्रेयजी का मन्दिर (स्थापित व दर्शनीय) काठमाण्डू-भक्तपुर।

(८) वाग्द्वार—जहाँ से पुण्यसलिला वाग्मती का प्रादुर्भाव दीखता है। यह स्थान हनुमान दरवाजा से करीब ५ कोश उत्तर पर है।

काठमाण्डू में रवसौल होकर राहदानी के साथ जाना होवा है।

(९) श्रीगुरु गोरखनाथजी का मन्दिर। यह स्थान खास गोरखनाथ जी का ही है। काठमाण्डू से पश्चिम करीब २० कोस की दूरी पर पहाड़ में है, प्राचीनकाल की गोरखा राजधानी यही है, अतएव नेपाल के पर्वतीय लोग गोरखाली कहलाते हैं। इनसे कोस भर की दूरी पर श्री जगदम्बा मनकामना देवी का प्रसिद्ध पीठ है।

(१०) नीलकण्ठहद (गोसाइं कुण्ड) इस कुण्ड पर जाने का काठमाण्डू से उत्तर की ओर पहाड़ पर करीब ४-५ रोज का पैदल रास्ता है। जाड़े में यहाँ पर बर्फ गिरती है अतः गरमी के मौसम को यात्रा करनी चाहिये। जाते समय कितने लोग पहाड़ पर की जहरीली बूटियों की गन्ध से बेचैन होते हैं, वहाँ की कहावत है कि पापी लोग गोसाइं जी के दर्शन को नहीं जा सकते हैं। कुण्ड विशाल है। जल शुभ्र व स्वच्छ है। वहाँ पर पेड़ से गिरे पत्तों को चिड़िया उठाकर ले जाती हैं। कुण्ड के बीच में दृष्टि देने से, किसी को शेषशायी लक्ष्मी-नारायण, कितनों को जटाजूट नीलकण्ठ गौरीशंकर जी, कितने लोगों को महिष मर्दिनी देवी, रथारूढ़ सूर्यनारायण वा सपरिवार गणेशजी और कतिपय लोगों को

इन्द्रादि विभिन्न देवता लोग देखाई देते हैं। याने भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन त होते ही हैं, विफल लौटना नहीं पड़ता है, परन्तु चाहे किसी रूप से हो।

(११) श्री मायाकुण्ड।

दार्जिलिङ्ग से आगे नेपालराज्य में इलाम से ५ मील ऊपर बर्फीले पहाड़ पर है। इसे माई ताल, वा माई पोखरी भी कहते हैं।

(१२) श्री महामाया योगमाया नदी संगम।

यह इलाम से दो मील की नीची जगह पर उक्त दो नदियों की वेणी लगी है। मकरमास में मेला लगता है। ओलाङ्गचुङ्ग, भूटान, सिक्कीम, कालिम्पोङ्ग, दार्जिलिङ्ग इत्यादि देश से व्य ारी लोग आते हैं और यात्री लोग भी प्रायः सब जगह के होते हैं। सर्कार से देखभाल होता है। वहाँ पर और भी कई तीर्थ हैं। इनका माहात्म्य हिमवत्खण्ड पर देखिये।

(१३) अनन्ताचल या अन्तु पहाड़।

यह भी इलाम जिला के फ्रीटल बाजार से ऊपर तीन मील की दूरीपर है। इस पहाड़ की चोटी से बदरी न हो तो प्रतिदिन उदयकाल में श्री भगवान सूर्यनारायणजी के, समीप के जैसे विचित्र-विचित्र दर्शन होते हैं। रास्ता विषम है। वर्सात में जोंक खूब लगते हैं। वास्तव में दार्जिलिङ्ग के सिञ्चल पहाड़ (Tiger Hill) की अपेक्षा यहाँ से स्वच्छ व सुन्दर दर्शन होते हैं। जाड़े के मौसम में वर्फ भी गिरती है।

(१४) दिव्य पर्वतमाला।

वे मैदान से लगी हुई श्रेणीबद्ध छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। यहाँ पर प्रत्येक ऋतु में हर प्रकार के फल, फूल व विचित्र जीव-जन्तु वगैरह अनेकों अद्भुत पदार्थ पाये जाते हैं। भाग्यानुसार देवता व महर्षियों के दर्शन भी मिलते हैं और यहाँ से कभी-कभी तोपों की आवाज भी सुनने में आती है। दीपमालिका की रात्रि में सारी पहाड़ियाँ दीपमाला से जाज्वल्यमान होती हैं और तीन दिनों तक दूर-दूर से लौकती हैं। यहाँ पर गलगलिया स्टेशन में उतर कर झाँपा होते हुए जाना पड़ता है। इलाम से भी जा सकते हैं। इन्हें वहाँ के समीपवर्ती लोग "चुल्हा-चुल्ही" पहाड़ कहते हैं। हिमवत्प्रान्त में इनका माहात्म्य बहुत बड़ा है।

(१५) सप्तकौशिकी (कोशी)।

यह हिमालय से गिरे हुए अरुण, तमोऽरि नाम के अल्पनद और ताम्रकौशिकी, सुवर्ण कौशिकी इत्यादि नदियाँ अर्थात् कुल सात नदी नद के सङ्गम से बनी नदी है। इन नदी-नद व कोशी का माहात्म्य अत्युत्तम है।

(१६) वाराह क्षेत्र।

यह चारों में से एक मुख्य पुण्यक्षेत्र है। यहाँ पर अत्युत्तम सुन्दर शिला के मूर्तिस्वरूप श्रीभगवान आदिवाराह जी के दर्शन होते हैं। माहात्म्य में इस क्षेत्र को परम पवित्र व भुक्तिमुक्तिदायक कहा है। यह कोशी के बाँयें तटपर है। यहाँ पर सूर्यकुण्ड, तप्तकुण्ड इत्यादि प्रत्यक्ष फलदायक अनेकों तीर्थ रहे, परन्तु उस पहाड़ के टूट जाने के कारण वे सब दब गये हैं। यहाँ से कुछ ऊपर में "उद्भूततीर्थ" (भुल्का पानी) व समीप में ही कोका नदी प्रभृति और भी कई तीर्थ हैं जिनके पुण्यों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। कार्तिक व माघ मास में विशेष मेला लगता है। दूरदूर से आये यात्रियों की घचघच भीड़ लगी रहती है। नेपाल सरकार उनपर देखभाल करती है। हिन्दुस्तान से वाराहक्षेत्र के दो रास्ते हैं, एक तो कोशी से डुङ्गी पर दूसरा जि० पूर्णिया, स्टेशन जोगबनी में उतरकर नेपाल राज्यान्तरगत विराट नगर होते हुए। इन दिनों बड़े समारोह के साथ सर्कारी तौर से उपरोक्त कोशी में बाँध बाँधने का सिलसिला जारी हो रहा है। इसलिए चतारा तक मोटर भी चली गयी है। वहाँ से तो फिर करीब में ही है।

(१७) श्री दन्तकाली व पिण्डेश्वर महादेव।

(अर्थात् श्रीसती देवी के दन्तपतन से बना हुआ श्रीदन्तकाली नाम का प्रसिद्ध देवीपीठ व देवीजी के प्रेम से समीपवर्ती होकर विराजित भगवान श्रीमहादेवजी का पवित्र लिङ्ग) ये स्थान उपरोक्त विराट नगर से आगे करीब ३० मील की दूरीपर धराण बाजार से ऊपर विजयपुर में हैं। यहाँ पर सदा काल यात्रियों का यातायात लगा रहता है। विशेष नवरात्र व शिवरात्री में खूब भीड़ लगती है।

(१८) धनुषतीर्थ, जानकी मन्दिर, राम मन्दिर व अनेकों तीर्थ।

ये स्थान नेपाल राज्यान्तरगत मध्य मिथिला में पड़ते हैं। इस पुण्यभूमि का नाम जनकपुर है। क्योंकि प्राचीन समय में राजा विदेह जनकजी ने यहाँ पर पुर बसाकर अपना राज्य जमाया था। हिन्दुस्तान से जिला दरभङ्गा, स्टेशन पुपुरी पर ट्रेन से उतरकर कुछ दूर तक मैदान का रास्ता चलना पड़ता है। आजकल नेपाल गवर्नमेण्ट की ओर से जयनगर स्टेशन होकर जनकपुर जाने के लिए एन० जी० रेलवे खुली है, अतः सुगमता से जा सकते हैं। यहाँ पर मेला तो प्रायः सभी दिनों का है परन्तु विवाहपञ्चमी, रामनवमी इत्यादि पर्वकाल में अत्यधिक मात्रा में दीखता है। विशेष जिज्ञासा पर मिथिला माहात्म्य पढ़िये।

(१९) जलेश्वर व मार्गावसर। यह स्थान जनकपुर से कुछ दूर पर है।

(२०) श्री महाकालीजी का प्रसिद्धपीठ।

यह पीठ नेपाल हनुमान दरवाजा से पश्चिम करीब ६१ कोस के दूर वागलुङ्ग ग्राम में जङ्गल के बीच कृष्णागण्डकी के तट पर है। यह प्राचीन काल से ही स्वयं प्रकाशमूर्ति है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार सुब्बा बलवीर ने किया था। उसके बाद सुब्बा कोमल बहादुर ने भी उसमें मरम्मत कराया। उसके बाद सन् १९३६ ईसवी में हमने (संगमर्मर) टायलेंट वगैरह लगवा कर सुशोभित किया।

(२१) (क) खन्ती नाड़ी कोट ग्राम में श्रीमहालक्ष्मीजी की प्राचीनकाल से प्रसिद्ध व बड़ी सुन्दर दर्शनीय मूर्ति है।

(ख) नाड़ी कोट से ½ मील की दूर पर श्रीनरसिंह तथा भैरवजी के तथा श्रीगणेश (वाराहजी) के दर्शन होते हैं। यहाँ १२ वर्ष में मेला होता है।

(ग) दान नामक ग्राम में श्री जगदम्बिका भवानीजी का प्रसिद्ध पीठ है।

(घ) भगवान श्रीशङ्करजी का शुभलिङ्ग।

यह लिङ्ग धवलगिरि के पास सुविशाल सिद्ध गुफा के भीतर है। दसहरा में मेला भी लगता है।

कागवेणी से १८ मील की दूरी पर धौलुंग्राम, च्युङ्सी गुफा, बीचमें शिवलिंग, अगल-बगलमें देवी, शिव, विष्णु, बुद्ध इत्यादि प्रत्येक से प्रकट हुई मूर्ति हैं। यह तीर्थ करने से काम, क्रोध भूल जाता है।

मुक्ती से जाने के रास्ते गोर्खपुर नौतनुवा टेसन् होकर उत्तर जाना पड़ता है। आगे रास्ता बहुत खराब था। हमने नेपाल गवर्मेन्ट में अर्जी करके पक्का लोहे का पुल बनवाया है। कहीं चन्दा से, कहीं अपने तरफ से कठोर पहाड़ काट कर रास्ता बनाया गया है। अब बहुत सुन्दर रास्ता बन गया है। यात्री लोग सुखपूर्वक यात्रा कर सकते हैं। घोड़े या डाण्डी से सरलता से जा सकते हैं।

त्रिशूलगङ्गा, शालग्राम पर्वत, मुक्तिक्षेत्र, रुरुक्षेत्र, सप्तगण्डकी व दामोदरादि तीर्थ इत्यादियों का विवरण तो मूलग्रन्थ का ही विषय है अतः मूलग्रन्थ व निर्दिष्ट तालिका द्वारा उक्त स्थानों का बोध करें।

प्रिय महाशय! उपरोक्त नेपालान्तर्गत कुछ प्रसिद्ध देवस्थल व तीर्थों का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। यों तो इस राज्य के अन्दर प्रसिद्धाप्रसिद्ध और भी कई देवस्थल व तीर्थ हैं जो कि हिमवत्खण्ड से पता लगालिये जा सकते हैं परन्तु आपलोगों से अनुरोध है कि पुराण व धर्मशास्त्रों के अनुसार उक्तानुक्त देवस्थल व तीर्थादिकों का स्वयं अनुसन्धान करलें क्योंकि ग्रन्थविस्तार के कारण सम्पूर्ण नहीं लिखे जा सके।

श्रीमतां विधेयो—

भवानीशङ्कर शास्त्री कफलकः

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गतहिमवत्खण्डानुसारेण

श्रीगण्डक्याद्युत्पत्तिस्तन्माहात्म्यादिकञ्च संगृह्य लिख्यते ।

श्री गणेशाय नमः ।। नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

स्कन्द उवाच ।। दत्वा दायं मुनिभ्यश्च यत्र पञ्चाग्निदेवताः । नीलकण्ठ-ह्रदात्पूर्वं ययौ सा सखिभिर्मुदा ।। आदाय विधिवद्भूयः सर्वदायानि सत्वरम् । तत्पश्चिमन्तु सागन्तुमियेष धर्मसंयुता ।। हिमाद्रेर्नीलकूटे सा समागच्छत्पुनर्मुने । यत्र प्रतप्तवांश्चात्रिराराध्यैनां महामुनिः ।। अत्रये सा ददौ दायं तमभ्यर्च्य यथाविधि । वासोयुग्मं सुवर्णञ्च कपिलां तिलमोदकान् ।।

स्कन्दपुराणान्तर्गत हिमवत्खण्ड के अनुसार मुक्तिक्षेत्र व गण्डक्यादि नदियों की उत्पत्ति और उनके माहात्म्य ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

पहले पुरुषोत्तम नर-नारायण, देवी सरस्वती और भगवान वेदव्यास के लिये नमस्कार करें पश्चात् प्रकृतशास्त्र का वर्णन करें । श्री जगदम्बिका गौरीजी की तपश्चर्या के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए भगवान स्कन्द कुमारजीने अगस्त्य-मुनिसे इसप्रकार कहा है ।

॥ स्कन्दजी बोले ॥

वह (गौरी देवी) मुनियों को दान देकर जहाँ पर पञ्चाग्निदेव हैं उस नीलकण्ठ ह्रद (गोसाईं कुण्ड) से आगे की ओर सखियों को साथ लिये प्रेम से चलीं ॥ फिर उन्होंने पहले की तरह शास्त्र के मुताबिक सभी दातव्य पदार्थों को साथ लेकर धर्म से युक्त हो वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर चलने की इच्छा की । एवम् वह हिमालय से नीलकूट गिरि पर पहुँच गयीं । हे अगस्त्यजी ! जहाँ पर कि इन्हीं की आराधना करते हुए अत्रि मुनि तप करते थे ॥ उन्होंने (श्रीजगदम्बिका गौरीजी ने) विधिपूर्वक पूजोपहार के साथ अत्रिजी को भी एक जोड़े कपड़े, परिमित सुवर्ण, कैरी गाय और तिलके लड्डू ये सब दान दिये ।

तस्यावामपदोघर्मस्तत्रापतत्सुनिर्म्मलः। अत्रेःस्थाने महापूते व्रतकुण्डाच्च-दक्षिणे। ददर्श तत्र धर्मार्तोगण्डोनाममहामुनिः ॥ गौरीपादतलोद्भूतं ह्रदीभूतं च कन्दरे। अतिवृद्धोऽपि गण्डर्षिःसमागत्य शनैः शनैः ॥ तपःस्थो घर्मसम्भूते सरसौ भक्त्या निमज्य च। ह्रदादुत्तीर्य गण्डर्षिः स्वदेहं च ददर्श च ॥ पञ्चविंश-तिभिरब्दैर्युक्तं युवानमग्रतः। बहुजन्मार्जितैः पापैर्निर्मुक्तो रूपवान् पुनः ॥ सस्मार प्राकृतं कर्म पूर्वजातिं स सर्वशः। लोमाञ्चनो मुनिर्भक्त्या स्तवञ्च-कार हर्षितः ॥ गौरीघर्माम्भसे धीमान्समभ्यर्च्य परिक्रमन् ॥

॥ अथ जलदेवीस्तोत्रम् ॥

गण्ड उवाच ॥ ॐ नमो लोकधात्रङ्घ्रिपद्मोद्भवसुवारिणे। सर्वजीव-स्वरूपिण्यै जीविनां जीवरूपिणि ! ॥ नमो जीवनरूपिण्यै जीवदायै च जीविनाम्। जीवैश्वर्यै नमस्ते वै जन्मदे[1] जन्मकारिणि ॥ नमस्तेऽमृतरूपिण्यै

उस समय उसी स्थानपर देवी के वामपाद से अतिनिर्म्मल पसीने गिर गये ॥ अत्रिमुनि के आश्रम पर व्रतकुण्ड की दाहिनी तर्फ गुफा में श्रीगौरीजी के चरणारविन्द से उत्पन्न जल से बने हुए तालाब को एक अति वृद्ध धूप से पीड़ित गण्डनामक महामुनि ने देखा, और धीरे-धीरे वहाँ पर आकर उन तपस्वी ने स्वेदोत्पन्न ह्रद में भक्तिपूर्वक डुब्बी लगाकर स्नान किया ॥ तालाब से उतर कर बाहर निकलते ही उन्होंने अपने को अनेकों जन्म के पापों से रहित अतिसुन्दर पच्चीस वर्ष का नवजवान अवस्था में पाया और वह अपने प्राक्तन कर्म और पूर्व जाति का सब तरह से स्मरण करने लगे, मारे हर्ष के उनके रोंगटे खड़े हो गये। वह मतिमान् मुनिदेव गौरी स्वेद सम्बन्धी कुण्ड जलपर पूजा व परिक्रमा करके भक्तिपूर्वक स्तोत्रपाठ करने लगे।

जलदेवी की स्तुति—

गण्डर्षि बोले। ॐकार की ज्योति व जगन्माता गौरी देवी के चरणारविन्द से उत्पन्न अतिसुन्दर जलस्वरूप देवी को नमस्कार है। हे जीवों की जीवशक्ति! आपही सभी जीवों का स्वरूप धारण करनेवाली हैं, अर्थात् आप की शक्ति के अतिरिक्त कोई जीव वस्तु ही नहीं है अतएव आप जीवन (आयुः वा जल) स्वरूप की हैं, और गुण, कर्म, स्वभाव व काल के अनुसार प्राणियों को अभय देनेवाली हैं याने आयुर्दा स्वरूप हैं वही आप को नमस्कार है। जबतक जीवों को परमैश्वर्य का लाभ अर्थात् सच्चित् शक्ति का यथार्थ बोध नहीं होता है तबतक वे सब जीवरूप से इस माया जगत् में ही नाना योनियों में जाकर जन्म

---

१ जननं देहि जीविनाम्, इति पाठान्तरम्

द्रवरूपे नमोऽस्तु ते। द्रवीभूतामृतायै ते चामृतायै नमोनमः॥ भद्रायै च शिवायै ते कल्याण्यै कमले नमः। संसारे शारदे भक्त्या साररूपे नमोस्तु ते। संसारभीष्मशार्दूलकृतान्ताशिनि ते नमः। संसारिणामघौघस्य विनाशिनि नमोस्तु ते॥ जीविनामन्तसंस्थित्यै विमलायै नमोनमः। सर्वजीवप्रवन्द्यायै अनघे ते नमोनमः॥ रसायै ते रसस्थायै रससर्व-

---

लेते हैं उनका निर्वाण नहीं हो सकता है अतएव आप जगज्जननी जन्मदायिनी कहलाती हैं वही आप को नमस्कार है। जीव शब्द का अर्थ वृक्ष विशेष व प्राण भी हैं वे ही सब अर्थात् चराचर ही आपके ऐश्वर्य हैं इसीसे आप जीवैश्वर्य वा आद्याशक्ति कहलाती हैं। अर्थात् "प्राणान् क्षेत्रज्ञरूपेण धारयन् जीव उच्यते" इस प्रमाण के अनुसार शरीर तो क्षेत्र है और उसपर आत्मशक्ति स्वरूप से प्रविष्ट होकर चैतन्य जीवमय क्षेत्रज्ञशक्ति आप ही हैं। अतएव आप क्षेत्ररूप से दृश्य और क्षेत्रज्ञरूप से अदृश्य ज्ञानस्वरूप मात्र हैं। (देवी भागवत में भी कहा है कि "नसती सा नासती सा नो भयात्मा विरोधतः" इत्यादि)॥ आपका स्वरूप अमृतमय है, अर्थात् तम वा मृत्यु से रहित है अतएव ज्योतिस्वरूप हैं क्योंकि "तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय, असतो मा सद्गमय, तमो ह वा एष मृत्युः" ऐसा श्रुति वाक्य है। वैसी अमृतस्वरूपिणी आपको नमस्कार है। आपका द्रव (तरल वस्तु वा श्रद्धा) भी रूप है द्रवरूपे ! आप को नमस्कार है। द्रव कहते हैं जल को भी, वही तो हमारे लिए अमृत है याने जीवन है क्योंकि निघण्टु में जल के नामपर "जीवनं भुवनं वनम्" ऐसा कहा है अतएव जलस्वरूप अमृत और जन्म-मरण से रहित आप को नमस्कार है, नमस्कार है। हे कमले ! (महालक्ष्मी !) भद्रा, शिवा, कल्याणी इत्यादि आपके अन्वर्थ संज्ञक नाम हैं वही आप को नमस्कार है। भक्ति से संसार में सार वस्तु (तत्वधन) को देनेवाली "मेधासि देवि विदिताऽखिलशास्त्रसारा, इत्याद्यन्यत्रोक्तत्वात्" हे अखिलशास्त्रादिसाररूपे आपको नमस्कार है। संसार में प्राणियों पर झपटनेवाले सिंह के सदृश अति भयंकर जो मृत्यु है उसे भी भक्षण करनेवाली आपको नमस्कार है। क्योंकि "या वै मुक्ति हेतु" इत्यादि वचन है। संसार में देह धारणकर अनेकों योनियों पर विचरनेवाले जीवों के पापपुञ्ज का नाश करनेवाली आप को नमस्कार है। पूर्वोक्त रीति से जगत्सृष्टिकारिणी तो आप है ही हैं किन्तु जन्यजीवों की स्थिति और संसार की करनेवाली नमस्कार योग्य आप ही हैं अन्यत्र भी कहा है कि "सृष्टिस्थिति विनाशानां शक्तिभूते सनातनि" एतावता यह फलित हुआ कि

स्वरूपिणि। मान्यायै वहुरूपायै मनोरूपे ! नमोनमः ॥ ध्यातव्यायै धरण्यै ते सर्वाधारे नमोनमः ॥ रक्ष रक्ष च मां देवि ! विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे हिमवत्खण्डे गण्डर्षिकृत जलदेवीस्तोत्रम् शुभम् ॥

स्कन्द उवाच—

समाकर्ण्य स्तवं दिव्यं गण्डर्षेः श्रीमुखाच्च्युतम। जलदेवी ततो भूयो ह्रदाद्धर्माद्विनिर्ययौ ॥ मुनये वरदानार्थं जलदेवी मनो दधे। स्तवैः प्रतोषिता तस्यै त्रिविधैश्च मुनेर्भृशम् ॥ जलदेव्युवाच ॥ वत्स भक्त वरं मत्तस्त्वं वृणीष्व यथेप्सितम्। दास्याम्यहञ्च तत्तेऽद्य स्तुतिभिस्ते प्रमोदिता ॥

सर्गस्थिति और प्रलयकारिणी निर्मल शुद्ध स्वरूप आपको नमस्कार है॥ कौन ऐसा जीव होगा कि आपसे बड़ा होकर आपकी वन्दना न करेगा। अर्थात् सबसे वन्दनीय दोष या गुणरहित निर्मल स्वरूप आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप रस भी है या रसा (पृथ्वी) भी है। आप शृङ्गारवीरकरुणादि वा कटुतिक्ताम्लादि स्वरूप होकर उसीपर रहती हैं यों कहें कि रहती क्या हैं वही तो आपका स्वरूप है, हे इच्छास्वरूपिणी ! आपके रूप व्यक्तिगत या अनन्त हैं क्यों कि "या देवि सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता" ऐसा अन्यत्र कहा है और आप सब लोक में मान्य हैं वैसी विशुद्ध मूर्तिवाली आपको अनेक बार नमस्कार हैं। आप श्रवण मनन से निश्चित ध्यायनीय हैं। आप जगत की माता हैं या धरणी (पृथ्वी) स्वरूप सम्पूर्ण जगत् की आधार हैं "आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थिताऽसि। अपां स्वरूपा·········आप्यायसे कृत्स्न-मलङ्घ्यवीर्ये" आपको अनेकों बार नमस्कार हैं २ ॥ हे विश्वेश्वरि ! हे अनन्त रूपधारिणि ! आप मेरी रक्षा करें २ आप को नमस्कार है। "विश्वतश्चक्षुरुत··· इत्यादि श्रुतिपर अविवक्षित स्त्रीत्व को लेकर आत्मा का प्रतिपादन किया है जैसे कि प्रत्ययों का अनुबन्ध छोड़ दिया जाता हो वही सर्वस्वरूप आप को नमस्कार है ॥ इत्यादि ॥ श्री मद्गण्डर्षिकृत जलदेवी का स्तोत्र पाठ समाप्त हुआ॥ इतना कहकर फिर स्कन्दजी बोले ॥ गण्डर्षि के श्रीमुख से निर्गत दिव्य स्तोत्र पाठ को सुनकर फिर से जलदेवी उसी स्वेदकुण्ड से बाहर निकल आई और मुनिदेव के उक्तानुक्त (वैदिक, पौराणिक और अनुभूत) त्रिविध स्तोत्रों से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें वर देने के लिए विचार करने लगीं ॥ जलदेवी ने कहा कि हे वत्स, हे भक्त ! तुम मुझसे यथेच्छ वर माँगो, मैं आज तुम्हारी स्तुति से सन्तुष्ट होकर तुम्हें वरदान दे रही हूँ। तुम यों समझो कि तुम्हारी स्तुतियों

त्वत्स्तुतिरज्जुभिर्बद्धा त्वया नीतात्र साम्प्रतम्। मद्रूपा त्वयि शीघ्रं सा रसान्कामान् स्रविष्यति ॥

॥ गण्डर्षिरुवाच ॥

अहोभाग्यमनाथस्य भवेद्दीनस्य मेऽधुना। अद्यैव पितरस्तृप्ता अद्यैव तपसः फलम् ॥ जीवितं सफलं मेऽद्य भवेज्ज्ञानेन्द्रियन्तथा। बहुयोगेन सम्प्राप्य त्वद्दर्शनमभून्मम ॥ आविर्भूता भवन्ती वै यतोमय्यनुकम्पया। अगोचरा मनोभिश्च योगिनामतिकष्टतः ॥ याचेऽहं त्वां वरं देवि ! ह्यगोचर-वरानने ! एतद्धि वरदे मह्यं सर्वलोकदयाकरे ! त्वयि ध्यानरतो नित्यं त्वत्पूजायाञ्चनैष्ठिकः। स्मरणे तव निष्ठा मे त्वां नमामि भवानि वै ॥ त्वयि भक्तिरतोनित्यमन्ते तेऽङ्घ्रिसरोरुहे। विलोष्टामि परे मातर्वरो मे दीयतामयम्॥ जलदेव्युवाच ॥ तत्तथास्तूच्यते वत्स यत्ते मनसि वर्तते ॥ भूत्वा योगीश्वरश्चैवमन्ते मत्पदे लीयसे। भूयो दास्ये वरं तुभ्यं शृणु स्वान्तसमाहितः ॥

के पाश से बद्ध होकर मैं यहाँ पर अभी लाई गयी हूँ। मेरी दूसरी प्रकृति जो है वह तुमपर शीघ्र ही कामरसों का प्रसव करेगी ॥

॥ गण्डर्षि ने कहा ॥

अहो मुझ अनाथ दुःखी ब्राह्मण का अभी भाग्योदय हुआ है। आज मेरे पितृलोग तृप्त हुए और आज ही तपश्चर्या सफल हुई और यहाँतक कि आज तो मेरा जीवन ही नहीं बल्कि ज्ञान की इन्द्रियाँ भी सफल हो गयीं। बहुत प्रार्थना से मिलकर मुझे आपका दर्शन मिला। क्योंकि मुझपर करुणा रखकर योगियों के मनमात्र के द्वारा अतिकष्ट से भी दुष्प्राप्य जैसी स्वयं आप प्रकट हो गयी हैं। हे अतीन्द्रिय सुन्दर वदनवाली, वरदायिनी देवि ! हे सर्वलोक दयाकरि ! मैं आपसे इसी वर की प्रार्थना करता हूँ कि "मैं नित्य ही आप के ध्यान में दत्तचित्त, आपकी पूजा में श्रद्धालु और आपके स्मरण में नैष्ठिक हो जाऊँ" हे भवानि ! आपको नमस्कार करता हूँ ॥ याने हर तरह से नित्यप्रति आप की भक्ति में निरत होकर अन्त समय में परमधामस्वरूप आपके चरणारविन्द में लीन ही हो जाऊँ, हे मातः ! मुझे यही वरदान दीजिये ॥ जलदेवी ने कहा ॥ हे वत्स ! मुझसे कहा जा रहा है कि जो तुम्हारी इच्छा है वह "तथास्तु" हो। तुम योगीराज बनकर अन्तसमय में मेरे पदपर लीन ही हो जाओगे। मैं तुम्हें और भी वर देना चाहती हूँ, सावधान होकर सुनो, क्योंकि मेरे शरीर से निर्गत मेरी ही मूर्तिस्वरूप जल में गोता लगाने से तुम मेरे परम

यस्मान्मद्भक्तियुक्तस्त्वं मन्मूर्त्यम्बुसमाप्लवात्। यत्र यत्र च मत्स्वेदविन्दुर्विप्र! पतिष्यति॥ तत्र तत्र नदीमूर्तिधारा सत्वरगामिनी। सप्तधारा भविष्यन्ति ता मे जानीहि मूर्त्तयः॥ तास्ते नाम्ना भविष्यन्ति प्राक् स्नानात्ते मुने! सदा। गण्डेनादौ हि संस्नातं गण्डकीति ततो भवेत्॥ लोकाश्च सप्तगण्डक्यो वदिष्यन्तीति सन्ततम्। प्रस्थानं कुरुते स्नातुमेकचित्तो गृहादिह॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं विन्देत्समाप्लवात्। यः करोति नरस्तत्र स्नानं पापैः प्रमुच्यते॥ अक्षयं स्यान्मुनिश्रेष्ठ! श्राद्धं योऽत्र करिष्यति॥ जपहोमार्चनं दानं यः करिष्यति मत्तटे। सर्वपापैविनिर्मुक्तः स यास्यति पराङ्गतिम्॥

॥ स्कन्द उवाच॥

एवं दत्त्वा वरं तस्मै श्रावयित्वा तदायतिम्। तिरोधानं ययौ विद्वञ्जलदेवी पुनर्जले॥ दत्त्वा दायं ततो गौरी रौप्यश्रृङ्गं जगाम ह। ध्यायमानः

भक्त हो गये हो। हे विप्र! जिस-जिस स्थानपर मेरी स्वेदविन्दु गिर पड़ेगी वहाँ वहाँ पर मेरी नदीमूर्तिस्वरूप वेगवती धारा बह चलेगी। ऐसी सात जगह पर नदियों की धाराएँ बहेंगी, उन्हें मेरी मूर्तियाँ समझो॥ हे मुने! वे सब नदियाँ सदा आपके नाम से प्रसिद्ध रहेंगी। अर्थात् गण्ड मुनि ने ही उनपर सर्वप्रथम स्नान किया तो जानो कि सब नदियाँ गण्डकी नाम की हो गयीं॥ दुनियावाले भी इन्हें सप्त गण्डकी नाम से हमेशा पुकारा करेंगे। जो नर एकाग्रमन से इनपर स्नान करने को घर से प्रस्थान करता है वह जाकर स्नान करने से रास्ते पर का ही पग-पग में एक-एक अश्वमेध के फल का लाभ करता है॥ जब चलते समय की कदम-कदम पर तो अश्वमेध यज्ञ सम्बन्धी फल का लाभ करता है तो फिर स्नान ही कर पावे तो जाने कि वह मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो गया है। उक्त मेरे सम्बन्धी नदी तटपर हे मुनिवर! जो नर श्राद्ध करेगा उसे अक्षय पुण्य होगा। जो जप, होम, दान, पूजा व पाठ इत्यादि शुभकर्म करेगा वह सब पापों से रहित होकर परम गति को प्राप्त होगा॥

॥ श्री कुमारजी ने कहा॥

हे विद्वन् (अगस्त्यजी)! इस प्रकार जलदेवी ने गण्डर्षि को वरदान दे और उनके भविष्य को सुनाकर जल ही में फिर अपने स्वरूप को छिपा लिया॥ उधर की बात यह है कि अपनी सहेलियों के साथ दान सामग्री को लिये श्री गौरी देवी आश्रम यात्रा करती रहीं, फिर उन्होंने क्या किया? इसपर कहते हैं कि— अत्रि को कुछ दान देकर वहाँपर से श्री गौरीजी पूर्ववत् रौप्यश्रृङ्ग की तरफ चली

शिवं तत्र मरीचिस्तप्तवान्पुनः ॥ स ददर्श ततो यान्तीं गौरीं तां सखिभिः समम् । नीलाद्रेः पश्चिमे शृङ्गे यत्र योजनदूरतः ॥ सोऽप्यन्वगच्छदार्याया भक्तियुक्तस्तुवन्मुहुः । ध्यात्वा हृदरविन्दे तां परां दीपशिखाकृतिम ॥ तत्र गौरी ददौ दायं मरीचयेऽर्च्य-भक्तितः । तिलधेनुं सुवर्णं गां यज्ञसूत्रञ्च मोदकान् ॥ तत्रैवचापतद्धर्मो गौर्याश्चिबुकदेशतः । नदीभूता च तत्कूटात्प्रववाहोर्मिमालिनी ॥ समभ्यर्च्य च तां भक्त्या सस्नौ तस्यां स्तुवन्मुनिः । सितकान्तौ च गण्डर्षिः सन्ततर्प पितॄन्सुरान् ॥ ततोऽगमत्पुनर्गौरी महाकूटं च तप्तवान् । पुलस्त्यो यत्र योगीशः सोऽन्वगच्छन्मुनिस्त्वपि ॥ ददौ दानं मुदा गौरी तस्मै पूज्योपवीतकम् । वासोयुग्मं सुवर्णं गां करकान्तिलमोदकान् ॥ तत्रापि चापतद्धर्मः पूर्ववद्वामसृक्किणः । नदीभूता च पीताभा ववाह गिरिशेखरात् ॥ आनर्च विधिवत्तस्यां भक्त्या तुष्टाव हर्षितः । सस्नौ तस्यां च गण्डर्षिः सन्ततर्प पितॄन्सुरान् ॥ भूयोऽगच्छत्ततो गौरी मणिकूटे

गयीं । वहाँ पर श्री मरीचिमुनि भगवान् शङ्करजी के ध्यान में रहकर तप करते थे । सखियों के साथ जाते समय गण्डर्षि ने श्री गौरीजी को देख लिया था । वह नीलपर्वत से पश्चिम की ओर जो कि एक योजन की दूरीपर पहाड़ की चोटी है, उस मार्ग से उक्त स्थान पर जाने को निकलती रहीं । गण्डर्षि भी उन आर्या (गौरीजी) की स्तुति करते हुए भक्तियुक्त होकर उन्हीं के पीछे-पीछे हो लिए । वह हृदयारविन्द में दीपशिखाकार परमशक्तिस्वरूप गौरीजी का ध्यान करते ही रहे ॥ उस स्थानपर श्री गौरीजी ने भक्तिपूर्वक मरीचिमुनि की पूजा कर उन्हें भी कुछ द्रव्य का हिस्सा (दाय) दिया । जो कि—तिल, धेनु, सुवर्ण, गाय, जनेऊ और लड्डू ये सब देय पदार्थ रहे । वहाँ पर भी श्री गौरीजी की चिबुक (ठोंड़ी) से स्वेद की बूँदे टपकीं और उस शिखर से बड़ी तरङ्गवती नदी बनकर बहने लगी । गण्ड मुनि ने उप श्वेतवर्ण (श्वेत गण्डकी) नदी की पूजा करके उसीपर स्नान और देवता व पितरों के लिए तर्पण किया । फिर वहाँ से श्री गौरीजी महाकूट शिखर की तरफ चली गयीं, जहाँपर योगीश्वर पुलस्त्यजी तप किया करते थे, गण्डर्षि भी गौरीजी के पीछे होकर चले गये । श्री देवीजी ने, उन्हें सम्मान के साथ, जनेऊ, धोती, दुपट्टा, सुवर्ण, गाय, कमण्डलु और तिल के लड्डू ये सब दान दिये । वहाँपर भी पहले की तरह बायें होंठ की बगल से पसीने गि' गये, जिनसे पीले वर्ण की नदी बनकर पर्वत की चोटी से बहने लगी । गण्डर्षि ने विधिवत् उस नदी की पूजा और हर्षपूर्वक स्तुति पाठ किये, एवं उसपर स्नानपूर्वक देवता-पितरों का तर्पण किया । फिर वह देवी

च तप्तवान् । पुलहो यत्र योगीशस्तस्याःसान्वगमत्पुनः ।। पूजयामास विधिवत् प्रेम्णा तं गिरिजा मुदा। पञ्चोपहारकैर्दिव्यैर्भूदेवं द्विजवर्चसम् ।। पुलहाय ददौ गौरी मणिकूटे तपस्यते । सम्पूज्य विधिवत्तस्मै दानं गां स्वर्णकं तिलान् ।। करकान् यज्ञसूत्रञ्च गुडाऽऽज्यमिश्रपिष्टकान् । पुनरप्यपतद्घर्मस्तत्कपोलात्सुनिर्मलः । नदीभूताहि तच्छृङ्गाद्ववाह श्वेतवाहिनी ।। सुवेगिनीं नदीं दृष्ट्वा बहुकल्लोलिनी तदा। सस्नौ भक्त्या सगण्डर्षिः संतर्प्य पितृदेवतान् ।। भूयो जगाम सावाचीं योजन-द्वयदूरतः । रत्नशृङ्गेऽन्वगच्छत् स क्रतुर्यत्रप्रतप्तवान् ।। ददौ बहुधनं तस्मै तिलहेमसमन्वितम् । कपिलां यज्ञसूत्रं च मोदकान्करकाँस्तथा ।। तत्रै-वाप्यपतद्घर्मस्तस्यास्तु निर्मलोऽलकात् । नानावर्णनदीभूता ववाहश्शृङ्ग-देशतः ।। दृष्ट्वा सुनिर्मलां धारां नदीं तां विश्वपावनीम् । सस्नौ तस्याञ्च गण्डर्षिस्सन्तर्प्य पितृदेवताः ।। दत्त्वा दायं पुनर्गौरी तदवाचीं जगाम च। योजनद्वयदूरे वै भृगुर्यत्र प्रतप्तवान् ।। सोऽन्वगच्छन्पुनस्तस्या ददौ गौरी

मणिकूट पर चली गयीं, जहाँपर योगिराट् पुलहजी तपस्थित रहे, गण्डर्षि ने भी गौरीजी का पीछा न छोड़ा। गिरिजादेवी ने प्रेमपूर्वक हर्षित होकर ब्रह्म तेजस्वी उन भूदेव (ब्राह्मण) की विधिवत् पञ्चोपचार से पूजा की। इस तरह पुलहजी की विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें भी गाय, सुवर्ण, तिल, कमण्डल, यज्ञसूत्र, घी, चीनी और आँटा से बने लड्डू वा मालपूआ घेवर इत्यादि दान दिये। फिर उनके कपोल से स्वच्छ स्वेद गिरा तो वहाँपर भी मणिकूट शिखर से श्वेत गङ्गा होकर बहने लगी। अत्यन्त वेगशाली बहुत तरङ्गवाली उस नदी को पाकर भक्तिपूर्वक गण्डर्षि ने फिर स्नान व देवर्षिपितृतर्पण किये। फिर वहाँ से दुइ योजन की दूरी में दक्षिण की ओर रत्नशृङ्गपर चली गयीं, गंण्डर्षि तो कब गौरीजी का पीछा छोड़नेवाले रहे इस वास्ते वह भी अनुयायी होकर चले, जहाँपर कि क्रतुमुनि तप करते थे। उन्हें भी आदर के साथ गौरीजी ने तिल, सुवर्ण, कैरीगाय, जनेऊ, लड्डू व कमण्डल वगैरह बहुत धन दिये। वहाँ पर भी उनकी अलक (बालों की घूँघर) से निर्मल स्वेदधाराएँ गिरीं और उनसे नाना रूप की नदी बनकर पर्वत की चोटी से बहने लगी। उस स्वच्छ व धारावाली विश्वपावनी नदी को देखकर गण्डर्षि ने उसपर भी स्नान किया और देवता व पितृ लोगों को भी तर्पण की अञ्जुलियाँ दीं। उक्त प्रकार उन्हें दाय भाग को देकर उस शृंग से भी वह दक्षिण की ओर गयीं। जिस जगह से दुइ कोश की दूरी पर भृगु मुनि तपश्चर्या में स्थित रहे उस स्थान को चली गयीं, फिर गण्डर्षि उनके अनुयायी हो गये। श्री गौरीजी ने मुनीश्वर भृगुजी को

च वाससी । भृगवे गां तिलान्स्वर्णं सक्तून् गुडाऽऽज्यमिश्रितान् ।। तत्रापतत्पुनर्घर्मस्तल्ललाटात्सुनिर्मलः । दुग्धाभा सा नदीभूता एकशृङ्गाद्ववाह च ।। दृष्ट्वा नदीवरां श्वेतामेकशृङ्गावतारिणीम् । पुनर्ममज्ज गण्डर्षिः सन्तर्प्य पितृदेवताः ।। ततो वव्राज सा गौरी द्विकूटे तुङ्गशेखरे । तप्तवानङ्गिरा यत्र तस्या गण्डर्षिरन्वगात् ।। तस्मै ददौ बहून्दायान् गौरी साऽभ्यर्च्य भक्तितः । तिलधेनुं सुवर्णञ्च पिण्याकं सघृतं च गाम् ।। तत्रापतदपाङ्गाच्च घर्मबिन्दुः सुनिर्मलः । नदीभूता च नीलाभा ववाह तुङ्गशेखरान् ।। भिन्नाञ्जननिभां पत्रे मसिधारामिवार्जुने । प्रेम्णा सस्नौ स गण्डर्षिः संतर्प्य पितृदेवताः ।। एवं दत्त्वा मुनिभ्यश्च दानानि विविधानि च । सप्तभ्यो गिरिजा देवी प्रतस्थे हि पुनस्ततः ।। समाययौ हि तस्मात्सा यत्र पञ्चाग्निदेवताः । नीलकण्ठह्रदात्पूर्वं प्रतप्तं सखिभिः पुरा ।। समाप्य पञ्चमे वर्षे पञ्चाग्न्याख्यं व्रतं हि सा। भोज्यं दानानि दत्त्वैवं स्वगेहमगमत्पुनः ।। एवं या कुरुते नारी उमाव्रतमहो-

---

धोती, उपरने, गाय, तिल, सुवर्ण, घी और चीनी से साने गये सत्तू वे सब चीजें दे डालीं । फिर उनके माथे से अति निर्मल पसीने बह आये, तब दूध की जैसी सुफेद नदी बनकर एक ही शिखर से बहने लगी । एक श्रृंग से उतरती हुई उस श्वेत नदी को देखकर उसमें भी गण्डर्षि ने गोता लगाई और अपने देव व पितरों का तर्पण भी किया । इसके उपरान्त गौरी देवी ने द्विकूट पर्वत के शिखर की तर्फ की यात्रा की गण्डर्षि उनके अनुयायी बन गये । जहाँ पर अङ्गिरा नामक मुनि तपस्या करते रहे । वह पर देवीजी ने अङ्गिरा मुनि की आवभगत के साथ भक्तिपूर्वक बहुत कुछ द्रव्य दिये, जैसे कि तिल, धेनु, सुवर्ण, तिलवा (लड्डू), घृत-पात्र व गाय । उस स्थान में भी उनके नेत्र प्रान्त से स्वच्छ स्वेद बिन्दुएँ टपकीं, वे नीलवर्ण नदी होकर उच्च शिखर से बह आईं । उसकी छवि ऐसो रही कि मानों कज्जल का पर्वत टूट गया हो या अर्जुन वृक्ष के पत्र में काली स्याही की धारा धारी गयी हो । उसपर भी गण्डर्षि ने प्रेम से स्नान-दान-तर्पण वगैरह किये । पूर्वोक्त प्रकार से सातों मुनियों को अनेकों दान देकर फिर जगदम्बिका पार्वतीजी ने वहाँ से भी प्रस्थान किया । अर्थात् वह उसी स्थान पर चली आईं जहाँ पर कि पञ्चाग्निदेव का आवाहन किया है । याने नीलकण्ठ ह्रद (गोसाईं कुण्ड) से पूर्व जिस जगह पर रहकर पहले अपनी सखियों के साथ वह तप करती रहीं । पाँचवें वर्ष में पञ्चाग्नि नामक व्रत को समाप्त करके ब्राह्मणादिकों को भोजन व दान दे फिर अपने धाम को चली गयीं । इसी प्रकार जो नारी उमाजी के व्रत व बड़े २ उत्सवों

त्सवैः । समाप्य पञ्चमे वर्षे नानाविभवविस्तरैः ॥ द्विजातीन्भोजयेत्पञ्च संवर्ध्य प्रतिहायनम् । यावत्पञ्चाब्दकं सम्यग्दद्याद्दानानि सर्वशः ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्ता पतिपुत्रसमन्विता । इहलोके सुखं भुक्त्वा सा यास्यति पराङ्गतिम् ॥ येन कामेन यद्धर्मं यावज्जीवं करोति या । तं तं कामं समाप्नोति सर्वपापैर्विवर्जिता॥ सार्वभौमप्रिया भूत्वा सर्वभोग्यप्रमोदिनी । अन्ते प्रलभते मोक्षं समुद्धृत्य कुलानि च ॥ ततश्च जलदेवी सा पुनस्तोयाद्विनिर्ययौ । आविर्भूता तदा तत्र गण्डर्षिं तमुवाच ह ॥ जलदेव्युवाच॥ अहो ! भाग्यवतां श्रेष्ठ ! शृणुमत्तो वचः पुनः । यस्मात्सर्वासु धारासु स्नातं सुश्रद्धया त्वया ॥ सुखं कोटियुगं भुक्त्वा पश्चाद्योगीश्वरो भवेः । तदन्ते मयि लीनो वै भविष्यसि न निर्वृतिः ॥ भूयश्च सप्तधाराणां गण्डकीनां च वच्मि ते । अभिधानानि सर्वासां मुने शृणु पृथक् पृथक् ॥ धर्मधारा यशोधारा विश्वधारा सितप्रभा । रत्नधारा सुवर्णाभा कृष्णा-

---

के साथ पञ्चाग्नि व्रत धारण करती है, उसे चाहिये कि वह पाँच वर्ष तक व्रत में रहकर समाप्ति काल में अनेकों धनादिक ऐश्वर्य द्वारा व्रत की प्रतिष्ठा करे। प्रत्येक वर्ष की वृद्धि के क्रम से (अर्थात् कम से कम) पाँच ब्राह्मणों को भोजन करावे, सर्वशः अर्थात् कपटभाव को छोड़, जहाँतक हो सके सब तरह से धन को जुटाकर पाँच वर्षतक दान देती रहे तो वह सभी पापों से रहित पतिपुत्रादिकों से युक्त हो इस लोक में अनेकों सुख भोग करके अन्त में परमधाम को प्राप्त होवेगी ॥

जो नारी जिस कामना से जो भी धर्म हो अपनी जिन्दगी भर करती है वह उन कामनाओं को प्राप्त करती है और सब पापों से रहित हो जाती है। यहाँ तक की चक्रवर्ती सम्राट् की प्रिय महारानी होकर सभी भोगैश्वर्य का आनन्द लूट लेगी, अन्त काल में अपने कुलों का उद्धार कर मोक्ष का लाभ करेगी।

इतनी कथा सुनाकर फिर कुमारजीने अगस्त्य मुनि से कहा—'गौरीजी के परमधाम प्रस्थान के बाद फिर जल से ही प्रगट होकर बाहर निकल आई॥ उस समय प्रकट होकर जल देवी ने गण्डर्षि से वहाँ पर इस प्रकार कहा।' ॥ जल देवी बोली ॥ हे ब्राह्मण ! तुम बड़े-बड़े भाग्यवानों में श्रेष्ठ हो, मुझसे कुछ फिर से बात सुन लो, क्योंकि तुमने स्वेद सम्बन्धी सभी धाराओं में बड़ी श्रद्धा से स्नान किये अतः तुम कोटियुग पर्यन्त सुख भोग करके तत्पश्चात्, योगीश्वर हो जाओगे। आखीरकार मुझपर ही लीन हो जाओगे, फिर लौटकर संसार में आना न होगा। हे मुने ! अब मैं इन सातों धाराओं के पृथक् पृथक् नामों का वर्णन करती हूँ सुनो ! (१) धर्मधारा है, (२) यशोधारा, एवम् (३) विश्वधारा, (४) श्वेतधारा (श्वेत गण्डकी), (५) रत्नधारा, (६) सुवर्णधारा

भाख्या च सप्तकाः ॥ माहेश्वरी ततो ब्राह्मी नारसिंही च वैष्णवी । कौमारी कालिका गङ्गा गण्डक्यः क्रमशो मम ॥ तासां सुसङ्गमे तीर्थे बहुपुण्यफलप्रदे । अन्योन्ये च मुने स्नात्वा फलं कोटिगुणं लभेत् ॥ ततश्च धर्मधाराया नामधेयं च सन्ततम् । लोकास्त्रिशूलगङ्गेति वदिष्यन्ति समादरात् ॥ एतानि नामधेयानि समाधाय हृदि ध्रुवम् । स्नात्वाऽऽगच्छ मुनिश्रेष्ठ ! यत्र तप्तं पुरा त्वया ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

इत्युक्त्वा जलदेवी सा वरं गण्डर्षये पुनः । दत्त्वेप्सितञ्च तस्यैवं तिरोधानं ययौ जले ॥ गण्डर्षिश्च वरं लब्ध्वा जलदेव्याः सुवाञ्छितम् । नीलाद्रेःपूर्वकूटे वै ययौ तप्तुं च हर्षितः ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः पिशाचा गुह्यकास्तथा । ऋषयश्च समागत्य सस्नुस्तासु यथाविधि ॥ आनर्च तांच तेपुस्ते जेपुश्चैव सुनिश्चितम् । ददुर्दानानि वै भक्त्या पुनस्तस्यै च तुष्टुवुः ॥ योगाँश्चैव पुनश्चक्रुः सस्नुः पर्वसुपर्वसु । आजग्मुश्च ततस्ते वै स्वंस्वं स्थानं

व (७) कृष्णाभा (कृष्णा गण्डकी) ॥

हे मुने ! वे गण्डकियाँ खास मेरी हैं या (तादात्म्य षष्ठी से) मैं ही हूँ । अर्थात् इनकी खास अधिष्ठात्री देवताएँ क्रमशः ये हैं (१) माहेश्वरी, (२) ब्राह्मी, (३) नारसिंही, (४) वैष्णवी, (५) कौमारी, (६) कालिका, व (७) वीं गङ्गा ॥ अनन्त पुण्यफलदायक इनके सातों सङ्गम तीर्थ वा एक-एक नदी में ही हो उनमें स्नान करने से अन्यत्र के स्नानों की अपेक्षा कोटिगुण अधिक फल का लाभ करता है तब उन सातों में से पहली जो धर्मधारा है उसे लोग आदर-पूर्वक त्रिशूलगंगा नाम से पुकारा करेंगे ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! इन सभी नामों को हृदय में रख उन पर स्नान करके उस-स्थान में शीघ्र ही आ जाओ, जहाँ पर पहले तुमने तप किया था ॥

॥ स्कन्द जी बोले ॥ इस प्रकार गण्डर्षिको जल देवी ने वरदान देकर वह फिर जल ही में अन्तर्लीन हो गयीं । गण्डर्षि भी जल देवी से ईप्सित वरदान को पाकर हर्षपूर्वक नील पर्वत के शिखर पर तपस्या को चले गये ॥ इसके बाद देवता, गन्धर्व, पिशाच, गुह्यकादि देवयोनि के लोग और ऋषि लोग सब आकर उन नदियों पर विधिपूर्वक स्नान करने लगे । एवञ्च उन नदियों में श्री-गौरीजी की पूजा, तप व अटल चित्त से जप भी करते भये ॥ और उन्होंने भक्तिपूर्वक कई दान व उनकी स्तुति तथा पाठ किये । कितने लोग तो वहाँ पर रहकर योगाभ्यास करने लगे, कितने लोगों ने पर्व-पर्व पर स्नान करने की आदत डाली, और कितने लोग बड़े हर्ष के साथ अपने-अपने स्थान को लौटकर चले

मुदान्विताः । तदाद्यद्यापि गण्डक्यः सर्वाः पूताः सरिद्वराः ।। अभूवँस्ता यतो धीमन् ! गौरीदेहाद्विनिःसृताः । तासु कुर्वन्ति ये स्नानं न पश्यन्ति यमालयम् ।। सर्वपापैर्विनिर्मुक्ता गच्छन्ति परमां गतिम् । व्रजन्ति ये गृहात्स्नातुं मनसीति निधाय वै ।। करिष्याम्यश्वगण्डक्यां स्नानं च भक्तिपूर्वकम । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं लब्ध्वाहि मानुपाः ।। प्राप्नुवन्ति वरं स्थानं विमुक्ताः सर्वकिल्विपैः । ये कुर्वन्ति नराः श्राद्धं तेपान्तु पितरो मुदा ।। तेभ्यो दत्त्वाशिपं स्वर्गमप्यधःस्था व्रजन्तिहि । यज्ञार्चनं जपं तीरे तासां वै सङ्गमे नराः ।। कुर्वन्ति शिवभक्ता ये तेपां पुण्यफलं शृणु ।। सूर्यायुतप्रतीकाश विमानस्थाश्च सान्वयाः । गीतवाद्यमहोल्लासैः सेव्यन्तेऽप्सरसां गणैः ।। विधूय सर्वपापानि धूयमानाश्च चामरैः ।। सर्वलोकान्प्रपश्यन्तः पूज्यन्ते शिवलोकतः । दानं ददति ये तत्र स्वल्पं वा यदि वा बहु ।। स्वर्णान्नं गां च वासांसि तेपां पुण्यफलं शृणु । सार्वभौमा नृपाभूत्वा चिरं राज्यम-

---

आये । उस समय से आज तक ये सातों गण्डकियाँ सभी सरिताओं में श्रेष्ठ और पवित्र मानी गयी हैं । क्योंकि हे धीमन् ! वे सब खास जगदम्बिका गौरी जी के गात्र से निकल नदी बनकर वह आई हैं । जो नर उन पर गोता लगाते हैं उन्हें यमराज के यहाँ दरबार लगाना नहीं पड़ता है । वे सब पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त हो जाते हैं । "हमलोग गण्डकी में जाकर भक्तिपूर्वक स्नान करेंगे" इस विचार से जो लोग घर से स्नान को रवाना होते हैं उन्हें पगपग में अश्वमेध का पुण्य मिलता है । वे अन्तकाल में सभी पापों से रहित होकर उत्तम पद को प्राप्त हो जाते हैं । जो लोग उन नदियों के तट पर अपने पितरों के लिए पिण्डदान देते हैं, उनके पितृलोग अधोगति में ही क्यों न हों उन्हें आशिर्वाद छोड़कर तुरत स्वर्ग को चले जाते हैं । जो शिव भक्त लोग उन नदियों के प्रत्येक वा सबके संगम तट पर यज्ञ, पूजा, जप इत्यादि करते हैं उनके पुण्यों का फल सुनिये । 'दस हजार सूर्यों के समान कान्तिमान विमान में अपनी सन्तान को साथ लिए आरूढ़ होकर गान, भजन, बाजे-गाजे, खूब हास-विलास इत्यादि के साथ अप्सराओं के गण द्वारा सेवा किये जाते हैं । वे सब पापों को तो कँपा देते हैं स्वयं चमर पंखों से कम्पित (आनन्दित) भी रहते हैं । इतना ही नहीं सब लोकों को देखते हुए जाकर शिवलोक में पूजित होते हैं ।. वहाँ पर जो लोग थोड़ा बहुत सुवर्ण, अन्न, गाय या वस्त्र जो कुछ दान करते हैं इनका पुण्य फल सुनो । वे पहले तो चिरकाल तक सम्पूर्ण पृथिवी के पति सम्राट् होकर यथेप्सित व निष्कण्टक राज्य का भोग करते हैं, फिर उस राजदेह को छोड़कर

कण्टकम् ॥ यथेप्सितं च भुञ्जन्ति देहान्ते पापवर्जिताः । तद्देहं च पुनस्त्यक्त्वा भवेयुर्वेदपारगाः ॥ वर्तमानाः सदाचारे लभन्ते परमं पदम् । आप्लुवन्ति च गण्डक्यां या नार्य्यो दुर्भगा अपि ॥ भ्रूणहत्यादिभिः पापैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः । यं यमिच्छन्ति कामं ताः प्राप्नुवन्ति तमाशु च ॥ समाप्लवन्ति या भक्त्या गण्डक्यां यत्र कुत्रचित् । कुरूपाऽपि भवेत् स्नानान्नारीश्रेष्ठाऽति सुन्दरी ॥ लोका मुह्यन्ति तां दृष्ट्वा सर्वेषां स्वान्तहारिणीम् । दुर्भगाऽपि च या नारी स्नानात्सा सुभगा भवेत् ॥ सर्वतीर्थमये पूते कृतं कोटिगुणं फलम् । सर्वतीर्थमया नद्यः सर्वदेवमयोहरिः ॥ तासां सुसङ्गमे नित्यमंशैः स स्नायते समम् ॥ देवदेवः स्वयं तत्र प्रमथैः सह तिष्ठति । देवतीर्थमिति-प्रोक्तं तस्मात्सर्वफलप्रदम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्तिपुण्यप्रदानि च । कोटिकोटिगुणं तेभ्यः स्नात्वा तत्र प्रलभ्यते । नवमी पूर्णमाचैत्र

वेदपाठी बनकर सदाचार में रहते हुए मोक्ष का लाभ करते हैं । जो नारियाँ दुर्भगा ही हों तो क्या हैं, गण्डकी में गोता लगाती हैं वे सब गर्भहत्यादिक पापों से मुक्त हो जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं है । वे स्त्रियाँ जिस-जिस वस्तु की कामना रखती हैं उस वस्तु को तुरत पा जाती हैं । जो औरत गण्डकी नदी पर जहाँ कहीं भी हो भक्तिपूर्वक स्नान करती है वह कुरूप ही हो तो क्या है स्नान के पुण्य प्रभाव से अत्यन्त सुन्दरी उत्तम नारी बन जाती है । यहाँ तक कि जिसे देख कर पहले लोग मुँह मोड़ते थे वे ही अभी अब के दिल को चुराने वाली उस सुन्दरी को देखकर मुग्ध हो जाते हैं । दुर्भगा भी गण्डकी स्नानमात्र से सुभगा हो जाती है । उस सर्वतीर्थमय पवित्र स्थान में किया गया जो कुछ भी हो कोटिगुण अधिक फलदायक होता है । वे नदियाँ सर्वतीर्थमयी हैं । (यहाँ पर व्याकरण से तीर्थमयी होना चाहिये किन्तु ऋषिप्रयुक्त छान्दस् प्रयोग है) और हरि भगवान् सर्वदेवमय हैं । वह भी अपने अंशों के साथ (अवतार लेकर) नित्यप्रति उन नदियों के संगम पर स्नान करते हैं । स्वयम् देवदेव याने भगवान् श्रीमहादेवजी भी उस संगमस्थान पर अपने प्रमथादि पार्षदगण के साथ रहते हैं, अतएव उस तीर्थ का नाम देवतीर्थ हो गया है, वह सर्वतीर्थों का फलदायक है । इस भूमण्डल में जितने पुण्यदायक तीर्थ हैं इस तीर्थ में स्नान करने से उनका भी कोटिगुण अधिक पुण्य बढ़ जाता है । अर्थात् उनपर स्नान कर इनमें स्नान करे तो इनका तो छोड़ दीजिये उनसे भी कोटि-कोटि अधिक पुण्य लाभ किया जाता है । (यद्वा उन तीर्थों की अपेक्षा इनमें स्नान करने का कोटि-कोटि गुण अधिक पुण्य है, ऐसा भी अर्थ है) तिथियाँ और उनकी अधिष्ठात्री देवता को जानकर, नवमी, पौर्णमासी, द्वादशी,

द्वादशी च महाष्टमी । संक्रान्तिश्च तथा षष्ठी पुण्यदैकादशीतिच ।। स्नातव्यमेतत्तिथिपु गण्डक्यां क्रमशो बुधैः । ज्ञात्वाहि तिथिभावञ्च कोटिकोटिगुणम्फलम् ।।

शृणुकश्चित्पुरा मुक्तः पत्न्याः सुकृतितो नृपः । सङ्गमे स्नानतः पूते कृष्णात्रिशूलगङ्गयोः ।। आसीत्सारस्वतीपुर्य्यां रूपकेतुर्नृपोत्तमः । तस्य भार्य्ये समास्तांद्वे कामप्रभाच पद्मिनी ।। पद्मिनी सुन्दरीश्रेष्ठाः विदर्भाधिपतेः सुता । रूपकेतुप्रिया जऽस्नं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।। कामप्रभाविरूपाऽऽस्या छत्रपुर्य्यधिपात्मजा । रतिक्रीडा विनिर्मुक्ता प्रियेण दुःखभागिनी ।। तदाऽऽस्यं प्रेक्षते नैव राजा भर्त्रा कदाचन । पृथक्‌शय्या सुदुःखार्त्ता प्रियभोग्यैर्विवर्जिता ।। सी वैवं कति वर्षान्ते प्रत्यागच्छन् पितुर्गृहे । सख्या समं तदा मार्गे पथिकान्सा ददर्शह ।। यूयं भो क्वगताः पान्था इत्यपृच्छन्मुहुर्मुहुः । तैर्देवघट्टे स्नानार्थं गच्छाम इति बोधिता ।। तत्राहमपि गच्छामि भवन्तः प्रस्थिता यतः । इत्येवं संसतं कृत्वा गण्डकी सङ्गमं ययौ ।। मकरस्थे रवौ

महाष्टमी, सूर्यसंक्रांति तिथि तथा षष्ठी व एकादशी इन तिथियों में गण्डकी पर क्रमशः विद्वान् लोगों को स्नान करना चाहिये । क्योंकि तिथियों के माहात्म्य को जानकर स्नान करने से कोटि-कोटि गुण पुण्यों का लाभ होता है ॥

हे अगस्त्य ! सुनो पूर्व समय में कृष्णा और त्रिशूल गङ्गा के पवित्र सङ्गम में अपनी पत्नी के किये स्नानमात्र के पुण्य से राजा मुक्त हो गया था । इसपर ऐसी कथा है कि सरस्वती नगरी में रूपकेतु नामक कोई राजा रहते थे । उनकी कामप्रभा व पद्मिनी नाम की दो रानियाँ रहीं । उन दोनों में पद्मिनी विदर्भ नरेश की पुत्री थी । वह अत्यन्त सुन्दरी व हमेशा राजा रूपकेतु को अपने प्राणों से भी प्यारी रही । काम प्रभा तो कुरूप थी । वह छत्रपुर नरेश की लड़की रही । उससे उसके पति राजा रूपकेतु ने रति-विलास करना ही नहीं किन्तु उसका मुँह देखना तक भी छोड़ दिया था । वह अलग बिछौने पर सोती व अच्छे-अच्छे भोग्यपदार्थों से वञ्चित होकर बड़ी विपद में पड़ी रही । इसप्रकार कालक्षेपण करके कितने वर्षों के बाद वह सखियों के साथ ही अपने पिता के घरपर लौट आई । आते समय उसने मार्गपर यात्रियों को देखकर इस प्रकार उन यात्रियों से वार-वार पूछा कि, अजी ! आपलोग कहाँ जाते हैं ? उसे उत्तर मिला कि "हम लोग देवघाटपर स्नान करने के लिये जाते हैं" बस उसने कहा कि जिस वास्ते आप लोगों ने प्रस्थान किया है (उसी कारण) वहाँपर मैं भी जाऊँगी इत्यादि वार्तालाप से उन यात्रियों से सम्मति लेकर वह भी गण्डकियों के संगम स्थान को चली गयी ॥ उस कुरूप रूपकेतु की रानी ने

सस्नौ तीर्थे देवसमूहके । लोकैः सह विरूपाऽसौ वाञ्छन्ती सुन्दरं मुखम् ।। निष्कृत्य मुद्रिकां रौप्यां पाथेयं यच्च संभवम् । विप्रेभ्यः प्रददौ प्रोच्य प्रीयतां शङ्करस्त्विति ।। उषित्वा तन्निशायां सा प्रातः स्नाता ययौ गृहम् । अब्रवीत्पितरं स्नानं मातरं भर्तृचेष्टितम ।। समाश्वास्य सुतां सर्वे पितरः समपालयन् । मधुस्रवैर्वचोभिश्च सा स्वस्था रक्षिता सती ।। दिव्यरूपाऽभवत्साऽपि षण्मासान्ते पितुर्गृहे । सौन्दर्यरूपतो भूयो राजा तामानयद् गृहम ।। तत्पुण्यप्रभवा राज्ञी दधानातिवराननम् । प्रार्थ्यमाना हृदा यूनां तदीक्षामुग्धदेहिनाम् । कस्मिंश्चिद्दिवसे राजा अद्राक्षीत् तां सुसुन्दरीम् ।। हर्म्योपरि गवाक्षस्थामीक्ष्यमाणां प्रभावतीम् । कम्बुग्रीवां शशाङ्काऽऽस्यां मृगशावकलोचनाम् ।। उत्तुङ्गस्तनशोभाढ्यां सुभ्रूस्मर-शरासनाम् । तप्तकार्तस्वराङ्गीं रामामीषत्स्मिताननाम् ।। वासोलङ्कार-

---

मकरसंक्रांति के रोज सभी लोगों के साथ जाकर देवताओं के समूह स्वरूप (देवघाट) तीर्थ में स्नान किया । वह यही चाहती थी कि मेरा सुन्दर वदन हो जावे और उसने अपनी थैली से कुछ रुपये और रास्ते का खाना निकाल "शंकरः प्रीयताम्" (श्री भगवान् शंकरजी प्रसन्न हों) इस वाक्य का उच्चारण करके ब्राह्मणों को दे दिये । वह उस रात को वहींपर रह गयी और प्रातःकाल में स्नान करके अपने पिता के घरपर चली आई । आकर अपने पिता से उसने स्नान की बात सुनाई और माता से अपने पति के किये करतूतों का बयान किया । उसके पिता प्रभृति मान्य जनों ने मानों मधु भरे जैसे मीठे वचनों द्वारा उसे आश्वासन देकर समझा-बुझा उसका पालन-पोषण किया । एवञ्च वह भी निश्चिन्त व रक्षित होकर पिता के घर में रहती हुई छः ही महीनों के अन्त होते-न-होते एकदम दिव्य सुन्दरी हो गयी । राजा रूपकेतु के पास यह समाचार पहुँच गया कि वह दिव्य सुन्दरी बन गयी है अतएव बड़ी उत्सुकता से राजा ने फिर उसे अपने दरबार पर बुला लाया । वह उस तीर्थ में किये स्नान के पुण्य से निहायत सुन्दर वदनवाली हो गयी, उसके रूप के दर्शन से मुग्ध होकर नवजवान लोग दिलोजान से उसपर लालायित रहे । अस्तु, किसी रोज राजा ने उस सुन्दरी को देखा तो देखते क्या हैं कि दरबार के ऊपर मञ्जिल में झरोखे पर बैठकर आँखें घुमा रही है, बड़ी प्रभावशाली बुझाती है, उसकी ग्रीवा शंख के समान पुष्ट है, वदन तो मानो चन्द्रमा ही है, आखें भी हरिण के बच्चे की तरह चञ्चल, विशाल व सुन्दर हैं, वह ऊँचे-ऊँचे स्तन से सुशोभित है, सुन्दर भौंवाली है मालूम पड़ता है कि वह स्त्री नहीं किन्तु भगवान् कामदेव के बाणों का लक्ष्य है, गलाये गये सुवर्ण की तरह अत्यन्त सुन्दर अङ्गों से सम्पन्न व विलास की योग्य कुछ मन्द-मन्द मुसकान को लेती हुई प्रसन्न वदनवाली है, वस्त्र और

शोभाढ्यां द्वितीयां स्मरवल्लभाम् । कामप्रभां समालोक्य मुमोह नृपतिर्भृशम् ॥ समुत्तीर्णव्यथो हर्म्यं ययौ यत्र प्रिया द्रुतम् । रुद्धद्वारकपाटान्तस्थगितश्चाह्वयत्प्रियाम् ॥ कपाटोद्घाटनं कान्ते प्रवेशं देहि मेऽचिरात् । निशम्य वचनं राज्ञः कामार्त्तगद्गदोदितम् । कामप्रभा तदाऽवोचद्वचनं हि मधुस्रवम् ॥

॥ कामप्रभोवाच ॥

राजन् ! गच्छ प्रिया यत्र पद्मिनी प्राणवल्लभा । रूपसौन्दर्यसंयुक्ता रतिभावरसैर्युता ॥ उज्झिताहं सदा राजन् ! भवता बहिरालये ॥ किं स्यात्प्रयोजनं पुष्पे निर्माल्ये षट्पदां यथा । भर्त्रम्बुभृत्तोयरसैरसिक्तो दुन्द्ह्यमानोऽङ्गरतिप्रशुष्कः ॥ किन्ते जनद्रुः प्रकरत्ययं वै याहि प्रियां तां मनसो गरिष्ठाम् ॥

भूषणादिक शृङ्गारों की शोभा से खिल रही मानो दूसरी रति ही है। राजा ऐसी अपनी रानी कामप्रभा को देखकर अत्यन्त मुग्ध हो गये। उनके मन में यकायक कामव्यथा का अवतार हो गया अतएव वह शीघ्र उस महल को चले गये जहाँपर उनकी प्रिया रहती थी। महल का दरवाजा बन्द था। उसके समीप में खड़े होते-होते वह स्थगित हो गये, परन्तु उनकी रानी ने दरवाजा न खोला। तब वह उसे बुलाने लगे। उन्होंने कहा कि "प्यारी ! दरवाजा खोलकर मुझे शीघ्र ही भीतर को आने दो"। काम वासना से पीड़ित राजा की गद्गद् वाणी को सुनकर उस समय कामप्रभा मिठास भरे वचनों से उत्तर देने लगी।

॥ कामप्रभा ने कहा ॥

महाराज ! आप उसी के पास चले जाइये, जहाँपर रतिभाव सम्बन्धी हावभाव इत्यादि रसों से भरी रूप सौंदर्य से युक्त आप की प्राणप्यारी महारानी पद्मिनी रहती हैं। महाराज ! मैं तो दरबार से निकाल बाहर कर सदा आपही से तजी हूँ। निर्माल्य (कामपर लाकर फेंके गये) पुष्पों से भ्रमरों का क्या काम है। अतएव मुझसे आप का क्या काम है ?

यह नारीवृक्ष पतिरूप मेघ की वर्षा के रस से कभी सींचा तक नहीं गया है अतएव बड़ी बुरी हालत से जलता हुआ मारे अङ्गरति के तापों से बिलकुल सूख गया है। (अब इस अवस्था में हराभरा होकर कैसे आप को रतिफल दे सकता है ?) आप उसी के पास चले जाइये जो आप की दिलोजान की परम प्यारी है। (इस श्लोक में रूपकालङ्कार है। भाव यह है कि—अ जतक तो आप मुझे देखकर मुख मोड़ते थे, अब फिर मेरे ही पास चले आये ? मुझे विरहाग्नि में भूनकर फिर ऐसा बर्ताव रखने की इच्छा रही ? क्या आप को शरम नहीं आती है ? जो आप की प्राणप्यारी है उसी के पास चले जाइये) इसपर

॥ रूपकेतुरुवाच ॥

मामेवं कथ्यसे देवि ! दैवेन वञ्चितोऽभवम् । अतः परं प्रियं वक्ष्ये वचनं शृणु सुन्दरि ॥ दैववञ्चितदेहेन मया त्वं वञ्चिता पुरा । नाद्यादित्यक्ष्यसे कान्ते प्राणैरपि धनैरपि ॥ अद्यतस्त्वां प्रियं वक्ष्ये युक्तनामाभिधानके । दासत्वेन चरिष्यामि त्यक्त्वा तां जगतां धुरम् ॥ यावज्जीवत्ययं देहस्तावत्त्वां नैव मुञ्चति । सत्यं सत्यं वदास्येतन्मां जहीहि न साम्प्रतम् ॥ एवं शपथमाकर्ण्य भर्तुः कामप्रभाऽपिच । कपाटोद्घाटनञ्चक्रे विमुच्यार्गलकीलकम् ॥ प्रविवेश नृपः कोष्ठं यत्र सा सुन्दरीवरा । आलिङ्गनोत्सुको भूत्वा प्रावोचन्मधुरं वचः ॥ रूपकेतुरुवाच ॥ जातोऽस्मि कामबाणेन भिन्नहृन्मृगलोचने । रतिरागामृतेनाशु त्वं मां सिञ्च दयां कुरु ॥ स्कन्द उवाच ॥ एवं क्रीडावचोभिश्च सम्बोध्य समयैरपि । राजा तां कामयामास यथाकामं स्मरार्दितः ॥ दण्डनीतिं प्रजारक्षामपरां वनितामपि । सन्त्यज्य सततं

रूपकेतु ने कहा—कि देवि! क्या सचमुच तुम मुझसे ऐसी बात कर रही हो? हाँ, मैं तो भाग्य से वञ्चित हो गया। (दूसरा उपाय नहीं सूझता है) सुन्दरि सुनो ! अब से लेकर सदा तुमसे प्यारी बात बोला करूँगा ॥ दया करो, जानो कि मैं स्वयं पहले अपने भाग्य से वञ्चित रहा अतएव मैंने तुम्हारी वञ्चना की । हे प्रिये ! आज से तुम मेरे प्राण बन्धनों से भी कभी त्याग नहीं की जाओगी और मैं आज ही से तुम्हारे नाम की बड़ी प्यार पुकार करूँगा इतना ही नहीं दुनियाँ की बोझ को छोड़कर तुम्हारे दासभाव से रहूँगा । जबतक यह शरीर जिन्दा रहेगा तबतक तुम्हें न छोड़ेगा मैं इस बात की सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, अभी तुम मेरा त्याग न करो । इस प्रकार अपने पतिदेव के शपथ वचन को सुन कामप्रभा ने गजवार व कील को हटाकर दरवाजा खोला । राजा भी प्रवेश करके उस कमरे में चले गये जहाँ पर वह सुन्दरी रहती थी । जाकर उन्होंने बड़ी उत्सुकता से मधुर वचन बोला । रूपकेतु ने कहा—हे मृगलोचने इस समय में मेरा हृदय कामबाण से टुकड़ा सा हो गया है । तुम शीघ्र ही मुझे रतिराग रूप अमृतरस से सेचन करो, दया रक्खो । स्कन्दजी बोले कि हे मुने ! इस तरह विलास के वचनों और शपथों से उसे समझाकर कामदेव से पीड़ित राजा ने उसपर इच्छानुसार विषय सुख का अनुभव किया । यहाँ तक कि वह अपनी राजकीय दण्डनीति प्रजाओं की रक्षा और दूसरी रानी (पद्मिनी) को भी छोड़कर निरन्तर उसके पास रह कर रमण करने लगे । विषयान्ध होकर उन्होंने

रेमे सुखं राजा तया समम् ॥ दानधर्मविहीनोऽसौ कियत्कालं निनाय च। पञ्चत्वं प्राप्तवान्तस्मात्साऽभूत्तस्यानुगामिनी ॥ शैवास्तां यानमारोप्य यातुमारेभिरे ततः। तं नृपं मुद्गरैर्याम्या अधोनेतुं प्रचक्रमुः ॥ आलोक्य तादृशं कान्तं कामप्रभा भृशार्दिता। अब्रवीद्यमदूतान्सा प्रार्थयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ याम्या नमोऽस्तु वः शश्वत् क्षन्तव्यमधुना भवेत्। मा ताडयत दीनं मे भर्तारं मृदुगात्रिणम् ॥ शैवा नमोऽस्तु वो नित्यं क्षन्तव्यो मेऽपराधकः। याने पतिमधिष्ठाय नयताभ्रं मया सह ॥ शिवदूता ऊचुः ॥ मैवं कल्याणि वोचस्त्वं पत्यर्थे सुकृतं वचः। आजन्म किल्विषैर्युक्तः सतु गच्छेदधो गतिम् ॥ गण्डक्याः सङ्गमे तीर्थे देवघट्टजलाप्लुवात्। लप्स्यसे त्वन्तु तत्पुण्याद्गतिं सुकृतिनां पराम् ॥

॥ कामप्रभोवाच ॥

भूयो नमोनमः शैवा अहं भर्त्रनुगामिनी। कथं वदत भर्तारं तारयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ शैवा ऊचुः ॥ अवश्यं तद्धि भोक्तव्यं स्वकृतं पापपुण्ययोः। सह

दान धर्मों को भी छोड़ कई दिन बिता लिये और वह कालवश काल के शिकार भी बन गये। कामप्रभा उनकी सहगामिनी (सती) हो गयी। तब शिव दूतों ने उसे विमान पर चढ़ाकर ले जाना शुरू किया। राजाजी की तो बड़ी दुर्दशा हो गयी क्योंकि उन्हें तो यमदूतों ने मार पीट लगाकर अधोगति को ले जाना चाहा ! यानारूढ कामप्रभा ने अपने पतिदेव की उस दशा को देखकर अत्यन्त दुःख का अनुभव किया और यमदूतों से बार बार अनुरोध करती हुई उसने कहा कि यमदूतों ! आप लोग को सदा नमस्कार है। इस समय आप लोग इनके अपराधों की क्षमा करें, मेरे सुकुमार देहवाले दीन प्राणपति को मारपीट की सजा न दें। हे शिवदूतो ! आप लोग को नमस्कार है, मेरे अपराध की क्षमा की जावे। मेरे पतिदेव को भी विमान में बैठाकर मेरे साथ ही शीघ्र स्वर्ग को ले जावें। शिवदूतो ने कहा ॥ हे कल्याणी ! तुम अपने पति के लिये ऐसे पुण्य की बात न बोलो, क्योंकि वह जन्म भर का अपराधी है, अतएव वह नरक को ही चला जावे ॥ तुम तो गण्डकी के सङ्गम तीर्थ स्थान में देवघाट के पवित्र जलों पर स्नान करने के कारण उसी पुण्य के प्रभाव से पुण्यात्माओं की उत्तम गति को प्राप्त करोगी। कामप्रभा ने कहा ॥ हे शिवदूतो ! आप लोग को फिर से बारंबार नमस्कार है, मैं पति की अनुगामिनी सती हूँ, अब आप ही लोग बतावें कि क्यों कर मैं इस समय अपने पतिदेव का, अधोगति से उद्धार कर सकती हूँ ? ॥ शिवदूत कहने लगे ॥ अपने किये हुए पाप-

गमन धर्मं यत् तवैव त्वत्प्रियस्य न ॥ यदि त्वं यातनात्कुण्डात्तितीर्षुः प्राणवल्लभम्। धर्मं ददस्व स्वार्द्धांशं प्रियाय यत्कृतं त्वया ॥ यद्येवं कुरुषे देवि युवां स्वर्गं गमिष्यथः। एकएवास्त्युपायोऽसौ नान्यः कश्चिदिहेष्यते ॥ ओमित्युक्त्वा भृशं तुष्टा स्वकं पुण्यं प्रियाय सा। संकल्प्य च यथाकामं कृतार्द्धांशं ददौ किल ॥ शैवा निन्युश्च तं सद्यः शिवलोकं तया सह। पत्नीमादाय कैलासे विमाने स्वेच्छया चरन् ॥ रेमे सकोटिवर्षाणि भुक्त्वा-भोगाननेकधा। सस्त्रीको नृपतिर्भूत्वाऽवातरच्चमहीतले ॥ पुनश्च विषयान् भुञ्जन् विष्णुधर्मपरोऽभवत् ॥

॥ स्कद उवाच ॥

इत्येवं कथितं विप्र गण्डकीस्नानजं फलम्। तासामुत्पत्तिसंभेदौ कारणं च पृथक् पृथक् ॥ गण्डकीसप्तकं तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥ विशुद्धान्तः कृतिर्मर्त्यो न दुःखैः

पुण्यों को अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥ हे कल्याणि ! पति के साथ सती बनकर सहगमन करने का धर्म तो तुम्हारा है, तुम्हारे पति का नहीं है। यदि तुम अपने पतिदेव को नरक कुण्ड से उद्धार करना चाहती हो तो अपने किये पुण्य का आधा हिस्सा अपने पति को दे डालो। हे देवि ! यदि ऐसा करोगी तो तुम दोनों ही अर्थात् अपने पति को साथ लेकर तुम स्वर्ग को चली जाओगी। अभी तो यहाँ पर यह ही एक उपाय है दूसरा कोई नहीं है॥ "अच्छी बात है" ऐसा कहकर अत्यन्त प्रसन्न होती हुई कामप्रभा ने इच्छानुसार अपने किये पुण्य के आधे हिस्से का सङ्कल्प उठाकर पतिदेव को दे डाला। तब तत्काल ही उन्हें भी विमान पर बैठाकर कामप्रभा के साथ कैलाश को ले गये। वह भी अपनी पत्नीको साथ लेकर कैलाश में विमान पर इच्छानुसार सफर करते हुए अनेकों भोगों को भोगकर कोटिवर्षपर्यन्त रमण करते रहे। अन्त में वे दोनों दम्पती राजारानी बनकर पृथ्वी पर चले आये। फिर अनेकों पार्थिव विषयों को भोग कर आखिरकार परम वैष्णव (विष्णुधर्म में दीक्षित) हो गये। इतनी कथा को सुना-कर श्री भगवान कुमार जी ने श्री अगस्त्य मुनि से कहा कि हे मुने ! (हे विप्र) इस प्रकार गण्डकी में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह बताया गया है। सप्तगण्डकियों की उत्पत्ति, उनका सङ्गम स्थान (वेणी) व पृथक् पृथक् रूप से प्रत्येक गण्डकियों की उत्पत्ति के कारण भी बताए गये हैं। उत्तम तीर्थस्वरूप जो गण्डकी नामकी नदियाँ हैं वे देवताओं से भी दुष्प्राप्य हैं। जो मनुष्य इस अध्याय को भक्ति पूर्वक नित्य प्रति सुनता वा सुनाता है उसका अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, वह कभी दुःखों से पीडित नहीं हो सकता है। किसी प्रकार

परिभूयते। वेदनाभ्यर्दितो वापि पीडितो वा ग्रहादिकैः। दुष्टैर्दस्युभिराक्रान्तो जलस्थलवनोद्भवैः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि दुस्वप्नादिकशान्तये । माहात्म्यं गण्डकीनां तु सर्वकामप्रदं शुभम् ॥

उग्रं तपो विदधुरत्र हि शुक्रशिष्याः,
कामं वरान्समधिगम्य सुरान्निरस्य।
ब्रह्मप्रसादसबलास्त्रिदिवेशराज्यं,
चक्रुर्यतो हरिहराववतीर्णवन्तौ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे हिमवत्खण्डे उमाव्रते सर्वगण्डक्युत्पत्तितन्नाम हेतुसंभेददेवघट्टादि माहात्म्यवर्णनम् समाप्तम्।

की वेदना वा विपदों से बाधित हो, या क्रूर दशाग्रहों से पीडित हो अथवा जलचर, स्थलचर व वनचर, नभचर दुष्ट शत्रुओं से आक्रान्त हो एवं च बुरे स्वप्नों की शान्ति चाहता हो तो इस अध्याय का पाठ करे या करावे। क्योंकि गण्डकी नदियों का माहात्म्य सभी कामनाओं का दायक व शुभ है॥

इन्हीं नदियों के पुलिन पर रहकर प्राचीन समय में शुक्रशिष्य याने वीर दैत्यों ने ब्रह्माजी का उग्रतप किया था, जिसके बल से ब्रह्माजी के दर्शन व उनसे यथेच्छ वर को पा बल से दृप्त हो देवताओं को स्वर्ग से हटाकर उन्होंने (पाताल व भूमण्डल में ही नहीं बल्कि) अमरावती में भी अपने राजकाज का अधिकार जमालिया था। अतएव भगवान शङ्कर व विष्णु देवने हरिहररूपसे अवतार लेकर उन नदी व पर्वतों पर शालग्राम शिवनाथादि नागरूप से निवास करते हुए हरिहर हरादिक प्रसिद्ध मुक्तिक्षेत्रों का स्थापन किया है॥

कफल्डकोपाह्वलाम निवासि भवानीशङ्कर शास्त्र्युपाध्याय पर्वतीयकृत स्कन्दपुराणान्तर्गत हिमवत्खण्ड से उद्धृत सर्व गण्डक्युत्पत्ति देवघटादि विषयसम्बन्धी माहात्म्यवर्णनाध्याय का हिन्दी भाषानुवाद समाप्त हुआ।

❀ श्रीरस्तु श्रीहरिहरार्पणमस्तु शिवमस्तु ❀

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ विशेषतः

❀ कृष्णाभा शालग्रामादिक माहात्म्यं स्कान्दान्तर्गतहिमवत्खण्डानुसारेण ❀

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

माहात्म्यं ते प्रवक्ष्यामि कृष्णाभायाः शृणु ध्रुवम् । श्रवणात्पूयते गात्रं बहुपापैर्युतञ्च तत् ॥ विष्णुरद्यापि वासं वै चक्रे तस्याञ्च सन्ततम् । स्थावरत्वेनहेतोश्च कृष्णाभायां घटोद्भव !

॥ अगस्त्य उवाच ॥

कथं स्थावरतां प्राप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना । पालकेनास्य जगतो हर्त्रा च सृजता प्रभो ! केनैव हेतुना विष्णुर्वासं तस्याञ्चकार ह । चित्रं मे जायते स्कन्द कारणं तद्वदस्व मे ॥

श्रीगणेशाय नमः

यद्वृष्ण्याङ्घ्रि प्रपञ्चान्निरवधि निरतो लेशशेषो दयायाः
संहर्तुं कश्मलानां प्रभुरपि परमोगात्रिमात्राय साक्षात् ॥
विज्ञानानन्दकन्दः प्रभवति सततं व्याप्नुते विश्वदक्षं
तेभ्योऽमीभ्यो गुरुभ्यस्तनु धनु रथ नः पातितं बोभवीतु ॥

पहले नरोत्तम नर नारायण, देवी सरस्वती और भगवान् वेदव्यास जी के लिये नमस्कार करके ग्रन्थ का आरम्भ किया जाता है ॥

भगवान् स्कन्द जी ने कहा—हे अगस्त्य जी ! अब मैं आप को कृष्णा भद्रा नदी का माहात्म्य सुनाऊँगा जिसको सुनकर अनेकों पाप से मुक्त शरीर भी तत्क्षण में पवित्र हो जाता है। हे अगस्त्य जी ! कारणवश विष्णु भगवान् ने अभीतक भी स्थावर होकर उस नदी पर निरन्तर आसन जमाया है ॥ अगस्त्य जी ने पूछा कि सभी जगत की सृष्टि स्थिति व प्रलय के करनेवाले सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुदेव को क्योंकर जड़योनि मिली। किस हेतु से भगवान् ने उस नदी पर वास किया था ? हे कुमार जी मुझे आश्चर्य हो रहा है, इसलिए कृपया उस कारण को समझाइये ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

जालन्धरस्य पत्नी या वृन्दा नाम पतिव्रता। विष्णुस्तां छन्दयाञ्चक्रे तत्प्रियाङ्गं प्रधारयन् ॥ तच्छायां सा ददर्शाऽऽर्या शङ्खचक्रगदाब्जकाम्। प्रदधानां चतुर्बाहुं सुरत्यासाशु धर्षिता ॥ विदित्वा निजमात्मानं छद्मितं विष्णुना तदा। दुःखातुरा ददौ शापं विष्णवे लोकजिष्णवे ॥

॥ वृन्दोवाच ॥

विष्णो कैतववृत्तस्त्वं छिद्रान्वेषणतत्परः। परदारानपि ज्ञात्वा व्याजेन च्छन्दसे कथम ? एकाकिनीं च मां साध्वीं यतश्छद्मासि मौनतः। तस्मात्त्वं स्थावरो भूयाः परदाराभिमर्दनात् ॥ रजोदेहाच्च मौर्ख्याच्च श्रीमदान्धाद्बलादपि॥ मर्दन्ति परदारान् ये ते पतन्ति च नारके ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

तस्याः शापं समाकर्ण्य तदा विष्णुरचिन्तयत्। क्षणं व्याप्य ययौ स्नातुं कृष्णाभाया जलोत्तमे ॥ तस्यां सस्नौ महाविष्णुः सर्वलोकहिताय च। अन्यां

श्री स्कन्द जी ने जवाब देते हुए इस प्रकार से कहा—हे अगस्त्य मुने ! प्राचीन काल में कोई जालन्धर दानव की पत्नी वृन्दा नाम की परम पतिव्रता स्त्री रही, भगवान् विष्णु ने उसके प्रियपति के स्वरूप को धारण करते हुए। (उसकी लाज लूटकर) उसे अच्छा छकाया था। पातिव्रत्य के कारण उस वरदवृन्दा ने उनकी परछाई देखी तो देखती क्या है कि शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये हुए, चतुर्बाहु विष्णुदेव ही अपने से मैथुन के लिए बरजोरी कर रहे हैं। इस तरह अपनी आत्मा को सतीधर्म के विरुद्ध विष्णु से वञ्चित जानकर दुःख से पीड़ित होती हुई उस स्त्रीने जगत्पति भगवान् विष्णुदेव के लिए शाप (गाली) देना शुरू किया। वृन्दा बोली ॥ हे विष्णु ! तुम खास वञ्चक और धूर्त हो, तुम हमेशः छिद्रों को ढूँढ़ते रहते हो, क्यों परस्त्रियों को जानते हुए भी कपट रूप से धोखा देते हो ? मुझे अकेली पतिव्रता स्त्री को पाकर इस प्रकार तुमने धोखा दे डाला, इसलिये परस्त्रियों पर अधम साहस करने के कारण स्थावर (जड़योनि) हो जाओ। जो लोग रजो-वृत्ति (तमोगुण) से, मूर्खता से ऐश्वर्य से उन्मत्त होकर और बल की जोर से परस्त्रियों से अङ्गाङ्गीभाव करते हैं वे सब नरक पर जाकर गिरते हैं।

स्कन्द जी ने कहा कि हे मुने ! उस समय उसके शाप को सुनकर भगवान विष्णुदेव को चिन्ता हुई, कुछ देर ठहरकर कृष्णा नदी के उत्तम जलपर स्नान करने को चले गये। भगवान विष्णुदेवने सभी लोग के हित के लिये उस नदी

श्री मुक्तिनाथ और दामोदर कुंड का मिश्रित भाग (कृष्णा गंडकी)

मूर्ति ततो धृत्वा ह्यवततुं मनो दधे ॥ शापेन प्रेरितो विष्णुः कृष्णाभायां स्थिता यदा । आकरोद्विश्वकर्माणं शापनिर्वाणहेतवे ॥

॥ विष्णुरुवाच ॥

विश्वसृक् स्वर्णपाषाणैस्त्वं मे मूर्तीर्विनिर्मय । भूत्वा च वज्रकीटो वै कृष्णाभाऽभ्यन्तरे स्थितः ॥ यावन्तो ह्यवतारा मे भविष्यन्ति च विश्वसृक् ! तावन्तो भिन्नचिह्नैस्त्वं चक्रैराशु निवर्तय ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

इत्युक्त्वा विश्वकर्माणं महाविष्णुस्तदामुने ! स कृष्णाभाऽमृते सार्द्धमुन्मज्जाऽऽशु तेन च ॥ विष्णुर्बभूव तस्यां वै शालग्रामशिलातनुः । सर्वलोकहितार्थाय तस्याः शापेन निश्चितम् ॥ वज्रकीटं ससर्जाशुचक्रैर्नानासुलक्ष्मभिः । जाम्बूनदमयैः शुभ्रैः सहस्राब्दैः पृथक् पृथक् । पूजयन्ति ततो लोका वाञ्छितार्थोपलब्धये ॥ मानपूर्वं समादाय भक्तिभिर्ज्ञानिनो मुने ॥

॥ अगस्त्य उवाच ॥

किम्फलं पूजनात्स्कन्द ! शालग्रामस्य चक्रिणः । कीदृशानि च रूपाणि

पर गोता लगाई, उसी समय उन्हें दूसरी मूर्ति से अवतार धारण कर उत्पन्न होने का विचार प्रगट हुआ । चूँकि वह शाप के मारे चिन्तित थे इसलिये ज्यों कृष्णा नदी पर खड़े रहे त्यों ही शाप से मुक्त होने के लिये विश्वकर्मा को बुलाकर उन्होंने कहा । विष्णुदेव बोले कि हे विश्वकर्म्मन् ! तुम सुवर्ण पाषाणों से मेरी मूर्तियों का निर्माण करो इस प्रकार कि कृष्णाभा के भीतर वज्रकीट होकर स्थित रहो और हे विश्वकर्ता ! जितने मेरे मत्स्यकूर्मादि अवतार हो चुके हैं वे सब अनेकों चिह्न से पृथक्-पृथक् लक्षणवाले होंगे वैसे ही तुम चक्रों से विभिन्न मूर्तियों को शीघ्र बना डालो ॥ इतनी कथा सुनाकर फिर स्कन्दजी ने अगस्त्य जी से कहा कि हे मुने ! महाविष्णुदेव ने इस प्रकार विश्वकर्मा को समझाकर उनके साथ ही अर्थात् उन दोनों ने कृष्णा नदी के अमृत जलपर फिर से स्नान किया तो तत्काल ही उसीपर विष्णुदेव वृन्दा के शाप से वशीभूत होकर सभी लोक के हितार्थ शालग्राम शिलारूप हो गये, और विश्वकर्माजी ने भी वज्रकीट बनकर कितने सुवर्ण के सदश पीले कितने श्वेत ऐसे अनेकों चिह्न और अनेकों चक्र से युक्त अनन्त विभिन्न मूर्तियों की हजार वर्ष पर्यन्त रचना की । अतएव हे मुने ! उसी समय से उन शिलाओं का प्रेम से ग्रहण करके ज्ञानी लोग आदरपूर्वक मनोरथ प्राप्ति के लिये सदा पूजन किया करते हैं । इतनी कथा सुनकर अगस्त्यजी ने पूछा कि हे कुमारदेव उन शालग्राम रूपी चक्रधारी भगवान की पूजा से क्या फल होता है और हे विभो ! उन विश्वात्ममूर्तियों के

तेषां विश्वात्मनां विभो ! तेषामेव च माहात्म्यं वर्णाश्चैव विशेषतः । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि वद मे सर्वविद्विभो ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

द्वारस्थाने समे चक्रे विद्येते नान्तरीयके । सवासुदेवो विज्ञेयः शुक्लप्रभः सुशोभनः ॥ दीर्घाकारोवहुच्छिद्रः सूक्ष्मचक्रसुशोभनः । प्रद्युम्नश्च सविज्ञेयः पीताम्भोरुहवर्णतः ॥ रेखात्रयेण संयुक्तः पद्मचिह्नैः सुलाञ्छितः । अनिरुद्धः सविज्ञेयो नीलवर्णोऽतिशोभनः ॥ श्यामं नारायणं विद्धि नाभिचक्रं समुन्नतम् । दीर्घरेखासमायुक्तो दक्षिणे सुषिरान्वितः ॥ दीर्घोदक्षिणवामांशो मत्स्यः कपिलवर्णभृत् । विन्दुत्रयसमायुक्तश्चक्रशङ्खाङ्कितस्मृतः ॥ तत्त्वलक्षण-सम्पूर्णः कूर्मोऽर्कवलमाकृतिः । वराहोलाञ्छितैश्चक्रैर्विषमे सुस्थितैः शुभैः ॥ इन्द्रनीलांनभः स्थूलस्त्रिरेखा चिह्नितः शुभः । कपिलोनारसिंहः स्यात्पृथक्-चक्रे तथोन्नते ॥ ब्रह्मचर्येणपूज्योसावन्यथा विघ्नदो भवेत् । वामपार्श्वे स्थिते चक्रे क्लप्तवर्णे सविन्दुके ॥ लक्ष्मीनृसिंहः सज्ञेयोभुक्तिमुक्तिफलप्रदः । कद-

---

स्वरूप कैसे-कैसे होते हैं ? उनके वर्ण और खास करके माहात्म्य वगैरह सब कुछ मेरी सुनने की इच्छा हो रही है हे विभो, सर्वज्ञ ! सभी मुझको बताइये ॥ स्कन्दजी बोले। जिस मूर्ति के द्वारभाग में भीतर की ओर नहीं किन्तु पृथक्-पृथक् समान रूप के दो चक्र हैं, सुफेद कान्ति है और सुन्दर स्वरूप है उसे भगवान वासुदेव जानना चाहिये । प्रद्युम्न नाम की मूर्ति, दीर्घाकार की अधिक छिद्रवाली सूक्ष्मचक्र से युक्त अति सुन्दर और पीतकमल के जैसे वर्णवाली होती है । अनिरुद्धजी की मूर्ति में तीन तो रेखाएँ होती हैं कमल के चिह्न होते हैं । वर्ण नील और स्वरूप खूब सुन्दर होता है । ऐसी ही नाभिपर चक्र-वाली उन्नत स्वरूप श्याम वर्ण की शिला को नारायण जानिये । लम्बी रेखा और दाहिनी ओर छिद्र संयुक्त दीर्घाकार दक्षिण और वामस्कन्धवाली कपिलवर्ण की शिला को मत्स्यावतार कहते हैं । तीन बिन्दुओं के रहते चक्र और शंख से चिह्नित २४ लक्षण वा तत्त्वलक्षण याने तन्निष्ठ लक्षणों से युक्त सूर्यमण्डलाकार की शिला कूर्मदेव हैं । एवम् विषम भाग में सुन्दर चक्रों के स्थित रहते वराहाकृति हो तो वह वराहजी हैं । इन्द्रनीलमणि के सदृश, स्थूल, त्रिरेखा सम्पन्न उन्नत और पृथक्-पृथक् दो चक्रवाले कपिल वर्ण के भगवान् नृसिंहदेव होते हैं । इनकी पूजा ब्रह्मचर्य में रहकर ही करनी चाहिये नहीं तो विघ्नदायक होंगे । लक्ष्मीनृसिंह का ऐसा लक्षण है कि बिन्दु के साथ ही बायीं ओर सुन्दर वर्ण के दो चक्र होते हैं, उनकी पूजा से

स्वकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥ वर्त्तुलश्चातिह्रस्वश्च वामनः परिकीर्तितः । लक्षितश्चशुभैःपीतश्चापःपरशुलाङ्गलैः । रामोरामश्चरामश्च ज्ञेयो मृत्युहरः क्रमात् ॥ अतसीपुष्पसङ्काशोबिन्दुनासुविभूषितः ॥ सुदर्शनो महाश्यामो बहुभूतिसुखप्रदः । वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखाचैवतु दक्षिणे ॥ दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम् । परमेष्ठीतु शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वितः ॥ बिम्बाकृतिः कचित्पीतः पृष्ठेचैव सुलाञ्छितः । कृष्णवर्णस्तथाविष्णुः स्थूलचक्रेसुशोभने ॥ यस्य मध्ये गदाऽऽकारा दृश्यन्ते पञ्चरेखिकाः । श्रीधरोऽसौ तथा देवश्चिह्नितो वनमालया ॥ कदम्बकुसुमाकारा ऊर्ध्वरेखाश्चपादतः (पाण्डुराः) । वामपार्श्वेस्थितारेखा तथाचैव तु दक्षिणे ॥ स च त्रिविक्रमोदेवः श्यामवर्णोमहाद्युतिः । हयग्रीवोङ्कुशाकारो रेखाश्चक्रसमीपगाः ॥ हरिद्वर्णसमायुक्तो बहुबिन्दुसमन्वितः ।

भुक्ति और मुक्ति भी मिलती है। कदम्ब पुष्प के सदृश पाँच रेखाओं से घिरे गोलाकार और खूब छोटे वामनजी होते हैं ॥ और शुभ शंखादि चिह्नों से लक्षित होते हुए पीत वर्ण के एवम् परशु (कुठार) के चिह्नवाले भी हों तो उन्हें परशुराम, वैसे ही बाण या धनुष के चिह्नवाले हों तो रामचन्द्रजी अपिच पूर्ववत् हलधारी हों तो बलभद्र राम, इस तरह से क्रमशः जानना चाहिये वे सब मृत्युनाशक होते हैं ॥ सुदर्शन सञ्ज्ञक शिला का आकार अतसीपुष्प के सदृश महाश्याम वर्ण व बिन्दु से सुशोभित भी होता है, पूजा से विविधैश्वर्य सुख लाभ होता है। बायीं ओर गदा, चक्र दाहिनी ओर रेखा और मध्य भाग में भी चक्र, इन सबके रहते स्थूल स्वरूप भी हो तो दामोदर जानना चाहिये। एवञ्च पद्म और चक्र चिह्न के रहते शुक्ल वर्ण सी दीखता हो तो उस मूर्ति को परमेष्ठी जानना चाहिये ॥ बिम्बफल के सदृश आकार, कहीं-कहीं पर पीतवर्ण से मिश्रित कृष्ण वर्ण और पृष्ठ भाग में चिह्न वगैरह और मोटे-मोटे सुन्दर चक्र भी हों तो विष्णुदेव जानना चाहिये। जिस शिला के बीच में गदा के आकार की पाँच रेखाएँ दीखती हैं, और वनमाल का चिह्न भी है, तो श्रीधर नाम की मूर्ति होती है। कदम्ब के फूल का जैसी (पादतल में या) पाण्डुवर्ण की ऊर्ध्व रेखाएँ हों बायीं दाहिनी ओर भी एकैक रेखा हो महासुन्दर श्यामवर्ण भी हो तो वह भगवान् त्रिविक्रम नामक देव हैं ॥ हयग्रीवजी नाम की शिला अङ्कुशाकार की होती है। चक्र के नजदीकपर ही लगी हुई रेखाएँ होती हैं, वर्ण हरा होता है और खूब बुन्दियाँ भरी रहती हैं। तीन रेखाएँ और मध्य भागपर तीन चिह्नवाले गदाधर होते

गदाधरस्त्रिरेखाभिस्त्रिसूक्ष्मो (लक्ष्मा) मध्यदेशतः ॥ नानावर्णसमायुक्तो नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमुखसंयुक्तोह्यनन्तो नाम नामतः ॥ दक्षिणा वर्तुलाकारा वनमाला विभूषिता । साशिला कृष्णवर्णाभा धनधान्य-सुखप्रदा ॥ चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपगाः । द्वे चक्रे मध्यदेशे च साशिलास्याच्चतुर्मुखी ॥ कूर्मचक्रमधोभागे मध्यभागे खुरान्वितः । शिवनाम इतिख्यातो दुर्लभः सर्वकामदः ॥ चतुश्चक्रैः सुसंयुक्तः पङ्कजेन समन्वितः । आभ्यन्तरे खुरैर्वाह्ये वाञ्छितो वनमालया ॥ लक्ष्मीनारायणो देवो गृहे यस्य स विद्यते । न दारिद्र्यभयं तस्य शोकदुःखञ्च नो भवेत् ॥ न चौराग्नि-भयं तत्र दुर्ग्रहैर्नच पीड्यते । सोऽन्ते लभेत मोक्षं वै तच्छालग्रामि-पूजनात् ॥ विदिक्षु दिक्षु सर्वासु मुखं यस्य हि दृश्यते । भुक्तिमुक्ति-प्रदो नित्यं विज्ञेयः पुरुषोत्तमः ॥ वासुदेवं सितं विद्याद्रक्तं सङ्कर्षणन्तथा । तथा दामोदरं नीलमनिरुद्धन्तथैव च । श्यामं नारायणं विद्धि कृष्णमेवञ्च वैष्णवम ॥ ईषद्रक्तमनन्तञ्च श्रीधरं पीतवर्णकम् ॥ पत्नीहरः पिशङ्गश्च नीलो

हैं । नाना वर्णों से संयुक्त नागफणा की आकृति से लक्षित अनेक वदनवाले हों तो नाम से अनन्त देव पुकारे जाते हैं । दाहिनी ओर गोलाकार होकर वनमाला से भी भूषित हो तो वह काली शिला धनधान्य और सुखको देनेवाली होती है उसे कृष्णदेव जानना चाहिये ॥ जिसपर पार्श्व भाग के समीप ही चार रेखाएँ और मध्य भाग में दो चक्र भी दीखते हैं उसे चतुर्मुखी (ब्रह्मसंज्ञक) शिला जानिये । नीचे की ओर कूर्माकार चक्र हो और मध्य भाग में खुर का आकार बना हो तो सभी कामनाओं की देनेवाली शिवनाम संज्ञक शिला होती है, उसको प्राप्त करना सुगम नहीं है । कमल के रहते चार चक्र भीतर की ओर हों एवम् खुर भी हों और वनमाला से चिह्नित भी हो तो उस मूर्ति को लक्ष्मीनारायण जानना चाहिये, जिसके घर में वह देव हैं उन शालग्राम रूपी भगवान की पूजा करने से दारिद्र्य, शोक, दुःख, चोर और अग्नि से भय एवम् क्रूरग्रहों से वह मनुष्य पीड़ित नहीं हो सकता है, अन्तकाल में मोक्ष भी प्राप्त करता है । सभी दिशा व विदिशाओं में जिसके मुख दीखते हैं उस शिला को नित्यप्रति भोग और मोक्ष के दाता पुरुषोत्तमदेव जानना चाहिये । अब उक्त मूर्तियों के वर्ण वर्णन किये जाते हैं । जैसे—श्वेत वर्ण की शिला को वासुदेव, लाल को सङ्कर्षण, नील को दामोदर एवम् अनिरुद्ध, श्याम को नारायण तथैव कृष्ण और विष्णु, इस प्रकार इनके वर्णों का परिचय करे, कुछ लाल हो तो अनन्त पीला स्वरूप हो तो श्रीधर इत्यादि तत्तद्वर्ण लक्षणोक्त तत्तन्मूर्तियों को जानना चाहिये । जिसका मधु पिङ्गल वर्ण है वह पत्नी नाशक होता है । नील

लक्ष्मीप्रदायकः । पुष्टिवृद्धिप्रदः श्यामः शुक्लो मोक्षकरः शुभः ॥ पीतो धनकरोज्ञेयो रक्तो राज्यप्रदायकः । रोगदश्चातिरक्तस्तु कृष्णः कीर्तिप्रदः शुभः ॥ पापघ्नः पाण्डुरो नित्यं रूक्षश्चोद्वेगकारकः । स्थूलो निहन्ति चैवायुर्वक्रो दारिद्र्यदः सदा ॥ स्निग्धः सिद्धिप्रदः शश्वन्निष्फलः स्यादलाञ्छनः । कपिलो बहुवक्त्रश्च त्रिकोणो बन्धुनाशकृत् ॥ अधोमुखः क्षयकरः पुत्रघातकरः स्मृतः । आयुष्यं हरते घृष्टः करालः कुलनाशनः ॥ करालो विकरालश्च सर्वसम्पत्प्रणाशकः । दुर्दरः स्फुटितोदग्धस्त्रिकोणश्चविवर्जितः । अन्तःस्फुटितचक्रश्च बहुचक्रस्तथैवच ॥ बहुरेखं बहुच्छिद्रं तिर्यग्भूतं तथा त्यजेत् ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः। स्नानं जपश्च दानं च वाराणस्यां कृतात्परम् । चक्राङ्कितस्य सान्निध्ये यत्किञ्चित्क्रियते नरैः ॥ स्नानं दानं जपो होमस्तत्सर्वञ्चाक्षयं भवेत् ॥ सुदर्शनाख्यमेकेन द्वाभ्यां नारायणः स्मृतः ॥

हो तो लक्ष्मी के दाता जानना चाहिये, ऐसे ही पीत वर्ण का धनदाता, रक्तवर्ण का राज्यदाता, अतिरक्तवर्ण का रोगकारी, काला शुभ और कीर्तिवर्द्धक, पाण्डुवर्ण का पापापहारी और भूरा (रूक्षवर्ण का) नित्य ही भय कम्प (उद्वेग) जनक होता है। अब इनकी आकृति के लक्षण बताए जाते हैं:—बहुत मोटा स्वरूप हो तो आयुष्य का नाश करता है, टेढ़ा हो तो सदा दारिद्र्यदायक होता है । चिकना हो तो निरन्तर सिद्धिदायक है। निश्छिद्र हो तो निष्फल कहा गया है। कपिल वर्ण का बहुत मुँहवाला वा त्रिकोण हो तो बन्धुनाशकारी जानना चाहिये । अधोमुख क्षयकारी और पुत्रघाती समझा गया है । रगड़ा हुआ हो तो आयुष्य का नाश करता है । कराल वा भयंकर हो तो कुलक्षय करता है, अर्थात् कराल विकराल दोनों ही सभी सम्पत्तियों की इतिश्री करनेवाले होते हैं । दुर्दर याने कुरूप, फूटा-टूटा, जला हुआ एवम् त्रिकोण, भीतर की ओर फूट गया है चक्र जिसके ऐसा उक्त संख्या के अतिरिक्त अधिक चक्रवाला, बहुत छिद्र रेखावाला या तिरछा स्वरूप का भी हो तो इन आकारों से युक्त शालग्राम देव पूजा के योग्य नहीं होते हैं। अर्थात् ऐसी मूर्तिवाले शालग्रामों की पूजा का निषेध जानना चाहिये ॥ (यदि निष्काम योगी हो तो उसे कोई दोष नहीं है क्योंकि "खण्डिताः स्फुटिता वाऽपि-शालग्रामशिलाः शुभाः" ऐसा वचन आया है। शालग्राम शिला जहाँपर है वहाँपर भगवान् छिपे हुए हैं उनके समीप में किये गये स्नान, जप, दान वगैरह काशीपर किये जाने से भी अधिक होते हैं। मनुष्यों से चक्राङ्कित शालग्राम के पास में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि जो कुछ भी किया जाता है वह सब अक्षय होता है। चक्रों की संख्या पहले नहीं बताई गयी थी, अतः अब बताई जा रही है—एक चक्र से सुदर्शन, दो

त्रिभिश्चक्रैरच्युतः स्याच्चतुश्चक्रो जनार्दनः। पञ्चभिर्वासुदेवः स्यात् षड्भिः प्रद्युम्न एव च ॥ सङ्कर्षणः सप्तभिः स्यादष्टाभिः पुरुषोत्तमः। नवव्यूहस्तुनवभिर्दशभिश्चैव जन्मकृत् ॥ रुद्रचक्राणि रुद्रस्य द्वादश द्वादशात्मनः। एतेभ्योऽधिकचक्रो यः परमात्मा स उच्यते ॥ तस्यार्चनादवाप्नोति कैवल्यं केवलं मुने! ये पश्यन्ति च पाषाणान्विष्णुचक्रेण संयुतान्। ते तद्दर्शनमात्रेण मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। न गुरुर्नच मन्त्रोऽस्ति न जपो न च भावना ॥ न स्तुतिर्नोपचाराश्च चक्राङ्कितशिलार्चने। म्लेच्छदेशे शुचौस्थाने चक्राङ्कं यत्र तिष्ठति ॥ योजनानि भवेयुश्चाच्युतक्षेत्राणि सारवित्! तन्मध्ये म्रियते यस्तु पूजकः सुसमाहितः ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो न पुनर्जायते भुवि ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित्कुरुते नरः ॥ तत्सर्वं विलयं याति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ शालग्रामान्तिके देशे श्राद्धं यः कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति तृप्ता वर्षशतं दिवि ॥ शालग्रामसमीपेतु क्रोशमात्रं समन्ततः ॥ कीटोऽपि म्रियते याति वैकुण्ठभवनं ध्रुवम् ॥ शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्घाटयेन्नरः ॥ विक्रेता

से नारायण, तीन से अच्युत, चार चक्रों से जनार्दन, पाँच से वासुदेव, छः से प्रद्युम्न, सात से सङ्कर्षण, आठ से पुरुषोत्तम, नौ से नवव्यूह (जैसे ग्रह , दस से जन्मकारी (दिङ्मूर्ति) ग्यारह चक्रों से रुद्र, बारह से द्वादशात्मा सूर्य इस प्रकार चक्र संख्या के क्रम से मूर्तिभेद जानना चाहिये। उक्त संख्या के चक्रों से अधिक जितने भी संभव हो उस मूर्ति को परमात्मा कहा जाता है। हे मुने! उनकी पूजा करने से मनुष्य को केवल कैवल्य मुक्ति का लाभ होता है। जो नर विष्णु के चक्र से अङ्कित शिलाओं का दर्शन करते हैं उनके दर्शनमात्र से वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। चक्रचिह्नित शिलाओं की पूजा के लिए न गुरु की आवश्यकता है न तो मन्त्र ही की, एवम् जप, भावना, स्तुति, स्तुतिपाठ, उपचार इत्यादि का भी कुछ दरकार नहीं है। हे सारवित्! म्लेच्छ ही देश क्यों न हो जहाँपर पवित्र स्थान में चक्रचिह्न शालग्राम शिला रहती है वहाँ पर कम से कम तीन योजन तक विष्णु क्षेत्र जानना चाहिये। उस भूमि के अन्दर जो संयमी शिलार्चक पुरुष देहान्त होता है वह सभी पापों से मुक्त होकर फिर भूतल में नहीं जन्म लेता है। मनुष्य का किया ब्रह्महत्यादिक जो कुछ पाप है वह शालग्राम शिला की पूजा से नष्ट हो जाता है। जो नर शालग्राम के नजदीक पवित्र स्थान में श्राद्ध करता है उसके पितर लोग दिव्य सौ वर्षतक स्वर्ग लोक में तृप्त होकर रहते हैं। शालग्राम शिला की चारों ओर एक कोश भूमि के अन्दर मरा हुआ कीट भी निश्चय ही वैकुण्ठ भवन को चला जाता है। जो मनुष्य शालग्राम की शिलापर कीमत लगाता है वह और बेचनेवाला उसपर

चानुमन्ता च परीक्षां योऽनुमोदयेत्। ते सर्वे पापिनो ज्ञेया शेषा दुःखस्य भागिनः ॥ किं मुने बहुनोक्तेन नरकं यान्ति दारुणम् ॥ स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा ॥ शालग्रामशिलाचक्रार्चनं हि सततं मुने ! पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। तत्फलं समवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात्। तस्मादेव नदी श्रेष्ठा कृष्णाभा सा घटोद्भव ! ॥ परिवारैः समं स्वांशैर्विष्णुना नित्यसेविता। सर्वदेवमयो विष्णुः सर्वतीर्थमयीव सा। गौरीस्वेदोद्भवात्स्नानात्कोटितीर्थगुणं फलम्। प्रयागे शतधा स्नात्वा कुरुक्षेत्रे च नैमिषे ॥ कृष्णाभायां सकृत्स्नात्वा फलं तुल्यं लभेन्नरः। श्राद्धं करोति यस्तस्यां पितॄन्सर्वान्समुद्धरेत् ॥ गयायां पिण्डदानात्तु लभेच्छतगुणस्फलम्। तस्याञ्च स्नानमात्रेण सर्वपापैर्विवर्जितः ॥ कैवल्यं प्राप्यते ज्ञानाज्जपहोमार्च-

---

अनुमति देनेवाला, परीक्षा करनेवाला और इन बातोंपर सहीसलामती रखनेवाला इन सब और भी बचे निर्घृणी कर्म के करनेवालों को पापी और दुःख के भागी जानना चाहिये। हे मुने ! उन पापियों के सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जावे वे सब भयङ्कर नरक को जाते हैं। अतः पाप से डरनेवालों को चाहिये कि शालग्रामरूपी भगवान् वासुदेवजी का स्मरण करें और हमेशः उन चक्राङ्कित शिलाओंकी पूजा करते रहें॥ इस भूमण्डल के अन्दर जितने तीर्थ हैं और जितने ही देवमन्दिर एवम् पूजा के योग्य पवित्रस्थान हैं उनकी सेवा से जो फल मिलना चाहिये, वह तो सिर्फ (शालग्रामरूप) विष्णु भगवान के नामकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है। हे अगस्त्यजी ! उन्हीं विष्णु देव को अपने गर्भपर धारण करके ही कृष्णाऽऽभा (गण्डकी) सभी नदियों में से श्रेष्ठ समझी गयी है। क्योंकि अंश रूप से अवतीर्ण अपने अनेकों परिवार देववृन्द से युक्त होकर भगवान विष्णु ने उस नदी की नित्य प्रति सेवा कर रक्खी है। चूँकि विष्णु भगवान ही सभी देवताओं के स्वरूप हैं और वह नदी ही सभी तीर्थों के स्वरूप की है। खासकर के वह श्रीजगदम्बिका गौरीजी के पसीने से प्रगट हो कर आयी है इसलिए उसपर स्नान करने से सब तीर्थों की अपेक्षा कोटिगुण अधिक फल प्राप्ति होती है। तीर्थराज प्रयाग कुरुक्षेत्र व नैमिषारण्य पर सौवार स्नान करने का पुण्य जो है वह कृष्णा नदी में एक ही बार मात्र स्नान करने पर भी मनुष्य समान फल का लाभ करता है॥ जो कृष्णा गण्डकी के तट पर श्राद्ध करता है वह सभी पितरों का उद्धार करता है। गयातीर्थमें पिण्डदान की अपेक्षा कृष्णा गण्डकी में एक बार स्नान मात्र करने से भी सभी पापों से रहित होकर शतगुण अधिक फलको प्राप्त करता है। हेमुने! इसपर मनुष्य ज्ञान पूर्वक स्नान जप होम और पूजा इत्यादि शुभकर्म करके कैवल्य गति को प्राप्त होता

नैर्मुने । एकादश्यां रवौ शुक्ले माघमासे विशेषतः ॥ भक्त्या करोति यः स्नानं कोटिकोटिगुणं फलम् । पशुपक्षिमृगा मर्त्या वृक्षा ग्रावास्तृणानि च तज्जलस्पर्शनादेव गच्छन्ति स्वर्गमुत्तमम् ॥ तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥ देहान्ते च परं स्थानं लभन्ते तच्च कारकाः । मुक्तिधारा च कृष्णाभा तयोश्च संगमे जलम् । सर्वतीर्थोत्तमं विद्धि देवलोकैश्च वाञ्छितम्। तस्मिन्तीर्थे सुनिष्णातः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ मोहकञ्चुकमुत्सृज्य ज्ञान-कञ्चुकसंवृतः ॥ जपार्चनं हुतं दत्तं स्नातको यः करोति वै ॥ कोटिकोटि-गुणं मर्त्यः फलं प्राप्नोत्यगोचरम् ॥ माहात्म्यमेतत् कथितं मया ते कृष्णप्रभायाः सुनदीवरायाः ॥ अद्यादि देवा निवसन्ति तत्र स्वैः स्वैर्मुदांऽशै-र्गिरिशप्रसादात् ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे हिमवत्खण्डे कृष्णाभा (गण्डकी)
माहात्म्यं सशिलं शुभम् ॥

है । एकादशी के दिन रविवार शुक्लपक्ष में विशेषतः माघ के महीने पर जो नर भक्तिपूर्वक स्नान करता है उसका पुण्य कोटि २ गुण अधिक हो जाता है ॥ उस नदी के जल को छूते ही पशु, पक्षी, मृग, मनुष्य, वृक्ष, शिला और तृण इत्यादि अर्थात् चर अचर दोनों ही उत्तम स्वर्ग को चले जाते हैं । उसके तट पर किये गये स्नान, होम, जप, तप प्रभृति ये सब अक्षय हो जाते हैं ॥ इस प्रकार कर्म के करने वाले मरे बाद परमधाम का लाभ करते हैं ॥ मुक्तिधारा और कृष्णा नदी के सङ्गम पर का जो जल है वह देवताओं को भी लुभानेवाला सर्वोत्तम तीर्थ माना गया है । और यह भी जानिये कि उस तीर्थ में जिसने अच्छी तरह से स्नान किया है उसने परम पदको पालिया है और यह भी मानिये कि उसने मोहरूपी खालको फाड़कर ज्ञानरूपी लबेदा पहन लिया है। (यहाँ तक कि उसपर स्नान किया हुआ) जो मनुष्य (अन्यत्रभी) जप, पूजा, होम दान इत्यादि पुण्य कर्म करता है वह कोटि २ गुण अधिक अदृश्य फलका लाभ करता है ॥

हे मुने ! इस प्रकार अच्छी २ नदियों से भी श्रेष्ठ कृष्ण प्रभा (गण्डकी) नदी का सम्पूर्णमाहात्म्य मैंने आपको बताया है, जिस पर आज तक भी देवतालोग श्रीभगवान पर्वतेश्वर शङ्करजी की प्रसन्नता से हर्ष के साथ अपने २ अंशों के द्वारा निवास करते हैं ॥

उपरोक्तरीति से श्रीस्कन्दपुराण हिमवत्खण्डान्तरगत कृष्णा गण्डकी व
शालग्राम शिलाओं के माहात्म्य का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

❀ अथस्कन्दपुराणान्तरगत मुक्तिक्षेत्रमाहात्म्यम् ❀

॥ अगस्त्य उवाच ॥

चित्रञ्च जायते स्वान्ते मम देवाधुना प्रभो ! आकर्ण्य ते मुखाम्भोजान्मुक्तितीर्थं सुदुर्लभम् ॥ कथं समुद्भवस्तीर्थो मुक्तिधारा कथं भवेत्। एतच्च श्रोतुमिच्छामि वद मे सर्वविद्विभो ॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

मुक्तिभूभृन्मध्यभागे धात्रा तप्तं पुरा मुने ! समावाह्य जले वह्निं हुतवाँस्तत्र हव्यकम् ॥ तयोर्वैरोऽपिचात्यन्तं कृशानुजलयोर्मिथः। तदादिश्चैकदेहं तौ तत्राश्रित्य प्रतिष्ठितः ॥ देवास्तत्रसमागत्य गृह्णन्तिस्म हविर्मुदा। पञ्चामृताक्तहव्यानि ज्वलन्तो वह्निविग्रहैः ॥ ब्रह्मादय सुरास्तत्र सर्वे तिष्ठन्ति कुम्भज ! हविर्भुजस्त्रयोदेवा जलाग्निमूर्तयः सदा ॥ विष्णोर्मूर्तिं जलं विद्याद्रुद्रमूर्तिं

❀ स्कन्दपुराणान्तरगत मुक्तिक्षेत्रमाहात्म्यभाषानुवाद ❀

श्रीगणेशाय नमः ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे देव ! हे प्रभो ! आपके श्रीमुखारविन्द से देवदुर्लभ मुक्तिक्षेत्र का नाम सुनकर इस समय मेरे दिलपर बड़ा आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है, कैसे उस तीर्थ का उत्पत्ति हुई और मुक्ति धारा क्यों कर हो गयी ? इस बात को भी सुननेकी इच्छा हो रही है इसलिए हे सर्वज्ञ विभो ! मुझे कृपया बताइये। इस प्रश्न को सुनकर श्रीभगवान कुमारजी ने कहा कि हे मुने ! मुक्ति पर्वत के मध्य भाग में जलपर अग्निका आवाहन करके पहले ब्रह्माजी ने खूब तपश्चर्या की और उन्होंने उसपर अग्नि सिद्धकर चरूका हवन किया। यद्यपि जल और अग्नि, दोनों का परस्पर अत्यन्त बैर भाव है पर भी तब से लेकर उस पर वे दोनों ही एक देह हो कर रहते हैं। (जो कि आज तक भी मुक्तिनाथ के पास में ज्वालामन्दिर पर प्रत्यक्ष पानी में धिकती हुई आग दीख रही है)॥ देवता लोग भी उस स्थान पर आकर प्रेम से इस अग्नि के शरीर में प्रविष्ट होकर दीप्यमान होते हुए दूध, दही, घी, चीनी और मधु से सिद्ध तरल हव्य पदार्थों का ग्रहण करते रहे। हे अगस्त्यजी ! अब भी ब्रह्मा विष्णु महेश्वर प्रभृति सभी देवता लोग जल अग्नि होता हविर्भुक इत्यादिरूप धारण करके सदैव उस स्थान पर रहते हैं। विष्णु का स्वरूप तो जल समझिये और रुद्र

तथानलम् । आवाह्य तौ तयोर्ब्रह्मा हुतवान्घृतपायसम्।। दिगीशाश्चैव भोक्तारः पुरुहूतमुखामुने ! यत्रदेवमये हव्यं तत्र तद्ब्रह्मशासनात् ।। परानौ विषयं हव्यं मनःकुण्डे जुहाव वै । श्वासस्रुवेण च ब्रह्माध्यात्वा तत्र परात्परम् ।। मुक्तिहेतोः कृतो यज्ञो ब्रह्मणाऽसुभृतां परः । मुक्तिक्षेत्र इतिख्यातस्तस्माल्लोके घटोद्भव ! ज्ञानकर्मोपासनेभ्यो यज्ञाः स्युस्त्रिविधा मुने । तानेव चाग्रहीद्ब्रह्मा सर्वलोकसुखाय च ।। प्रत्यक्षं यत्र रुद्रोऽसावग्निमूर्तिस्तथापरः । विष्णुरमृतमूर्तिश्च होतारस्तत्र किम्पुनः ।। ऋषयो यत्र मुञ्चन्ति न देवाः किन्नरास्तथा। गन्धर्वाश्चाप्सरः सिद्धा नानारूपेण संस्थिताः ।। ग्रावैश्चलदलैस्तोयैरन्योन्यैश्च

की मूर्ति अनल, अर्थात् अग्निदेव। एकही जगह पर इन दोनों का आवाहन करते हुए उनमें से तीसरे ब्रह्माजी ने घृत मिश्रित खीर का हवन किया, इन्द्र-वरुण प्रभृति दिक्पाल लोग हविर्भोजी बन गये। जिस विष्णुमय स्थान पर इस प्रकार यज्ञ किया गया वह वैदिक प्रमाण से सिद्ध कार्य माना गया है क्योंकि "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" ऐसा श्रुतिचोदित वचन है। यहाँ पर "श्रुतिचोदनात्" ऐसा भी पाठान्तर है यह तो कर्मकाण्ड के अनुसार यज्ञ हुआ, उपासना और ज्ञानकाण्ड के अनुसार ब्रह्माजी ने यज्ञ किया ? इस पर कहते हैं कि ब्रह्माजी ने अन्तर्जठर स्थित पराग्नि की मानसिक कुण्ड में स्थापना कर के रूपरसगन्ध शब्द स्पर्शादि विषय रूप हवनीय पदार्थों का श्वास की स्रुवासे वचन और मन से भी अगम्य केवल बोधस्वरूप गुणातीत परब्रह्म का ध्यान करते हुए ज्ञानस्वरूप हवन यज्ञ भी किया था। उन्होंने प्राणियों की मुक्ति के लिए ही उस स्थान पर ऐसे ऐसे उत्तम यज्ञ किये हैं, हे अगस्त्यजी ! इसी कारण से उस स्थान का नाम तीनों लोक में प्रसिद्ध मुक्ति-क्षेत्र हो गया है॥ इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि—हे मुने ! ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड के भेद से यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं, उन्हीं तीनों का ही सभी लोक के सुख के लिए भगवान् ब्रह्माजीने अनुष्ठान किया है॥ इन बातों की पुनरावृत्ति क्या की जावे क्योंकि जहाँ पर वह जगद्गुरु भगवान् शंकरजी अग्निरूप से, भगवान् विष्णुदेव जलात्मक अमृत रूप से और खास ब्रह्मा जी होता रूप से अवस्थित हैं। जिस स्थान को कोई नहीं छोड़ना चाहते हैं, देवता, किन्नर, गन्धर्व, अप्सराएँ और सिद्धादिदेवयोनि विशेष जातिवाले वहाँपर नाना रूप से निवास किये हुए हैं. उपरोक्त बात को स्पष्ट रूप से कहते हैं कि—कितने पत्थर रूप एवम् कितने पिप्पल वृक्ष का अन्योन्य जातियों के नाना वृक्षरूप और जलस्वरूप से भी रहते हैं। उनकी पत्तियाँ भी

द्रुमात्मभिः । शिलावल्ल्यादयस्तेषां पत्न्यः स्युः सरिदादयः ॥ कतिचित्कृमयो जातास्तिर्यञ्चश्चापरे स्मृताः । त्वे पतङ्गाः परे केचिद्यादांस्यन्ये च पक्षिणः ॥ स्वंस्वंरूपं तिरोधाय प्रेम्णा तिष्टन्ति कुम्भभूः । तत्तद्योनिसमुद्भूता निजभर्तृसुखावहाः ॥ पतिधर्मरता रामा स्थितास्तज्जन्मजन्मनि । तत्रैवं विद्धि कुम्भात्मन् देवी देवादिसंगमः । काचिदन्यापि वार्ता स्यादेते-भ्योपि स्मयावहा । तां वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ सावधानतया शृणु ॥ हवना-दवशिष्टन्तु रुद्रभागेन कल्पितम् । दृश्यते शैलरूपेण क्षिप्तं तत्पायसं हविः ॥ भुञ्जते मनुजाः केचित्तच्च देवनिवेदितम् । प्रसादमितिमन्वाना भक्त्या-

---

क्रमशः शिला, वल्ली, और क्षुद्रनदियाँ बन कर रहती हैं। इन दिनों में भी मुक्तिक्षेत्र पर जाकर देखिये कि मुक्तिनाथ जी के पास में पिप्पलादिक अनेकों वृक्षों का कैसा सघन जंगल दीख पड़ता है ?) ॥ देवयोनियों से कितने तो कृमि होकर उस स्थान पर चले आए हुए हैं कितने वनचर पशु बने हुए हैं, हे अगस्तजी, और भी कोई पतंग, कोई जलजन्तु, कोई पक्षी स्वरूप होते हुए अपने-अपने देवयोनि विशेष के शुद्ध स्वरूप को छिपाकर उस क्षेत्र पर आकर आज तक प्रेम से निवास करे हैं, और उनकी औरतें भी अपने अपने पतियों को सुख पहुँचाने के लिए उन उन योनियों में जन्म लेकर दाम्पत्य प्रेम से रहती हैं क्योंकि चाहे किसी भी योनि में हो पतिव्रता पत्नी जन्म जन्म में भी अपने पतिदेव से पृथक् नहीं हो सकती है। इस प्रकार हे अगस्तजी उस क्षेत्र पर सभी देवी और देवतादि लोगों का सङ्गम एकत्र जुटा हुआ जानिये। उपरोक्त के अतिरिक्त और भी एक आश्चर्य की बात है जो उसको भी मैं कहूँगा। हे मुनि श्रेष्ठ ! सावधान होकर सुनिये। श्रुति का वचन है कि यज्ञ करने पर बचा हुआ शेष रुद्र भाग समझा जाता है। क्योंकि "एषते रुद्रभागः" ऐसा वैदिक वचन है इसलिए ब्रह्माजी के हवन यज्ञ करने पर रुद्र भाग समझ कर उस पर्वत के एक देश में फेंका गया वह खीर आज तक भी पहाड़ रूप से दीखता ही है। [वह मुक्तिनाथ मन्दिर के पास ही में है। आजकल उधर प्रायः भोटिया लोगों की बसती है वे सब और यहाँ के गड़ेरिया लोग एवम् यात्री लोग भी उस पहाड़को खोद खोदकर पत्थरों के चट्टानों को उतार कर गरमागरम खीर निकालते हैं और कुछ मिट्टीके अंश को हटाकर भगवान का महाप्रसाद समझते हुए गप्पा लगाते हैं और दूध से चूरे हुए चावल के मोटे २ दानें भी दीखते हैं] आज तक वह पाया जाता ही है। फिर से इसी बात को कहते हैं कि—कितने लोग भक्ति पूर्वक देवताओं का नैवेद्य स्वरूप महाप्रसाद समझते हुए प्रायः मिट्टी के जैसे

मृद्रूपतां गतम् ॥ तस्यामुपत्यकायान्तु चित्रमेतद्धटोद्भव। पुनस्त्वां व्याहरिष्यामि सर्वं मम निबोधय। भूरिशोघृतसंपातैः क्वचिच्छाम्येत्तु पावकः। तत्रैव दारुणो वन्हिर्लक्ष्यतेन्तर्जलं सदा॥ जाज्वल्यमानो मृत्स्नायां न हविस्तत्रनेन्धनम्। एवमेतन्महाश्चर्यं दीप्यमानस्तथाऽश्मनि॥ केचिज्ज्वालामुखीं देवीं सस्मरुः पर्वतोद्भवाः। तद्वह्नेर्विविधामन्ये संज्ञा चक्रुर्मनोरमाम्॥ दिवोऽवतीर्यलुप्तैषा क्षेत्रे तत्र वहन्त्यहो! शब्दायते निर्जलाऽपि गङ्गा पातालगामिनी॥ अनेके जलसंपाता भूरिपुण्यफलप्रदाः। शैलमुद्भिद्य सञ्जाता स्तस्मिन्किल्विष हारिणः॥ लोकाश्चतुर्विधोद्भूताः स्नात्वा तत्र कलेवरम्॥ त्यक्त्वा मुक्ति समायांति मुक्तिक्षेत्रं ततः स्मृतम्। तत्रा-

---

अल्परस उस खीर को खाया करते हैं। हे घट जन्मन्! उस पर्वत की आसन्न भूमि में यह और भी एक विचित्र सी बात है मेरी तुम सुनते रहो मैं फिर भी सब कुछ तुमसे कहूँगा। वह यह है—यह तो आप भी जानते होंगे कि कहीं पर अर्थात् छोटी आग पर बहुत घी वगैरह की बाढ़ बहा देने से घी से भी आग बुझ जा सकती है परन्तु उस जगह पर तो जल के अन्दर से हरहमेशः ही लपकती हुई आग की ज्वाला निकली दीखती है। यह तो एक ज्वाला हुई और दूसरी ज़्वाला मिट्टी पर दनदना रही है न उसमें कोई घी डालता धारता है न तो लकड़ी ही छोड़ी जाती है इतनी बात ही नहीं, [क्योंकि कोई कह दे कि वह तो गन्धक की खान के कारण अन्दर में किसी चीज से टकराकर जलती हुई आग निकलती है? ऐसा कुतर्क करना बिलकुल फजूल है जाकर दर्शन करे कि] इससे भी बड़ी और एक आश्चर्य की बात है जो कि तीसरी ज्वाला एक ही पत्थर पर दिनों रात धक-धकी रही है। उसे कितने पहाड़ी लोग ज्वालामुखीदेवी कहा करते हैं और दूसरे लोगों ने उस अग्नि की कई सुन्दर-सुन्दर संज्ञा कर रक्खी हैं। फिर भी आश्चर्य तो इस बात से प्रगट होता है कि मन्दाकिनी (स्वर्ग की गङ्गा) अमरावती से उतर कर गुप्त धारा होती हुई इसी क्षेत्र पर बहती है, यद्यपि उसका जलधारा प्रवाह तो नहीं देखाई देता है पर भी प्रवाह के शब्द से पता चलता है कि खास गङ्गा ही पाताल की ओर बहती जा रही है॥ उस मुक्तिक्षेत्र में, मुक्तीश्वर मन्दिर के पास वाली १०८ धाराओं के बजाय और भी कई सोते सोखे झरने वगैरह अनन्त पुण्य फलदायक जल संपात हैं, वे पापों का नाश करने के वास्ते पहाड़ियों को फोड़ कर प्रगट हुए हैं। चारों प्रकार के जीव (उद्भिज, घर्मज, अण्डज और जरायुज) उन पर स्नान करते हुए शरीर के छोड़ देने पर मुक्त हो जाते हैं अतएव इस स्थान का नाम मुक्तिक्षेत्र रक्खा गया है। वहां पर जो भक्ति पूर्वक गोता लगाकर

प्लवति यो भक्त्या मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् । सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ।। ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षस्य दशम्यां स्नाति तत्र यः । कोटिजन्मार्जितैः पापैः समुक्तोनात्र संशयः ।। अथवा मकराख्यायां संक्रान्तौ स्नाति तत्र यः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ।। जप्तं दत्तं हुतं तत्र रुद्रमुद्दिश्य-यैर्नरैः । सन्त्यज्य पुनरावृत्तिं लभ्यते चैश्वरी गतिः ।। स्त्रियोऽपि यंयमिच्छन्ति तंतं विन्दति सत्वरम् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तास्तत्र स्नानान्नसंशयः । भोजयन्ति च ये विप्रान्समं भोज्यैश्चतुर्विधैः । स्वर्गे तिष्ठन्तितेतृप्ताः सवंशा मुक्त-कल्मषाः ।। श्राद्धं करोति यस्तत्र तर्पणैः पितरो मुदा । स्वर्गमुत्प्लुत्य गच्छन्ति चाप्यधःस्था जितैनसः ।। यावतीभिर्नदीभिश्च गिरिगह्वरजन्मभिः ।

प्राणों का त्याग करता है वह उसी क्षण में मुक्त हो जाता है । समझिये कि सात जन्म से सञ्चित सभी पापों से वह मुक्त हो गया है इसमें कोई सन्देह नहीं है (क्यों कि गीता जी में भी अर्थात् भगवान ने कहा है कि "अनेक जन्म संसिद्धस्ततोयाति परां गतिम्" अर्थात् अनेक जन्म के पापों का प्रक्षालन करके सिद्धि के मिलने से ही मनुष्य परमगति याने मोक्ष को प्राप्त करता है । यह बात वहां पर स्नान के करते ही हो जाती है) जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ल दशहरे के रोज उन तीर्थों में स्नान करता है वह कोटि जन्म से सञ्चित सभी पापों से मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है । अथवा दशहरे के रोज अनुकूल न हो तो जो नर मकर संक्रान्ति के दिन में ही स्नान करता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम पद को पहुँच जाता है । जिन्हों ने उस क्षेत्र वा तीर्थ पर श्रीभगवान शङ्कर जी का उद्देश्य रखकर जप, दान, होम इत्यादि पुण्य कर्म किया है इनके फिर से जन्म मरणादिक पुनरावृत्ति नहीं होती है और इन्हें ईश्वरीय गति मिल जाती है । यदि स्त्रियों ने भी उस स्थान पर वैसा शुभकर्म किया हो तो वे सब जिस जिस पुरुष की इच्छा रखती हैं उसे उसे शीघ्र पा जाती हैं ।। उन तीर्थों में स्नान करने पर इनके शरीर से सभी पाप छूट कर दूर चले जाते हैं । उस मुक्तिक्षेत्र में जो लोग ब्राह्मणों को लेह्य, पेय, भक्ष्य, चोष्य इत्यादि चार प्रकार के व्यञ्जन और भोगों के साथ जिमाते हैं वे अपने वंश के साथ तृप्त होकर पाप से रहित होते हुए स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ।। जो नर पितरों के उद्देश्य से वहां पर तर्पण के साथ साथ श्राद्ध याने पिण्डदान करता है उसके पितृ लोग अधोगति अर्थात् नरक में ही गिरे पड़े क्यों न हों तत्काल पाप से रहित होते हुए उछल-उछल कर स्वर्ग लोक को चले जाते हैं । पहाड़ गुफा कुण्ड इत्यादि से प्रगट हुई जितनी धारा नदी वगैरह से तीर्थ बने हुए हैं इन सभी

सर्वाणि तानि तीर्थानि कृष्णाभाया: समागमे ॥ संगमेषु च तीर्थेषु क्षुद्र-नद्यभियुक्तिषु ॥ तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति नरा मुक्ताश्च किल्बिषैः ॥ पातकैः पञ्चभिर्युक्ता उपपातकिनश्चये । तेषां कलुषसंशुद्धिश्चक्रनेमिगिरेरधः ॥ यावन्त्योऽद्रिदरीभवाः सुललिता नद्योहिमाद्रेरधः, शैलानां च समन्ततो घटज ताः पूताः प्रवाहाः सदा ॥ तप्तानां च तटेषु संगसभवैः श्रीगण्डकीनांभर-सन्यासां सलिलैः समं शिवकरं तीर्थानि पुण्यानिवै ॥

❀ इति श्रीस्कन्दपुराणे हिमवत्खण्डे कृष्णप्रभा माहात्म्ये मुक्तिक्षेत्राद्युत्पत्ति माहात्म्यवर्णनं शुभम् ❀

तीर्थों का ढूँढ़ना सुगमता से बनता नहीं है इसलिये कहते हैं कि इनसभी तीर्थों को कृष्णाभा के सङ्गम पर जानना चाहिये । जहाँ पर छोटी-छोटी क्षुद्रनदियों की वेणी बनी हुई है उन उन नदियों के सङ्गम रूप उन उन तीर्थों पर स्नान करने से मनुष्य पाप रहित होकर मुक्त हो जाते हैं । जो लोग महापातकी (ब्रह्म-घाती, सुरापायी, गोघाती, सुवर्ण चोर और गुरु पत्नी पर गमन करने वाले) और अथवा उपपातकी हैं उनके पापों की संशुद्धि इसी शालग्राम (चक्रनेमि) पर्वत के अधोभाग से ही होता है, अर्थात् उक्त पर्वत की फेदी तक बहकर वेणी बनी हुई जो नदियां हैं वे ही, या मुक्ति पर्वत ही, पापों के शोधक हो सकते हैं । और इससे दूसरा सुगम उपाय नहीं है । इतनी कथा सुनाकर स्कन्दजी ने कहा कि हे अगस्त्यजी ! हिमालय से नीचे और छोटी-छोटी पहाड़ियों की चारों ओर जितनी गुफे कन्दरे वगैरह से पवित्र जलवाली सुन्दर जितनी नदियाँ उत्पन्न हुई हैं वे सब सदा काल के लिए पवित्र प्रवाह वाली हैं । अन्योन्य सूक्ष्म नदियों के साथ सातों गण्डकियों के सङ्गम से बना हुआ तीर्थ अत्यन्त ही शुभदायक है, इन जलों से बने हुए सभी जगह के अन्योन्य तीर्थ भी परम पुण्यदायक हैं ॥

इस प्रकार से स्कन्दपुराणान्तरगत कृष्णानदी मुक्तिक्षेत्रादियों की उत्पत्ति और माहात्म्य वर्णन का भाषानुवाद समाप्त हुआ ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ अथसोमेश्वरादिलिङ्गमुक्तिक्षेत्रत्रिवेण्यादिमाहात्म्यम् ॐ

वाराहानुसारेण

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा मन्दारमाहात्म्यं धर्मकामा वसुन्धरा । विस्मयं परमं गत्वा पुनः पप्रच्छ सादरम् ॥ १ ॥ धरण्युवाच । मया देवप्रसादेन श्रुतं मन्दारवर्णनम् । मन्दारात्परमं स्थानं विष्णो ! तद्वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ शृणुतत्त्वे न मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । कथयिष्यामि मे गुह्यं शालग्राममिति स्मृतम् ॥ ३ ॥ द्वापरेतु युगे भूमे ! यदूनां कुलसंकुले । तत्र शूर इति ख्यातो यदूनां वंशवर्द्धनः ॥ ॥ ४ ॥ तस्य पुत्रो महाभागो सर्वकर्मपरायणः । वसुदेवोगृहेजातो यादवानां कुलोद्वहः ॥ ५ ॥ तस्यभार्या च वसुधे ! सर्वावयवसुन्दरी । देवकीनाम नाम्ना च मनोज्ञा शुभदर्शना ॥ ६ ॥ तस्या गर्भे महाभागे भविष्यामि न

ॐ सोमेश्वर-मुक्तिक्षेत्र त्रिवेणी इत्यादिकों का माहात्म्य वर्णन ॐ

श्रीवाराहपुराण के अनुसार

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसूतपौराणिक जीने शौनकादि ऋषियों के प्रति बताया है कि श्रीभगवान वराह जी मन्दार के माहात्म्य को सुनकर धर्म की कामना रखने वाली धरणी ने आश्चर्य में पड़कर आदर के साथ फिर उनसे पूछा ॥ १ ॥ धरणी बोली कि हे देव ! आपकी कृपा से मैंने मन्दार का वर्णन तो सुन लिया, अब मन्दार से भी उत्तम जो स्थान है, हे विष्णो ! कृपया उसको भी आप सुनाते ! ॥ २ ॥ श्री वाराह जी ने कहा हे देवि ! तुम जो मुझसे खूब पूछ रही हो वह मेरा परमगुह्य शालग्राम नामक क्षेत्र है, अब उसका मैं वर्णन करूंगा, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ हे पृथ्वि ! द्वापर युग में जब कि यदुओं का कुल खूब बढ़ता जाता रहा उस वक्त उस राजधानी में यदुवंशियों के वंशवर्द्धक शूर नाम के यादव रहे ॥४॥ उनके पुत्र यादव वंश के प्रवर्त्तक, महाभाग्यशाली सभी शुभ कर्मों में तत्पर वसुदेव नाम से प्रसिद्ध महापुरुष थे ॥५॥ हे पृथिवी ! उनकी धर्मपत्नी का नाम देवकी है, वह सर्वाङ्ग सुन्दरी, मनोहारिणी एवम् दर्शन करने लायक की हैं ॥ ६ ॥ हे महाभागे ! देवताओं का शत्रुनाशक होकर मैं

संशयः। वासुदेव इति ख्यातो देवानामरिमर्दन ॥ ७ ॥ ततोऽपि संस्थिते तत्र यादवानां कुलोद्वहे। तत्र ब्रह्मर्षिपरमः सालङ्कायन एव च ॥ ८ ॥ ममैवाराधनार्थाय भ्रमते सदिशो दश ॥ पुत्रार्थं स तपस्तेपे मेरुशृङ्गे समाहितः ॥ ९ ॥ ततः पिण्डारके गत्वा मम क्षेत्रे वसुन्धरे! लोहार्गले ततोगत्वा सहस्रश्चैव तिष्ठति ॥ १० ॥ ईश्वरेण समंपूर्वं सर्वयोगेश्वरं स्थितम्। न च पश्यति मां देवि! मार्गमाण इतस्ततः ॥ ११ ॥ ईश्वरेण समंपूर्वमहमासं वसुन्धरे। तस्यैव तप्यमानस्य सालङ्कायन कस्यह ॥ १२ ॥ तस्मिन्क्षेत्रे हरो देवो मत्स्वरूपेण संयुतः। शालग्रामे गिरौ तस्मिञ्छिलारूपेण तिष्ठति ॥ १३ ॥ अहं तिष्ठामि तत्रैव गिरिरूपेण नित्यशः। तस्मिञ्छिलाः समग्रास्तु मत्स्वरूपा न संशयः ॥ १४ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन किम्पुनश्चक्र-लाञ्छिताः। लिङ्गरूपेण च हरस्तत्र देवालये गिरौ ॥१५॥ शिव नामा शिला स्तत्र चक्रनामाशिलास्तथा। सोमेश्वराधिष्ठितस्तु शिवरूपोगिरिस्मृतः ॥१६॥

वासुदेव नाम से उन्हीं का प्रसिद्ध पुत्र बनूँगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ ७ ॥ उसके बाद वहां पर उस प्रकार से यदुवंश के प्रवर्तक मेरे रहते अथवा ऐसा भी अर्थ है कि मेरे वैकुण्ठ को ओर सिधारने पर (संस्थानमवस्थितिर्मृत्युश्च) [तुम जानो कि] वहाँ पर ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ सालङ्कायन मुनि ॥ ८ ॥ मेरी आराधना के लिये ही दशों दिशाओं पर भ्रमण किया करते हैं। (और यह भी समझो कि मेरु-पर्वत की चोटी में सावधान होकर पुत्र प्राप्ति के लिये उन्होंने बड़ी तपस्या की ॥ ९ ॥ उसके बाद हे वसुन्धरे! वह पिण्डारक नामक मेरे क्षेत्र पर चले गये और वहाँ से भी लोहार्गल की ओर जाकर हजार वर्ष पर्यंत रहे ॥ १० ॥ उस समय में भगवान शङ्कर जी के साथ में रहता हुआ सर्व योगेश्वर मुझको उन महात्माने इधर उधर (सर्वत्र) ढूँढते हुए भी नहीं देख सका ॥ ११ ॥ क्योंकि हे वसुन्धरे! पहले मैं शङ्कर जी के साथ रहता था। इस प्रकार सालङ्कायन ऋषि के तपश्चर्या में रहते ॥ १२ ॥ उस क्षेत्र में अर्थात् शालग्राम पर्वत में भगवान शङ्करजी मेरे स्वरूप से मिलकर शिलारूप से रहते हैं ॥ १३ ॥ मैं भी पर्वत बनकर उसी क्षेत्र पर सदाकाल रहता हूँ ॥ अतएव वहाँ पर की सभी शिलाएँ मेरे स्वरूप की हैं। सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ इनकी यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये, इनमें चक्रचिह्नितशिलाएँ भी पाई जायें तो फिर बात ही क्या है? मतलब यह है कि उस देवालय पर्वत में शङ्कर जी लिङ्ग रूप से रहते हैं ॥ १५ ॥ इसलिये वहां पर की शिलाएँ शिव नाम भी हैं, चक्र नाम भी हैं। सोमेश्वर जी के रहते वह पर्वत शिव स्वरूप माना गया है ॥ १६ ॥ चन्द्रमा ने

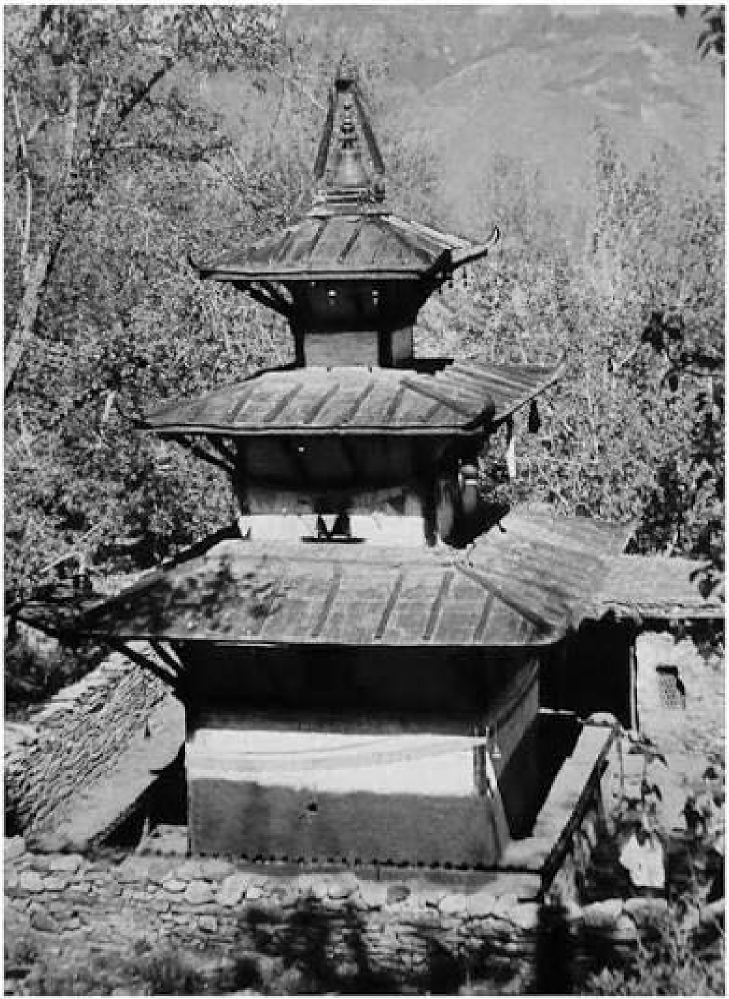

मुक्तिनाथजी का मन्दिर

सोमे न तत्र संस्थाप्य स्वनाम्नालिङ्गमुत्तमम् । वर्षाणां तु सहस्रं वै स्वशापस्य निवृत्तये ॥ १७ ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्तस्तेजसा च परिप्लुतः । स्वकं तेजो बलं प्राप्य तुष्टाव गिरिजा पतिम् ॥ १८ ॥ सोमेश्वराच्च वरदमाविर्भूतं त्रियम्बकम् ॥ १९॥ सोम उवाच ॥ शिवं सौम्यमुमाकान्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ नतोऽस्मि पञ्चवदनं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ २० ॥ शशाङ्कशेखरं दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम् । पिनाकपाणिं देवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २१ ॥ त्रिशूलिनं डमरुणालसद्धस्तं वृषध्वजम् ॥ नानामुखैर्गणैर्जुष्टं नानारूपैर्भयानकैः॥ २२॥ त्रिपुरघ्नं महाकालमन्धकादिनिषूदनम्। गजाजिनावृतं स्थाणुं व्याघ्रचर्मविभूषितम् ॥ २३ ॥ नागभोगोपवीतञ्च रुद्रमालाधरंप्रभुम्। अरूपमपि सर्वेशं भक्तेच्छोपात्तविग्रहम ॥२४॥ वह्निसोमार्कनयनं मनोवाचामगोचरम् । जटाजूटप्रकटितं गङ्गासंमार्जितांहसम ॥ २५ ॥ कैलासनिलयं शम्भुं हिमाचलकृताश्रमम । एवं स्तुतस्तदाशम्भुरिन्दुंवचन-

---

अपने नाम से उत्तम शिवलिङ्ग की स्थापना करके अपने को शाप से छुटाने के लिये हजार वर्ष पर्यन्त (उनकी आराधना की) ॥ १७ ॥ तब उन्होंने शाप से मुक्त हो अपने तेज और बल को पाकर तेजस्वी होते हुए भगवान गिरिजापति की स्तुति की ॥१८॥ जो भगवान त्रिनेत्रधारी शङ्करजी वरदायक होकर सोमेश्वर लिङ्ग से ही प्रगट हुए थे ॥ १९ ॥ चन्द्रमा कहने लगे—मैं उन भगवान के लिए शिर झुकाता हूँ जो शिव हैं, सौम्य हैं, उमानाथ एवम् भक्तवत्सल हैं । जिनके वदन पाँच है, जो नीलकण्ठ हैं जिनके नेत्र भी तीन हैं जिनके शेखर में चन्द्रमा हैं ऐसे सभी देवताओं से नमस्कृत, दिव्यस्वरूप, पिनाक नामक धनुष्पाणि, देव देव, भक्तों के अभय देने वाले त्रिशूलधारी, डमरू से सुशोभित बाहुवाले, वृषभ वाहन, नाना प्रकार के मुख और कई तरह के स्वरूप वाले भयङ्कर गणों से सुसेवित, त्रिपुरासुर के नाश करने वाले, महाकाल, अन्धकादि राक्षसों के प्रहर्ता गजचर्म के पहननेवाले स्थाणुरूप अर्थात् अचल रूप व्याघ्र के चर्म से विभूषित, सर्प की फणा के जनेऊ और रुद्राक्ष माला के धारण किये हुए, जगत्प्रभु, अरूप (गुणकर्म शरीरादि से रहित) होकर भी सर्वेश्वर, भक्तों की इच्छा के अनुसार शरीरधारण करने वाले, अग्नि, सोम और सूर्य हैं नेत्र जिनके ऐसे मन और वचन से भी अगम्य, (विषय पर नहीं आनेवाले) जटाओं के कूट से प्रगट होती हुई गङ्गाजी से प्रक्षालन किया है कल्मष को जिसने ऐसे, कैलासवासी शम्भु (सम्पूर्ण कल्याणों के दाता) हिमालय पर जमाया है आसन जिन्होंने ऐसे भगवान के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार चन्द्रमा से स्तुति किये गये भगवान शंकरजी ने उनसे कहा ॥२०–२६॥

मब्रवीत् ॥ २६ ॥ वरं वरय भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्तते । दुर्लभं दर्शनं यस्मा-
त्प्राप्तवानसि गोपते ! ॥२७॥ सोम उवाच ॥ वरं ददासिचेद्देव ! मम लिङ्गे
सदा वस ॥ एतल्लिङ्गस्य भक्तानां पूरयस्व मनोरथम् ॥२८॥ देवदेव उवाच ॥
विष्णुसान्निध्यमप्यत्र सदैवनिवसाम्यहम् । विशेषतस्तदीयेऽस्मिन्नद्यप्रभृति
गोपते ! ॥ २९ ॥ ममैवान्या परामूर्तिस्त्वं शशाङ्कन संशयः । एतल्लिङ्गार्च-
कानाञ्च भक्तानां मम सर्वदा ॥ ३० ॥ वरान्दास्यामि भद्रन्ते देवानामपि
दुर्लभान् ॥ सालङ्कायनकाख्यस्य मुनेस्तु तपसो बलात् ॥ ३१ ॥ विष्णुना
सह संमन्त्र्य स्थितावावां कलानिधे ! शालग्रामगिरिर्विष्णुरहंसोमेश्वरा-
भिधः ॥ ३२ ॥ तयोः पर्वतयोर्यावै शिलाविष्णुशिवाभिधाः । रेवया च कृतं
पूर्वन्तपः शिवसुतुष्टिदम् ॥ ३३ ॥ ममत्वत्सदृशः पुत्रोभूयादिति मनीषया ॥
अहं कस्यापि न सुतः क्रिंकरोमीति चिन्तयन् ॥ ३४ ॥ रेवायास्तु वरोदेय-
स्त्ववश्यं मृगलाञ्छन ! निश्चित्यैवं तदा प्रोक्तः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥३५॥

हे गोपते (किरणेश्वर) ! आपके मन में क्या है ? जो भी हो मुझसे वरदान लीजिये ! आपका कल्याण हो, क्योंकि आपने मेरा दुर्लभ दर्शन को पालिया है । चन्द्रमा ने कहा कि हे देव ! यदि आप मुझे वरदान देते हों तो मुझसे स्थापना किये गये लिङ्ग में सदाकाल आप निवास करें और इस लिङ्ग के पूजक भक्तों का मनोरथ पूर्ण किया करें ॥ २८ ॥ भगवान महादेव जी ने कहा । हे गोपते ! इस स्थान पर भगवान विष्णु का भी सामीप्य है और विशेषतः आपके प्रेम से भी आज से लेकर आप से स्थापित इस लिङ्ग पर मैं सदाकाल निवास करूंगा ॥ २९ ॥ हे चन्द्र ! आप भी तो (अष्टमूर्तियों में से) मेरी दूसरी मूर्ति के स्वरूप हैं, सन्देह नहीं है । मेरे इस लिङ्ग के पूजक मेरे भक्तों के लिये देवताओं के भी दुर्लभ वरों का सर्वदा दाता बनूँगा ॥ ३० ॥ आपका कल्याण बना रहे ॥ सालङ्कायन नामक मुनि की तपश्चर्या के बलसे ॥३१॥ हे कलानाथ ! विष्णु भगवान से परामर्श लेकर यहाँ पर हम दोनों ही एकत्र स्थित हैं ॥ शालग्राम पर्वत तो विष्णु देव ही हैं और मैं सोमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गया हूँ ॥ ३२ ॥ इन दोनों पर्वत के अन्दर जितनी (शालग्राम की) शिलाएँ हैं, वे सब विष्णुशिला कहलाती हैं ॥ और रेवा ने भी प्राचीन काल में शङ्करजी को खुश कराने लायक का उग्रतप किया था ॥ ३३ ॥ उसकी इच्छा यह रही कि मेरे सदृश उसका पुत्र हो । मैं तो किसी का भी पुत्र नहीं हो सकता अतः अब क्या करूँ ॥ ३२॥ रेवा के लिए तो वरदान देना ही है इस तरह विचार करता हुआ अन्त में निश्चय के साथ मैंने उसे प्रसन्न होकर उससे कहा ॥ ३५ ॥ हे

लिङ्गरूपेण ते देवि गजाननपुरस्कृतः ॥ गर्भे तव वसिष्यामि पुत्रोभूत्वा शिवप्रिये ! ॥ ३६ ॥ ममत्वमपरामूर्तिः ख्याता जलमयी शिवा । शिव शक्तिविभेदेन आवामेकत्र संस्थितौ ॥ ३७ ॥ एवं दत्तवरारेवा मत्सान्निध्य-मिहागता ॥ रेवाखण्डमितिख्यातं ततःप्रभृतिगोपते ! ॥ ३८ ॥ गण्डक्यापि पुरातप्तं वर्षाणामयुतं विधो ! शीर्णपर्णाशनं कृत्वा वायुभक्षाऽप्यनन्तरम ॥३९॥ दिव्यं वर्षशतं तेपे विष्णुं चिन्तयती तदा ॥ ततः साक्षाज्जगन्नाथो हरिर्भक्त-जनप्रियः ॥ ४० ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ गण्डकि त्वां प्रसन्नोऽस्मि तपसा विस्मितोऽनघे ! ॥ ४१ ॥ अनवच्छिन्नया भक्त्या वरं वरय सुव्रते ! किन्देयन्ते वदस्वाशु प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनी ॥ ४२ ॥ गण्ड-क्यापि पुरा दृष्ट्वा शंखचक्रगदाधरम ॥ दण्डवत्प्रणता भूत्वा ततस्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ४३ ॥ अहो देव ! मया दृष्टो दुर्दर्शो योगिनामपि ॥ त्वया सर्वमिदं सृष्टं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ४४ ॥ तदनु त्वं प्रविष्टोऽसि पुरुषस्तेन चोच्यसे ॥

देवि हे शिवप्रिये ! मैं श्रीगणेश जी के सहित तुम्हारे गर्भ में लिङ्ग रूप से निवास करूँगा ॥ ३६ ॥ क्यों कि तुम भी तो मेरी दूसरी एक जलमय मूर्ति हो, इस प्रकार शिव और शक्ति के भेद से हम दोनों एक ही जगह संस्थित रहेंगे ॥ ३७ ॥ उपरोक्त प्रकार से रेवा के लिए वरदान देने पर वह भी मेरे सामीप्य में यहाँ पर चली आई है, हे चन्द्र ! तब से इस स्थान का नाम रेवाखण्ड हो गया है । (कितने लोग "रेवा" के स्थान पर "देवा" शब्द का भो प्रयोग करते हैं पाठान्तर से "देवाखण्ड" जाना चाहिये ॥ ३८ ॥ एवम् हे शशाङ्क ! पूर्व समय में गण्ड की ने भी दस हजार वर्ष पुर्यन्त तप किया था वह कितने वर्ष तक तो सूखे पत्तों को खाकर तपश्चर्या में रही और कितने वर्ष तक वायु को पीकर ही ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से (दस हजार वर्ष पर्यन्त अर्थात्) दिव्य सौ वर्ष तक सदा भगवान विष्णु का ध्यान करती हुई तप करती रही, तब भक्तजनों के प्यारे प्रणतवत्सल साक्षात् जगन्नाथ हरि भगवान ने—॥४०॥ प्रसन्न होते हुए कहा, हे गण्डकि, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ हे अनघे ! तुम्हारी तपश्चर्या से विस्मित हो गया हूँ ॥४१॥ हे तपस्विनि ! तेरी अटूट भक्ति से अब वरदान का वरण करो ! हे दिव्य सुन्दरि ! मैं प्रसन्न हूँ जल्दी से बोलो कि तुम्हें क्या देना चाहिये ॥४२॥ जब गण्डकी ने भी अपने सामने शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान को देखकर उन्हें दण्ड वत्प्रणाम किया, और वह स्तुति करने लगी ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आपने मुझे दर्शन दिया है, अहो ! मेरा भाग्य है क्यों कि योगी लोग भी आपके दर्शन को नहीं पा सकते हैं । आपने इस चराचर जगत की सृष्टि की है ॥ ४४ ॥ इसी

त्वल्लीलोन्मीलिते विश्वे कः स्वतन्त्रोऽस्ति वैऽमान् ॥ ४५॥ अनाद्यन्तमपर्यन्तं यद्ब्रह्मश्रुतिबोधितम् ॥ तदेवत्वं महाविष्णो ! यस्त्वां वेद स वेदवित् ॥४६॥ तवैवाद्या जगन्माता याशक्तिः परमा स्मृता । तां योगमायां प्रकृतिं प्रधानमिति चक्षते ॥४७॥ निर्गुणः पुरुषोऽव्यक्तश्चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥ आनन्दरूपः शुद्धात्मा ह्यकर्ता निर्विकारकः ॥४८॥ स्वां योगमायामाविश्य कर्तृत्वं प्राप्तवानसि । प्रकृत्या सृज्यमानेऽस्मिन्द्रष्टा साक्षी निगद्यसे ॥ ४९ ॥ प्रकृतेस्त्रिगुणैरस्मिन्सृज्यमानेऽपि नान्यथा ॥ सान्निध्यमात्रतो देव ! त्वयि स्फुरति कारणे ॥ ५० ॥ स्फटिकेहि यथा स्वच्छे जपाकुसुम-

---

का पालन करते हुए अन्त में सबका अपने ही में समावेश कर लेते हैं, अतएव आप की पुरुष संज्ञा हुई है "पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" ऐसा श्रुति वचन है। आपकी लीला से विश्व (चराचर) के संहार होते समय कौन दूसरा पुरुष है कि आपके अतिरिक्त स्वतंत्र होकर रह सके ॥ ४५ ॥ जिसका आदि अन्त और अवधि कुछ नहीं है जो वेदगम्य ब्रह्म कहाता है, हे महाविष्णो ! वह ही आप हैं। "एतावानस्य महिमा" इत्यादि वेद वाक्य ही प्रमाण है) जो आपको जानता है वह वेद को भी जानता है। "सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति" इति वेदवाक्यात् ॥ ४६ ॥ आपकी जो आद्या शक्ति है वह ही जगत की जननी परमा शक्ति कही जाती है। उसीको कितने लोग योगमाया, मूलप्रकृति, प्रधान इत्यादि शब्दों से कहा करते हैं ॥ ४७ ॥ आप रूप रस गन्ध स्पर्श इत्यादि वा सत्त्वरजस्तम इत्यादि गुणों से रहित हैं। आप अव्यक्त (ज्ञान मात्रगम्य) चैतन्यस्वरूप, निरञ्जन (गुणात्मक कलङ्की पदार्थों से असक्त) महापुरुष हैं "सहस्रशीर्षा पुरुषः" ऐसी श्रुति है। "आनन्दमयोऽभ्यासात्" इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार परम आनन्द ही स्वरूप है, सर्वज्ञता के कारण आपकी आत्मा शुद्ध है अतएव परमात्मा कहे जाते हैं, "द्यावाभूमी जनयन्देवएकः" इस श्रुति से आप विश्वकर्ता होकर भी असत्योपाध्यवच्छिन्न द्रव्य ही के ब्रह्म समझने पर आपसे अतिरिक्त तो कुछ दीखता नहीं है। आप अकर्ता भी हैं, अतएव भौतिक पदार्थों को विकारी समझते हुए भी आपको निर्विकार समझते हैं ॥ ४८ ॥ आप कर्ता तो इस प्रकार से हैं कि अपनी योगमाया (जड़स्वरूप मूल प्रकृति) से तादात्म्य सम्बन्ध रखते हुए सृष्टि के कारण बन जाते हैं। यद्यपि यह सृष्टि तो प्रकृति की ही है परन्तु आप उसके द्रष्टा (साक्षी) कहे जाते हैं, प्रकृति ही को द्रष्टी कहें तो नहीं हो सकता है क्यों कि वह जड़ है, ईक्षण कर्तृत्व तो चैतन्य ही में होः रहता है इस लिए "ईक्षतेर्ना शब्दम्" ऐसा ब्रह्मसूत्र है ॥४९॥ इस सृज्यमान त्रिगुणात्मक जगत में प्रकृति से आपका तादात्म्य सम्बन्ध तो सान्निध्य मात्र से है और दूसरा कोई कारण नहीं है ॥ ५० ॥ जैसे कि शुद्ध

रागतः । प्रकाश्यते त्वत्प्रकाशाज्ज्योतिरूपं नताऽस्मि तत् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा-द्योपि कवयो न विन्दन्ति यथार्थतः । तत्कथं वेद्म्यहं मूढ तव रूपं निरञ्जनम् ॥ ५२ ॥ मूढस्य जगतो मध्ये स्थिता किञ्चिदजानती ॥ त्वया धृता कृताचाऽस्मि योग्या योग्यमविन्दती ॥ ५३ ॥ तेन लोके महत्वञ्च त्वत्प्रसादेनचोषिता ॥ ययाचेऽज्ञतयोदार ! तन्मेदातुं त्वमर्हसि ॥ ५४ ॥ दयालुरसि दीनेषु नेतिमां न वद प्रभो । ततः प्रोवाच भगवा-न्देवि यद्यत्त्वमिच्छसि ॥ ५५ ॥ तद्याचय वरारोहे अदेयमपि सर्वथा ! यद्दुर्लभं मनुष्याणां शीघ्रं याचय मां प्रति ॥५६॥ मद्दर्शनमनुप्राप्य कोवाऽ-पूर्णो मनोरथः । ततो हिमांशोसादेर्धा गण्डकी लोकतारिणी ॥ ५७ ॥ प्राञ्जलिः प्रणताभूत्वा मधुरं वाक्यमब्रवीत् । यदि देव प्रसन्नोऽसि देयोमे-वाञ्छितोवरः ॥ ५८ ॥ ममगर्भगतोभूत्वा विष्णो मत्पुत्रतां व्रज । ततः

स्फटिक में जपाकुसुम के संयोग होते ही स्फटिक भी लाल सा दीखता है, मान पड़ता है कि जपाकुसुम से उसका तादात्म्य है परन्तु उसके हटाने से स्फटिकका शुद्धश्वेत स्वरूप ही रह जाता है ॥ ऐसे शुद्ध कारण स्वरूप आपके रहते जिस प्रकार से जगत् प्रकाशमान दीखता है वैसे सनातन ज्योति रूप आपके लिए नमस्कार है ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा प्रभृति बड़े बड़े विद्वान देवता लोग भी आपके निरञ्जन स्वरूप को यथार्थ करके नहीं जान सकते हैं फिर मैं मन्दमतिशाली क्यों कर जान सकूँ ॥ ५२ ॥ मैं आप से उद्धार की गयी हूँ और आपही से बनाई भी गयी हूँ, इस मूढ जगत के अन्दर रह कर न मैं कुछ जानती हूँ न तो मुझे योग्यायोग्य ही मालूम है ॥ ७३ ॥ अतएव आपके ही प्रसाद से संसार में मै भी कुछ महत्त्व पर पहुंच गयी हूँ। हे उदार ! मैं ने अज्ञता के कारण आपसे कुछ माँगा है, उसको देने के लायक आपही हैं ॥ ७४ ॥ आप दीनपर दयालु हैं. हे प्रभो ! "नहीं" मत कहिये ॥ इस तरह गण्डकी को स्तुति समाप्त होने पर भगवान ने कहा कि देवि ! तुम जो चाहती हो ॥ ५५ ॥ वह सब सर्वथा अदेय भी है तो क्या है मुझसे माँग लो । हे सर्वोत्तम सुन्दरि ! जो मनुष्यों का दुर्लभ है वह भी शीघ्र मुझसे माँगकर ले जाओ ॥ ५६ ॥ मेरे दर्शन को पाकर किस का मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता है ? हे शीत प्रकाश ! (चन्द्र ! इसके बाद जगत् की तारिणी वह गण्डकी देवी ॥ ५७ ॥ हाथों को जोड़कर शिर को झुकाती हुई मधुर रूप से बोलने लगी । हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों और आपको मुझे वाञ्छित वरदा देना हो तो ॥ ५८ ॥ हे विष्णुदेव ! आप मेरे गर्भ गत होकर मेरा पुत्र होना स्वीकार करें। हे चन्द्रमा!

प्रसन्नो भगवांश्चिन्तयामास गोपते ॥ ५९ ॥ किं याचितं निम्नगया नित्यं मत्सङ्गलुब्धया। दास्यामि याचितं येन लोकानां भवमोक्षणम् ॥ ६० ॥ इत्येवं कृपया देवो निश्चित्य मनसा स्वयम् । गण्डकीमवदत्प्रीतः शृणु देवि वचो मम ॥ ६१ ॥ शालग्रामशिलारूपी तवगर्भगतः सदा । स्थास्यामि तव पुत्रत्वे भक्तानुग्रहकारणात् ॥ ६२ ॥ मत्सान्निध्यान्नदीनान्त्वमतिश्रेष्ठा भविष्यसि । दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात् पानाच्चैवावगाहनात् ॥ ६३ ॥ हरिष्यसि महापापं वाङ्मनः कायसम्भवम् । यः स्नास्यति विधानेन देवर्षिपितृतर्पकः ॥ ६४ ॥ तर्पयेत्स्वपितॄंश्चापि तारयित्वा दिवं नयेत्। स्वयं मम प्रियोभूत्वा ब्रह्मलोकङ्गमिष्यति ॥ ६५ ॥ यदि त्वय्युत्सृजेत्प्राणान्मम कर्मपरायणः । सोऽपि याति मम स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ६६ ॥ एवं दत्वा वरान्देव्यै तत्रैवान्तर धीयत । ततःप्रभृति तिष्ठामः क्षेत्रेऽस्मिञ्छशलाञ्छन ॥ ६७ ॥ अहञ्च भगवान्विष्णुर्भक्तेच्छोपात्तविग्रहः ।

गण्डकी की इस बात को सुनकर प्रसन्न होते हुए विचार किया कि सदा के लिये मेरे सङ्ग में लुब्ध होकर निम्नगा (टेढ़ी गतिवाली नदी) ने कैसा वरदान माँगा ? उसे दूँगा ही क्यों कि मांगा भी तो है उसने संसार की मुक्ति के लिए वरदान ॥ ६० ॥ इस प्रकार भगवान ने स्वयं अपने मन से निश्चय करके प्रसन्न होते हुए कृपापूर्वक गण्डकी से कहा कि हे देवि ! मेरी बात सुनो ॥ ६१ ॥ (कारण वश) मैं तुम्हारे गर्भ में शालग्राम-शिलारूपी होकर भक्त-जनों के अनुग्रहार्थ तुम्हारे पुत्र होते हुए निवास करूँगा ॥ ६२ ॥ मेरे सान्निध्य से तुम नदियों में सर्वोत्तम मानी जाओगी ॥ तुम्हारे जलों के दर्शन करने, छूने, नहाने, पीने और गोता लगाने से ॥ ६३ ॥ वचन, मन और शरीर से किये गये पापों का हरण करोगी ॥ जो देवता, ऋषि और पितरों का उपासक मनुष्य विधिपूर्वक तुम्हारे जल में स्नान करेगा ॥ ६४ ॥ और स्नान के बाद अपने पितरों के लिए तर्पण भी देगा तो उन सबको अधोगति से स्वर्ग लोक पहुँचा देगा और स्वयं वह भी मेरा प्रिय भक्त होकर ब्रह्मलोक पर चला जावेगा ॥६५॥ यदि मेरा भक्त होता हुआ मनुष्य तुम्हारे पास में प्राणों को छोड़ देता हो तो वह भी मेरे उस परम धाम की ओर चला जावेगा जहाँ पर जाकर फिर (लौटना इत्यादि कुछ भी) शोक नहीं शेष रह जाता है ("तत्र कः शोकः को मोहः एकत्वमनुपश्यतः" इति श्रुतेः)॥ इस प्रकार देवी गण्डकी के लिए वरदान को देकर भगवान उसी जगह अन्तर्धान हो गये। हे शशाङ्क ! तब से लेकर हम दोनों (हरि और हर) इसी क्षेत्र में रहते हैं ॥ ६७ ॥ मैं और भगवान विष्णु भी भक्तों की इच्छा के अनुसार शरीर का धारण करते हैं ॥ भगवान

एवमुक्त्वा द्विजपतिमन्वगृह्लाद्धरः प्रभुः ॥ ६८ ॥ प्रभासयन्मुडुपतेरङ्गानि-प्रममार्ज्जह । शङ्करेण करेणाऽपि नीरुजानि विधायच ॥ ६९॥ पश्यतस्तस्य तु विधोस्तत्रैवान्तरधीयत । सोमेशाद्दक्षिणे भागे वाणेनाद्रिं विभिद्यवै ॥ ७० ॥ रावणेन प्रकटिता जलधाराऽति पुण्यदा । बाणगङ्गेति विख्याता यास्नाता चाघहारिणी ॥ ७१ ॥ सोमेशात्पूर्वदिग्भागे रावणस्य तपोवनम् । यत्रस्थित्वा त्रिरात्रेण तपसः फलमश्नुते ॥ ७२ ॥ यत्र नृत्येन देवेशस्तुष्टस्तस्मै वरं ददौ । तेन रावण नृत्येन प्रख्यातो नर्त्तनाचलः ॥ ७३ ॥ स्नात्वा तु वाणगङ्गायां दृष्ट्वा वाणेश्वरं प्रभुम् । गङ्गास्नानफलं प्राप्य मोदते देववद्दिवि ॥ ७४ ॥ सालङ्कायनकोऽप्याशु क्षेत्रे तस्मिन्परे मम । शालग्रामे महातीव्रमास्थितः परमन्तपः ॥ ७५ ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि परं गुह्यं वसुन्धरे । तप्यतस्तस्य तु मुनेरीश्वरेणसमं सुतम् ॥ ७६ ॥ प्राप्स्यामिती वरं भावं ज्ञात्वा देवो महेश्वरः । सुन्दरं त्वपरं रूपं धृत्वा दृष्टिसुखावहम् ॥ ७७ ॥

शङ्कर जी ने इस प्रकार चन्द्रमा को समझा कर उन्हें बड़ी कृपा की है, उनपर प्रकाश डालते हुए उनके अङ्गों का भो संशोधन किया, शङ्करजी ने उन्हें हाथ से सुरझाते हुए नीरोगी बनाकर, उन (चन्द्रमा) के देखते-देखते वह अन्तर्धान हो गये ॥ ६९ ॥ उस सोमेश्वर स्थान से दक्षिण भाग में रावण ने बाण द्वारा पहाड़ को फोड़ कर एक अत्यन्त पुण्यदायक जल धारा प्रगट की है, जिस पर स्नान करने से पापों का संहार हो जाता है, वह "वाणगङ्गा" नाम से प्रसिद्ध है ॥ ७० ॥ ७१ ॥ सोमेश्वर से पूर्व दिशा की ओर रावण का तपोवन है, जिस वनमें रहकर त्रिरात्र (तीन रात) से तपस्या का फल प्राप्त किया जाता है ॥७२॥

जहाँ पर नाच करने से सन्तुष्ट होकर भगवान शङ्कर जीने उसे वरदान दिया था, उसी रावण के नृत्य से वह पर्वत नर्तनाचल नाम से आज तक प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ (वहाँ पर रावण ने वाणेश्वर नाम से भगवान् शङ्कर जी के लिङ्ग की स्थापना भी कर रक्खी है) जो मनुष्य बाणगङ्गा में स्नान कर बाणेश्वर भगवान का दर्शन भी करता है वह गङ्गास्नान जन्य फल को प्राप्त करके स्वर्ग लोक में देवता के समान रमता है ॥ ७३ ॥ (इतनी कथा सुनाकर भगवान वराह जी फिर धरणी से बोले कि) हे पृथिवी ! और भी एक गुप्त बात तुमको सुनाता हूँ [वह यह है सुनो]। सालङ्कायन नामक मुनीश्वर भी बड़ी शीघ्रता से (उत्सुक होकर) शालग्राम नामक उस उत्तम मेरे क्षेत्र में अत्युग्र महातीव्र तपश्चर्या के लिये डटे रहे, उनकी इच्छा यह रही कि भगवान शङ्करजी के तुल्य मेरा पुत्र हो ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ उनकी इस वर प्रार्थना के भाव को समझ कर भगवान शङ्करजी भी नेत्रों का सुखदायक एक और ही सुन्दर रूप धारण करके

सालङ्कायनपुत्रत्वं योगमायामुपाश्रितः। प्राप्तोऽपि तं न जानाति दक्षिणाम्पार्श्वमास्थितः ॥ ७८ ॥ मायायोगबलोपेतस्त्र्यक्षो वै शूलपाणिधृक्। रूपवान्गुणवांश्चैव वपुषादित्यसन्निभः ॥ ७९ ॥ स तं न ज्ञायते जातं ममैवाराधने स्थितः। अथ नन्दी प्रहस्याह महादेवाज्ञया मुनिम ॥ ८० ॥ उत्तिष्ठ मुनिशार्दूल सफलस्ते मनोरथः। त्वद्दक्षिणाङ्गाज्जातोऽस्मि पुत्रस्ते शाधि माम्प्रभो ॥ ८१ ॥ त्वयातपः समारब्धमीश्वरेण समं सुतम। प्राप्स्यामीति ततो मह्यं सदृशोऽन्यो न कश्चन ॥ ८२ ॥ विचार्येति तवाहं वै जातोऽस्मि स्वयमेव च। तपसाराधयन्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८३ ॥ प्राप्तोसि परमां सिद्धिं तत्पुत्रोऽहं यतस्थितः। श्रुत्वा तन्नन्दिनो वाक्यं प्रहृष्टवदनो मुनिः ॥ ८४ ॥ विस्मितस्तु तदोवाच कथं नाद्यापि मे हरिः। दृग्गोचरत्वमायाति जातश्चेत्तपसः फलम ॥ ८५ ॥ यावत्तं न समीक्षिष्ये तावन्नविरतन्तपः। अहमत्रैव वत्स्यामि यावदच्युतदर्शनम ॥ ८६ ॥ पुत्र त्वमपि योगेन्द्र मथुरां

योग माया के जरिये उन महर्षि के दक्षिणपार्श्व भाग से पुत्र बन कर चले आये ॥ ७७ ॥ इतना होने पर भी ऋषि ने अपने पुत्र रूप भगवान शङ्करजी को नहीं जान सका ॥ ७८ ॥ वह माया और योग के बल से सम्पन्न, त्रिलोचन, शूल को हाथ पर लिये हुए अत्यन्त सुन्दर दयादाक्षिण्यादि गुणों से युक्त और शरीर की कान्ति से सूर्य के सदृश तेजस्वी रहे ॥ ७९ ॥ ऋषिने उन्हें पुत्ररूप से नहीं पहचान सका इसलिये वह मेरी ही उपासना में डटे रह गये। इसके बाद नन्दीदेव ने श्री महादेवजी की आज्ञा से हँसकर मुनि से कहा ॥ ८० ॥ हे मुनि-शार्दूल (सिंह)! उठिये, आपका मनोरथ सफल हो गया, हे प्रभो! (अर्थात् आप मेरे प्रभु हैं क्यों कि) आपके दक्षिण अङ्ग से पैदा हुआ मैं आपका पुत्र हूँ मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ८१ ॥ आपने तप करना इसलिये शुरू किया था कि ईश्वर के सदृश पुत्र को मैं पा जाऊँ, इस भाव को समझ कर मैंने विचारा कि मेरा सदृश दूसरा कोई नहीं है। (मह्यंसदृश इत्यार्षः) ॥ ८२ ॥ तब स्वयम् मैं ही आपका पुत्र बन कर पैदा हुआ हूँ। तप के द्वारा शङ्ख चक्र गदा धारी भगवान की आराधना करते हुए आप ॥ ८३ ॥ परम सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं क्यों कि मैं आपका पुत्र बनकर चला आया हूँ॥ तब इस प्रकार से नन्दीदेव के वचन को सुन और आश्चर्य में पड़कर प्रसन्न वदन होते हुए मुनि ने कहा ॥ ८४ ॥ यदि मेरा तपोबल पूर्ण हुआ हो तो आजतक भगवान मेरे दृष्टिपथ पर क्यों चले नहीं आते हैं (मुझे क्यों दर्शन नहीं देते हैं ? ॥ ८५ ॥ जब तक भगवान को प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं सकूँ तब तक यह मेरा तप चलता ही रहेगा। मैं इसी स्थान पर बैठा रहूँगा जब तक कि अच्युत भगवान का दर्शन नहीं हो ॥ ८६ ॥ हे पुत्र ! तुम भी अपने

व्रज सत्वरम् । मदाश्रमे तत्रपुण्ये धनंगोव्रजसंकुलम ॥ ८७ ॥ आमुष्यायणमादाय शीघ्रमत्र समानय ॥ ८८ ॥ ततस्त्वाज्ञां समादाय नंदी सत्वरमात्रजत् । गत्वा च मथुरान्तस्य ऋषेराश्रममीक्ष्य च ॥ ८९ ॥ दृष्ट्वामुष्यायणन्तत्र पृष्ट्वा नाम तमप्युत । गृहेवित्तेच कुशलमपृच्छद्गोधनेषु च ॥ ९० ॥ सालङ्कायनशिष्योऽपि आमुष्यायणसंज्ञितः । सर्वत्र कुशलं साधो प्रभावात्तुगुरोर्मम ॥९१॥ गुरोश्च कुशलं ब्रूहि कुत्रास्ते स तपोधनः। भवान्कुतः समायातः किमत्रागमकारणम् ॥ ९२ ॥ तन्मे विस्तरतो ब्रूहि अर्घ्यश्चैवोपगृह्यताम् । इत्युक्तः सोऽर्घ्यमादाय विश्रम्य च ततो गुरोः ॥९३॥ वृत्तान्तं कथयामास स्वागमस्य च कारणम् । ततस्तेनैव सहितो गोधनं तत्प्रगृह्य च ॥ ९४ ॥ दिनैः कतिपयैश्चैव गण्डकीतीरमाश्रितः । शनैरुत्तीर्य च ततस्त्रिवेणीं प्राप्य हर्षितः ॥ ९५ ॥ देविका नाम देवानां प्रभावाच्च तपस्यताम् । नियमार्थं समुद्भूता गण्डक्यामिलिता शुभा ॥ ९६ ॥ आश्रमादपरा चासीत्पुलस्त्यपुलहाश्रमात् । गण्डक्यामिलितासापि त्रिवेणी गण्डकीत्यभूत् ॥ ९७ ॥ कामिकं तन्महातीर्थं पितॄणामतिवल्लभम् । तत्र स्थितं महालिङ्ग-

---

सामर्थ्य से झटपट मथुरा को चले जाओ, वहाँ जाकर मेरे पुण्याश्रम में पड़े हुए तुमुलगोष्ठ धन और शिष्य आमुष्यायण को लेकर फिर शीघ्र यहाँ पर चले आओ ॥ ८८ ॥ इसके बाद मुनि से आज्ञा लेकर नन्दी देव शीघ्रता से चले, उन्होंने मथुरा में पहुँच, ऋषि के आश्रम और वहाँ पर आमुष्यायणजी को देख, निश्चयार्थ उनके नाम को पूछ कर उनसे घर, धन और गोष्ठ के बारे में भी पूछ ताछ लगाया ॥ ९० ॥ सालङ्कायनजी के शिष्य आमुष्यायण ने नन्दीदेव से भी पूछना शुरू किया, हे सज्जन ! यहाँ तो मेरे गुरुदेव के प्रभाव से सर्वत्र कुशल है ॥ ९१ ॥ आप बताइये कि गुरुदेव तो कुशल से हैं, वह तपोधन कहाँ पर हैं ? आप कहाँ से चले आये और यहाँ पर किस वास्ते चले आये ? ॥ ९२ ॥ सो बात मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये और इस अर्घ्य (पूजा के साथ आतिथ्य सत्कार के पदार्थ) का स्वीकार कीजिये; इन तरह से पूछे गये नन्दी देव ने पहले पूजासामान का ग्रहण किया और कुछ देर तक आराम भी लिया ॥ ९३ ॥ उसके बाद गुरुदेव का वृत्तान्त और अपने आने का कारण भी कह सुनाया । तब वह उनके साथ (अर्थात् आमुष्यायण और नन्दीदेव वे दोनों ही) गायें और धन इत्यादि को अपने साथ लेकर ॥ ९४ ॥ वहाँ से चलते-चलते कई दिनों में गण्डकी के तट पर आ पहुँचे । तब धीरे से उत्तर त्रिवेणी को पाकर प्रसन्न हो गये ॥ ९५ ॥

त्रिजलेश्वरसंज्ञितम् ॥ ९८ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं देवि दर्शनादघनाशनम् ॥९९॥

॥ धरण्युवाच ॥

यागे या त्रिवेणीति यत्र देवोमहेश्वरः । शूलटङ्क इतिख्यातः सोमेश इति चापरः ॥१००॥ वेणीमाधव नाम्नाऽपि यत्र विष्णुः स्वयं स्थितः। गङ्गा च यमुना चैव सरस्वत्यपरानदी ॥१०१॥ सर्वेषाञ्चैव देवानामृषीणां सरसामपि । सर्वेषाञ्चैव तीर्थानां समाजस्तत्र मे श्रुतः ॥११२॥ यत्राऽऽप्लुता दिवं यान्ति मृता मुक्तिं प्रयान्ति च । तीर्थराज इतिख्यातं तत्तीर्थं केशव-प्रियम् ॥१०३॥ सैव त्रिवेणी विख्याता किमपूर्वां प्रशंससि ॥ एतद्गुह्यतमं

अब प्रसङ्गवश त्रिवेणी कैसे हुई ? इस बात का वर्णन करते हैं—देवताओं के प्रभाव से तपस्वियों के नियम पालन के लिये देविका नाम की शुभ नदी उत्पन्न होकर गण्डकी से मिली हुई है। (एवं गण्डकी और देविका ये दो दो हुईं) ॥ ९६ ॥ (उस शालग्राम पर्वत के एक देश में एक बड़ा ही विचित्र देखने का लायक गोस्तनाकार पत्थरों से सुसज्जित पुलस्त्य और पुलहजी का आश्रम है)। (तीसरी नदी तो यह है कि) जो आश्रम से अर्थात् पुलस्त्य और पुलहजी के आश्रम से उत्पन्न होकर वह भी उसी जगह गण्डकी से मिली हुई है, (उसका नाम लोग ब्रह्मपुत्री भी बताते हैं) अतएव गण्डकी त्रिवेणी हो गयी ॥ ९७ ॥ वह सङ्गम का स्थान कामिक (इच्छापूरक) नाम का पितरों का अत्यन्त प्यारा बड़ा भारी तीर्थ है ॥९८॥ वहाँ पर त्रिजलेश्वर नाम से प्रसिद्ध भुक्ति और मुक्ति का दायक दर्शन से पापों का नाशक शङ्करजी का महान लिङ्ग है ॥ ९९ ॥

इतनी कथा सुनकर फिर पृथिवी ने वराहजी से पूछा कि—त्रिवेणी तो वही है जो प्रयाग में है जहाँ पर भगवान महादेवजी शूलटङ्क और दूसरे सोमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ॥१०॥ और स्वयं भगवान विष्णु भी वेणीमाधव नाम से उस स्थान पर विराजमान हैं। जहाँ पर गङ्गा, यमुना और तीसरी सरस्वती नाम की नदी है ॥१०१॥ (तीनों नदियाँ एकत्र जुटी हुई हैं) उस नद संगम (त्रिवेणी में सब देवतालोग, ऋषिगण, मानस इत्यादि सरोवरों का और सम्पूर्ण तीर्थों का समाज लगा हुआ है ऐसा मैंने सुना है, ॥१०२॥ जिस पर स्नान करने वाले स्वर्ग और देह छोड़नेवाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं, उसको तीर्थराज (नदी संभेद) कहते हैं। वह तीर्थ भगवान केशवजी का प्यारा है ॥ १०३ ॥ वह ही तो प्रसिद्ध त्रिवेणी है फिर यह कौन सी अपूर्व त्रिवेणी बन आई है जिसकी आप प्रशंसा करते हैं ? हे विष्णो ! यह तो आपने बड़ी रहस्य

प्रोक्तं त्वया विष्णो न संशयः ॥१०४॥ तत्कथ्यतां महाभाग! लोकानां हितकाम्यया। मय्यनुक्रोशबुद्ध्या च कृपां कुरु दयानिधे! ॥ १०५ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ शृणुष्व देवि भद्रन्ते यद्गुह्यं परिपृच्छसि॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि सेतिहासां कथां शुभाम् ॥१०६॥ पुराविष्णुस्तपस्तेपे लोकानां हितकाम्यया। हिमालये गिरौ रम्ये देवतागणसेविते ॥१०७॥ ततो बहुतिथे काले याते सति तपस्यतः। तीव्रं तेजः प्रादुरासीद्येन लोकाश्चराचराः ॥१०८॥ तस्योष्मणा समुद्भूतः स्वेदपूरस्तुगण्डयोः। तेन जाता धुनी दिव्या लोकानामघहारिणी ॥१०९॥ महर्लोकादयः सर्वे विस्मिताः सर्वतोदिशम् ॥ तस्यप्रभवमिच्छन्तो ज्ञातुं नेशुः कथञ्चन ॥११०॥ देवाः सर्वे ततो जग्मुर्ब्रह्माणं प्रति चोत्सुकाः॥ पप्रच्छुः प्रभवन्तस्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१११॥ ब्रह्माऽपि हि न जानाति मोहितो मम मायया॥ ततो देवैःसमं ब्रह्मा शङ्करं प्रत्युपस्थितः ॥११२॥ तं दृष्ट्वा सहसा देवैः समेतं प्रत्युपस्थितम् पप्रच्छ तं महादेवस्तदागमनकारणम् ॥११३॥ ब्रह्मा तञ्च महादेवस्पप्रच्छ

की बात सुनाई है इसमें सन्देह नहीं है ॥१०४॥ हे महाभाग सभी लोक के हित के लिये मुझपर दया के विचार से उस बात को कहिये। हे दयानिधे! दया कीजिये ॥१०५॥ श्री वराहजी ने कहा—हे देवि! तुम जो रहस्य की बात पूछ रही हो सुनो, तुम्हारा कल्याण हो। इस सम्बन्ध में इतिहास के साथ अच्छी कथा तुमको सुनाऊँगा ॥१०६॥ प्राचीन समय में भगवान विष्णु ने सभी लोक के लिये हित के विचार से रमणीय, देवताओं से सेवित हिमालय पर्वत पर तप किया था ॥१०७॥ उनके तपकर्म में रहते रहते बहुत समय व्यतीत होने के बाद एक तीव्र तेज प्रगट हो गया था, जिससे चराचर लोक बने हुए हैं ॥१०८॥ उसके तापमान से उनकी दोनों गाल पर पसीने भर आए, और उनसे संसारियों के पापों का नाश करने वाली एक दिव्य नदी प्रगट होगयी ॥१०९॥ भूर्भुवःस्वर्लोकों की क्या बात है? महर्लोकादिक के दशों दिशा के निवासी देवगण भी अचम्भे में पड़ गये। उन सबकी इच्छा रही कि उस तेज की उत्पत्ति को जान लें पर वें किसी प्रकार से उसे जान नहीं सके ॥११०॥ सब देव लोग उत्सुक होकर ब्रह्माजी के पास चले गये और उन्हें बार बार प्रणाम करके उस (तेज) की उत्पत्ति को पूछने लगे ॥१११॥ ब्रह्मा भी तो मेरी ही माया से मोहित हैं वह भी कैसे जान सकें, तब सभी देवताओं को अपने साथ लेकर ब्रह्माजी भगवान शङ्करजी के यहाँ उपस्थित हो पहुँचे ॥११२॥ सभी देवगण को साथ लेकर यकायक अपने संमुख पर खड़े हुए ब्रह्मा जी को देखकर भगवान् शङ्करजी ने उन सबके आने का कारण पूछा ॥११३॥ और

प्रणतः स्थितः। अत्यद्भुतमहत्तेजश्चाद्भुतं किं महेश्वर !॥११४॥ येन प्रत्याहवा क्ष्माऽसौ जगद्व्यतिकरावहा। किन्नु स्यात्कथमेतत्स्यात्कश्चाऽस्य प्रभवो विभो ! ॥ ११५ ॥ शिवः क्षणं ततोध्यात्वा ब्रह्माद्यान्प्रत्युवाचह ॥ महसोऽस्यसमुत्पत्तिं महतो दर्शयामिवः ॥ ११६ ॥ जगाम देव सहितः सोमः सहगणः प्रभुः। यत्रास्ते भगवान्विष्णुर्महता तपसान्वितः ॥ ११७ ॥ उवाच परमः प्रीतस्तदा शम्भुः स्मयन्निव ॥ तपस्यसि किमिच्छास्ते त्वं कर्ता जगतां प्रभुः ॥ ११८ ॥ सर्वाधारोऽखिलाध्यक्षस्तत्किं यत्तव दुर्लभम् ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच प्रणम्य जगताम्प्रभुः ॥ ११९॥ अहं लोकहितार्थाय तपस्तप्तुं समुद्यतः। त्वत्तोवरानभीप्सन्वै त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥ १२० ॥ त्वद्दर्शनमनुप्राप्य कृतार्थोऽस्मिजगत्पते ! ॥ १२१ ॥ शिव उवाच ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदं देव

ब्रह्माजी भी शिर को झुकाए खड़े होकर—(उत्तर के रूप से) भगवान देव देव महादेवजी से निम्नलिखित बातों का प्रश्न करने लगे। हे महेश्वर ! एक बड़ा भारी अत्यन्त ही अद्भुत तेज प्रगट हुआ है, वह क्या (कैसा) अद्भुत है ? ॥११४॥ यह क्या हो सकता है ? कैसे हो सकता है ? हे विभो ! इसकी उत्पत्ति का मूल कारण क्या है ? ॥११५॥ इस प्रश्न के बाद शङ्करजी भी कुछ देर तक ध्यान में रहकर ब्रह्मादिक देवताओं के प्रति प्रत्युत्तर कहने लगे कि आपलोगों को इस महान् तेज की उत्पत्ति का कारण दिखलाता हूँ ॥११६॥ (यहाँ पर का पाठ "इत्युक्त्वाऽथ जगामाऽसौ देवः सह गणः प्रभुः" ऐसा होना चाहिये)॥ ऐसा कहकर वह भगवान शङ्कर जी देव व गणों के साथ वहाँ से चले आये, जहाँ पर कि भगवान विष्णुदेव उग्र तपश्चर्या में डटे रहे ॥ ११७ ॥ उनको तपोऽवस्था में देखकर आश्चर्य में पड़े जैसे भगवान शङ्कर जी परम प्रसन्न होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ आप तो जगत् के कर्ता और स्वामी हैं फिर आपकी क्या इच्छा है जो कि तप कर रहे हैं ? ॥ ११८ ॥ (सब तो आपही पर निर्भर है) आप सबके आधार हैं सब के अध्यक्ष (सर्वत्र देख भाल करने वाले) भी आप ही हैं फिर आप को किस चीज की कमी (दुर्लभ) है ? इस प्रकार पूछे गये जगत्प्रभु भगवान विष्णु ने शङ्करजी के लिए नमस्कार करते हुए प्रत्युत्तर देना शुरू किया ॥ ११९ ॥ मैं त्रैलोक्य के कल्याण के लिये तपश्चर्या में प्रस्तुत हूँ। आपसे वरों की इच्छा रखता हुआ आपके दर्शन के लिये लालायित भी हूँ ॥ १२० ॥ हे जगत्पते ! अब आपके दर्शन को पाकर मैं कृतार्थ भी हो गया हूँ ॥ १२१ ॥ हे देव ! अब से यह क्षेत्र दर्शन से ही मुक्तिदायक मुक्तिक्षेत्र होगा जहाँ पर गण्डस्थल

दर्शनादेव मुक्तिदम् । गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा ॥ १२२ ॥ भविष्यति न सन्देहो यस्या गर्भे भविष्यसि ॥ त्वयिस्थिते जगन्नाथे तव सान्निध्यकारणात् ॥१२३॥ अहं ब्रह्मा च देवाश्च ऋषिभिः सह केशव ! सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च सर्वतीर्थानि चाप्युत ॥ १२४ ॥ वसिष्यामः सदैवात्र गण्डक्यां जगताम्पते ! कार्तिकं सकलं मासं यः स्नास्यति नरः प्रभो ॥ १२५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मुक्तिभागी न संशयः । तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ १२६ ॥ यत्र स्नानेन लभ्येत गङ्गास्नानफलं नरैः । स्मरणाद्दर्शनात् स्पर्शान्निष्पापो जायते नरः ॥ ११७ ॥ यस्यास्तत्समतां कान्यां लभेद्गङ्गां विना नदीम् ॥ यत्र सा परमा पुण्या गण्डकी भुक्तिमुक्तिदा ॥ १२८ ॥ अपरा देविका नाम्ना गण्डक्यासह सङ्गता । पुलस्त्यपुलहौ पूर्वं तेपाते परमन्तपः ॥ १२९ ॥ यत्र सृष्टिविधानार्थं कृत्वाऽऽश्रमपदं पृथक् । सृष्टेर्विधानसामर्थ्यं यत्र लब्धं ततः परम् ॥ १३० ॥ ततोऽभूद्ब्रह्म

(कपोल) के पसीने से उत्पन्न होने के कारण गण्डकी नाम से प्रसिद्ध नदी बही हुई है वह नदियों में सर्वोत्तम होगी इस बातपर सन्देह नहीं है ॥ १२२ ॥ जिस नदी के गर्भ में आप निवास करेंगे, हे केशव यहाँ पर जगत् के स्वामी आपके रहते, आपके सामीप्य (साक्षात्कार) के कारण ॥ १२३ ॥ मैं (महादेव) ब्रह्मा, देवता लोग, ऋषियों के साथ साथ सब वेद, सब यज्ञ, और अधिक क्या, सभी तीर्थ इत्यादि ॥ १२४ ॥ अर्थात् हमलोग सब इसी गण्डकी में आकर सर्वदा ही निवास करेंगे । हे जगत्पते ! हे प्रभो ! जो मनुष्य कार्तिक में महीना भर स्नान करता है ॥ १२५ ॥ वह सभी पापों से रहित होकर मुक्ति का भागी बन जाता है । यह तीर्थों का परम तीर्थ (राजा) है और मङ्गलों का परम मङ्गल है ॥ १२६ ॥ जहां पर स्नान करने से मनुष्यों को गङ्गास्नान का फल मिल जाता है । जिस नदी तीर्थ के स्मरण, दर्शन और स्पर्श मात्र से भी मनुष्य पाप रहित हो जाता है ॥ १२७ ॥ जिसके बराबर की दूसरी कौन सी नदी मिल सकती है, सिवाय गङ्गा जी के । जिस पर परम पुण्यवती भुक्ति और मुक्ति की देने वाली गण्डकी विराजमान है ॥ १२८ ॥ और एक देविका नाम की नदी उत्पन्न होकर गण्डकी से मिली हुई है । अब ब्रह्मपुत्री कैसे उत्पन्न हुई उसका वर्णन करते हैं । पूर्व काल में पुलस्त्य और पुलह नामके दो मुनि जिस मुक्ति क्षेत्र के एकदेश में रहते हुए सृष्टिविधान के लिए अपने अलग-अलग आश्रम स्थान को बनाकर उग्र तप किया करते थे । तब जिस तपोबल से उन्हें सृष्टि विधान का सामर्थ्य प्राप्त हो गया ॥१२९ ॥ १३०॥

तनयो पुण्या सा सरितां वरा ।। गण्डक्या यत्र मिलिता ब्रह्मपुत्री यशस्विनी ।। १३१ ।। त्रिवेणी सा महापुण्या देवानामपि दुर्लभा। धरे! जानीहि तत्क्षेत्रं योजनं परमार्चितम् ।। १३२।। पुरा वेदनिधेः पुत्रौ जयो विजय एव च ।। यजनाय गतौ राज्ञा वृतौ तौ कर्दमात्मजौ ।। १३३ ।। तृणबिन्दोः सुतौ पापौ जातौ दृष्ट्यैव सुव्रतौ। यज्ञविद्यासु निपुणौ वेदवेदाङ्गपारगौ ।। १३५ ।। पूजयन्तौ हरिं भक्त्या तन्निष्ठेन्द्रियमानसौ ।। ययोः पूजयतोर्नित्यं सान्निध्यं किल केशवः ।।१३५।। ददातिपूजावसरे भक्त्या किल वशीकृतः।। मरुत्तेन कदाचित्ताःवाहूतौ कुशलौ द्विजौ ।। १३६ ।। राज्ञा समाप्तयज्ञेन पूजयित्वा पुरस्कृतौ ।। दक्षिणाभिस्तोषयित्वा विसृष्टौ गृहमागतौ ।। १३७ ।। विभागं कर्तुमारब्धौ पस्पर्धाते परस्परम्। समो विभागः कर्तव्य इति ज्येष्ठोऽऽभ्यभाषत ।। १३८ ।। विजयश्चाब्रवीच्चैनं येन लब्धं हि तस्य तत् ।। जयो

अत एव उसके बाद, (उनके आश्रम से) नदी श्रेष्ठ, पुण्यवती ब्रह्मपुत्री उत्पन्न हो गई वह प्रसिद्ध नदी भी जहां पर जाकर गण्डकी से मिली हुई है ॥ १३१ ॥ वह ही महापुण्यवती त्रिवेणी है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥ हे पृथिवि! तुम उस परम पूज्य मुक्तिक्षेत्र का प्रमाण एक योजन का जानो ॥ १३२ ॥ प्राचीनकाल में वेदनिधि ब्राह्मण के दो पुत्र रहे, जिनका नाम जय और विजय था। वे दोनों ही यज्ञ के लिए राजा से वरण किये गये थे। उसके बाद ये कर्दम के पुत्र हुए ॥ १३३ ॥ फिर भाग्य-वश (किसी अदृष्ट के कारण) पापात्मा होते हुए तृणबिन्दु के पुत्र होकर पैदा हुए, पर भी अपने व्रत नियमों का पालन करने में दक्ष थे, और यज्ञविद्या में ही निपुण नहीं किन्तु वेद वेदाङ्ग (शिक्षा कल्प व्याकरणादि) शास्त्र में पारङ्गत भी थे ॥ १३४ ॥ उन्हीं पर दत्तचित्त होकर भगवान की बड़ी भक्ति से पूजा किया करते थे जिनके पूजा कर्म में रहते नित्य प्रति खास भगवान केशव जी ॥ १३५ ॥ उनकी भक्ति के मारे वशीभूत होते हुए उन्हें सान्निध्य (सामीप्यर्थात् दर्शन) दिया करते रहे। किसी समय में सभी कर्म में निपुण वे दोनों ब्राह्मण कोई मरुत्त नामक राजा से यज्ञ के लिये बुलाए गये ॥ १३६ ॥ यज्ञसमाप्तिके बाद राजा ने उन दोनों के लिये पुरस्कार देते हुए विविध दक्षिणा से उनको सन्तुष्ट करा कर विसर्जन किया, वे अपने घरको चले आये ॥ १३७ ॥ और उन्होंने प्राप्त द्रव्य का ज्यों ही भाग लगाना शुरू किया, त्यों ही (असन्तोष के कारण) उनमें परस्पर झगड़ा छिड़ गया। उनमें से ज्येष्ठ ने कहा कि भाई! दोनों का हिस्सा बराबर होना चाहिये ॥ १३८ ॥ और कनिष्ठ विजय ने अपने बड़े

ब्रवीदसामर्थ्यं मन्वानो मां ब्रवीषि किम् ॥ १३९ ॥ न ददासि गृहीत्वा यत्तस्माद्ग्राहत्वमाप्नुहि ॥ विजयोऽप्यत्रवीन्नूनमन्धीभूतोऽसि किं धनैः ॥ १४० ॥ गजो भव मदान्धस्त्वं योमामेवं प्रभाषसे । एवं तौ ग्राहमातङ्गावभूतां शापतः पृथक् ॥१४१॥ गण्डक्यामेव सञ्जातो ग्राहः पूर्वस्मृतिर्द्विजः । त्रिवेणीक्षेत्रमध्येतु जयोऽभूद्वै महान्गजः ॥ १४२ ॥ करिशावैर्गजीभिश्च क्रीडमानो वने व्रसन् । वहून्यब्दसहस्राणि व्यतीतानि तयोस्तदा ॥ १४३ ॥ वने विहरतोर्भूमे शापमोहितयोः सतोः । कदाचित्सगजःस्नातुं करेणुगणसंवृतः ॥ १४४ ॥ त्रिवेणीमभितो यातोऽवगाहनपरायणः । सिञ्चन्करेणूस्ताभिश्चसिच्यमानो जलं पिवन् ॥ १४५ ॥ स्वयं च पाययँस्ताश्च चिक्रीडप्रीतमानसः॥ एवं सङ्क्रीडतस्तस्य दैवयोगेन तस्यहि॥१४६॥ ग्राहःसंप्रेरितः पूर्वं वैरयोगमनुस्मरन् ॥ जग्राह सुदृढं पादं गजोऽपि च विषाणतः ॥१४७॥

भाई से कहा कि जो वस्तु जिसको मिली है वह उसी की है (बाँटने की क्या आवश्यकता है ?) इतने में (गुस्से में आकर) जय ने विजय से कहा कि मुझको असमर्थ (नालायक) समझ कर क्या ? ऐसी बात करते हो ? ॥१३९॥ ग्रहण कर (लेकर) के जो तुम नहीं दे रहे हो अतएव ग्राह (घड़ियाल की योनि को प्राप्त हो जाओ । विजय ने भी कहा कि क्या तुम्हें धन अधिक हो गया जिसके मद से तुम अन्धे हो रहे हो ? ॥ १४० ॥ जाओ मदान्धता के कारण तुम वैसा ही हाथी बनो । जो कि मुझसे इस प्रकार गाली की बोली बक रहे हो ? इस तरह वे दोनों ही परस्पर शाप के कारण ग्राह और गजेन्द्र हो गये ॥ १४१ ॥ उनमें से विजय नाम का ब्राह्मण जातिस्मर होकर गण्डकी नदीं में ही ग्राह हुआ और जब त्रिवेणी क्षेत्र के अन्दर बड़ा भारी हाथी होकर वन में अपनी ढोई और छावों (बच्चों) के साथ क्रीडा करते रहता था । उन दोनों के इस प्रकार से रहते बहुत वर्ष बीत गये ॥ १४२-१४३ ॥ वे दोनों शाप से मोहित थे, और वन (जङ्गल वा पानी) में विहार करते रहे । इसी बीच में किसी समय वह गजेन्द्र नहाने के लिये अपनी हथिनी के झुण्ड से घिरे होकर ॥ १४४ ॥ त्रिवेणी जल की चारों ओर डुब्बी लगाने में निपुण होते हुए चला। वह कभी हथिनियों को जल से सेचन करता और कभी उनसे सेचन किया जाता ॥१४५॥ एवम् कभी तो जल पीता और कभी उनको पिलाता । इस प्रकार से प्रसन्न होकर जल मध्य में विहार करता रहा । उसके ऐसे विहरते रहते, दैव संयोग से वह ग्राह चला आया ॥ १४६ ॥ उसने पहले के वैरभाव को फिर समझ कर उस गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया । और गजेन्द्र ने भी अपने दाँतों से ग्राह को मारा ॥ १४७ ॥ फिर उसने गजेन्द्र को पानी के अन्दर खींच लिया,

ग्राहं विव्याध सोऽप्येनमाकर्षयत तज्जले ॥ तयोर्युद्धं समभवदनेकाब्दं विकर्षणैः ॥ १४८ ॥ आकर्षणैश्च बहुभिर्दन्तभेदैः परस्परम् ॥ प्रयुद्ध्यतोस्तयोरेवं मत्सरग्रस्तयोः सतोः ॥ १४९ ॥ सत्त्वानि पीडितान्यासन्ननेकानि क्षयं ययुः । ततो जलेश्वरो राजा भगवन्तं व्यजिज्ञपत् ॥१५०॥ तेन विज्ञापितो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ सुदर्शनेन चक्रेण ग्राहाऽऽस्यं समपाटयत् ॥ १५१ ॥ क्षिप्तं पुनः पुनस्तत्तुशिलाः सङ्घट्टयद्धरे ! सङ्घट्टनात्तु चक्रस्य शिलाश्चक्रेण लाञ्छिताः ॥ १५२ ॥ बाहुल्येन बभूवुर्हि तस्मिन्क्षेत्रे परे मम ॥ वज्रकीटैश्च जातानि सन्ततानि विलोकय ॥ १५२ ॥ न सन्देहस्त्वया कार्यस्त्रिवेणीं प्रति सुन्दरि ! ॥ त्रिवेणीक्षेत्रमहिमा एवन्ते परिकीर्तितः ॥ १५४ ॥ यदा च भरतोराजा पुलस्त्यस्याऽऽश्रमान्तिके ॥ स्थित्वा पर्यचरद्विष्णुं त्रिजलेशमपूजयत् ॥ १५५ ॥ ततः प्रभृति तस्याऽऽसीद्भरतेन रतिः स्फुटम् ॥ पुनश्च मृगदेहान्ते जडः स भरतोऽभवत् ॥ १५६ ॥ तेनैव-

---

कार खींचा खींच, ऐंचातानी और परस्पर बातों की रगड़बाजी से उन दोनों का कई वर्षों तक युद्ध होता रहा, एवम् प्रकार से मत्सर ग्रस्त उन दोनों की लड़ाई से कई जीवों को चोट पहुँची, और कितने मर भी गये ॥ तब (उस देश का) राजा जलेश्वर ने भगवान की प्रार्थना करते हुए उनसे सारी बातों को कह सुनाया ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ (उस देश में राजा जलेश्वर के रहने से उस जगह का नाम भी जलेश्वर हो गया था, अपभ्रंश के कारण आधुनिक लोग वर्तमान समय में उस स्थान को गळेश्वर नाम से पुकारा करते हैं) उनकी विज्ञापनाको सुनकर भक्तवत्सल भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र से ग्राह का मुँह फोड़ डाला ॥ १५१ ॥ भगवान ने उस जगह पर सुदर्शन को बार बार फेका तो हे धरे ! वह शिलाओं से टक्कर खाने लगा ॥ अतः चक्र के संघट्टन (अर्थात् रगड़ बाजी) से प्रायः उस क्षेत्र पर की सभी शिलाएँ चक्राङ्कित हो गयीं ॥ और चारों ओर फैली हुई कितनी शिलाओं को धो वज्र कीट से (चक्राङ्कित) बनाई गयी समझो ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ हे सुन्दरि ! तुम्हे त्रिवेणी के प्रति कोई सन्देह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार त्रिवेणी क्षेत्र का माहात्म्य मैंने तुमसे वर्णन कर सुनाया ॥ १५४ ॥ और भी सुनो ॥ जिस समय भरत नाम के राजा पुलस्त्य मुनि के आश्रम के समीप में ही रहकर भगवान विष्णु की परिचर्या और त्रिजलेश्वर की पूजा करते रहे तब से लेकर उनका भरत से अच्छा प्रेम रहा (कारण वश) फिर मृग शरीर के छोड़ने के बाद वह जड़ भरत हो गये। उन्होंने उस लिङ्ग की खूब पूजा की अतएव उस लिङ्ग का नाम जलेश्वर

पूजितो यस्माज्जलेश्वर इति स्मृतः ॥ यस्य सम्पूजनाद्भक्त्या योगसिद्धिः प्रजायते ॥ १५७ ॥ शालग्रामे परे क्षेत्रे यदाऽहं सुभगे ! स्थितः । तत्र ज्ञात्वा जलेशेन स्तुतोऽहं वसुधे महि ॥ १५८ ॥ ततो भक्तकृपावेशात्क्षिप्तवाँस्तत्सुदर्शनम् । प्रथमं पतितं यत्र तत्र तीर्थं ततोऽभवत् ॥ ॥ १५९ ॥ तत्र स्नानेन तेजस्वी सूर्यलोके महीयते । यदि प्राणैर्वियुज्येत ममलोके महीयते ॥ १६० ॥ भक्त संरक्षणार्थाय मया ज्ञप्तं सुदर्शनम् । यत्र यत्र भ्रमति तत्तत्र तत्राङ्किताः शिलाः ॥ १६१ ॥ एवं तद्वै भ्रमाऽऽक्षिप्तं सर्वञ्चक्रमयन्त्वभूत् ॥ ततः स पञ्चरात्राणि स्थित्वावैविधिपूर्वकम् ॥१६२॥ गोधनान्यग्रतः कृत्वा हरिक्षेत्रं जगामह ॥ हरिणाधिष्ठितं क्षेत्रं पूजनीयं ततः स्मृतम् ॥ १६३ ॥ यदा नन्दी शूलपाणिर्गोधनेन पुरस्कृतः । स्थितवाँस्तद्दिनादेतं ख्यातं हरिहरप्रभम् ॥ १६४ ॥ देवानामटनाच्चैव देवाट इति

(जड़ेश्वर,) रह गया है ॥ भक्ति पूर्वक जिसकी पूजा करने से मनुष्य को योग की सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ (अतएव अद्यापि राजा रहूगण का निवास स्थान, भरत जी की आश्रम भूमि, और त्रिजलेश्वर लिङ्ग ये सब स्पष्ट रूप से देखाई देते हैं और आधुनिक पहाड़ी लोग जलेश्वर जी को गलेश्वर भी कहते हैं)। हे सुभगे ! जिस समय में उस उत्तम शालग्राम क्षेत्र में आकर स्थित होता रहा। हे वसुधे! उस समय जलेश्वरजीने मुझको पहिचान कर मेरी स्तुति की ॥ १५८ ॥ तब मैंने भी भक्त पर कृपा रखते हुए आवेश में आकर सुदर्शन चक्र को फेंका, वह पहले जिस स्थान पर जा गिरा वहाँ पर एक तीर्थ उत्पन्न हो गया (उसे चक्र तीर्थ कहते हैं) ॥ १५९ ॥ उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य तेजस्वी होकर सूर्य लोक में पूजित होता है ॥ १६० ॥ मैंने अच्छी तरह से भक्तों की रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र को आज्ञा दे रक्खी है, जहाँ जहाँ पर वह जाकर घूमता है, वहाँ वहाँ पर की शिलाएँ चक्राङ्कित होती हैं ॥ १६१ ॥ इस प्रकार चक्र से टकरा गया स्थान सभी चक्रमय हो गया है। (इतनी कथा सुनाकर वराह जी ने फिर पृथ्वी से कहा कि हे पृथ्वी !) तब पाँच रात तक वहाँ पर विधिविधान के साथ ॥१६२॥ गोधन (गोष्ठ) को आगे बढ़ाकर (आमुष्यायण के साथ ही नन्दी देव) हरि क्षेत्र की ओर चले गये। क्योंकि उस पर भगवान् हरि ने निवास किया है अतएव वह क्षेत्र पूजनीय समझा गया है ॥ १६३ ॥ जिस समय से भगवान् शूलपाणि नन्दी देव ने गोधन को आगे बढ़ाते हुए जाकर उस स्थान में निवास किया था, उसी दिन हरिक्षेत्र का नाम हरिहर क्षेत्र हो गया ॥ १६४ ॥ उस

सञ्ज्ञितम ।। तस्य देवस्य महिमा केन वक्तुं हि शक्यते ।। १६५ ।। स शूलपाणिर्देवेशो भक्ताभयविधायकः ।। मुनिभिर्देव गन्धर्वैः सेव्यतेऽचिन्त्य शक्तिमान् ।। १६६ ।। तस्मिन् स्थानेमहादेवः सालङ्कायन कस्य हि । पुत्रत्वं नन्दिरूपेण प्राप्तः साक्षाच्छिवः प्रभुः ।। १६७ ।। स्वयञ्चैव महायोगी योग-सिद्धिविधायकः ।। अस्थितः परमं पीठं तीर्थे चैव त्रिधारके ।। १६८ ।। त्रिजटाभ्यो भवन्धारास्तिस्रो वै परमाद्भुताः ।। गङ्गा च यमुना चैव पुण्या चैव सरस्वती ।। १६९ ।। एतत्त्रैधारिकं तीर्थं त्रिजटाभ्यः समुत्थितम ।। यत्र शम्भुः स्थितः साक्षान्महायोगी महेश्वरः ।। १७० ।। शालग्रामाभिधे-क्षेत्रे हरिशीलन तत्परः ।। दिशञ्ज्ञानं स्वभक्तानां संसाराद्येन मुच्यते ।। १७१ ।। तीर्थे त्रिधारे यः स्नात्वा सन्तर्प्यपितृदेवताः । महायोगिनमभ्य-र्च्य न भूयो जन्मभाग्भवेत् ।। १७२ ।। तस्यैव पूर्वदिग्भागे हंसतीर्थं इति स्मृतम् ।। तत्रैकं कौतुकं वृत्तंतच्छृणुष्व महत्तरम ।। १७३ ।। कदाचि-

---

जगह पर देवता लोग जाकर अटन करते अर्थात् घूमते और फिरते रहे इसलिए उसका दूसरा नाम 'देवाट' भी रह गया है ॥ उन भगवान का वर्णन किससे किया जा सकता है ॥ १६५ ॥ वह वही शूलपाणि हैं जो भक्तों के अभय देने वाले देवदेव हैं ॥ मुनिजन, देवगण और गन्धर्व लोग से सेव्यमान, अचिन्तनीय शक्तिशाली ॥ १६६ ॥ साक्षात् शिव, प्रभु, महादेवजी उस स्थान पर सालङ्कायन जी के पुत्र होते हुए नन्दी रूप से विराजमान हुए हैं ॥ १६७ ॥ वह स्वयं महायोगी होकर भी दूसरे के योग सिद्धि कारक हैं और त्रिधारक तीर्थ में उत्तम आसन को जमाकर विराजमान हैं ॥ १६८ ॥ उन्हीं भगवान की तीन जटाओं से अत्यन्त आश्चर्यजनक तीन ही धाराएँ निकल गए थीं, जिनका नाम गङ्गा, यमुना और पवित्र सरस्वती है ॥ १६९ ॥ त्रिजटा से उत्पन्न इसका नाम त्रैधारिक तीर्थ है, जहाँ पर साक्षान्महायोगी शम्भु भगवान् महादेवजी विराजमान हैं ॥ १७० ॥ वह शालग्रामक्षेत्र में रहकर अपने भक्तों को ज्ञान दिलाते हुए हरिभगवान की परिचर्या में तत्पर रहते हैं, जिस ज्ञानबल से मनुष्य संसार से मुक्त होते हैं ॥ १७१ ॥ इसका महत्त्व बताते हैं कि—जो नर त्रिधारकतीर्थ में स्नानपूर्वक देवता और पितरों का तर्पण एवम् महायोगीश्वर भगवान की पूजा भी करता है वह फिर जन्म का भागी नहीं होता अर्थात् मुक्त ही हो जाता है ॥ १७२ ॥ उसी स्थान से पूर्व दिशा के तर्फ हंस नाम का तीर्थ है। वहाँ पर एक बड़ी अचम्भे की बात हुई है उसे भी सुनो ॥ १७३ ॥

च्छिवरात्र्यान्तु भक्तैः पूजामहोत्सवे ॥ नैवेद्यैर्विविधैः सृष्टैः पूजयित्वातु योगिनम् ॥ १७४ ॥ तत्र काकाः समुत्पेतुरन्ये तस्मिन्बुभुक्षिताः ॥ गृहीत्वान्नंतुतत्काकस्तेन चोड्डीय निर्गतः ॥ १७५ ॥ तद्गृहीतुं परः काकस्तेनायुध्यत चाम्बरे ॥ तावुभौ युद्ध्यमानौतु कुण्डे तस्मिन्निपेततुः ॥ १७६ ॥ तत्र हंसौ ततो भूत्वा निर्गतौचन्द्रवर्चसौ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं तत्र ये मिलिता जनाः ॥ १७७ ॥ हंसतीर्थं इति प्रोचुस्ततः प्रभृति सत्तमे ॥ ततः प्रभृति तत्तीर्थं हंसतीर्थं इति स्मृतम ॥ १७८ ॥ पूर्वं यक्षकृतं तत्तु यक्षतीर्थं इति स्मृतम् ॥ तत्र स्नातो नरः शुद्धोयक्षलोके महीयते ॥ १७९ ॥ अथात्र मुञ्चते प्राणाञ्च्छिवभक्तिपरायणः ॥ यक्षलोकमतिक्रम्यममलोकम्प्रपद्यते ॥ १८० ॥ एवम्प्रभावं तत्तीर्थं महायोगिप्रभावतः ॥ अहं शिवश्चलोकानामनुग्रहपरायणौ ॥ १८१ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं क्षेत्रं गुह्यं वसुन्धरे ! ॥ आरभ्य मुक्तिक्षेत्रन्तत्क्षेत्रं द्वादशयोजनम् ॥ १८२ ॥ शालग्रामस्वरूपेण

किसी समय में शिवरात्रि में भक्तजनों ने भगवान की पूजा का महोत्सव मनाया था, वे सब नाना प्रकार के नैवेद्यों की तैयारी से महायोगीश्वर भगवान की पूजा करते रहे ॥ १७४ ॥ उस स्थान पर कितने भूखे कौवे उड़ते हुए आये इतने में एक कौवे ने नैवेद्यान्न को उठा लेकर उड़ भागा ॥ १७५ ॥ उसे पकड़ कर छीनने के लिये दूसरा कौवा ऊपर आ झपटा, और आकाश में उससे इसकी बड़ी लड़ाई हुई, वे दोनों युद्ध करते करते उस जगह किसी कुण्ड में गिर पड़े ॥ १७६ ॥ वहाँ पर गिरते ही चन्द्रमा के नाई कान्तिमान हंस होकर वे दोनों काक वहाँ से निकल कर उड़ चले ॥ इस घटना को देखकर उस जगह पर जुटे हुए जितने मनुष्य थे उन्हें बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ॥ १७७ ॥ और हे कल्याणि ! तब से उन लोगों ने उसका नाम हंस तीर्थ रक्खा है ॥ अर्थात् उसका नाम तब से हंसतीर्थ ही रह गया है ॥ १७८ ॥ (उसी स्थान से निकला हुआ जल का जहाँ पर सङ्गम हुआ है उसे आधुनिक लोग काकवेणी कहते हैं) पहले उसका यक्ष ने निर्माण किया था अतएव यक्ष तीर्थ भी कहते हैं। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य शुद्ध हो जाता और यक्ष लोक में पूज्य होता है ॥ १७९ ॥ यदि इसी तीर्थ पर शिवजी पर भक्ति भाव रखते हुए प्राणों का त्याग करता हो तो यक्ष लोक से उछलकर मेरे लोक (वैकुण्ठ धाम) को प्राप्त हो जाता है ॥ १८० ॥ महायोगीश्वर के प्रभाव से उस तीर्थ का ऐसा महत्व है। हे देवि ! मैं और भगवान शिवजी दोनों ही लोगों पर अनुकम्पा के लिये उत्सुक रहते हैं ॥ १८१ ॥ हे वसुन्धरे ! ये सब मुक्तिक्षेत्र सम्बन्धी गुप्त बातें तुम्हें बताई गयी हैं मुक्तिक्षेत्र से लेकर यह शालग्राम क्षेत्र बारह योजन का है ॥

मया यत्र स्थितं स्वयम् ॥ स्वभक्तानां विशेषेण परमानन्द दायकम् ॥ १८३ ॥
गुह्यानां परमंगुह्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १८४ ॥

इति श्रीवाराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सोमेश्वरादिलिङ्गहरिहरमुक्तिक्षेत्रगण्डकी त्रिवेण्यादिमहिम निरूपणं समाप्तं शुभम् ॥

अथशालग्राम क्षेत्रमाहात्म्यम्

धरण्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश सालङ्कायनको मुनिः । किङ्कार तपः कुर्वंस्तव क्षेत्रे विमुक्तिदे ॥ १ ॥ श्रीवराह उवाच ॥ अथदीर्घेण कालेन स ऋषिः संशितव्रतः । तप्यमानो यथान्यायं परय्नवै सालमुत्तमम् ॥ २ ॥ अभिन्नमतुलच्छायं विशालं पुष्पितन्तथा । मनोज्ञश्चसुगन्धश्च देवानामपि दुर्लभम ॥ ३ ॥ ऋषिर्ज्ञानपरिश्रान्तः सालङ्कायनकोद्भुतम् । ददर्श च पुनः सालं शुभानां शुभदर्शनम ॥ ४॥ ततो दृष्ट्वामहासालं परिश्रान्तो महामुनिः । विश्रामं कुरुते तत्र द्रष्टुकामोऽथ मां मुनिः ॥ ५ ॥ सालस्य तस्य पूर्वेण

॥१८२॥ जहाँ पर शालग्राम रूप से स्वयं मैं बैठा हुआ हूँ ॥ वह क्षेत्र मेरे भक्तों के लिये परम आनन्ददायक है ॥ १८३ ॥ (हे देवि !) गुह्यों में से भी अति गुप्त बात मैंने तुम्हें सुना दी, फिर क्या सुनना चाहती हो ॥ १८४ ॥

वाराहपुराणान्तरगत मुक्तिक्षेत्रादिक पूर्वोक्त विषयों के महात्म्य का पं. भवानीशङ्कर कफल्टक शास्त्रिकृत हिन्दी भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

अब शालग्राम क्षेत्र-सम्बन्धी माहात्म्य की व्याख्या की जाती है ।

धरणी बोली कि हे देव देवेश, हे भगवन् ! आपके परमप्रिय मुक्तिदायक क्षेत्र में तप करते हुए सालङ्कायन मुनि ने फिर क्या किया ? ॥ १ ॥ श्री वराहजी कहने लगे कि तब प्रशंसनीय व्रतवाले उन मुनि ने विधिपूर्वक तपश्चर्या में रहते हुए बहुत समय के बाद एक उत्तम साल वृक्ष को देखा ॥ २ ॥ जो सघन अतुल छाया से युक्त, विशाल, फूलों से भरा, सुन्दर, सुगन्धवान और देवताओं का भी दुर्लभ था ॥ ३ ॥ ज्ञान याने तपश्चर्या से थके हुए वह सालङ्कायन महर्षि शुभों का भी शुभ दर्शन उस अद्भुत सालवृक्ष की फिर से निगरानी करने लगे ॥ ४ ॥ उस विशाल सालवृक्ष को देखने के बाद परिश्रान्त महामुनि ने मेरे भगवान् के दर्शन की इच्छा रखते उस वृक्ष पर विश्राम किया ॥ ५ ॥ वह मुनि

स्थित: पश्चान्मुखो मुनिः। मायया मम मूढात्मा शक्तो द्रष्टुं न मामभूत् ॥ ६ ॥ ततः पूर्वेण पार्श्वेन तस्य सालस्य सुन्दरि। वैशाखमासद्वादश्यां मद्दर्शनमुपागत: ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा मां तत्र स मुनिस्तपस्वी संशितव्रतः। तुष्टाव वैदिकैः सूक्तैः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ८ ॥ मत्तेजसा ताडिताक्षः शनैरुन्मील्य लोचने। यावत्पश्यति मां तत्र स्तुवन्स तपसान्वितः ॥ ९ ॥ वृक्षस्य दक्षिणे पार्श्वे गतस्तावदहन्धरे। पूर्वस्थानं परित्यज्य स ऋषिः संशितव्रतः ॥ १० ॥ स्थित्वा मत्प्रमुखे चैव स्तुवन्मेवं मम प्रियम्। ततोऽहंस्तूयमानो वै ऋग्वेदस्यैव ऋग्गतैः ॥ ११ ॥ स्तोत्रैः सम्पूज्यमानो हि गतोऽहं पश्चिमान्दिशम् ॥ ततः पश्चिमपार्श्वेतु स्थितस्तत्रैव माधवि ॥ १२ ॥ यजुर्वेदोक्तमन्त्रेण संस्तुतः पश्चिमां गतः। स्तुवतीत्थं मुनौ देवि गतोऽहञ्चोत्तरान्दिशम् ॥ १३ ॥ तत्रापि सामवेदोक्तैर्मन्त्रैस्तुष्टाव मां मुनिः। ततोऽहं स्तूयमानो वै ऋषिमुख्येन सुन्दरि ॥ १४ ॥ प्राप्तश्च परमास्प्रीतिं तमवोचमृषिं तदा ॥ साधुब्रह्मन्महाभाग सालङ्कायन सत्तम ॥ १५ ॥ तपसानेन

उस सालवृक्ष के पूर्व की ओर जा पश्चिम मुख होकर बैठ गये ॥ वह मेरी माया से मूढ़ हो गये थे इस वास्ते उस समय मेरे दर्शन को नहीं पा सके ॥ ६ ॥ तब वैशाख शुक्ल द्वादशी को उस सालवृक्ष के पूर्व भाग से उन्हें मेरा दर्शन मिला ॥ ७ ॥ वहाँ पर मुझे देखकर शंसित है व्रत जिनके ऐसे तपस्वी उन महर्षि ने मेरे दर्शन को पाकर बार बार नमस्कार करते हुए वैदिक सूक्तों से मेरा स्तुतिपाठ करना शुरू किया ॥ ८ ॥ मेरे तेज से उनके नेत्र बन्द हो गये थे, वह तपश्चर्या से सम्पन्न होकर स्तुतिपाठ करते हुए धीरे से नेत्रों को खोलकर ज्यों मुझे देखते हैं ॥ ९ ॥ हे पृथ्वी! त्यों हो मैं वृक्ष के दक्षिण भाग की ओर चला गया। वह योग व्रतधारी ऋषि भी पहले का स्थान छोड़कर—॥ १० ॥ मेरे संमुख ही में खड़े हो मेरी प्रियस्तुति का पाठ करने लगे। तब ऋग्वेदीय मन्त्रों और स्तोत्र पाठों से स्तुति किया जा रहा मैं भी ॥ ११ ॥ पूज्यमान होता हुआ फिर वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर चला ॥ हे माधवि, (पृथ्वी!) और मैं वहाँ जाकर भी बैठा रहा, वहाँ पर मुनि से यजुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा मेरी स्तुति की जाती रही, इतने में मैं उत्तर दिशा को चल दिया ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँ पर भी मुनिने साम मन्त्रों से पूर्ववत् मेरी स्तुति की, हे सुन्दरी! इस प्रकार ऋषि श्रेष्ठ से स्तुति किये जाने पर उस समय में परम प्रसन्न होते हुए मैंने उन ऋषि श्रेष्ठ से कहा कि हे ब्रह्मन् हे महाभाग हे श्रेष्ठ सालङ्कायन जी! धन्य है !! आपने ठीक किया है !!! ॥ १४ ॥ १५ ॥ आप के इस तप और इस स्तुति से

सन्तुष्टः स्तुत्या चैवानया तव । वरं वरय भद्रं ते संसिद्धस्तपसा भवान्
॥ १६ ॥ एवमुक्तः स तु मया सालङ्कायनको मुनिः । सालवृक्षं समाश्रित्य
निभृतेनान्तरात्मना ॥ १७ ॥ ततोमां भाषते देवि स ऋषिः संशितव्रतः ।
तवैवाराधनार्थाय तपस्तप्तंमयाहरे ॥ १८ ॥ पर्यटामि महीं सर्वां सशैलवन-
काननम् । इदानीं खलु दृष्टोऽसिचक्रपाणे महाप्रभो ॥ १९ ॥ यदितुष्टोऽसि
मे देव सर्वशान्तिकरः परः । यदि देयो वरो मह्यं तपसाराधितेन च
॥ २० ॥ तदा देहि जगन्नाथममेश्वरसमंसुतम् । एष एव वरो मह्यं दीयतां
मधुसूदन ॥ २१ ॥ एवं वरं याचितोऽस्मि मुनिना भीमकर्मणा ॥ पुत्रकामेन
विप्रेण दीर्घकालन्तपस्यता ॥ २२ ॥ एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणस्य
तपस्विनः । मधुरां गिरमादाय प्रत्यवोचमृषिम्प्रति ॥ २३ ॥ चिरकालं
व्रतस्थेन यत्त्वया चिन्तितं मुने । सकामस्तव सञ्जातः सिद्धोऽसि तपसा
भवान् ॥ २४ ॥ ईश्वरस्य परामूर्तिर्नाम्ना वै नन्दिकेश्वरः ॥ त्वद्दक्षिणाङ्गादु-
द्भूतः पुत्रस्तव मुनिश्वर ॥ २५ ॥ संहरस्व तपोब्रह्मञ्छान्तिं गच्छ महामुने ।

मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ ॥ अब आप तपोबल से सिद्ध बन गये, अब आप वर का वरण कीजिये, आपका कल्याण हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार मुझसे कहे जाने पर सालङ्कायन जी कुछ देर तक तो साल वृक्ष की आड़ को लेकर चुपचाप रह गये ॥१७॥ तब हे देवि ! वह पूज्य व्रत वाले मुनि मुझसे कहने लगे तो कहते क्या हैं कि हे भगवन् ! आप ही की आराधना के लिये मैंने तपका ताप उठाया हैं ॥ १८ ॥ मैं पर्वत, वन और जङ्गल के साथ सारी पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा हूं। हे चक्रपाणे ! हे महाप्रभो ! अब इस समय आपने दर्शन दिया है ॥ १९ ॥ हे देव ! यदि सर्व शान्ति के परमकर्ता आप मुझ पर प्रसन्न हों और मेरी तपश्चर्या से आराधित होकर मुझे वर देना चाहते हों तो ॥ २० ॥ हे जगन्नाथ ! मुझे यह वरदान दीजिये कि मेरा ईश्वर के समान पुत्र हो ॥ हे मधुसूदन मुझे यही वरदान दिया जावे ॥ २१ ॥

इस प्रकार पुत्र की कामना रखके दीर्घ काल के तपस्वी घोर कर्म वाले मुनि ने मुझसे प्रार्थना किया (मैं मांगा गया) ॥ २२ ॥ उन तपस्वी ब्राह्मण की ऐसी बात को सुन कर मधुर वाणी से मैंने उन्हे प्रत्युत्तर दिया कि ॥ २३ ॥ हे मुने ! चिर काल तक व्रत में रहकर आपने जो कामना कर रक्खी थी वह आज सफल हो गयी है क्यों कि आप तपस्या से सिद्ध हो गये हैं ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वर ! वह भगवान ईश्वर के दूसरे स्वरूप हैं जो आप के दक्षिणाङ्ग से उत्पन्न हो और आपके पुत्र बन कर नन्दिकेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ २५ ॥

अथ चैतस्य जातस्य कल्पा वै सप्तसप्त च ॥ २६ ॥ त्वं न जानासि विप्रर्षे सजातो नन्दिकेश्वरः । मायायोगबलोपेतो गोत्रजं स मया स्थितः ॥ २७ ॥ मथुरायाः समानीय आमुष्यायणसंज्ञितम् ॥ तव शिष्यं पुरस्कृत्य शूलपाणिरवस्थितः ॥ २८ ॥ तत्राश्रमे महाभाग स्थित्वा त्वं तपसान्निधे। पुत्रेण परमप्रीतो मत्क्षेत्रेऽस्मत्समो भव ॥ २९ ॥ अन्यच्च गुह्यं वक्ष्यामि सालङ्कायन तच्छृणु । तवप्रीत्या प्रवक्ष्यामि येनैतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३० ॥ शालग्राममितिख्यातं तन्निबोध मुने शुभम् । योऽयं वृक्षस्त्वया दृष्टः सोऽहमेवनसंशयः ॥ ३१ ॥ एतत्कोऽपि न जानाति विनादेवं महेश्वरम् । माययाऽहंनिगूढोऽस्मि त्वत्प्रसादात्प्रकाशितः ॥ ३२ ॥ एवन्तस्मै वरन्दत्त्वा सालङ्कायनकायवै ॥ ३३ ॥ पश्यतस्तस्य वसुधे तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् । वृक्षं दक्षिणतः कृत्वा जगामस्वाश्रमं मुनिः ॥ ३४ ॥ मम तत्रोचते स्थानं गिरिकूटशिलोच्चये । शालग्राम इति ख्यातं भक्तसंसारमोक्षणम् ॥ ३५ ॥ तत्र गुह्यानि

हे महामुने ! अब तप की समाप्ति कीजिये और हे मुने ! शान्ति को पा जाइये। देखिये उन नन्दीश्वर के प्रगट हुए चौदह कल्प तो बीत गये ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! वह कब हुए ? आप नहीं जानते हैं, वह माया, योग और बल से सम्पन्न होते हुए मेरे साथ स्थित रहे ॥ २७ ॥ वह आपके शिष्य आमुष्यायण जी को आगे करके मथुरा से गोकुल (गाष्ठ) को लाकर शूल धारण किये हुए (खास शङ्कर जी) अवस्थित हैं ॥ २८ ॥ हे महाभाग, तपोनिधे ! आप इस आश्रम में रहकर पुत्रद्वारा अत्यन्त प्रसन्न होते हुए मेरे क्षेत्र (शालग्राम पर्वत) में रहकर मेरे समान हो जाइये ॥ २९ ॥ हे सालङ्कायनजी ! मैं और भी एक गुह्य बात आपको सुनाता हूं सुनिये, आप के प्रेम से कहने को जा रहा हूँ क्यों कि यह क्षेत्र तो (अवर्णनीय) उत्तम क्षेत्र है ॥ ३० ॥ हे मुने ! इसको शुभ शालग्राम नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र जानना चाहिये और जो इस वृक्ष को आपने देखा है, वह मैं ही हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ विना शङ्कर जी के इस बात को कोई नहीं जान सकता है। क्योंकि मैं माया से छिपा रहता था पर भी इस समय आपकी कृपा से प्रगट हो गया हूं ॥ ३२ ॥ हे वसुधे ! इस प्रकार उन सालङ्कायन महर्षि के लिये वरदान देकर ॥ ३३ ॥ उनके देखते २ मैं छिप गया। मुनि ने भी वृक्ष की दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा करके अपने आश्रम तरफ का रास्ता पकड़ा ॥ पहाड़ और पहाड़ियों के शिखर पर का स्थान जो है वह मुझे खूब अच्छा लगता है ॥ ३४ ॥ वह भक्तजनों के सांसारिक जन्ममरणों का छुटाने वाला है और शालग्राम (क्षेत्र) नाम से प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

मे भूमे वक्ष्यमाणानि मे शृणु। वरन्तिमनुजायेभ्यो घोरं संसारसागरम् ॥ ३६ ॥ गुह्यानि तत्र वसुधे तीर्थानि दशपञ्च च। नाद्यापि किञ्चिज्जानन्ति मुच्यन्ते यैरिहस्थिताः ॥३७॥ तत्र विल्वप्रभं नाम गुह्यक्षेत्रंममप्रियम्। कुञ्जानि तत्र चत्वारि क्रोशमात्रेयशस्विनि ॥३८॥ हृद्यन्ततपरमंगुह्यं भक्तकर्मसुखावहम्। तत्र स्नानं तु कुर्वीत अहोरात्रोपितो नरः ॥ ३९ ॥ चतुर्णामश्वमेधानाम्फलंप्राप्नोतिमानवः! अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम कर्मसुनिश्चितः ॥ ४० ॥ अश्वमेधफलम्भुक्त्वा मम लोके समोदते! चक्रस्वामीति विख्यातं तस्मिन्क्षेत्रे परं मम ॥ ४१ ॥ चक्राङ्कितशिलास्तत्र दृश्यन्ते च इतस्ततः। चक्राङ्कितशिलायत्र वरवर्णिनि तिष्ठति ॥ ४२ ॥ तदेतद्विद्धि वसुधे समन्ताद्योजनत्रयम्। तत्र स्नानन्तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ४३ ॥ त्रयाणामपि यज्ञानां फलम्प्राप्नोति निश्चितम्। अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम कर्मपरायणः ॥ ४४ ॥ वाजपेयफलं भुक्त्वा मम लोकञ्च गच्छति। तत्र विष्णुपदंनामक्षेत्रं गुह्यं परं मम ॥ ४५ ॥ निस्रोधाराः पतन्त्यत्र हिमकूटं समा-

---

हे पृथिवि! अब उस स्थान की गुप्त चीजें बताई जाने वाली हैं तुम मेरी बात सुनो जिनकी सेवा से मनुष्य घोर संसार सागर से पार हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ हे वसुधे! वहाँ पर वास करके पन्द्रह गुप्त तीर्थ हैं, उन तीर्थों का उसी स्थान के निवासियों को भी आज तक कुछ पता नहीं है जिनसे वे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ वहाँ पर मेरा परम प्रिय विल्व-प्रभ नाम का गुप्त क्षेत्र है। हे यशोवति! उस क्षेत्र में एक कोश के भीतर चार बौछार (कुञ्ज) लगे हुए हैं वह अत्यन्त मनोहर गुप्त व भक्तजनों के कर्मों पर सुखदायक है। उस विल्व-प्रभ तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य अहोरात्र उपवास भी करता है ॥ ३९ ॥ वह चार अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। और यदि मेरे कर्मों में दत्तचित्त होकर प्राणों का त्याग करे तो वह अश्वमेध का फल भोग कर मेरे लोक (वैकुण्ठधाम) में आनन्द से रहता है॥ उसी क्षेत्र में मेरा दूसरा चक्र स्वामी नाम का उत्तम और प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ ४१ ॥ वहाँ पर इधर-उधर चारों ओर चक्र-चिन्हित शिलाएँ दीखती हैं। हे सुन्दर वर्ण वाली! जहाँ पर चक्राङ्कित शिला है उसका क्षेत्रफल चारों ओर से तीन योजन का जानो। उस तीर्थ में तीन रात उपवास रहकर जो स्नान करता है वह तीनों यज्ञ (अश्वमेध, अग्निष्टोम और वाजपेय) का फल निश्चय ही प्राप्त करता है, यदि कर्मिष्ट होकर, मुझपर प्रेम रखते हुए उस तीर्थ में प्राण त्याग करता हो तो ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वाजपेय का फल भोग करके मेरे लोक को प्राप्त होता है॥ वहाँ पर विष्णु पद नाम का भी मेरा गुप्त क्षेत्र है

श्रिता: । तत्र स्नानं तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ४६ ॥ त्रयाणामपि-रात्रीणां फलम्प्राप्नोति निष्कलम् । तथैव मुञ्चते प्राणान्मुक्तसंगो गतक्लमः ॥४७॥ अतिरात्रफलम्भुक्त्वा ममलोके महीयते । तत्र कालीह्रदं नाम गुह्य-क्षेत्रं परं मम ॥ ४८ ॥ अत्र चैव ह्रदस्रोतो बदरीवृक्षनिःसृतः । तत्र स्नानन्तु कुर्वीत षष्ठिकालोषितो नरः ॥ ४९ ॥ नरमेधस्य यज्ञस्य फलम्प्राप्नोति-मानवः । अथात्र मुञ्चते प्राणान्मुक्तरागो गतक्लमः ॥ ५० ॥ नरमेधफलं भुक्त्वा ममलोके च मोदते ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि महाश्चर्यं वसुन्धरे ॥ ५१ ॥ तत्र शङ्खप्रभं नाम गुह्यक्षेत्रम्परं मम । श्रूयते शंखशब्दश्च द्वादश्यामर्धरात्रके ॥ ५२ ॥ गदाकुण्डमितिख्यातं तस्मिन्क्षेत्रे परं मम ॥ यत्र वै कम्पते स्रोतोदक्षिणान्दिशमाश्रितम् ॥ ५३ ॥ तत्र स्नानन्तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितोनरः । वेदान्तगानां विप्राणां फलम्प्राप्नोति मानवः ॥ ५४ ॥ अथ वै मुञ्चते प्राणान्कृतकृत्यो गुणान्वितः । गदापाणिर्महाकायो मम लोक-म्प्रपद्यते ॥ ५५ ॥ पुनश्चाग्निप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम । धारापतति

॥ ४५ ॥ इसमें हिम शृङ्ग का आश्रय लेती हुई तीन धाराएँ बहती हैं । यदि मनुष्य त्रिरात्र उपवास रहकर उनमें स्नान करे तो त्रिरात्र के अशेष फल को प्राप्त करता है, एवम् मुक्त संग व खेद रहित होकर प्राणों का त्याग करे तो अतिरात्र सम्बन्धी फल भोग करके मेरे लोक में पूजित होता है । और उसके समीप में कालीहद नाम का मेरा गुह्य व उत्तम क्षेत्र भी है ॥४६॥४७॥४८॥ इस तलाऊ का स्रोत बेर के वृक्ष से निकला हुआ है । उसमें षष्ठिकाल (षष्ठि-दण्डात्मक काल अर्थात् अहोरात्र) उपवास रहते हुए जो नर स्नान करता है वह नरमेध यज्ञ सम्बन्धी फल को प्राप्त करता है, यदि इसी स्थान पर विषय वासना से रहित व गतक्लम होकर प्राणों को छोड़ देता हो तो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ नरमेध यज्ञ सम्बन्धी फल को भोग कर मेरे लोक (वैकुण्ठ) में सदा आमोद प्रमोद मनाए रहता है ॥ हे वसुन्धरे ! और भी तुम्हें बड़ी आश्चर्य की बात बताऊँगा ॥ ५१ ॥ वहाँ पर शंखप्रभनामक एक और गुप्त व श्रेष्ठ मेरा क्षेत्र है जिसमें द्वादशी तिथि की आधी रात को शङ्ख का शब्द सुनाई देता है ॥ ५२ ॥ उस उत्तम मेरे क्षेत्र में एक गदाकुण्ड नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है । जिसका स्रोत सदा दक्षिण दिशा की ओर काँपता रहता है ॥ ५३ ॥ वहाँ पर त्रिरात्र उपवास रहकर स्नान करने वाला मनुष्य उस फल को प्राप्त करता है जो वेदपाठी ब्राह्मणों को मिलता हो ॥ ५४ ॥ इतने में यदि प्राणों का भी त्याग करे तो वह कृतकृत्य गुणों से सम्पन्न गदापाणि और विशाल देह का होकर मेरे धाम को पहुँचता है ॥ ५५ ॥ फिर पूर्ववत् अग्निप्रभ नाम का मेरा गुप्त क्षेत्र है, उसमें पूर्व और

तत्रैका पूर्वोत्तरसमाश्रिता ॥ ५६ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं चतूरात्रोषितोनरः। अग्निष्टोमात्पञ्चगुणं फलम्प्राप्नोतिमानवः ॥ ५७ ॥ अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम कर्मसु निष्ठितः। अग्निष्टोमफलम्भुक्त्वा मम लोकम्प्रपद्यते ॥५८॥ तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया शृणु। हेमन्ते चोष्णकं तत्र ग्रीष्मे भवति शीतलम् ॥ ५९ ॥ गुह्यं सर्वायुधं नाम तत्र क्षेत्रे परं मम ॥ पतन्ति सप्तस्रोतांसि हिमवन्निःसृतानि वै ॥ ६० ॥ तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सप्तरात्रोषितोनरः ॥ राजा भवति सुश्रोणिसर्वायुधकलान्वितः ॥ ६१ ॥ अथ वै मुञ्चते प्राणान्मम कर्मविनिश्चितः। स भुक्त्वा राज्यभोज्यानि मम लोकञ्च गच्छति ॥ ६२ ॥ तत्र देवप्रभं नाम गुह्यक्षेत्रं परं मम। धाराः पञ्चमुखास्तत्र पतन्ति गिरिसंश्रिताः ॥ ६३ ॥ तत्र स्नानन्तु कुर्वीत त्वष्टकालोषितोनरः। चतुर्णामपि वेदानां याति पारं न संशयः ॥ ६४ ॥ अथात्र मुञ्चते प्राणाँल्लोभमोहविवर्जितः। वेदकर्म समुत्सृज्य ममलोके महीयते ॥ ६५ ॥ गुह्यं विद्याधरं नाम तत्रक्षेत्रं परं मम। पञ्चधाराः पतन्त्यत्र हिमकूटविनिःसृता ॥ ६६ ॥

उत्तर तरफ होकर एक धारा गिरी हुई है ॥ ५६ ॥ उसमें जो स्नान करते हुए चतूरात्र उपवास भी रहता है वह मनुष्य अग्निष्टोम से पाँच गुण अधिक फल को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥ इस स्थान में मुझ पर निष्ठा रखते हुए प्राण त्याग करे तो अग्निष्टोम का फल भोग करके मेरे धाम को चला जाता है ॥ ५८ ॥ हे महाभागे ! उस जगह पर क्या आश्चर्य है वह मुझसे कही जाती हुई बात सुनो ॥ उस स्थान पर का जल हेमन्त ऋतु (अगहन व पौष) में तो ऊष्ण और ग्रीष्म (ज्येष्ठ व आषाढ़) के दिनों में शीतल पाया जाता है ॥ ५९ ॥ उसी मेरे उत्तम क्षेत्र में और सर्वायुध नाम का गुप्त तीर्थ है। उस जगह पर हिमालय से निकल कर गिरे हुए सात झरने बहते हैं ॥ ६० ॥ वहां पर मनुष्य सप्तरात्र उपवास रहकर स्नान करे तो हे सुश्रोणि ! वह शस्त्र कलाओं से युक्त होता हुआ राजा हो जाता है ॥६१॥ यदि मेरे कर्म में दृढ़ रहकर प्राणों का त्याग करता हो तो वह राज्य सुख के भोगों को भोग कर मेरे लोक को जाता है ॥ ६२ ॥ उसी में मेरा देव प्रभ नामका गुप्त क्षेत्र भी है। वहाँ पर पर्वत से संश्रय लेकर पञ्चमुखी पाँच धाराएँ गिरी हैं ॥ ६३ ॥ उनमें स्नान करते हुए जो मनुष्य आठों प्रहर उपवास भी रहता है, वह चारों वेद का पारङ्गत हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ अब यदि इसी स्थान पर लोभ मोहादि से रहित होकर देहान्त भी हो जाता है तो, वेदाभ्यास को छोड़कर मेरे लोक में पूज्य हो जाता है ॥६५॥ उसमें विद्याधर नाम का और भी एक मेरा गुप्त क्षेत्र है। इस स्थान पर हिम शृङ्ग से निकली हुई पाँच धाराएँ गिरती हैं ॥ ६६ ॥ जो नर उनमें स्नान करता

यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोपितोनरः। याति वैद्याधरं लोकङ्कृतकृत्योन संशयः ॥६७॥ अथात्र मुञ्चते प्राणान्वीतरागो गतक्लमः। भुक्त्वा वैद्याधरान्भोगान्ममलोकं स गच्छति ॥ ६८ ॥ तत्र पुण्यनदी नाम गुह्यक्षेत्रे परे मम। शिलाकुञ्जलताकीर्णा गन्धर्वाप्सरसेविता ॥ ६९ ॥ तत्र स्नानन्तु कुर्वीत अष्टरात्रोपितो नरः। सप्तद्वीपेपु भ्रमति स्वच्छन्दगमनालयः ॥७०॥ अथात्र मुञ्चते प्राणान्ममकर्मानुसारकः। सप्तद्वीपान्समुत्सृज्य मम लोकं स गच्छति ॥ ७१ ॥ गन्धर्वेति च विख्यातं तस्मिन्क्षेत्रं परं मम। एक धारा पतत्यत्र पश्चिमां दिशमाश्रिता ॥ ७२ ॥ तत्र स्नानं तु कुर्वीत चतूरात्रोपितोनरः ॥ मोदते लोकपालेपु स्वच्छन्दगमनालयः ॥ ७३ ॥ अथात्र मुञ्चते प्राणान्मम कर्मपरायणः। लोकपालान्परित्यज्य मम लोकं स गच्छति ॥ ७४ ॥ तत्र देवह्रदं नाम मम क्षेत्रं वसुन्धरे। यत्र कान्तासि मे भूमेर्बलेर्यज्ञविनाशनात् ॥ ७५ ॥ स ह्रदो वरदः श्रेष्ठो मनोज्ञः सुखशीतलः। अगाधः सौख्यदश्चापि देवानामपिदुर्लभः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्ह्रदे महाभागे

है और एक रात उपवास भी रहता है वह कृतकृत्य होकर विद्याधर सम्बन्धी लोक को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥६७॥ यदि इसी स्थानपर गतश्रम एवम् वैरागी होकर शरीर को छोड़ देता हो तो विद्याधर संबंधी भोगों को भोगकर मेरे धाम को चला जाता है ॥ ६८ ॥ उस मेरे गुप्त क्षेत्र में एक पुण्या नाम की नदी है वह, अनेकों पत्थर, कुञ्ज (बौछार) और लताओं से घेरी हुई और गन्धर्व व अप्सराओं से सेवित है ॥ ६९ ॥ वहाँ पर अष्टरात्र उपवास रहकर जो नर स्नान करता है वह स्वच्छन्द गामी बनकर सातों द्वीपों में घूमता है ॥ ७० ॥ जो मेरे कर्मों के अनुसार चलने वाला मनुष्य इसी जगह पर प्राणों को छोड़ देता है वह सप्तद्वीप के पर्यटन को छोड़कर मेरे लोक पर चला जाता है ॥ ७१ ॥ उसी मेरे सुन्दर क्षेत्र में गन्धर्व नामकी एक नदी है, उसमें पश्चिम तर्फ होकर एक धारा गिरती है। उस पर चतूरात्र उपवास रहकर जो नर स्नान करता है वह सभी इन्द्रादि लोकपालों के पास स्वेच्छाचारी व गृहवान होकर आनन्द से रहता है ॥ ७३ ॥ इसके उपरान्त यदि मेरे कर्म में तत्पर रहते हुए प्राणों को भी छोड़ता हो तो वह लोकपालों को भी छोड़कर मेरे लोक को चला जाता है ॥७४॥ हे पृथ्वि! उसी मेरे क्षेत्र में देवह्रद नाम का एक तालाब है। हे भूमे ! जहांपर रह कर बलिराजा के यज्ञध्वंस के करने से तुम मेरी प्यारी बन गई हो ॥ ७५ ॥ वह ह्रद वरदायक, श्रेष्ठ, सुन्दर, सुखशीतल, अगाध, सुखदायी और देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ७६ ॥ हे महाभागे!

सम वै नियमोदके। मत्स्याश्चक्राङ्किताश्चैव पर्यटन्ते इतस्ततः ॥ ७७ ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे। महाश्चर्यं विशालाक्षि यत्र तत्परिवर्त्तते ॥ ७८ ॥ [1]पश्येति श्रद्दधानस्तु नपश्येत्पापपूरुषः। तस्मिन्देवह्रदे पुण्ये चतुर्विंशतिद्वादश ॥ ७९ ॥ सौवर्णानि च पद्मानि दृश्यन्ते भास्करोदये। तावत्पश्यन्तिभूतानि यावन्मध्यदिनम्भवेत् ॥ ८० ॥ यत्र स्नाता दिवं यान्ति शुद्धावाक्कायजैर्मलैः। तत्रस्नानस्प्रकुर्वीत दशरात्रोपितो नरः ॥ ८१ ॥ दशानामश्वमेधानां प्राप्नोत्यविकलस्फलम्। अथात्र मुञ्चते प्राणान्ममचिन्ताव्यवस्थितः ॥ ८२ ॥ अश्वमेधफलम्भुक्त्वा भूमे मत्समतां व्रजेत् ॥ अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं गुह्यं परं मम ॥ ८३ ॥ सम्भेदो देवनद्योस्तु समस्त सुखवल्लभः ॥ दिवोऽवतीर्य तिष्ठन्ति देवा यत्र सहप्रियाः ॥ ८४ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव नागकन्या सहोरगैः ॥ देवर्षयश्च मुनयः समस्त सुरनायकाः ॥ ८५ ॥ सिद्धाश्च किन्नराश्चैव स्वर्गादवतरन्ति हि ॥

उस तालाब पर मेरा जो व्रतोदक है उसमें इधर उधर घूमती हुई मछलियाँ चक्र से चिह्नित पायी जाती हैं ॥ ७७ ॥ और भी तुम्हें बताता हूँ, हे वसुन्धरे! उसे सुनो ॥ हे विशालाक्षि! यह बड़ी आश्चर्य की बात है। जहाँ पर जो ठीक उलटे दीखती है ॥ ७८ ॥ अर्थात् श्रद्धालु मनुष्य तो उनको देख सकता और श्रद्धारहित पापी मनुष्य नहीं देख पाता है। वे क्या हैं?—उस पुण्यदायक देवहृद में सूर्योदय के समयपर चौवीस और बारह अर्थात् छत्तीसठे (मतान्तर से २८८) सोने के खिले हुए कमल देखाई देते हैं। उनको श्रद्धालुजीव तब तक देखते हैं जबतक दोपहर का समय न हो ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिसमें स्नान करने वाले वचन और शरीर सम्बन्धी मैलों से शुद्ध होकर स्वर्ग लोक को चले जाते हैं। उसी में दसरात तक उपवास रहकर जो नर स्नान करता है ॥ ८१ ॥ वह दश अश्वमेध के फल को सम्पूर्ण पा जाता है ॥ यदि इस उत्तम क्षेत्र में मेरे ध्यान में स्थित रहकर देह को छोड़ देता हो तो हे भूमे! वह पूर्वोक्त अश्वमेध सम्बन्धी फल को भोग करके मेरे समान स्वरूप का हो जाता है ॥ और भी मेरा जो गुप्त क्षेत्र है उसका तुमसे वर्णन करूँगा ॥ ८३ ॥ हे पृथ्वि! दोनों देवनदियों का जो सङ्गम स्थान है वह समस्त देवताओं का प्रिय है। जहाँ पर अपनी २ पत्नियों के साथ देवता लोग स्वर्ग से उतर कर निवास करते हैं ॥ ८४ ॥ गन्धर्व लोग, अप्सराएँ, सर्पों के सहित नागकन्याएँ, नारदादि देवर्षिगण, वसिष्ठादि मुनिजन और इन्द्रादि समस्त देवताओं के नायक ॥ ८५ ॥ वे सब और सिद्धवर्ग व किन्नर लोग प्रभृति स्वर्ग से अवतार लेकर चले आते

---

१. आर्ष

नेपाले यच्छिवस्थानं समस्तसुरवल्लभम् ॥ ८६ ॥ तेभ्यतेभ्यश्चस्थानेभ्यस्तीर्थेभ्यश्च विशेषतः ॥ महादेवजटाजूटान्नीलकण्ठाच्छिवालयः ॥ ८७ ॥ श्वेतगङ्गेति या प्रोक्ता तया सम्भूय सादरम् ॥ नाना नद्यः समायाता दृश्याऽदृश्यतया स्थिताः ॥ ८८ ॥ गण्डक्या कृष्णया चैव या कृष्णस्य तनूद्भवा ॥ तया सम्भेदमापन्ना या सा शिवतनूद्भवा ॥ ८९ ॥ त्रिशूलैं गङ्गेत्याख्याता सापि तत्र महानदी ॥ एवं नदीसमुद्भेदः सर्वतीर्थकदम्बकम् ॥ ९० ॥ ममक्षेत्रे समाख्यातं पुण्यं परमपावनम् । वसुधे त्वं विजानीहि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ९१ ॥ यच्च सिद्धाश्रम इति विख्यातः पुण्यवर्द्धनः ॥ शम्भोस्तपोवनं तत्र सर्वाश्रमवरम्प्रति ॥ ९२ ॥ नानापुष्पफलोपेतङ्कदलीदण्डमण्डितम् ॥ निचुलैश्चैव पुन्नागैः केसरैश्च विराजितम् ॥ ९३ ॥ खर्ज्जूराशोकवकुलैश्चूतैश्चैवप्रियालकैः ॥ नारिकेलैश्चपूगैश्च चम्पकैर्जम्बुभिर्धवैः ॥ ९४ ॥ नारङ्गैर्वदरीभिश्च जम्बीरैर्मातुलुङ्गकैः ॥ केतकीमल्लिकाजातीयूथिका राजिराजितम् ॥९५॥ कुन्दैः कुरवकैर्नागैः कुटजैर्दाडिमैरपि ॥

हैं इसमें निश्चय जानो। नेपाल में जो शङ्कर जी का स्थान है वह समस्त देवताओं का प्रिय है ॥ ८६ ॥ उन उन स्थान और उन उन तीर्थों से विशेषतः शिवालय प्रसिद्ध है। जैसे महादेवजीके जटाजट से नीलकण्ठ (गोसाइं कुण्ड) इत्यादि॥८७॥ उक्त स्थान से निकली हुई जो श्वेत गङ्गा कही गयी है उससे आदर के साथ मिलकर नाना नदियाँ वह आई हैं उनमें से कितनी तो दृश्य और कितनी अदृश्य रहती हैं ॥ ८८ ॥ गण्डकी (श्वेता) कृष्णा गण्डकी जो भगवान कृष्ण चन्द्र के शरीर से उत्पन्न हुई है वह और जो शङ्कर जी के शरीर से उत्पन्न होकर चली आई है वह वे तीनो नदियाँ मिलकर एक त्रिशूलगङ्गा नाम से प्रसिद्ध महानदी बनी हुई है वह भी उसी स्थान पर है।। इस प्रकार सभी नदियों का सङ्गम, सभी पुण्य तीर्थों के समूह ॥ ८९ ॥ ९० ॥ और परमपवित्र पुण्यदायक मेरे क्षेत्र का रहस्य वर्णन किया गया है ॥ हे पृथ्वि ! तुम जानो कि पूर्वोक्त तीर्थ स्थान तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं ॥ ९१ ॥ जो पुण्यवर्द्धक प्रसिद्ध सिद्धाश्रम है यहाँ पर सभी आश्रमों की अपेक्षा श्रेष्ठ, भगवान शिवजी का तपोवन है ॥ ९२ ॥ वह अनेकों फूले फले वृक्षों से युक्त है, केले के खम्भों से सुशोभित है, एवम् निचुल (बेंत वा समुद्रफल) नागकेशर, केसर ॥ ९३ ॥ खजूर, अशोक, बकुल, आम, चिरौंजी, नारियल, सुपाड़ी, चम्पक, जामुन, धव ॥ ९४ ॥ सन्तरे, बेर, जम्बीर (निबुआ), बिजौरे, केतकी, चमेली, जाई, जूही ॥ ९५ ॥ कुन्द पुष्प, कुरवक (रक्तझिण्टी वा श्वेत मन्दार) नागवृक्ष (थूहर)

आगत्य यत्र क्रीडन्ति देवानां मिथुनानि च ॥ ९६ ॥ तस्मिन्ह्रदे महापुण्ये पुण्यनद्योस्तु संगमे ॥ स्नानाच्छताश्वमेधानां फलम्प्राप्नोति मानवः ॥ ९७ ॥ स्नात्वा तत्र तु वैशाखे गोसहस्रफलम्भवेत् ॥ माघमासे पुनःस्नात्वा प्रयागस्नानजम्फलम् ॥९८॥ कार्त्तिकेमासि यः स्नाति तुलासंस्थे दिवाकरे॥ विधिना नियतः सोऽपि मुक्तिभागी न संशयः ॥ ९९ ॥ यस्त्रिरात्रमुषित्वा तु नियते नियताशनः ॥ राजसूयफलम्प्राप्य मोदते देववद्दिवि ॥ १०० ॥ यज्ञस्तपोऽथवा दानं श्राद्धमिष्टस्यपूजनम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियते कर्म तदनन्तफलम्भवेत् ॥ १०१ ॥ भूमे तस्यापराधांश्च सर्वानेवक्षमाम्यहम् ॥ गङ्गायमुनयोर्यद्वत्संगमोमर्त्यदुर्लभः ॥ १०२ ॥ तथैवायं देवनद्योः संगमः समुदाहृतः ॥ एतद्गुह्यं परन्देवि ममक्षेत्रे वसुन्धरे ॥ १०३ ॥ अहमस्मिन्महाक्षेत्रे धरे पूर्वमुखस्थितः॥ शालग्रामे महाक्षेत्रे भूमे भागवतप्रियः १०४

कूटज (इन्द्रजववृक्ष) दाडिम (अनार) इत्यादि फलपुष्पशाली लताएँ पौधे और वृक्षों से विराजित अत्यन्त मनोहर स्थान है जिस पर देवता लोग अपनी २ देवियों के साथ आकर आनन्द से विहार करते हैं ॥ ९६ ॥ वहाँ पर महापुण्यदायक दोनों देवनदियों के सङ्गम से बने हुए ह्रद में स्नान करने से मनुष्य को एक सौ अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ ९७ ॥ यदि मनुष्य उसमें वैशाख मास में स्नान करता हो तो हजार गायों के दान का पुण्य लाभ करता है। फिर यदि माघ मास में स्नान करे तो प्रयाग (त्रिवेणी) स्नान समान फल को प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥ जो मनुष्य भगवान सूर्यनारायण के तुलाराशिमें रहते अर्थात् भर कार्तिक मास को संयमी होकर विधिपूर्वक स्नान करता है वह भी मुक्त होने वाला है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ९९ ॥ जो नियत कर्म में नियताशी (अविरुद्धभोजी) होकर त्रिरात्र उपवास भी रहता है वह राजसूय यज्ञ सम्बन्धी फल को भोग करके देवताओं की तरह स्वर्ग में रमता है। ॥ १०० ॥ उस स्थान में यज्ञ, तप, दान, श्राद्ध अथवा अपने इष्टदेव की पूजा इत्यादि जो कुछ कर्म करता है वह अनन्त फलदायक होता है ॥ १०१ ॥ हे पृथ्वि ! मैं उसके सभी अपराधों को क्षमा करता हूँ ॥ जैसे गङ्गा और यमुना का सङ्गम मनुष्यों को दुर्लभ है ॥ १०२ ॥ वैसेही इन दोनों देवनदियों का सङ्गम भी माना गया है, हे देवि वसुन्धरे ! मेरे क्षेत्र पर की यह बात अत्यन्त गोपनीय है ॥ १०३ ॥ हे धरे ! इस शालग्रामनामक महाविशाल क्षेत्र में मैं पूर्वमुख होकर रहता हूँ। क्योंकि हे भूमे ! मैं भगवद्भक्तों का प्रिय हूँ ॥ १०४ ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ॥ अन्तर्गुह्यं परं श्रेष्ठं यन्न जानन्ति मोहिताः ॥ १०५ ॥ शिवो मे दक्षिणस्थाने तिष्ठन्वै विगतज्वरः ॥ लोकानाम्प्रवरः श्रेष्ठः सर्वलोकवरोहरः ॥ १०६ ॥ तं ये विन्दन्ति ते देवि नूनं मामेव विन्दते॥ ये मां विन्दन्ति देवेशि ते विन्दन्ति शिवम्परम् ॥१०७॥ अहं यत्र शिवस्तत्र शिवो यत्र वसुन्धरे ॥ तत्राहमपि तिष्ठामि आवयोर्नान्तरं क्वचित् ॥ १०८॥ शिवं यो वन्दते भूमे सहि मामेव वन्दते ॥ लभते पुष्कलां सिद्धिमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥१०९॥ एवमतन्महाभागे क्षेत्रं हरिहरात्मकम् ॥ मृताये5त्र गतिं यान्ति मम कर्मानुसारिणः ॥ ११० ॥ मुक्तिक्षेत्रं प्रथमतोरुरुखण्डन्ततः परम् ॥ सम्भेदो देवनद्योश्च त्रिवेणी च ततः परम् ॥ १११ ॥ क्षेत्रं प्रमाणं विज्ञेयं गण्डकीसङ्गतं परम् ॥ एवं सा गण्डकी देवि नदीनामुत्तमा नदी ॥ ११२ ॥ गङ्गायामिलिता यत्र भार्गीरथ्यामहाफला ॥ अपरन्तन्महत्क्षेत्रं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम् ॥ ११३ ॥

हे पृथ्वि ! और भी मैं तुम्हें बतलाऊँगा उसे सुनो । जो कि लोग मायामोह से वशीभूत होकर असली सर्वोत्तम भीतर से छिपी हुई गुप्त वस्तु को तो जानते ही नहीं हैं ॥ १०५ ॥ वह यह है—मेरे दक्षिण स्थान में आधिव्याधि से रहित होकर सर्व लोकोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, सब लोगों के वरदायक भगवान हरदेव शिवजी विराजमान हैं ॥१०६॥ हे देवेशि ! जो लोग उन्हें प्राप्त करते हैं वा जानते हैं वे खास मुझे प्राप्त करते हैं ॥ और जो मुझे प्राप्त करते हैं वे सर्वोत्तम शङ्करजी को ही प्राप्त करते हैं ॥ १०७ ॥ हे वसुन्धरे ! मैं जहाँ पर हूँ वहाँपर भगवान शङ्कर देव भी हैं और जहाँ पर वह हैं वहाँ पर मैं भी रहता हूँ । हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ १०८ ॥ हे भूमे ! जो शिवजी की स्तुति व प्रणाम करता है वह मेरा ही करता है । जो इस बात को तत्त्व पूर्वक जानता है वह सर्वोत्तम सिद्ध हो जाता है ॥१०९॥ हे महाभागे ! इस तरह यह क्षेत्र हरिहरक्षेत्र है । इस क्षेत्र पर मरे हुए मेरे भक्त लोगों को उत्तम गति मिल जाती है ॥११०॥

अब उपसंहार की इच्छा रखते हुए उपरोक्त बातों का अवतरणिका कहते हैं, सबसे पहला मुक्ति क्षेत्र है, उसके पीछे रुरुखण्ड (रीढ़ी) पड़ता है, उसके बाद दो देवनदियों का सङ्गम स्थान है, उसके पश्चात् त्रिवेणी (गन्डकी) आती है, इस क्षेत्र का प्रमाण गण्डकी का सङ्गम स्थान तक ही (परमोत्तम) जानना चाहिये ॥ इस प्रकार हे देवि ! गण्डकी सब नदियों में से उत्तम नदी है ॥ ११२ ॥ जहाँ पर भागीरथी गङ्गा से मिली है वहाँ पर (पूर्वोक्त फलों की अपेक्षा) महाफल दायक है ॥ दूसरा वह जो विख्यात क्षेत्र है वह हरिहरक्षेत्र

आदौ सा गण्डकी पुण्या भागीरथ्या च संगता ॥ तस्य तीर्थस्य महिमा ज्ञायते न सुरैरपि ॥ ११४ ॥ एतत्ते कथितम्भद्रे शालग्रामस्य सुन्दरि ॥ गण्डक्याश्चैव माहात्म्यं सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ११५ ॥ पूर्वपृष्टन्तया यच्च पुण्यंभागवतप्रियम् ॥ आख्यानानां महाख्यानं द्युतीनां परमाद्युतिः ॥११६॥ पुण्यानां परमं पुण्यं तपसाञ्च महत्तपः ॥ गुह्यानां परमङ्गुह्यं गतीनाम्परमागतिः ॥ ११७ ॥ महालाभस्तु लाभानां नास्त्यस्मादपरंमहत् ॥ पिशुनाय न दातव्यं न शठाय गुरुद्रुहे ॥ ११८ ॥ ये च पापा कृतघ्नाश्च द्विजदेवापराधिनः ॥ कुशिष्याय न दातव्यं न दद्याच्छास्त्रदूषके ॥ ११९ ॥ नीचाय नच दातव्यं येन जानन्ति सेवितुम् ॥ सुशिष्याय च दातव्यं धीराय शुभवुद्धये ॥ १२० ॥ लोभमोहमदाद्यैर्ये वर्जिताः पुण्यवुद्धयः ॥ य एतत्पठते नित्यङ्कल्पमुत्थाय मानवः ॥ १२१ ॥ कुलानि तारितान्येवं सप्त सप्त च सप्त च ॥ एवं मरणकालेतु न कदाचिद्विमुह्यते ॥ १२२ ॥ यदीच्छेत्परमां

कहा जाता है ॥११३॥ अर्थात् पहली बात तो यह है कि गण्डकी नदी ही कितनी पुण्यदायक है फिर दूसरी खास भागीरथीगङ्गा से भी मिली हुई है, फिर उसका क्या वर्णन हो सकता है। उस तीर्थ की महिमा वो देवताओं से भी नहीं कही जा सकती है ॥ ११४ ॥ हे कल्याणि ! हे सुन्दरि ! यह सभी पापों का ध्वंस करने वाला शालग्राम क्षेत्र और गण्डकी नदी का माहात्म्य तुमसे कहा गया है ॥११५॥ जिसे तुमने पहले से पूछ रक्खा था, यह पुण्यदायक भगवद्भक्तों का प्रिय है ॥ आख्यातों का राजा है, प्रकाशों का परम प्रकाश है ॥ ११६ ॥ गुप्त बातों में से परम गुप्त है, गतियों में श्रेष्ठ गति है ॥ ११७ ॥ और लाभों में से महालाभ भी है ॥ इससे वड़ा दूसरा कोई माहात्म्य नहीं है। इसे धोकेबाज (दुर्जन) को शठ (लण्ठ) को गुरुद्रोही को नहीं देना (सुनाना) चाहिये ॥ ११८ ॥ और जितने पापी हैं कृतघ्न (उपकार के बदले. बलवा करने वाले) हैं, ब्राह्मण व देवता के विरोधी [अपराधी] हैं, इन सब को और दुष्ट शिष्य को, शास्त्र पर दोषारोपण करने वाले को ॥ ११९ ॥. एवम् नीच व्यक्ति को भी नहीं देना चाहिये और जो गुरु देवता, तीर्थ इत्यादि, की सेवा को नहीं जानते हैं उन्हें भी। अव किसे इस ज्ञान को देना चाहिये इस पर कहते हैं कि—सुशिष्य को, धीर पुरुष को, अच्छी धारणा वालों को और ॥ १२० ॥ जो लोभ, मोह, गर्व इत्यादि से रहित हैं और जो पवित्र वुद्धि के हैं इन सबको देना चाहिये। जो मनुष्य प्रातःकाल में उठकर इस माहात्म्य का पाठ करता है ॥ १२१ ॥ उसने जानो कि अपने इक्कीस (अर्थात् मातृ कुल ७, पितृ कुल ७ एवम् सम्बन्धी के सात) कुलों का तारण कर लिया है ॥ इस प्रकार से वह मरते समय में भी कभी बेहोश नहीं हो सकता है याने हरिस्मरण करते हुए सचेत रह कर प्राणों को छोड़ देता है

दामोदर कुण्ड

सिद्धिं मम लोकं स गच्छति ॥ क्षेत्रस्य शालग्रामस्य माहात्म्यं परमं मया ॥ १२३ ॥ कथितं ते महादेवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १२४ ॥

इतिश्रीवाराहपुराणे भगवच्छास्त्रे शालग्रामक्षेत्रमाहात्म्यं शुभम्

अथ मतान्तरेण दामोदरादितीर्थवर्णनं तत्रैव।

तदुक्तं वाराहपरिशिष्टे।

॥ धरोवाच ॥

श्रुताः सन्ति मया देव ह्रदा दामोदरादयः ॥ उद्देशमात्रतस्तस्मिंस्तवक्षेत्रे विमुक्तिदे ॥ १ ॥ कुत्र ते किंफलाः पुण्या निर्मिताः केन हेतुना ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोराजीवलोचन ॥ २ ॥ वराह उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ सर्वलोक हितार्थाय सर्वं सर्वंसहे-शृणु ॥ ३ ॥ ममैतस्मिन्महाक्षेत्रे ह्रदानन्यान्विदाङ्कुरु ॥ पश्चिमोत्तरतस्तत्र गण्डक्या हिमसन्निधौ ॥ ४ ॥ यत्रैव राजते रम्यो ह्रदोदामोदराभिधः ॥

॥ १२२ ॥ यदि उत्तम सिद्धि को चाहता हो अर्थात भौतिक सिद्धि पर निष्काम होकर उक्त कर्म करता हो तो मेरे लोक (वैकुण्ठधाम) को ही चला जाता है ॥ हे देवि ! उक्त प्रकार से मैंने तुमसे शालग्रामादिक क्षेत्र सम्बन्धी उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया है, अब कहो कि और क्या सुनना चाहती हो ? ॥ १२३ ॥ भगवच्छास्त्रीय वाराहपुराणान्तरगत शालग्राम क्षेत्रादिक सम्बन्धी माहात्म्य वर्णन का भवानी शङ्करशास्त्रि कफलडू कृत हिन्दी भाषानुवाद समाप्त हुआ।

॥ श्री गणेशायनमः ॥ पृथिवी बोली कि हे देव ! मैंने आपके उस मुक्ति दायक (शालग्राम) क्षेत्र में नाम मात्र से दामोदर इत्यादि हद (तालाब) भी सुन रखे हैं ॥ १ ॥ वे कहाँ हैं, क्या पुण्य फलदायक हैं और किस वास्ते किससे बनाये गये हैं ? ॥ २ ॥ हे कमल लोचन ! वह सब मेरी आपसे सुनने की इच्छा है ॥ २ ॥ इस तरह पृथ्वी के प्रश्न को सुनकर श्री भगवान वराहजी कहने लगे ॥ हे सर्वंसहे ! (सब कुछ सहन करनेवाली, पृथिवी !) मैं सब लोक के हित के लिए इस बात को कहूँगा जिसे तुम मुझसे पूछ रही हो, सुनो ॥ ३ ॥ सो मेरे उस (शालग्राम नामक) विशाल क्षेत्र में हिमालय के निकट गण्डकी से पश्चिम और उत्तर के अन्तर में और कई हद हैं उनको भी समझो ॥ ४ ॥ जहाँ पर दामोदर नाम का तालाव है उसी के पास में श्वेत

कुण्डं श्वेतं च रक्तञ्च तत्सान्निध्यं व्यवस्थिते ॥ ५ ॥ शैत्यदैन्यादयो दोषा गच्छतां तत्र काद्यपि ! ॥ तावत्पञ्चजनानां स्युर्यावन्मज्जन्ति नैव ते ॥६॥ तत्रावगाहनान्मर्त्यो दिव्यसंस्कारमाप्नुयात् ॥ अत्रोदाहरणं ज्ञेयौ स्वर्गतौ यमलार्जुनौ ॥ ७ ॥ कुबेरस्य सुतावास्तां पुरा तौ नलकूबरौ ॥ श्रीमदान्धौ वयःस्थौ च सुन्दरौ स्वैरचारिणौ ॥ ८ ॥ कदाचिदथ तौ शापाद्यथेच्छं क्रीडतः पुरा ॥ स्थावरत्वमुपायातौ स्वीयेन स्तब्धकर्मणा ॥ ९ ॥ ततोऽनुशोच्य शापान्तं श्रुतवन्तौ यतस्ततः । प्रतीक्षमाणौ कृष्णस्यावतारं वृक्षरूपिणौ ॥ १० ॥ नन्दगोपगृहात्पूर्वं गोकुलं तावधिष्ठितौ ॥ शीतोष्णसुखदुःखानां सहनावचलौ यतः ॥ ११ ॥ गते बहुतिथे काले तयोरेवं हि तस्थुषोः ॥ जगत्यां भारहाराय कृष्णः प्रादुर्बभूव ह ॥ १२ ॥ देवक्यां वसुदेवात्तु जातमात्रोऽपि बालकः ॥ माथुराद्गोकुलं नीतः स्थितस्तत्रैव हेतुना ॥ १३ ॥ लालितो नन्दगोपेन सह सामान्यबालवत् ॥ जनन्या स्तन्यदानेन मायायाश्च यशोदया ॥ १४ ॥ अथैकदा तया कृष्णो गृह-

---

और रक्तकुण्ड भी हैं ॥ ५ ॥ हे पृथिवी ! उस स्थान पर चलनेवाले मनुष्यों को शीत और दैन्य सम्बन्धी पीड़ाएँ तब तक होती हैं जब तक कि वे वहाँ पर पहुँचकर गोता नहीं लगा पाते हैं ॥ ६ ॥ उन तीर्थों में गोता लगाने से मनुष्य को दिव्य संस्कार प्राप्त होता है । इस पर दृष्टान्त स्वर्गतिको प्राप्त किये हुए यमलार्जुन हैं ॥ ७ ॥ इनकी कथा यह है कि पूर्व समय में श्री कुवेरजी के नल और कूबर नाम के दो पुत्र रहे, वे ऐश्वर्य से उन्मत्त, नवजवान, सुन्दर और स्वच्छन्दचारी भी थे, ॥ ८ ॥ वे औरतों के साथ मनमाने मजा भी उड़ाया करते थे, इतने में अपने खोटे कर्म के द्वारा इन्हें कभी मुनि के शाप से स्थावर की योनि मिली ॥ ९ ॥ तब पश्चात्ताप करके वे दोनों जिनसे इन्हें शाप मिला उन्हीं मुनि से अपने शापान्त को सुन वृक्षरूपी होकर भगवान कृष्णचन्द्र के अवतार की प्रतीक्षा करते हुए ॥ १० ॥ नन्द गोप के गृह से पूर्व गोकुल में खड़े रहते थे । इन्हें शीत-उष्ण, सुख-दुःख इत्यादिकों को सहन करना पड़ता था, क्योंकि वे तो अचल न थे ॥ ११ ॥ उन दोनों के इस प्रकार से रहते रहते बहुत समय के बाद संसार में भारहरण के लिए भगवान श्रीकृष्ण प्रगट हो गये । ॥ १२ ॥ वह वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भ से उत्पन्न होते ही मथुरा (कारागार) से गोकुल को पहुँचाये गये और कारणवश उसी जगह रहने लगे ॥ १३ ॥ नन्दजी ने उनका लालन पालन किया और उनकी पत्नी अर्थात् योगमाया की जननी यशोदा देवी उन्हें अपना दूध पिलाकर पोषण करती रही ॥ १४ ॥

कृत्य प्रसक्तया ॥ अबन्ध्युलूखले दाम्ना गव्यद्रव्योपघाततः ॥ १५ ॥ बद्धेऽपिसमरे वाले तत्कर्षति विसर्पति ॥ तयोरर्जुनयोर्मध्ये रुद्धं ताव-दुलूखलम् ॥ १६ ॥ सोऽव्याहतगतिर्यस्माद्गच्छँस्तावुदपाटयत् ॥ तन्मूलान्निर्गतौ सद्यः पुरुषौ हि वसुन्धरे ॥ १७ ॥ चैतन्यत्वमुपायातौ दोषात्तौ मलिनावपि । मुदा तुष्टुवतुर्विष्णुं ज्ञात्वा तं शिशुरूपिणम् ॥ १८ ॥ नलकूवरा वूचतुः ॥ विश्वचक्षुर्नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वतोमुख ॥ ;विश्ववाहो ! विश्वरूपविश्वपात्ते नमोनमः ॥ १९ ॥ स्थूलरूपोऽप्यरूपोऽसि त्वं कर्त्ताश्चर्य-कर्मणाम् ॥ अशेपो शेपरूपोऽसि तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥ २० ॥ यतः सर्वाणिभूतानि भुवनानि चतुर्दश ॥ यस्मिन्नेतानि जातानि जीवन्त्यनुविशन्ति

इतने में किसी समय दूध-दही सम्बन्धी घर धन्धे में फँसी हुई उसने उन (कृष्णचन्द्रजी) को दूध, दही, घी, मक्खन वगैरह के बरबाद करने के कारण गायों की रस्सी से ओखल पर बाँधकर फँसा दिया ॥ १६ ॥ वह घूम फिर करते रहनेवाले बाँधे गये बालक भी उस ओखल को खींचकर घसीटते घसीटते चलते थे। इतने में उन दोनों अर्जुनवृक्ष के बीच में ओखल फँसकर अटक गया ॥ १६ ॥ वह तो ऐसे बालक थे जिनकी गति कहीं कभी नहीं रुक सकती अतएव वेग से चलते हुए उन्होंने उन दोनों अर्जुन वृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला। हे पृथ्वि ! उसी समय उनके जड़ से दो पुरुष निकल आये ॥ १७ ॥ उन पुरुषों को यद्यपि चैतन्य तो प्राप्त हो गया था पर भी शाप के दोष से जड़त्व में रहने के कारण वे मलिन थे, इन दोनों ने उन्हें बालक स्वरूप खास विष्णु भगवान जानकर बड़े हर्ष के साथ उनकी स्तुति करना शुरू कर दिया ॥ १८ ॥ वे कहने लगे ॥ हे विश्वचक्षु आपको नमस्कार है, हे विश्वतो मुख ! आपको नमस्कार है एवम् हे विश्वबाहो ! हे विश्वरूप ! हे विश्वचरण ! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! आप विराट् स्वरूप के होते हुए भी आपका कोई स्वरूप दिखाई नहीं देता है, आप सभी आश्चर्य कर्म के करने वाले हैं। आप अशेष (सम्पूर्ण) होकर भी (एक) शेष रूप हैं, याने भौतिक प्रलयकाल में एक आपके सिवा कोई शेष नहीं रहता ऐसे आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ जिनसे चौदहों भुवन और सभी भूत प्राणियों की सृष्टि हुई है जिन्होंने इन सम्पूर्ण जीव जातों की रक्षा करते हुए उनपर प्राणों का सञ्चार किया है (अर्थात् जिसके रहते देहियों का देह जीवित कहलाता है) और अन्त समय में जहाँ पर जाकर सभी जीव लीन होते हैं ("यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"—इत्यादि श्रुति के अनुसार) ॥ २१ ॥ जो सदा सबके

च ॥ २१ ॥ सर्वस्यान्तर्वहिर्नित्यं न वालस्थविरो युवा ॥ मायानरत्वमापन्नो नस्त्री क्लीवोऽथवा पुमान् ॥ २२ ॥ सत्वं निरञ्जनो देव निर्गुणोऽप्यगुणात्मकः ॥ अणोरणीयान्महतो महीयान्पुरुषोत्तमः ॥ २३ ॥ सदा सर्वत्र व्यक्तोऽपि मायामोहतिरोहितः ॥ अतोऽव्यक्ताऽभिधानोऽसि दृश्यसे ज्ञानचक्षुषा ॥२४॥ त्वामामनन्ति शास्त्राणि वेदाश्चोपनिषत्पराः ॥ नभवोऽस्ति पुनर्जन्तोर्ज्ञात्वा त्वां सूर्यवर्चसम् ॥ २५ ॥ एकोप्यनेकवद्भासि चन्द्रविम्बमिवोर्मिषु ॥ एवं शुद्धस्वरूपोऽसि प्रकृत्या न च सज्यसे ॥ २६ ॥ रचयित्वा जगज्जालमूर्णनाभिरिवात्मजम् ॥ तत्रैवान्तर्वहिर्नित्यं त्वं रन्ताऽस्यादि वालकः ॥२७॥

भीतर बाहर सर्वत्र पूर्णरूप से नित्य रहते हैं। जो न बाळक न जवान न तो वृद्ध ही हैं। जो सिर्फ माया से मनुष्य स्वरूप का धारण करते हैं, जो स्त्री भी नपुंसक भी और पुरुष भी नहीं है ॥ २२ ॥ वह आप ही हैं। हे देव ! आप निरञ्जन हैं अर्थात् किसी राग से रक्त नहीं हो सकते हैं। आप सत्त्वरजस्तमोगुण वा रूप रसादि २४ गुणों से रहित होते हुए भी प्रत्येक देह पर अनुप्रविष्ट हो कर वा राम कृष्णादि अवतारों का धारण करके सगुण स्वरूप भी हैं ॥ २३ ॥ आपका सूक्ष्मस्वरूप परमाणु से भी सूक्ष्म और विशाळ स्वरूप विराट् से भी विशाळ है। "पुरुष एवेदं सर्वम्" इस श्रुति के अनुसार आप ही पुराण पुरुषोत्तम आप सर्वदा सर्वत्र प्रकाशित हैं अतएव व्यापक हैं "यस्य भासा सर्व मिदं विभाति" ऐसा श्रुति वचन हैं ॥ व्यक्त हो तो क्यों नहीं दिखाई देते। इस पर कहते हैं कि अज्ञानरूप माया और अविवेक रूप मोह से छिपे हुए भी हैं इसी कारण से तो अव्यक्त भी कहलाते हैं परन्तु ज्ञान की दृष्टि से दिखाई देते हैं ॥ २४ ॥ "सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति" इस श्रुति वाक्य से सभी उपनिषत्परक वेदपुरुष भी आपके ही विषय में अभ्यास करते रहते हैं॥ "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" इस वेद वाक्य के अनुकूल सूर्य के समग्र भासमान आपको जानकर फिर देहधारी को जन्म-मरण के लिये इस भवचक्र में बारबार दौरा लगाना नहीं पड़ता है अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है क्योंकि "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः" ऐसा वेद वाक्य है ॥ २५ ॥ "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेम" इस वाक्य से यद्यपि अद्वैतसिद्ध आप एक ही हैं पर भी जीव स्वरूप से व्यक्तिगत अनन्त हैं जैसे कि एकही चन्द्रमा अपने बिम्ब से जळतरङ्ग पर अनेक की तरह दिखाई देते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूप हैं और प्रकृति से पुष्कर पत्र स्थित जळ की तरह निर्लेप हैं ॥ २६ ॥ मकरी की तरह स्वयं आत्मीय जगज्जाळ की रचना करके उसी में स्थित होकर भीतर बाहर रमण करते हुए रहनेवाले आदि बालक (अर्थात् वटपत्र स्थित

त्वत्पदेन विदुः सम्यगिन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ जानीवहे कथं देव मूढावावां जड़ीकृतौ ॥ २८ ॥ अहोनावधुना भाग्यं त्वद्दर्शनमुपेयुषोः ॥ यावत्त्वां न प्रपद्यन्ते तावत्तप्स्यन्तिमानुषाः ॥ २९ ॥ यच्चकिञ्चित्क्वचिद्वस्तु सर्वं तु त्वन्मयं विभो ॥ स्तुतस्त्वं स्वगुणैर्यस्मादलं स्तुतिभिरावयोः ॥ ३० ॥ गुण्यो गुणैर्विरहितोऽमलबोधमूर्तिर्योगेन वाङ्मनसयोरपि नैवगम्यः ॥ भक्त्यैकयाति सुलभो जगदन्तरात्मा सत्वं प्रसीद्भगवन्सततं नमस्ते ॥३१॥

॥ वराह उवाच ॥

इति ताभ्यां स्तुतस्तुष्टो बालोऽपिस्थविरायितः ॥ अनुग्रहपरोभूत्वा कृष्णः शुद्धिमुवाच तौ ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो देवौ विशुद्धान्तः-करणौ धनदात्मजौ । जडदेहे स्थितौ दैवादद्यावधि तमोमये ॥३३॥ शाल-

---

बालमुकुन्द) आपही हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आपके परम पद को इन्द्रादि देवता लोग भी यथार्थ नहीं जान सकते हैं फिर जड़ योनि पर गिराये गये हम लोग क्योंकर जान सकें ॥ २८ ॥ अहो ! इस समय हम दोनों का बड़ा भाग्योदय हुआ है क्योंकि आपके दर्शन मिल गये । मनुष्यों को तबतक ताप से पीड़ित रहना पड़ेगा जब तक वे आपकी शरण को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥ २९ ॥ (अतएव यह भी सिद्ध हुआ कि हम दोनों ने आपको प्राप्त कर लिया है—अब हमारा शीघ्र ही उद्धार कीजिये) ॥ हे विभो ! जहाँ कहीं जो कुछ सत् और असत् स्वरूप वस्तु दीखती वा पाई जाती है वह सब तो आपही का स्वरूप है फिर हमसे किस तरह आपकी स्तुति की जा सके । हे भगवन् ! आप अपने गुण कर्मों से स्वयं स्तुत्य हैं ॥ १३० ॥ जो प्रशस्त गुण सम्पन्न होकर भी निर्गुण कहलाते हैं और "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इस श्रुतिवाक्य के अनुसार मन और वचन के मार्ग से भी अगम्य होकर केवल निषेध शिष्ट हैं, किन्तु जगत् के अन्तरात्मा होते हुए भी केवल भक्ति से प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध सुलभ हे भगवन् । सो ऐसे आपके लिए सदा नमस्कार है ॥ ३१ ॥ इतनी कथा सुनाकर वाराहजी ने कहा कि हे पृथिवि ! उक्त प्रकार उन दोनों से स्तुति किये गये वृद्ध के समान आचरण के लायक बालक स्वरूप कृष्ण भगवान संतुष्ट होकर उनपर अनुग्रह रखते हुए उन्हें शुद्धि बताने लगे ॥ ३२ ॥ हे देव ! हे कूबेर के पुत्र ! यद्यपि तुम लोग का अन्तः-करण तो शुद्ध है, पर भी दैवगत आज तक अज्ञान (अंधकार मय) जड़ योनि में याने वृक्ष होकर स्थित रहने के कारण ॥ ३३ ॥ तुम दोनों हिमालय के पास

ग्रामे महाक्षेत्रे पुण्ये हिमवतोऽन्तिके॥ युवां क्षिप्रं प्रतिष्ठेथां देहशुद्धिर्भवेद्यतः ॥ ३४ ॥ कुण्डानि सरितश्चैव सन्ति तीर्थान्यनेकशः ॥ तत्रैकमतिप्रियंतीर्थं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ ३५ ॥ स्नानं तत्र प्रकुरुतं शास्त्रनिर्दिष्टकर्मणा ॥ ततो मालिन्यमुत्सृज्य दिव्यदेहमवाप्स्यथ ॥ ३६ ॥ वराह उवाच ॥ इत्यादिष्टौ भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मण ॥ तत्र तौ प्रस्थितौ तञ्च नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥ यथोपदिष्टं संप्राप्य सस्नतुर्विधिपूर्वकम् ॥ तत्क्षणाच्छुद्ध-संस्कारौ दिव्यदेहमवाप्नुताम् ॥ ३८ ॥ दाम्नाबद्धोदरेणात्र श्रीकृष्णेन मयैव हि ॥ एवं देवेशि ! निर्दिष्टं तीर्थं दामोदरं ततः ॥ ३९ ॥ एतत्ते कथितं भद्रे ! गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ दामोदराद्युपाख्यानं न देयं यस्य कस्यचित ॥ ४० ॥ शालग्रामे महाक्षेत्रे गण्डक्यादिकमण्डिते ॥ एतन्मुख्यानि तीर्थानि निर्मितानि मया पुरा ॥ ४१ ॥ अपि गुह्यं परं वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥ वसुधे ! तन्निरुक्तञ्च सर्वेषां विस्मयावहम् ॥ ४२ ॥ दामसंसरणं प्रोक्तं येन

महापुण्यदायक शालग्राम क्षेत्र पर शीघ्र चले जाओ, जहाँ पर जाने से तुम लोगों की देह शुद्ध होगी ॥ ३४ ॥ वहाँ पर कई कुण्ड और छोटी नदियाँ इत्यादि अनेकों तीर्थ हैं। उन सबों में से उत्तमोत्तम मेरा अत्यन्त प्रिय एक तीर्थ हैं ॥ ३५ ॥ वहाँ जाकर शास्त्र विधि के अनुसार स्नान करो, जिससे तुम दोनों शारीरिक मलिनमात्र को छोड़कर दिव्य देह को पाजाओगे ॥ ३६ ॥ फिर वराहजो बोले कि हे पृथिवि ! अद्भुत कर्म वाले भगवान कृष्णचन्द्र से इस आदेश को प्राप्त कर उन्हें वारम्बार नमस्कार करते हुए वे दोनों उस स्थान की ओर चल दिये ॥ ३७ ॥ और यथोक्त स्थान पर पहुँचकर उन दोनों ने ही विधि पूर्वक स्नान किया, तब वे उसी समय में शुद्ध संस्कारवाले दिव्य देहधारी बन गये ॥ ३८ ॥ हे देवि पृथ्वि ! रस्सी से उदर पर बंधे हुए बालकृष्ण स्वरूप मैंने ही उन दोनों के लिये इस तीर्थ को बताया है। उसी कारण से इस तीर्थ का नाम भी दामोदर कहा गया है ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! यह गुप्त से भी अति गुप्त और अत्युत्तम बात तुमसे बताई गयी है जिसमें दामोदरादिक तीर्थों का वर्णन आया है, अतएव जिस किसी को यह न देनी (सुनानो) चाहिये ॥ ४० ॥ गण्डकी प्रभृति श्रेष्ठ नदियों से मण्डित शालग्राम संज्ञक विशाल क्षेत्र में मैंने ही प्रथम कल्प में मुख्य दामोदर प्रभृति तीर्थों का निर्माण किया हैं ॥ ४१ ॥ हे वसुधे ! और भी एक गुप्तबात को और उसके लक्षण में तुमसे बताता हूँ जिसके सुनने से सबको आश्चर्य पैदा होता है ॥ ४२ ॥ वह यह है—

जन्तुर्निबध्यते ॥ उदरम्भरिरत्यर्थं यथा सप्तिर्वरत्रया ॥ ४३ ॥ योऽयं वै सुगमोपायस्तादृशस्य विमुक्तये ॥ तेन दामोदरं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४४ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण नरोमुच्येत किल्बिषात् ॥ स्नानाद्रोगभयं नैव नापमृत्यूद्भवं तथा ॥ ४५ ॥ न चोर नृपतोवाऽपि न वाताद्याधिदैविकम् ॥ जलस्थलवनौकेभ्यो भूतेभ्योऽपि भयं नहि ॥ ४६ ॥ नशस्त्रानलशत्रुभ्यो दारिद्र्याच्च कदाचन ॥ तेषां तु सरसां देवि माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥ ४७ ॥ सर्वेषां पाकयज्ञानां क्रतूनां हविषामपि ॥ सप्तरात्रोपवासैश्च फलं तत्र प्रलभ्यते ॥ ४८ ॥ अथात्र मुञ्चति प्राणान्मम कर्मपरायणः ॥ मुक्त्वा यज्ञ-फलं स्वर्गे ततो मत्पदमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ अथ चात्रैव पित्रर्थे पिण्डं यो निर्वपेन्नरः ॥ सतर्पणमघोराः स्युः पितरस्तस्य तर्पिताः ॥ ५० ॥ इत्येवं

दाम कहते हैं संसारपाश को जिससे 'उदरम्भरि जीव अच्छी तरह फँस जाता है जैसे कि लगाम से फँसा हुआ घोड़ा हो ॥ ४३ ॥ ऐसे जीव को उस संसार बन्धन से छुटाने का यही मात्र एक सुगम उपाय है, इसलिये उस तीर्थ का नाम तीनों लोक में प्रसिद्ध "दामोदर" रक्खा गया है ॥ ४४ ॥ उसके जलस्पर्श मात्र से ही मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। और स्नान के करने से रोग-सम्बन्धी भय नहीं होता है, और अकालमृत्युजन्य भय भी नहीं हो सकता है ॥ ४५ ॥ एवम् न चोर से न राजा से न तो ओले, बिजली आंधी तूफान इत्यादि दैविक विपत्ति से, न जलजात न स्थल सम्बन्धी दुष्ट जन्तु और न वन के हिंसक सिंहादि वा सर्पादिक भूत प्राणियों से ॥ ४६ ॥ अपि च न औजार हथियारों न अग्नि और न तो दारिद्र्य से ही कभी भय उत्पन्न हो पाता है ॥ हे देवि ! इन सरोवरों के माहात्म्य का वर्णन तो किससे किया जा सके (सिर्फ ब्रह्माजी से ही किया जा सकता है) ॥ ४७ ॥ स्नान विधिपूर्वक वहाँ पर सप्तरात्र के उपवास से सभी पाकयज्ञ (आग्रहायण, अष्टका, दर्शपौर्णमास, एकोद्दिष्ट, पार्वण श्राद्ध इत्यादि) और सभी हविर्यज्ञ (अर्थात् और बलिवैश्वदेव, अग्निष्टोम, सोम, वाजपेय, सौत्रामणि, राजसूय, अश्वमेध, अग्निहोत्र इत्यादि) सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल मिल जाता है। ॥ ४८ ॥ यदि मुझ पर कर्मनिष्ठ होकर सो इस मेरे प्रसिद्ध महापुण्यदायक क्षेत्र में उक्तकुण्ड के पास जो मनुष्य अपने प्राणों को छोड़ देता है वह स्वर्गलोक में उपरोक्त यज्ञ सम्बन्धी फलों का भोग करके आखीरकार वहाँ से मेरे ही धाम को प्राप्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ फिर यह भी बात है कि यदि इसी स्थान में अपने पितरों के उद्देश्य से जो मनुष्य तर्पण के सहित पिण्डदान भी करता है उसके पितृलोग श्राद्ध से तृप्त होकर अघोर (सौम्य या शिवस्वरूप मुक्त) हो जाते हैं ॥ ५० ॥ हे

कथितं सर्वं यथा पृष्टं त्वया धरे ॥ बहुना किमिहोक्तेन सर्वेषां मङ्गलं परम्
॥ ५१ ॥ य एतच्छ्रावयेन्नित्यं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ गृहस्थोऽपिविरक्तोऽसौ
न द्वन्द्वैः परिभूयते ॥ ५२ ॥

॥ सूत उवाच ॥

इति तस्य वचःश्रुत्वा वाराहस्य मुनिश्वराः ॥ कृतकृत्यामिवात्मानं ततो
मेने वसुन्धरा ॥ ५३ ॥

इत्युक्ताऽसुररिपुणाऽथ घृष्टिनेयम्
सन्तोषं परममुपेयुषी धरित्री ॥
अद्याऽपि प्रचुरफलं सतीर्थसङ्घं
सानन्दं वहति चराचरं स्वपृष्ठे ॥ ५४ ॥

इति श्रीवाराहपरिशिष्टे दामोदरादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं समाप्तं शुभम् ॥

पृथिवि ! तुमने पहले जिस चीज के विषय में मुझसे पूछ रक्खा था वह सब उक्त रीति से मैंने तुमसे बता दिया। इस सम्बन्ध में अधिक कहकर साध्य नहीं है। क्योंकि यह तो सभी मङ्गलों का परम मङ्गल है ॥ ५१ ॥ इस माहात्म्य को जो नर नित्यप्रति दूसरों को सुनाता या जो सावधान होकर सुनता है, ऐसे लोगों को गृहस्थ ही क्यों न हो उसे वैरागी पुरुष जानना चाहिये क्योंकि वह द्वन्दों अर्थात् "काम, क्रोध" "लोभ, मोह" "राग, द्वेष" "सुख, दुःख" "मान, अपमान" "शीत, उष्ण" इत्यादि आपस में विरोधी ऐसे जोड़े बँधे हुए दुःखों से नहीं दबाया जा सकता है ॥ ५२ ॥ इतनी कथा सुनाकर श्रीसूत पौराणिकजी ने भी शौनकादिऋषियों से कहा कि हे मुनीश्वर लोग ! इस प्रकार वराहजी के उपरोक्त वचन को सुनकर पृथिवी ने अपने को कृतार्थ समझ लिया ॥ ५३ ॥ अब उपरोक्त विषय का ही उपसंहार किया जाता है कि इस प्रकार दैत्य शत्रु भगवान वराहजी से समझाई गयी यह पृथ्वी उस समय अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हो गयी थी अतएव आजतक अनन्त फल से परिपूर्ण. सम्पूर्ण तीर्थों के साथ आनन्द से अपने पृष्ठ पर चराचर का वहन कर रही है ॥ ५४ ॥

वाराह पुराण सम्बन्धी परिशिष्टांश में पं. भवानीशङ्कर शास्त्री कफलक कृत दामोदरादि तीर्थ माहात्म्य का भाषानुवाद वर्णन समाप्त हुआ ॥ शुभम् ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ३॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीः

अब केवल भाषानुवाद से रुरुक्षेत्र का वर्णन किया जाता है

भगवान श्री वाराहजी ने आगे जाकर पृथिवी को समझाते हुए कहा है कि हे पृथिवि ! अब तुम मेरा परमप्रिय रुरुक्षेत्र (रीड़ी) का भी वर्णन सुनो। प्राचीन काल में भृगुवंश में उत्पन्न कोई देवदत्त नाम के ब्राह्मण भविष्यमाण ऋषीकेश के पास में रहकर कई कष्टों के सहन किये उग्र तप किया करते थे। इनके तपश्चर्या में रहते प्रायः दश हजार वर्षों के बाद उनसे शङ्कित देवराज इन्द्र ने देवाङ्गनाओं में अति सुन्दरी प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को बुलाकर उससे कहा कि जाओ तुम रति वसन्तादि को अपने साथ लेती हुई हिमालय के पास तपश्चर्या में डटे हुए देवदत्त नामक मुनि को विषय पर फँसा उन्हें तपश्चर्या से भ्रष्ट कर चली आओ। मुझे उसके तप से बड़ा भय उत्पन्न हो रहा है कि न जाने वह क्या कर डाले। इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर प्रम्लोचा भी रति वसन्तादिकों को पहले से भेजती हुई गन्धर्वादिकों को साथ लिए उस ब्राह्मण की तपोभूमि की तरफ चली गयी। उस स्थान पर जाकर देखा कि सब लता-वृक्ष वगैरह नवीन-नवीन अंकुर और पत्ते पखुड़ियों से हरे भरे, फूले, फले अत्यन्त सुन्दर दीख रहे हैं, उनकी डाल, टहनी व सरोवरों पर कोयल, मोर, सारस, राजहंस वगैरह चिड़ियाँ पञ्चम स्वर से चहचहा रही हैं, सर्वत्र मलय की सुगन्धित हवा बह रही है, नदी, झील, ताल, सरोवर वगैरह स्वच्छ दीख रहे हैं और चारों ओर भ्रमरे भिन भिना रहे हैं। अपि च उसी स्थान के समीपवर्ती होकर गन्धर्व लोग सुमधुर गान्धार स्वर से गान कर रहे हैं। बस, ऐसे मनोरञ्जक अवसर को पाकर वह आगे बढ़ती हुई उन मुनि की तपोभूमि के समीप में ही चली आई और गेन्द को लेकर खेलने लगी। इसी बीच में मुनि का समाधि योग भी टूट गया। तब उन्होंने मधुर गान्धर्वीय गान को सुनकर चारों तरफ आँखें दौड़ाई तो देखते क्या हैं कि कोई एक अत्युत्तम सर्वाङ्ग सुन्दरी कामिनी हाव-भाव और विलासों के साथ हँसती, गाती, कूदती, खेलती, तिरछी आँखें घुमाती और गेन्द को लेकर लुढ़काती गुड़ाती अपने आश्रम के समीप में ही आकर क्रीड़ा कर रही है। उसे देखते ही मुनि देव का मन क्षुब्ध होकर तपोवृत्ति से विचलित हो गया। वह उसी के समीप में चले गये और उससे वार्तालाप करते रहते अन्ततो गत्वा उसके वशवर्त्ती हो हो गये। इस प्रकार वे दोनों ही एक साथ रहकर अनेक स्वर्गीय पदार्थों से भोग विलास करते विहरते बड़े आनन्द से समय व्यतीत करने लगे। इस स्थिति पर कई

वर्षों के बाद मुनि देव को फिर से अपने पूर्वकृत अनुभव के अनुसार सुध लौट आई। वह यकायक उस मोहनिद्रा से सोते की तरह जाग उठे। ध्यान में आकर उन्होंने अपने किये काम से बड़ा पश्चात्ताप किया। वह उसी समय विरक्त हो उस अप्सरा को छोड़कर फिर से भगवान् शङ्करजी की अराधना के लिए दूसरे स्थान पर चल दिये। अब की बार शिव व विष्णु पर ऐक्य भाव रख कर निर्विघ्न पूर्वक तप करते करते भगवान् शङ्करजी के साक्षात्कार से मुक्त ही हो गये। मुनि देव के चले जाने के पश्चात् प्रम्लोचा ने उनके पीछे पड़े ही रहना अनावश्यक समझा, क्योंकि वह तो भगवान इन्द्र की आज्ञा का पालन कर चुकी थी और मुनिदेव के सहवास से गर्भवती भी हो गयी थी। अतएव मौका पाकर उसने एक पुत्री पैदा की, और उस बच्ची को उसी आश्रम पर छोड़कर स्वर्गलोक का रास्ता पकड़ा। उसके बाद रुरुयाने मृगियों का दूध पिला कर वहाँ के आश्रमवासियों ने उस निःसहाय बालिका की रक्षा की। इस कारण उसका भी नाम रुरु ही रह गया। यद्यपि रुरु कालक्रम से जवान हो गयी पर भी प्रार्थियों के साथ विवाह कर विषय-बन्धन पर फँसना उसने अनुचित समझा, अतः वह भगवान विष्णु देव की आराधना करती हुई तपश्चर्या में संलग्न हो गयी। उस सुकुमारी जितेन्द्रिया युवति ने कितना कष्ट सहन कर तप किया, उसके आहार-विहार वगैरह कैसे रहे ? ये सब दुःख की बातें कहते नहीं बनती हैं। अतएव कतिपय वर्षों के बाद भगवान त्रैलोक्यनाथ जी तप से प्रसन्न होकर उसके सामने प्रकट हो आये और उससे कहने लगे कि पुत्रि ! तुम धन्य हो ! अबला होकर सबल मुनियों की तरह तुमने मेरी प्राप्ति के लिए कितना साहस और उग्र तप का प्रयास उठाया ? अब मैं तुम से प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो वह मुझसे वरदान मांग लो। तब भगवान के दर्शन को पाकर उनकी मधुर वाणी से मानो वह आनन्द सागर में डूब गयी, उसके सभी दुःख जाते रहे। इसी बीच में हर्ष के मारे गद्गद वाणी से उनकी स्तुति करती हुई उसने निवेदन किया कि भगवन् ! सचमुच आप मुझ पर प्रसन्न हों तो आप आज ही से सदा के लिये मेरी इस तपोभूमि पर विराजमान हों, मैं तीर्थ रूप से आपकी सेवा में रहकर भगवद्भक्तों की अन्तरात्मा को पवित्र करती हुई उन्हें स्वर्गीयवर्ग फल दे सकूँ एवम् यह स्थान मेरे रुरु नाम से प्रसिद्ध होकर परम पुण्यदायक क्षेत्र हो जावे। इस पर भगवान ने उसे प्रार्थना के अनुसार वर दान दिया। तत्काल वह भी उसी जगह मूर्ति रूप में प्रविष्ट होकर रहने लगे।

हृषीक कहते हैं, विषयेन्द्रियों को, उन सबकी गतियों को रोककर रुरु ने

भगवान का तप किया, उनकी प्रसन्नता पर उसने अपने ईश समझकर उसी जगह सबके हित के लिये उनकी स्थापना की अतः भगवान का शुभ नाम हृषीकेश रह गया है। रुरु भी वहीं पर तीर्थरूप बनकर लोक हितार्थ भगवान की सेवा में रह गयी। तबसे उस तपोभूमि का नाम रुरुक्षेत्र हो गया है।

इतनी कथा सुनाकर फिर भगवान वराह जी ने कहा कि हे पृथिवी! जो स्त्री पुरुष उस पुण्य क्षेत्र में जाकर रुरुतीर्थ पर स्नान-दानादि के साथ भगवान हृषी-केश जी का दर्शन करते हैं, वे कैसे भी हत्यारे पापी क्यों न हों, तुरत पाप से रहित होकर इस लोक में कामनानुसार सुख भोग करते हुए अन्त में भगवद्गति को प्राप्त हो जाते हैं। और हे पृथिवी! यह क्षेत्र मुक्तिक्षेत्र के पश्चिम भाग पर पड़ता है। इस प्रकार शालग्राम पर्वत, मुक्तिक्षेत्र, गण्डकी प्रभृति पवित्र नदियाँ, अनेकों तीर्थ, दामोदरादि कुण्ड व रुरुक्षेत्र का भी वर्णन किया गया है। अब कहो कि अब और क्या सुनोगी?

पं० भवानीशङ्कर शास्त्रि कफलककृत नेपालराज्यान्तरगत रुरुक्षेत्र संबन्धी संक्षिप्त हिन्दी भाषानुवाद समाप्त हुआ।

॥ इति शिवम् ॥

दामोदर कुण्डबाट प्राप्त हुने शालग्राम शिला

श्रीमुक्तिनाथाय नमः

अथ शालग्रामपरीक्षा

अर्चावतारं श्रीविष्णोः शालग्रामाख्यमद्भुतम् ।
नमस्कृत्योच्यते सम्यक् शालग्रामस्य लक्षणम् ॥ १ ॥

तत्रादौ तदुत्पत्तिस्थानं तत्प्रमाणं शालग्रामनिर्वचनञ्च विचार्य्यते। तथाहि वाराहपुराणे—

❀ अथातोऽनुवादकमङ्गलाऽऽचारः ❀

जन्माद्यस्य यतोऽस्ति बोधवपुषः स्वीयप्रकाशो महान्,
व्याकर्ता सकलस्य निर्गुणतया केनाऽपि योऽव्याकृतः ।
ध्वान्तादूदूरतरं प्रभाकरसमं यं वेद नावेद विद्,
यत्रैतज्जनुरन्तयोः परिहृतिर्देवाय तस्मै नमः ॥

तथा च

मातरं पितरं नत्वा गुरून्भ्रातॄँश्च सर्वदा ।
शालग्रामपरीक्षाया भाषेयं क्रियते शुभा ॥

अपि च—

अहो, येषामास्ते प्रकृतिसुभगं प्रातिपदिकम्
विधानं वृत्तीनां निरवधिसमर्थः पदविधिः ।
समस्ताः कृत्यान्ता यदनु जगदाख्यात गतयो
गुरुभ्यस्तेभ्यो नः प्रणमनमदस्तद्धितपरम् ॥

श्रीगणेशायनमः । अथ "शालग्राम परीक्षा" नामक ग्रन्थ का भाषानुवाद किया जाता है ॥ श्री मुक्तिनाथ जी के लिये नमस्कार है ॥

श्री भगवान लक्ष्मीनारायण के विचित्र शालग्राम नामक अर्चावतार के लिये नमस्कार करके अच्छी तरह से शालग्राम का लक्षण बताया जाता है ।

"शिष्य लोग भी ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये ग्रन्थादि में मङ्गलाऽऽचरण करने की प्रथा को जाने इस उद्देश्य से ग्रन्थकार ने "अर्चावतारं···"इस श्लोक से मङ्गलाऽऽचरण किया है ॥"

पहले तो शालग्रामों की उत्पत्ति की ज़गह, प्रमाण एवम् लक्षणों का विचार इत्यादि किया जाता है ॥ वाराहपुराण में इस प्रकार से कहा है कि—

मया देवः प्रसादेन श्रुतं मन्दारवर्णनम् ।

मन्दारात्परमं स्थानं विष्णोस्तद्वक्तुमर्हसि । इति धरण्यापृष्टे-वराह उवाच । शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । कथयिष्यामि ते गुह्यं शालग्राममिति स्मृतम् । इत्युपक्रम्य—तत्र ब्रह्मर्षि सालङ्कायन इत्यादिना कस्यचित्सालंकायननाममुनेर्वृत्तान्तं प्रस्तूय 'तस्य वै तप्यमानस्य सालङ्कायनकस्य ह । तस्मिन्क्षेत्रे हरो देवो मत्स्वरूपेण संयुतः ।। शालग्रामे गिरौ तस्मिञ्च्छिलारूपेण तिष्ठति । अहं तिष्ठामि तत्रैव गिरिरूपेण नित्यदा । तस्मिञ्छिलाः समग्रास्तु मत्स्वरूपा न संशयः । पूजनीयाः प्रयत्नेन किं पुनश्चक्रलाञ्छिताः । लिङ्गरूपेण तु हरस्तत्र देवालये गिरौ । शिवनाभाः शिलास्तत्र चक्रनाभाः शिलास्तथा । सोमेश्वराधिष्ठितस्तु शिवरूपो गिरिः स्मृतः ।। इति शालग्रामपर्वतसोमेश्वरपर्वतयोस्तत्रोत्पन्नयोश्चक्रनाभशिवनाभशिलयोश्च प्रभावमुक्त्वा "सोमेन स्तत्र संस्थाप्य" इत्यादिना सोमेश्वरपर्वतसोमेश्वरलिङ्गोत्पत्तितत्प्रभावावुक्त्वा—"सालंकायनकाख्यस्य मुनेस्तु तपसोबलात् । त्रिष्णुना सह संमन्त्र्य स्थिता वावां कलानिधे । शालग्रामगिरि-

---

हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने मन्दार का वर्णन सुन लिया। मन्दार से भी उत्तम जो भगवान् का स्थान है उसे कहा जाय। इस तरह पृथ्वी से पूछे जाने पर भगवान वराहजी बोले कि हे देवि ! जो तुम मुझसे प्रश्न कर रही हो, ध्यान से सुनो। शालग्राम नामकी गुप्त चीज को तुम्हें बताऊँगा। (इस प्रकार से शुरू करके उसीपर किसी ब्रह्मर्षि सालङ्कायन नामक मुनि के वृत्तान्तों को बताते हुए) सालङ्कायन मुनी के तपश्चर्या में रहते उसी क्षेत्र में भगवान शङ्करजी ने मेरे स्वरूप से युक्त होकर शालग्राम पर्वत में शिला रूप से निवास किया है। मैं उसी जगह पर्वत रूप से सदा रहता हूँ। उस जगह की सभी शिलायें मेरे स्वरूप हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इन शिलाओं की यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये, फिर उनमें से चक्र चिह्नितों की तो बात ही क्या है। उस देवस्थान पर्वत में शङ्कर जी लिङ्ग रूप से रहते हैं। वहाँ पर की शिलायें शिवनाभ और चक्रनाभ कहलाती हैं। जहाँ पर सोमेश्वरजी हैं वह पहाड़ शिवस्वरूप माना गया है।

इस प्रकार शालग्राम, सोमेश्वर-पर्वतों और चक्रनाभ, शिवनाभ शिलाओं का माहात्म्य सुनाकर "सोमेन तत्र संस्थाप्य" इत्यादि श्लोकों से सोमेश्वर पर्वत और सोमेश्वर लिङ्ग की उत्पत्ति और इनके प्रभाव को बताकर—सालङ्कायन मुनिकी पश्चर्या के बल से भगवान् विष्णु से परामर्श लेकर शङ्करजी ने कहा, हेशशाङ्क !

विष्णुरहं सोमेश्वराभिधः। तयोः पर्वतयोर्या वै शिला विष्णुशिलाभिधा" इति शिववचनेन च पूर्वोक्तमेव दृढीकृत्य "देवया च कृतं पूर्वं तपः शिवसुतुष्टिदम्। मम त्वत्सदृशः पुत्रो भूयादिति विधो! तया॥ अहं कस्याऽपि न सुतः किंकरिष्यामि. चिन्तयन्। देवायास्तु वरोदेयस्त्ववश्यं मृगलाञ्छन! निश्चित्यैवं तदा प्रोक्तं प्रसन्नेनान्तरात्मना॥ लिङ्गरूपेण ते देवि! गजानन पुरस्कृतः। गर्भे तव निवत्स्यामि पुत्रो भूत्वा शिव प्रिये! मम त्वमपरामूर्तिः ख्याता जलमयी शिवा। शिवशक्तिविभेदेन आवामेकत्र संस्थितौ॥ एवं दत्तवरादेवामत्सान्निध्यमिहागता॥ देवाखण्ड इति ख्यातं ततः प्रभृतिगोपते!" इति पुनः शिववचनेन देवानदीगर्भे शिवस्य शिव-नामशिलारूपेणावतारमुक्त्वा पुनरपि शिववचनेनैव गण्डक्याऽपि पुरा तप्तं वर्षाणामयुतं विधो! शीर्णपर्णाशनं कृत्वा वायुभक्षाप्यनन्तरम्। दिव्यं वर्षशतं तेपे विष्णुं चिन्तयती सदा। ततः साक्षाज्जगन्नाथोहरिर्भक्तजनप्रियः। उवाच मधुरं वाक्यं प्रीतः प्रणतवत्सलः॥ गण्डकि! त्वां प्रसन्नोऽस्मि तपसा

हम दोनों यहाँपर रहते हैं। शालग्राम पर्वत विष्णु का अवतार है और मैं सोमेश्वर हूँ। ये दोनों पर्वतों की शिलायें विष्णुशिला कहलाती हैं। (इस प्रकार के शिव वचन से पूर्वोक्त बातों का निश्चय करके) पूर्व समय में देवा ने शङ्करजी की प्रसन्नता के लिये बड़ी तपस्या की। हे चन्द्र! उसकी इच्छा रही कि उसे मेरे सदृश पुत्र हो जावे। किन्तु मैं किसी का पुत्र नहीं हो सकता, अब क्या करूँ? देवा के लिये वरदान तो देना ही पड़ेगा। इस तरह सोच करते हुए निश्चय करके उस वक्त प्रसन्न चित्तसे हे मृगलाञ्छन! मैंने उससे कहा कि, हे देवि! गणेशजी के साथ ही लिङ्गरूप से तुम्हारा पुत्र बन कर मैं तुम्हारे गर्भ में निवास करूँगा। हे शिवप्रिये! तुम मेरी दूसरी मूर्ति जलस्वरूप से प्रसिद्ध हो। शिव और शक्ति के भेद से हम दोनों एक ही स्थान पर बैठे हुए हैं। हे किरणेश! इस तरह मेरे वरदान से देवा नदी मेरे नज़दीक में आ बैठी है।

तभी से उस स्थान का नाम देवाखण्ड हो गया। ऐसे शिव वचन से देवा नदी के गर्भ से शिवजी का शिवनाम, शिला रूप से अवतार होना इत्यादि बातों को कह कर फिर शिवजी के ही वचन से—हे विधो! गण्डकी ने भी पूर्वकाल में १०००० वर्ष पर्यन्त तप किया, इस प्रकार कि वह सूखे पत्तों का भोजन करती और दिव्य १०० वर्ष तक तो हवा पीकर रहती हुई सदा भगवान की चिन्तना करती रही। तब भक्तजन और शरणार्थियों के प्यारे खास जगन्नाथ भगवान ने प्रसन्न होते हुए मधुर वचन से कहा। हे गण्डकि! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ।

विस्मितोऽनघे ! अनवच्छिन्नया भक्त्या वरं वरय सुव्रते ! ।। किं ते देयं वदस्वाऽऽशु प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि । गण्डक्यपि पुरो दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम । दण्डवत्प्रणता भूत्वा ततः स्तोतुं प्रचक्रमे ।। इत्यारभ्य "यदि देव ! प्रसन्नोऽसि देयो मे वाञ्छितो वरः । मम गर्भगतो भूत्वा विष्णो ! मत्पुत्रतां व्रज । ततः प्रसन्नो भगवाँश्चिन्तयामास गोपते ! किं याचितं निम्नगया नित्यं मत्सङ्गलुब्धया ।। दास्यामि याचितं येन लोकानां भवमोक्षणम् ।। इत्येवं कृपया देवो निश्चत्यमनसा स्वयम् । गण्डकीमवदत् प्रीतः शृणु देवि ! वचो मम । शालग्रामशिलारूपो तव गर्भगतः सदा । स्थास्यामि तव पुत्रत्वे भक्तानुग्रहकारणात् ।। मत्सान्निध्यान्नदीनां त्वमतिश्रेष्ठा भविष्यसि"।। इति चारभ्य—एवं दत्त्वा वरान्देव्यै तत्रैवान्तरधीयत । ततः प्रभृति तिष्ठावः क्षेत्रेऽस्मिञ्छशलाञ्छन ! अहं च भगवान्विष्णुर्भक्तेच्छोपात्तविग्रहः । इत्यन्तेन गण्डकीनदीगर्भे केशवस्य चक्रनाभशिलारूपेणावतारमुक्त्वा— "सोमेशाद्दक्षिणे भागे" इत्यादिना तत्समीपे

हे अनघे ! तुह्मारी तपश्चर्या आश्चर्यजनक है । मुझपर तुह्मारी अखण्ड भक्ति है । हे सुव्रते ! वरदान मांगो । हे उत्तम सुन्दरि ! मैं निहायत खुश हूँ । शीघ्र कहो कि तुम्हें क्या देना चाहिये । गण्डकी ने भी अपने सामने शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान के दर्शन पाकर दण्डवत्प्रणाम करती हुई उनकी स्तुति करना शुरू किया । इस प्रकार बहुत कुछ श्लोकों से स्तुति कर उसने कहा कि हे देव ! सचमुच आप प्रसन्न हों तो मुझे वाञ्छित वर दिया जावे । हे विष्णो ! आप मेरे गर्भ गत होकर मेरा पुत्र होना स्वीकार करें । इतनी कथा सुनाकर शंकरजी ने कहा, हे किरणेश ! प्रसन्न चित्त होकर भगवान ने विचार किया कि टेढ़ो गतिवाली (नदी) ने मेरे सङ्ग में लुब्ध होकर कैसा वरदान माँगा ? जब माँगा तो देना ही होगा । इसलिये कि सभी लोग भवबन्ध से मुक्त हो जाँय । इस प्रकार खुद अपने मन में निश्चय करके कृपा पूर्वक प्रसन्न होते हुए गण्डकी से कहा कि हे देवि ! मेरी बात सुनो । मैं सदा तुह्मारे गर्भगत शालग्राम शिलारूपी होकर भक्तजन के अनुग्रहार्थ तुह्मारा पुत्र बनकर रहूँगा । मेरे रहने के कारण तुम नदियों में अत्युत्तम समझी जाओगी । इत्यादि वाक्यों से उक्त प्रकार से देवी गण्डकी के लिये वरदान देकर भगवान उसी जगह अदृश्य हो गये । हे शशाङ्क ! उसी काल से हम दोनों इसी क्षेत्र में रहते हैं । मैं और भगवान् विष्णु भी भक्तजन की इच्छा के अनुकूल अवतार धारण करते हैं । इतनी कथा पर्यन्त के प्रमाणों से गण्डकी नदी के गर्भ में विष्णु भगवान् का चक्रनाभ, शिला रूप से अवतीर्ण होना इत्यादि कहकर—"सोमेशा-

बाणगङ्गाद्युत्पत्तिप्रभावावुक्त्वासालङ्कायनकोऽप्याशु क्षेत्रे तस्मिन्परे मम। शालग्रामे महत्तीव्रमास्थितः परमं तपः ॥ इत्यादिना शिवस्य सालङ्कायनपुत्रत्वं तत्प्रसङ्गेनैव—

देविका नाम देवानां प्रभा तत्र तपस्यताम्। नियमार्थं समुद्भूता गण्डक्या मिलिताशुभा। आश्रमादपरावासीत्पुलस्त्यपुलहाश्रमात्। गण्डक्यां मिलितासाऽपि त्रिवेणी गण्डकीत्यभूत् ॥ कामिकं महातीर्थम्, इत्यादिना त्रिवेणीमाहात्म्यं तत्रैव त्रिजलेश्वरं चोक्त्वा-धरण्युवाच ॥ प्रणागे या त्रिवेणीति यत्र देवो महेश्वरः। शूलकण्टक इति ख्यातः सोमेश इति चापरः ॥ वेणीमाधव नाम्नाऽच यत्र विष्णुः स्वयं स्थितः। गङ्गा ;च यमुना चैव सरस्वत्यपरा नदी। सर्वेषाञ्चैवदेवानामृषीणां सरसामपि। सर्वेषाञ्चैव तीर्थानां समाजस्तत्र मे श्रुतः ॥ यत्राऽऽप्लुता दिवं यान्ति मृता मुक्तिं प्रयान्ति च। तीर्थराज इति ख्यातं तत्तीर्थं केशवप्रियम् ॥ सैव त्रिवेणी विख्याता किमपूर्वां प्रशंससि। एतद्गुह्यतमं प्रोक्तं

दक्षिणे भागे……” इत्यादि पद्यों से उनके समीप में बाणगङ्गा की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य सुनाकर उसके बाद कहते हैं कि सालङ्कायन जी ने भी उस क्षेत्र यानि शालग्राम पर्वत में मेरी बड़ी तीव्र तपश्चर्या की. इत्यादि कथा से शिवजी का सालङ्कायन का पुत्रत्व स्वीकार करना फिर उसी बात के प्रसङ्ग से ही—देविका का वर्णन अर्थात् देविका नाम की देवताओं की प्रभा तपस्वियों के शौचाचार के लिये (नदी रूप से) प्रकट होकर गण्डकी से मिली हुई अत्यन्त शुभदायिका है। उसी प्रकार पुलस्त्य और पुलह मुनियों के आश्रम से दूसरी नदी (ब्रह्मपुत्री) प्रकट होकर वह भी गण्डकी से ही मिली है। अतएव त्रिवेणी गण्डकी हुई। वह सभी मनोरथों को देने वाला "कामिक" नाम का महान् तीर्थ है। इत्यादि कथा से त्रिवेणी का माहात्म्य और उसी जगह त्रिजलेश्वर का वर्णन भी करने के बाद धरणी बोली। हे वराहजी ! त्रिवेणी तो प्रयागराज पर है, जहाँ पर भगवान शङ्करजी शूलकण्टक वा सोमेश्वर के नाम से विराजमान हैं। जहाँ पर खुद भगवान् विष्णु भी वेणीमाधव नाम से अवस्थित हैं। वहाँ पर गङ्गा, यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियाँ एकत्र मिली हैं। इस हेतु वहाँ पर सभी देवता, ऋषि, सरोवर और सभी तीर्थों का समाज मैंने सुन रक्खा है। जहाँ पर डुबोकर मरनेवाले स्वर्ग को जाते और खास मृत्यु होने वाले मुक्त हो जाते हैं। वही केशवजी का परमप्रिय तीर्थ राज है और वही तो त्रिवेणी है। फिर दूसरी अपूर्व त्रिवेणी की क्या प्रशंसा करते हैं। हे विष्णो !

त्वया विष्णो ! न संशयः ।। तत्कथ्यतां महाभाग लोकानां हितकाम्यया । मय्यनुक्रोशबुद्ध्या च कृपां कुरु दयानिधे ! वराह उवाच । शृणुष्व देवि ! भद्रं ते यद्गुह्यं परिपृच्छसि । अत्र ते वर्णयिष्यामि सेतिहासां कथां शुभाम् ।। इत्यादिना मुक्तिक्षेत्रान् हरेर्गण्डस्थलाद्गण्डक्या उत्पत्तिं तस्यां शालग्रामशिलारूपेण सर्वदेवतानामवतारं तन्माहात्म्यं गण्डकी देविका ब्रह्मपुत्रीणां सङ्गमरूपायाः पुनस्त्रिवेण्या माहात्म्यं तत्रैव ग्राहगजेन्द्रयोर्युद्धञ्च वर्णयित्वा "ततो जलेश्वरो राजा भगवन्तं व्यजिज्ञपत् । तेन विज्ञापितो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ।। सुदर्शनेन चक्रेण ग्राहास्यं समपाटयत् । क्षिप्तं पुनस्तत्तु चक्रं शिलाः सङ्घट्टयद्धरेः । संघट्टनात्तु चक्रस्य शिलाश्चक्रेण लाञ्छिताः ।। बाहुल्येन च भूवर्ये तस्मिन्क्षेत्रे परे मम । वज्रकीटैश्च जातानि सन्ततानि विलोकय ।।" इत्यादिना—एवं तद्वै मम क्षेत्रं सर्वं चक्रमयं त्वभूत्, इत्यन्तेन तत्र शालग्रामचक्रोत्पत्तिप्रकारमुक्त्वा "ततस्तु पञ्चरात्राणि..." इत्यादिना च त्रिवेण्या हरिहरात्मकक्षेत्रत्वं देवाट इति संज्ञां तत्रैव महायोगीसञ्ज्ञकशिवस्यावस्थानं त्रिधारकहंसतीर्था-

---

इसमें कुछ रहस्य की बात जरूर होगी। हे महाभाग ! सभी लोगों की भलाई और मुझे अनुग्रह करने के लिये कृपा पूर्वक कहिये। हे दयानिधे ! इस प्रकार पृथ्वी के प्रश्न किये जाने पर वराहजी बोले। देवि ! तेरा कल्याण हो। जो गुप्त बातें पूछ रही हो वह सुनो। इस विषय में मैं तुझे इतिहास के साथ सारी कथा सुनाऊँगा। इत्यादि वाक्य से मुक्तिक्षेत्र हरिभगवान के कपोल से गण्डकी नदी की उत्पत्ति, उससे शालग्राम शिला रूप से सभी देवताओं के अवतार, उनके माहात्म्य, गण्डकी, देविका और ब्रह्मपुत्रियों के सङ्गम से बनी हुई त्रिवेणी का माहात्म्य, उसी पर ग्राह और गजराज का युद्ध इत्यादि का वर्णन करने के बाद—

राजा जलेश्वर ने भगवान से कई बातों का निवेदन किया, उनकी विनती सुनकर भक्तवत्सल भगवान ने सुदर्शन चक्र से ग्राह का मुँह फोड़डाला और उस चक्र को फेंक दिया। चक्र से टकरा कर उस जगह की सभी शिलायें चक्र लाञ्छित हो गईं। प्रायः पृथ्वीतल में श्रेष्ठ मेरे उस क्षेत्र में वज्र कीटों से चारों ओर फैली हुई शिलायें मिलती हैं। देखो। इस तरह वह मेरा क्षेत्र सभी चक्रमय हो गया। इत्यादि कहकर "ततस्तु पञ्चरात्राणि···" इत्यादि से भी त्रिवेणी का हरिहर सञ्ज्ञक होना, उसकी "देवाट" संज्ञा, उसी पर महायोगेश्वर नामक शिवजी का रहना और त्रिधारक एवम् हंस तीर्थ इत्यादि कहकर फिर

वप्युक्त्वा "आरभ्य मुक्तिक्षेत्रं तत्क्षेत्रं द्वादशयोजनम् । शालग्रामस्वरूपेण मया यत्र स्थितं स्वयम्", इत्यादिना शालग्रामाख्यक्षेत्रस्य दैर्घ्यमुक्त्वा ततः—धरण्युवाच । भगवन्देवदेवेश ! सालङ्कायनको मुनिः। किं चकार तपः कुर्वंस्तव क्षेत्रे विमुक्तिदे। वराह उवाच। अथ दीर्घेण कालेन स ऋषिः संशितव्रतः । तप्यमानो यथान्यायमपश्यच्छालमुत्तमम्। अभिन्नमतुलच्छायं विशालं पुष्पितं तथा। मनोज्ञं च सुगन्धञ्च देवानामपि दुर्लभम् । ऋपिर्ज्ञानपरिश्रान्तः सालङ्कायनकोद्भुतम् ॥ अपश्यच्च पुनः शालं शुभानां शुभदर्शनम्। ततो दृष्ट्वा महाशालं परिश्रान्तो महामुनिः। विश्राममकरोत्तत्र द्रष्टुकामोऽथ मां मुनिः ॥ शालस्य तस्य पूर्वेण स्थितः पश्चान्मुखोमुनिः। मायया मम मूढात्मा शक्तो द्रष्टुं न मामभूत्। ततः पूर्वेण पार्श्वेन तस्य शालस्य सुन्दरि ! ॥ वैशाखमास द्वादश्यां मद्दर्शनमुपागतः। दृष्ट्वामां तत्र स मुनिस्तपस्वी संशितव्रतः॥ तुष्टाव वैदिकैः सूक्तैः प्रणम्य च पुनः पुनः। मत्तेजसा चार्दिताक्षः शनैरुन्मील्य लोचने॥ यावत्पश्यति मां तत्र स्तुवन्स तपसान्वितः। वृक्षस्य दक्षिणे पार्श्वे गतस्तावदहं धरे॥ पूर्वस्थानं परित्यज्य स ऋषिः संशितव्रतः।

उस मुक्ति क्षेत्र से लेकर बारह योजन का वह क्षेत्र है, जहाँ पर शालग्राम स्वरूप से खुद मैं अवस्थित हूँ। इन शब्दों से शालग्राम क्षेत्र के विस्तार के कहे जाने पर—पृथ्वी बोली। हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! आपके मुक्ति क्षेत्र में तपश्चर्या करते हुए सालङ्कायन मुनिने क्या किया ? वराहजी बोले, बहुत समय के बाद तपश्चर्या के नियम में डटे हुए उस महात्माने एक उत्तम शाल वृक्ष को देखा, जो सघन, परछाईंदार, बड़ा फूला खिला हुआ देवताओं के लिये भी दुर्लभ, खुशबू से भरा एवम् मनोहर था। वह सालङ्कायन महात्मा तपोवृत्ति से खिन्न अर्थात् परिश्रान्त था। उसने दुबारा उस शुभकारियों का रम्य दर्शन अद्भुत शाल वृक्ष को देखा। महा वृक्ष को देखकर थके हुए महमुनि ने उसी पर विश्राम लिया। वह मेरा दर्शन चाहता था। उस शाल वृक्ष के सामने पश्चिम मुँह कर बैठे हुए उस मुनि ने मुझे न देखा, चूँकि वह मेरी माया से मोहित रहा। होते होते वैशाख महीने की द्वादशी तिथि पर उस वृक्ष के पूर्व की ओर से मेरा दर्शन पा लिया। हे सुन्दरि ! इस जगह में मुझे देखकर तपस्विराज उस महात्माने वैदिक सूक्त के मन्त्रों से स्तुति की और वह बार बार नमस्कार करता रहा। मेरी कान्ति से पीड़ित नेत्र हो तपोवृत्ति में रह धीरे से आँखे मूँद कर ज्यों ही मुझे देखता है तो मैं भी हे पृथिवी ! उस वृक्ष के दक्षिण तरफ की ओर हो लिया। प्रशंसित है व्रत जिसका ऐसा वह महात्मा भी पहले का स्थान

स्थित्वा मत्प्रमुखे चैव स्तुवन्नेवं मम प्रियम् । ततोऽहं स्तूयमानोवै ऋग्वेदस्यैव ऋग्गतैः ।। स्तोत्रैः संस्तूयमानो हि गतोऽस्मि पश्चिमां दिशम् । ततः पश्चिमपार्श्वेतु स्थितस्तत्रैव माधवि ! ।। यजुर्वेदोक्तमन्त्रेण संस्तुतः पश्चिमांगतः । स्तुवतीत्थं मुनौ देवि गतोऽहमुत्तरां दिशम् ।। तत्रादौसामवेदोक्तैर्मंत्रैः स्तुत्वा च मां मुनिः । ततोऽहं स्तूयमानो वै ऋषिमुख्येन सुन्दरि ।। प्राप्तश्च परमां प्रीतिं तमुवाचऋषीन्तदा । साधुब्रह्मन्महाभाग सालङ्कायन सत्तम ।। तपसानेन संतुष्टस्तुत्या चैवानया तव । वरं वरय भद्रं ते संसिद्धस्तपसा भवान् ।। एवमुक्तः सतु मया सालङ्कायनको मुनिः । सालवृक्षं समाश्रित्य निभृतेनान्तरात्मना ।। ततोऽभाषत मां देवि सऋषिः संशितव्रतः ।। इत्यादिना ।। अन्यच्च गुह्यं वक्ष्यामि सालङ्कायन तच्छृणु । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि येनैतत्क्षेत्रमुत्तमम् । शालग्राममितिख्यातं तन्निबोध मुने शुभम् । योऽयं वृक्षस्त्वया दृष्टः सोऽहमेव न संशयः ।। एतत्कोऽपि न जानाति विना देवं महेश्वरम । मायया‌ऽहं निगूढोऽस्मि त्वत्प्रसादात्प्रकाशितम ।। एवं तस्मै वरं दत्वा सालङ्कायनकाय वै । पश्यतस्तस्य वसुधे

छोड़ मेरे सम्मुख आकर उक्त प्रकार से फिर मेरी परमप्रिय स्तुति करता रहा ।

ऋग्वेद के मन्त्रों से स्तुति किये जाने पर जब वह स्तोत्रपाठों से स्तुति करने लगा तब मैं भी पश्चिम दिशा की ओर चल दिया । हे माधवि ! पश्चिम दिशा में भी यजुर्वेद के मन्त्रों से उसने मेरी स्तुति की, हे देवि ! इस प्रकार वह तो स्तुति करता ही रहा मैं उत्तर दिशा की ओर चला गया । वहाँ पर उसने सामवेदोक्त मन्त्रों से मेरी प्रशंसा की। तब उस ऋषिवर की स्तुति से खूब प्रसन्न होकर उससे कहा । हे ब्रह्मन् ! हे महाभाग ! हे सालङ्कायन ! हे सत्तम ! तुमने अच्छा किया । इस तपश्चर्या और इन स्तुतियों से मैं तुझपर प्रसन्न हूं । वरदान का वरण करो। तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम तपश्चर्या से सिद्ध बन गये हो । जब मैंने ऐसा कहा तो वह सालङ्कायन मुनि भी साल वृक्ष का आश्रय लेकर स्थिर चित्त से मुझ से प्रार्थना करने लगा । हे देवि ! वह ऋषि व्रतपालन करने में प्रशंसा के योग्य था । इत्यादि बातें कहकर आगे जाकर भगवान वराहजी ने यह भी कहा कि और भी रहस्य की बातें कहूँगा । हे सालङ्कायन ! उसे सुनो । तुम्हारे प्रेम से कहने को जा रहा हूँ । इस वास्ते की यह क्षेत्र परम पवित्र है । शुभ शालग्राम क्षेत्र कहलाता है । हे मुने ! इसे फिर से सुनो । तुमने जो इस वृक्ष को देखा है वह मैं ही हूँ । इसमें कोई संदेह नहीं है । भगवान शङ्करजी के सिवाय इस बात को कोई भी नहीं जानता है। माया से छिपा रहता था। तुझ पर प्रसन्न होकर इसका प्रकाश किया । इस प्रकार उस सालङ्कायन मुनि के लिये

तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् ।। वृक्षं दक्षिणतः कृत्वा जगाम स्वाश्रमं मुनिः । मम तद्रोचते स्थानं गिरिकूटशिलोच्चये ।। शालग्राम इतिख्यातं भक्तसंसार मोक्षणम् । इत्यन्तेन शालग्रामशब्दनिर्वचनमुक्त्वा—तत्र "गुह्यानि"त्यादिना तत्रस्थ बिल्वप्रभावादिपञ्चदशतीर्थप्रभावकथनावसरे—चक्रस्वामीतिविख्यातं तस्मिन्क्षेत्रे परं मम । चक्राङ्कितशिला स्तत्र दृश्यन्ते च इतस्ततः ।। चक्राङ्कितशिला यत्र तिष्ठन्ति वरवर्णिनि ! ।। तदेतत् विद्धि वसुधे समन्ताद्योजनत्रयम । इत्युक्त्वा—संभेदोदेवनद्योस्तु समस्तसुरवल्लभः । इत्यारभ्य नेपाले यच्छिवस्थानं समस्तसुरवल्लभम् । तेभ्यस्तेभ्यश्चस्थानेभ्यस्तीर्थेभ्यश्च विशेषतः ।। महादेवजटाजूटान्नीलकण्ठाच्छिवालयात् । शीतगङ्गेति या प्रोक्ता तया संभूय सादरम् ।। नानानद्यः समायाता दृश्यादृश्यतया स्थिताः । गण्डक्या कृष्णया चैव या कृष्णस्य तनूद्भवा ।। तया सम्भेदमापन्ना या सा शिवतनूद्भवा । त्रिशूलगङ्गेत्याख्याता साऽपितत्र महानदी ।। इत्यन्तेन ।। गण्डकीत्रिशूलगङ्गयोः संगम तत्प्रभावम् ।। "एवं नदीसमुद्भेद"

वरदान देकर हे वसुधे ! उसके देखते देखते में अन्तर्हित होगया । उस वृक्ष की प्रदक्षिणा करके वह मुनि भी अपने आश्रम को चला गया । मुझे पर्वत की चोटी पर शिलाओं के समूह में भक्तजनों का भवबंध मिटाने वाला शालग्राम नाम से प्रसिद्ध जो स्थान है वह बहुत अच्छा लगता है । यहाँ तक की कथा से शालग्राम शब्द के विषय में मीमांसा करके "तत्र गुह्यान्···" इत्यादि श्लोकों से उसी जगह के बिल्वप्रभादि पन्द्रह तीर्थों का प्रभाव वर्णन करते समय यह भी कहा है कि—यहाँ पर चक्रस्वामी नामक दूसरा मेरा क्षेत्र है । उस जगह इधर उधर चारों ओर चक्र चिन्हित शिलायें दीखती हैं । हे सुन्दरि ! उस स्थान पर चारों ओर से तीन योजन की क्षेत्र सीमा जानो जहाँ पर कि चक्राङ्कित शिलायें रहती हैं । फिर से यह भी कहा कि दोनों नदियों का संगम तो समस्त देवताओं का प्रिय है । इत्यादि कथा शुरू करके नेपाल में जो शिवजी का स्थान है वह समस्त देवताओं का प्रिय है । उन्हें उन्हींस्थानों से विशेषतः तीर्थों से भगवान महादेवजी के जटाजूट से नीलकण्ठ से और शिवालय से जो शीतगङ्गा कही गयी है उससे प्रेम के साथ मिलकर कई नदीयाँ आई हुई हैं । उनमें से कई दृश्य और कई अदृश्य भी हैं । गण्डकी और कृष्णानदी जो भगवान कृष्णचन्द्र की देह से प्रकट हुई हैं उनसे शिवजी के शरीर से प्रकट हुई त्रिशूली भी मिली है । अतएव उस जगह वह महानदी भी त्रिशूल गङ्गा के नाम से पुकारी जाती है । इतनी कथा से गण्डकी, त्रिशूलगङ्गा और संगम और उनका

इत्यादिना तत्रैव सिद्धाश्रमं तदन्तर्गतं भृग्वाश्रमञ्चोक्त्वा—अहमस्मिन्महाक्षेत्रे धरे पूर्वमुखस्थितः ॥ शालग्रामे महाक्षेत्रे भूमि भागवत प्रिये ! ॥ इत्यादिना ॥ स्वस्य, शिवोमे दक्षिणंस्थानं तिष्ठते विगतज्वरः । लोकानां प्रवरः श्रेष्ठः सर्वलोकवरोहरः ॥ इत्यादिना शिवस्य च तस्मिन्क्षेत्रेऽवस्थान कथनस्योपसंहारपूर्वकम् । मुक्तिक्षेत्रं प्रथमतो रुरुखण्डं ततः परम्। संभेदो देवनद्योश्च त्रिवेणी च ततः परम् ॥ क्षेत्रप्रमाणं विज्ञेयं गण्डकी संगतः परम्। इत्युपसंहृतवान् वराहरूपी भगवाँन्विष्णुः ततश्चायमर्थः सम्पन्नः ।" शालेन वृक्षविशेषेण गम्यते ज्ञायते पर्वतविशेषः ॐ शालग्रामगिरिस्तीर्थविशेष उक्तो भवति—

गमगतावित्यस्माद्धातोरकर्त्तरिच कारके संज्ञायामिति च" कर्मणिघञ्-पृषोदरादित्वाद्रेफवृद्धौ कृतायां च ग्राम इति सम्पद्यते—ततश्च धातूनामनेकार्थ-

---

प्रभाव और "एवं नदीसे समुद्भेद" इत्यादि कथासे उसी प्रकरण में सिद्धाश्रम और उसके अन्तर्गत भृगुजी का आश्रम इत्यादि स्थानों का वर्णन करके—और भी कहा है कि हे पृथ्वी ! मैं इस विशाल क्षेत्र में पूर्वमुख होकर रहता हूँ । इस शालग्राम महाक्षेत्र की भूमि भगवद्भक्तों के लिये परम प्रिय है। इत्यादि कथा से भगवान वराह ने अपना बयान किया और वह यह भी कहने लगे कि भगवान शङ्करजी निःशंक होकर मेरे दक्षिण भाग में रहते हैं। वह सब के लिये वरदान के देने हारे, सर्व श्रेष्ठ और संसार के पूज्य भी हैं। इत्यादि प्रमाण के श्लोकों से शिवजी का भी उसी क्षेत्र में निवास है। इन बातों कि परिसमाप्ति के बाद उन्होंने यह भी कहा है कि पहला तो मुक्ति क्षेत्र है और दूसरा रुरु खण्ड है जहाँ पर दोनों देवनदियाँ जुटी हुई हैं। तत्पश्चात् त्रिवेणी बनी हुई है। इसका क्षेत्र प्रमाण पूर्वोक्त ही बनना चाहिये जो कि गण्डकी नदी से मिला हुआ है। इस प्रकार भगवान वराह ने शालग्राम के क्षेत्र और प्रमाणों का उपसंहार किया।

अतएव शालग्राम शब्द का यह अर्थ हुआ कि "शालेन वृक्ष विशेषेण गम्यते ज्ञायते" इस विग्रह से सिद्धि हुई। इसका मतलब हुआ कि जो शाल वृक्ष से पता लगता हो अर्थात् शालग्राम नाम का पर्वत या तीर्थ विशेष ही शालग्राम शब्द से कहा जाता है। ग्राम शब्द की सिद्धि इस प्रकार हुई है कि गम्लृ-गतौ धातु से कर्म में संज्ञार्थ के रहते घञ्प्रत्यय हुआ, पृषोदरादि मानकर रेफ का संयोग कर दिया और उपधा की वृद्धि हो गयी। धातुओं के अर्थ अनेक

ॐ "तत्र जातः" इत्यणा सिद्धे मतुबन्त धावनं चिन्त्यम् , तेनैवान्वयव्यतिरेकाभ्यामुभयोरपिविष्णुपर्वतयोर्वाचकत्वसिद्धेरिति भ. श. शा. ।

त्वाद्गमेरपिज्ञानार्थत्वं युक्तमेव। धातूनामनेकार्थत्वं च महाभाष्यकारेणोक्तम्॥ "वपिः प्रवपने दृष्टश्छेदनेऽपि प्रवर्त्तते" इति। अत्र शालशब्दो दन्त्यादि तालव्यादिश्च—तत्राद्यः "सलगतौ" इत्यस्माद्दन्त्यादेर्धातोः सल्यते गम्यत इति कर्मणि घञ् वृद्धौ च साल इति। सारशब्दाद्वा—"भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽति शायने। संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुवादयः॥ इतिवार्तिककारवचनादतिशायने, अर्शआद्यचिकृतेरलयोरैक्यस्मरणात् साल इति। तथा च रायमुकुटः—"पुंसि भूसहमात्रेऽपि सालो वा वर्णसर्जयोरिति"। सालः पादपमात्रेस्यात्प्राकारे सर्जकद्रुमे इति विश्वः। सालो वृक्षान्तरे दुर्गे इत्यनेकार्थः।

द्वितीयस्तु शलगतावित्यस्माद्धातोः शलति वायुना चलतीति ज्वलितिकसंतेभ्योण इति णे कृते शाल इति सिद्ध्यति। "शालोहारे नृपे मत्स्य प्रभेदे सर्जपादपे" इति विश्वः॥ एवं च दन्त्यादिस्तालव्यादिश्च शाल-

---

होते हैं इसलिये यहाँ पर गमधातु का भी ज्ञानार्थक हो गया। भगवान् भाष्यकार ने भी धातुओं का अनेकार्थत्व स्वीकार करते हुए इस प्रकार कहा भी है कि "डुवप् बीजसन्तानयोः" यद्यपि वप्-धातु का बीजारोपण करना अर्थ है जैसे "बीजान् वपति" वही छेदन अर्थ में भी देखा गया है जैसे "केशान् वपति" पितृदान अर्थ में भी समझा गया है जैसे "पिण्डान् वपति" इत्यादि। यहाँ पर शाल शब्द तालव्यादि ही नहीं बल्कि दन्त्यादि भी लिया जाता है। दन्त्य सकारादि पक्ष में "गम्लृ-गतौ" से अकर्तरिच···" सूत्र से कर्म में घञ् प्रत्यय और वृद्धि होने पर "साल" ऐसा रूप सिद्ध हुआ। अथवा "सारोऽस्ति अस्मिन् प्रशस्यः" इस अर्थ में "अर्शआदिभ्योऽच्" इस सूत्र से सार शब्द से अच् प्रत्यय कर टिलोप किया और कहीं पर "रेफ" और "लकार" एक समझे जाते हैं। उसी बात को यहाँ पर भी मान लिया तो मत्वर्थीय अच्प्रत्ययान्त साल शब्द सिद्ध हुआ। क्योंकि मत्वर्थीय प्रत्यय "भूमनिन्दा प्रशंसा······" इत्यादि अर्थ में हुआ करते हैं। ऐसा वार्तिककार मुनि का वचन है। रायमुकुट ने भी निघण्टु में बताया है कि "पुंसि भूरुह···" इत्यादि अर्थात् साल शब्द पुल्लिङ्गी है, वृक्ष मात्र का वाचक है और वर्ण वा सर्ज्ज (धुना) का भी वाचक है। सालः पादप मात्रे·····" इत्यादि श्लोक से साल शब्द का प्राकार (खाई) अर्थ भी विश्वकोष पर लिखा है। इनके अतिरिक्त अनेकार्थ कोशकार ने साल शब्द का दुर्ग और वृक्षान्तर अर्थ भी कहा है।

अथवा तालव्य शकारादि के पक्ष में गत्यर्थक शल् धातु से "ज्वलतिकसन्त···" इस सूत्र करके ण प्रत्यय करने से 'शालरूप सिद्ध होता है। उसके अर्थ, हार, नृपति, मत्स्य विशेष और वृक्ष विशेष (सर्ज्ज) इत्यादि होते हैं। विश्वकोश में

शब्दो दृश्यते। इति। अन्यत्सर्वंस्पष्टमेव। तस्याः शालग्रामशिलाया लक्षणानि चक्रादीनि लक्ष्या शालग्रामाख्या शुद्धाशिला ॥ तस्मिञ्छिलाः समग्रास्तु मत्स्वरूपा न संशयः। पूजनीयाः प्रयत्नेन किं पुनश्चक्रलाञ्छिताः॥ इत्युक्तत्वात् सा च शालग्रामपूजा नित्या तथा च पुराणसंग्रहे नारदं प्रति ब्रह्मणो वचनम्—

देवर्षेः किं बहूक्तेन शृणु मे निश्चितं वचः। शालग्रामशिलानित्यं पूजनीयाः सदा द्विजैः॥ शालग्रामशिलापूजां विना योऽश्नाति मानवः। स चाण्डालोऽपि विष्ठायामाकल्पं जायते कृमिः॥ इति हेमाद्रौ देवलः। शालग्रामहरेश्चिह्नं प्रत्यहं पूजयेन्नरः॥ इति तदकरणेप्रायश्चित्तमुक्तवान् हेमाद्रौ गौतमः—यदि विप्रः समुत्सृज्य शालग्रामशिलार्चनम्। स याति नरकं घोरं यावदा चन्द्रतारकम्॥ तस्य पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तमुदाहृतम्। ब्रह्मकृच्छ्रं चरेत्तत्र दिनैकस्मिन् द्विजोत्तमः॥ मासत्यागे पर्णकृच्छ्रं

ऐसा कहा है। "रसालः सालः समदृश्यतामुना" यह नैषध है। अतएव कतिपय स्थल में "शाल-वा-साल" ये दोनों शब्द प्रयोग किये गये हैं। और शेष बातें सब स्पष्ट हैं। उक्त प्रकार से शालग्राम नामक शुद्ध शिला तो लक्ष्य है और उसमें चक्रचिन्ह वगैरह लक्षण हैं। क्योंकि कह चुके हैं कि "उस शालग्राम क्षेत्र की सभी शिलायें मेरे स्वरूप हैं। यत्नपूर्वक उनकी पूजा होनी चाहिये। उनमें से फिर चक्र चिह्नित शिलाओं की तो बात ही क्या है। इत्यादि।

शालग्राम की पूजा काम्य कर्म नहीं किन्तु नित्य कर्म है। क्योंकि पुराण संग्रह में नारद के प्रति ब्रह्माजी का ऐसा वचन है—हे नारद जी! और बकवाद से क्या होगा मेरी अटल बात सुनो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब को चाहिये कि ये सदा शालग्राम शिला की नित्य पूजा करें। विना उस शिला की पूजा किये जो खाता है, उस मनुष्य को चाण्डाल समझना चाहिये और वह एक कल्प पर्यन्त विष्ठा पर कीड़ा हो जाता है। इस प्रकार हेमाद्रि में देवल जी ने कहा है। मनुष्य शालग्राम रूपी हरि भगवान के चिह्न की प्रतिदिन पूजा करें।

ऐसा कहकर पूजा नहीं करने से उन्होंने प्रायश्चित्त भी बताया है। हेमाद्रि में गौतमजी का वचन है कि—यदि ब्राह्मण होकर शालग्राम शिला की पूजा को छोड़ देता है वह जब तक चन्द्र और तारायें रहती हैं तब तक घोर नरक को जाता है। उस पाप के संशोधन के लिये प्रायश्चित्त बताया गया है। ब्राह्मण एक दिन की पूजा त्याग करने से ब्रह्मकृच्छ्रव्रत करे, एक महीने भर त्याग दे तो तप्तकृच्छ्र,

वर्षेत्वौदुम्बरं चरेत् । शालग्रामो यदा नास्ति यत्र चैषामृतोद्भवा । श्मशान-सदृशं गेहं स विप्रः पङ्क्तिदूषकः ॥ इति ॥

अथ, मुद्राक्षेत्रं परीमाणमासनं मूर्तिभेदकम् । स्थूलसूक्ष्मविभेदं च चक्रलक्षणमेव च ॥ सम्यग्विचार्य मतिमान् सामान्यं लक्षणं तथा। पूजयेद्भक्तितो नित्यं यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥ इत्युक्तत्वात् शालग्रामपरीक्षो-पयोगी मुद्रादिकं विविच्य लिख्यते—

तत्र मुद्रा तु वैखानससंहितायाम् । ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । संशयं मे समुद्भूतं छेत्तुमर्हसि वै विभो ॥ शाल-ग्रामस्य यत्पुण्यं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्रास्ति च हरिः साक्षात्सर्वदेवैः समन्वितः ॥ तत्रोत्पन्नाः शिला विष्णोः सूक्ष्मा सूक्ष्मतरास्तथा । प्रादुर्भावै-श्चविविधैराकारैश्चसमन्विताः ॥ आयुर्दाः कामदाः प्रोक्ता भोगमोक्षप्रदा-स्तथा । शस्ता अशस्ताश्च तथा एतदाख्यातुमर्हसि ॥ श्रीभगवानुवाच। शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि शालग्रामगिरिर्हरिः । यस्माद्धरिः स्थितस्तत्तत्प्रादुर्भो-

---

और वर्ष दिन छोड़ दे तो औदुम्बर व्रत का आचरण करे । जिस ब्राह्मण के घर में शालग्राम की शिला या गाय नहीं है उसका घर घर नहीं बल्कि श्मशान है। वह ब्राह्मण ब्रह्मपङ्क्ति का दूषक है । इत्यादि ।

अब "मुद्रा, क्षेत्र, परिमाण, आसन, मूर्तियों का भेद, छोटे बड़े का भेद, चक्रों के लक्षण और सामान्य के लक्षण इन सब बातों का अच्छी तरह से विचार करके प्रेम से नित्य प्रति शालग्राम शिला की पूजा करने वाला बुद्धिमान पुरुष ही शास्त्रोक्त फलभागी होता है।" इस प्रमाण के अनुसार मुद्रादिक शालग्राम परीक्षा की उपयोगी बातें विचार करके लिखी जाती हैं। उनमें से पहले वैखानस संहिता के अनुसार मुद्रा का विचार किया जाता है। ब्रह्माजी बोले—हे शङ्खचक्रगदाधर भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे विभो ! मुझे सन्देह हो रहा है, आप उसके निवारण में समर्थ हैं । शालग्राम क्षेत्र का जो पुण्य है वह तीनों लोक में प्रसिद्ध है । वहाँ पर सभी देवताओं से युक्त होकर साक्षात् हरि भगवान रहते हैं । उस जगह पर अनेक तरह के आकार से, अनेकों लक्षण से युक्त होकर उत्पन्न हुई छोटी मोटी हर तरह की विष्णुशिलाय आयु, काम, मुक्ति की देनी वाली कही गयी हैं, उनमें से कितनी तो पूजायोग्य और अयोग्य भी होंगी, इस बात को बताइये ।

श्री भगवान बोले । हे ब्रह्मन् ! कहूँगा सुनिये, अनेक तरह के अवतारों से हरिभगवान के रहने के कारण शालग्राम पर्वत खास भगवान स्वरूप है । वह

वैरनेकशः ॥ लक्षणैर्विविधाकारैर्लाञ्छितं चैव दृश्यते। शैलं सूक्ष्ममसूक्ष्मं वा मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ॥ एकपद्माङ्किता या तु दक्षिणावर्तसंस्थिता। चतुर्लाञ्छनसंयुक्ता भोगमोक्षप्रदा शुभा ॥ यद्येकस्यां संस्थिते द्वे नाभ्यां च संवृते स्थिते। केनापि लाञ्छनेनैघ चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ लाञ्छनेनेत्यादौ सर्वत्र युक्तेत्यध्याहारः ॥ "चक्रेण कम्बुना या च पद्मेन गदयाङ्किता। तत्र श्रीः प्रत्यहं तिष्ठेत्सदा सम्पद आविशेत् ॥" कम्बुः शङ्खः ॥ लाञ्छनेन विनायास्यादप्रशस्ता तु सा स्मृता। चक्रं वा केवलं यत्र पद्मे वा ऽप्यथवा गदा ॥ लाञ्छने वनमाला वा हरिर्लक्ष्म्यासहस्थितः। तस्मिन् गृहे न दारिद्र्यं नरोगो नोरगाद्भयम् ॥ नचैवाग्निभयं तत्र ग्रहैर्दुष्टैर्न बाध्यते। अन्ते मोक्षो भवेत्तस्य पूजनादेव नित्यशः ॥ केवलं पद्मसंयुक्ता या सा वैकुण्ठ उच्यते। घोराकृतिर्वराहाख्या चतुर्लाञ्छनसंयुता ॥ चक्रेण दृश्यते लिङ्गं तदा तत्र सुशोभना। वराहमूर्त्तिसंयुक्ता सर्वकाम फलप्रदा ॥ दद्यात्सामोक्षसंसिद्धिं ब्रह्मचर्येण पूजिता। वनमाला तु

अनेकों चिह्न से लाञ्छित भी दीखता है, जिस जगह छोटी बड़ी पहाड़ियाँ भी हैं, यही तो मुद्रा है। जिस शिला में कमलाकार चिह्न एक हो, दाहिनी ओर आवर्त हो और चार चिह्न से संयुक्त हो तो वह भुक्ति आर मुक्ति को देने वाली शुभ होती है। यदि एक ही शिला में दो आवर्त और नाभि भी दो बनी हों, किसी भी चिह्न से युक्त हो तो वह चतुर्वर्गफल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) देती है। जहाँ पर "लाञ्छनेन" कहेंगे वहाँ पर सर्वत्र "युक्ता" इस पद का अध्याहार करना चाहिये (चिह्न से युक्त, इसका मतलब है) शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म से अङ्कित जो शिला होती है सदा उस जगह सारी सम्पत्तियों के साथ लक्ष्मी आ बेठती है। कम्बुः शङ्ख का नाम है। जिसमें कोई चिह्न नहीं है वह शिला अप्रशस्त मानी गयी है। जिसमें खाली चक्र ही हो या पद्म ही हो अथवा केवल गदा हो या वनमाला का चिह्न ही हो तो वहाँ पर लक्ष्मी के साथ हरिभगवान निवास करते हैं। उस घर में न दारिद्र्य ठहरेगा, न रोग, न तो सर्पों और न अग्नि से ही भय रहेगा और दुष्ट ग्रहों से भी पीड़ा न होगी। नित्य पूजा करने से अन्तकाल में उसका मोक्ष होगा। जो शिला केवल पद्मचिह्न से संयुक्त है उसे वैकुण्ठ कहा जाता है। नासिका के आकार की चार प्रकार के चिह्नों से संयुक्त शिला वराह संज्ञक होती है। यदि चक्र के साथ लिङ्गाङ्कित हो, वराहसंज्ञक शिला से मिलती जुलती हो तो वह सब से अच्छी शिला है और सभी कामनाओं की देने वाली होती है। यदि ब्रह्मचर्य में रहकर उसकी पूजा करें तो वह मोक्षफल देती है। जिनमें वनमाला,

वैयस्यामक्षसूत्रकमण्डलू ॥ कपिलाख्या भवेन्मुद्रा धनैश्वर्य प्रदायिका। दर्शनान्नश्यते पापं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । सान्निध्यान्मंत्रपूर्वेण पूजनेन फलाधिका ॥ शूलचिह्नाङ्किता याच कलशेन समन्विता। वैनतेयी भवेन्मुद्रा लक्षणैश्च समन्विता ॥ सा जयाख्या परा मुद्रा चतुर्वर्गफलप्रदा। मीनादि मूर्त्तिसंयुक्ता सर्वकामार्थसंयुता ॥ पद्मासनस्था सामुद्रा सर्वकामप्रदा शुभा। एकैकेनैव चिह्नेन लाञ्छिताऽनेन शस्यते ॥ अश्वाकृतिस्तथा मुद्रासाक्षमाला सपुस्तका। पद्माङ्किता भवेन्मुद्रा हयग्रीवेति विश्रुता ॥ भयदुःखाशुभैस्त्यक्तो नरःपापात्प्रमुच्यते। अक्षयं च भवेत्तस्य लक्ष्म्याद्यैश्वर्यमुत्तमम् ॥ प्रागुक्तलाञ्छनास्सर्वे यस्यामेकत्र संस्थिताः। सर्वत्र सर्वदा पूज्या मुच्यते सर्ववंधनैः ॥ इति ॥ पुराणसङ्ग्रहेऽपि — मत्स्याख्या कूर्मसंयुक्ता कूर्माख्या मत्स्यसंयुता। पद्मासनस्था सामुद्राह्यर्थकामफलप्रदा ॥ ततोऽन्यामूर्त्तिरन्योन्य लाञ्छिता नैवशस्यते। घोररूपैर्वराहाख्या चतुर्लाञ्छनसंयुता ॥ दद्यात्सामोक्षसंसिद्धिं ब्रह्मचर्येणपूजिता। नेत्रेसम्मीलिते यस्याः कलशेन समायुता ॥

अक्षसूत्र और कमण्डल के चिह्न हैं वह धन ऐश्वर्य की देने वाली कपिलासंज्ञक मुद्रा (घुणा ऊर्पा) होती है। उसके दर्शन से ब्रह्महत्या के जैसे पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके नजदीक में रहकर मंत्र पूर्वक पूजा करने से अधिक फल को देती है। जो शूल और कलश के चिह्न से युक्त है और उक्त लक्षण भी उसमें पाये जाते हों तो वह वैनतेयी मुद्रा होती है। उसी को कितने लोग जयामुद्रा भी कहते हैं। वह चतुर्वर्ग फल को देती है। यदि मत्स्यादि चिह्नसे संयुक्त हो तो सम्पूर्ण कामनाओं को देती है। वह मुद्रा पद्मासनस्थ हो तो शुभफल की दायिनी होती है। उक्त एक-एक चिह्न से जो लाञ्छित है वह श्रेष्ठ मानी जाती है। अक्षमाला और पुस्तक से युक्त शिला हो तो अश्वाकृति मुद्रा होती है। उसी में पद्माकार भी हो तो हयग्रीवाख्य मुद्रा होती है, उसकी पूजा से मनुष्य भय, दुःख और अशुभ से रहित होकर पाप से मुक्त हो जाता है। उसकी लक्ष्मी और धन धान्यादिक ऐश्वर्य अक्षय रहेंगे। जिस शिला में पूर्वोक्त सभी लक्षण पाये जाते हों तो वह सदा सर्वपूज्य है, उसकी पूजा करने से मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इत्यादि। पुराणसङ्ग्रह में भी कहा है कि—यदि पद्मासन के रहते कूर्म (कछुवा) से युक्त शिला हो तो मत्स्यमुद्रा, एवम् मत्स्याकार (मछली) से युक्त हो तो कूर्म मुद्रा होती है। वह धन धान्यादिक ईप्सितफल को देती है। उक्त लक्षण के विरुद्ध अन्योन्य चिन्हों से लाञ्छित मूर्तियाँ नहीं अच्छी समझी जाती हैं। चारों चि के साथ नासिकाकार भी हो तो वराह मुद्रा होती है। ब्रह्मचर्य में रहकर पूजा करने से वह मोक्ष की सिद्धि को देती है। जिसकी आँखें बन्द हों और कलश और अन्य चिन्हों से भी अङ्कित हो तो वह

वैनतेयी भवेन्मुद्रा लाञ्छनैश्च सुलक्षिता। पूजितातु भवेन्मुद्रा भुक्तिमुक्ति-फलप्रदा ॥ इति ॥ प्रयोगपरिजातेऽपि—पाञ्चजन्याङ्किता या तु पद्मेन गदया युता। तत्र श्रीः प्रत्यहं तिष्ठेत्सदासम्पदमादिशेत् ॥ पाञ्चजन्यः शंखः। जयाख्या परमा मुद्रा चतुर्वर्गफलप्रदा। एषां वै केन चिन्हेन लाञ्छिता चैव दृश्यते ॥ इति ॥ इतिमुद्राख्यं लक्षणम् ॥

अथ क्षेत्राख्यं लक्षणमुच्यते—

ब्रह्माण्डपुराणे नारदं प्रति ब्रह्मणो वचनम्।

क्षेत्रं तु त्रिविधं प्रोक्तं मूर्त्तितो वर्णतस्तथा। मिश्रलक्षणतश्चेति विज्ञा-तव्यं विचक्षणैः ॥ वामनानामच्युतं स्याच्छ्रीधराणां च वामनम्। क्षेत्रं वाराहमूर्त्तेस्तु श्रीधरन्त्वखिलप्रदम्। हयग्रीवस्य वाराहं लक्ष्मीक्षेत्रमथा-पिवा। क्षेत्रं नारायणं ज्ञेयमन्येषां क्रमशस्तथा। इति। कपिलं नारसिंहन्तु वामनन्त्वसितप्रभम्। दामोदरं तु नीलाभमनिरुद्धं तथैव च। श्यामं नारायणं क्षेत्रमेवं च मुनिपुङ्गव ! ॥ इति ॥

वैनतेयी मुद्रा होती है, पूजा करने से भोग और मोक्ष दोनों की देनेवाली होती है।

प्रयोग पारिजात में भी कहा है कि—

जो शिला पाञ्चजन्य, गदा और पद्म से युक्त है उसके रहते हर रोज लक्ष्मी निवास करती और सदा सम्पत्तियां आकर टूट पड़ती हैं। शंख का नाम पाञ्चजन्य है। उक्त चिह्नों में कोई एक हो तो वह जयामुद्रा कही जाती और चतुर्वर्गोक्त फल को देती है। इस प्रकार मुद्राओंका लक्षण समाप्त हो गया।

अब क्षेत्र के लक्षणों का निरूपण करते हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में नारद के प्रति ब्रह्माजी का वचन है कि—विद्वान् लोगों ने मूर्ति, वर्ण और उनके मिश्र लक्षणों के भेद से तीन प्रकार का क्षेत्र कहा है उसको इस प्रकार जानना चाहिये। वामनों का अच्युत और श्रीधरों का वामन एवम्, वाराह मूर्ति का क्षेत्र श्रीधर होता है, वह अखिलार्थ को देता है। हयग्रीव का वाराह वा लक्ष्मी अथवा नारायणक्षेत्र होता है। इस प्रकार क्रमशः औरों का क्षेत्र भी जानना चाहिये। (अथवा जिनके क्षेत्र का पता नहीं है उनका नारायण क्षेत्र जानना चाहिये) यह तो मूर्तिक्षेत्र हुआ। अब वर्णक्षेत्र का वर्णन किया जाता है—हे मुनिश्रेष्ठ ! कपिलवर्ण के नारसिंह, कालेवर्ण के वामन, श्वेत के वासुदेव, लाल के सङ्कर्षण, नील के दामोदर वा अनिरुद्ध, मेघवर्ण के नारायणक्षेत्र होते हैं। कालेवर्णवाले विष्णु माने गये हैं एवं रीत्या

पुराणसंग्रहेऽपि—"वासुदेवं सितं विद्याद्रक्तं संकर्षणन्तथा" ॥ इति। पाद्मेऽपि-कपिलं नारसिंहं च वामनं त्वसितप्रभम्। वासुदेवं सितं ज्ञेयं रक्तं सङ्कर्षणं स्मृतम्। दामोदरन्तु नीलाभमनिरुद्धं तथैव च। श्यामं नारायणं प्रोक्तं कृष्णवर्णन्तु वैष्णवम्। बहुवर्णमनन्तं स्यात्पीतं श्रीधरमुच्यते ॥

अन्यत्र। संकर्षणन्तु रक्ताभं प्रद्युम्नं श्यामवर्णकम्। अनिरुद्धं तु नीलाभं चतुर्व्यूहमितिस्मृतम् ॥ लक्षणान्तरयोगेन तत्तत्क्षेत्रमुदाहृतम्। यस्यामूर्त्तेरन्यद्वर्णेतरलक्षणसंभवः। तत्र लक्षणतः क्षेत्रं तदभावे तु वर्णतः ॥ तदभावे मूर्त्तितश्च त्रिधा ज्ञेयं विचक्षणैः। अनेकमिश्रयोगेतु मिश्रक्षेत्रमुदाहृतम् ॥ इति क्षेत्राख्यं लक्षणम्।

अथ परिमाणाख्यं लक्षणमुच्यते।

मुखं परिमाणमित्यर्थः। हेमाद्रौ पुराणसंग्रहे। वृत्तसूत्राष्टमो भाग उत्तमं वक्त्रलक्षणम्। मध्यमं तु चतुर्भागं कनीयस्तु त्रिभागकम् ॥ इति, अस्यार्थः—शालग्रामक्षेत्रं सूत्रेण संवेष्टयेत् सूत्राष्टमांशेन चेच्छालग्राममुखं मितं भवेत्तदुत्तमम्। चतुर्भागमितं तदामध्यमम्। तृतीयांशमितं तदा कनीय-इत्युक्तोत्तममध्यमकनीयस्त्वं विचार्य ग्राह्यम्। फलमपि स्कंदपुराणे उक्तम्—

बहुवर्ण के अनन्त और पीतवर्ण के श्रीधर होते हैं। और प्रमाणों से भी लाल संकर्षण, सावले प्रद्युम्न, नीलवर्ण के अनिरुद्ध इस तरह से इनका चतुर्व्यूह क्षेत्र माना गया है। और लक्षणान्तर के समावेश से भी उन क्षेत्रों का उदाहरण दिया गया है। जिस मूर्ति का वर्ण और लक्षण दूसरा भी हो सकता है वहाँ पर लक्षण से क्षेत्र का पता लगा लेना चाहिये। लक्षण का अभाव हो तो वर्ण से वर्ण लक्षण की अभाव अवस्था में मूर्त्ति से इस प्रकार विद्वान् लोग तीन प्रकार के क्षेत्र लक्षण को जाने। क्षेत्र लक्षण समाप्त हुआ।

इसके बाद परिमाण का लक्षण कहा जाता है।

यहाँ पर परिमाण शब्द से मुख लिया जाता है। हेमाद्रि के अनुसार पुराण सग्रह में कहा है—सूत्र को गोलाकार बनाकर उसका आठवाँ हिस्सा हो तो उत्तम मुख होता है। यदि सूत्र का चतुर्भाग ही हो तो मध्यम और त्रिभाग ही हो तो कनिष्ठ। इसका यह मतलब है कि शालग्राम शिला को सूत्र से वेष्टन करे उस सूत्र के अष्टमांश से यदि शालग्राम शिला का मुँह ठीक माप पर आसकता हो तो उसे उत्तम, इसी तरह उस सूत्र के चौथे हिस्से के बराबर शालग्राम शिला का मुख हो तो वह मध्यम और सूत्र के तृतीयांश के नाप से जिसके मुख का परिमाण ठीक बैठता हो वह कनिष्ठ जानना चाहिये। इस प्रकार

उत्तमं शुभदं प्रोक्तं जघन्यं निन्दितं भवेत्। मध्यमं नामसदृशं फलदं हि प्रकीर्त्तितम् ॥ इति परिमाणाख्यं लक्षणम् ।

अथाऽऽसनाख्यं लक्षणमुच्यते ।

तत्रासनं चतुर्विधं चरस्थिरविषमपार्श्वभेदात् तदुक्तं स्कन्दपुराणे— आसनं तु चतुर्धा स्याच्चलञ्चाचलमेव च। विषमं पार्श्वकं चैव शालग्रामशिलागतं। इति। फलमपि तत्रैवोक्तम्। अचलेतु स्थिरालक्ष्मीश्चलं तु स्थानभङ्गदम्। दुःखप्रदं तु विषमं पार्श्वञ्चोद्वेगदायकम्। आसनं तु विचार्यैव ग्राह्यं लक्षणकोविदैः ॥ इत्यासनाख्यं लक्षणम् ।

अथमूर्त्तिभेदाख्यं लक्षणमुच्यते ।

सर्वा अपि शालग्रामशिलामूर्त्तयो द्विविधाः। जलजस्थलजभेदात्। तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे —

मूर्त्तयो द्विविधा ज्ञेया जलजाः स्थलजास्तथा। जलजाः कोमलाः स्निग्धाः स्थलजाः परुषाः स्मृता इति। फलमप्येतयोस्तु तत्रैवोक्तम्।

उत्तम मध्यम और कनिष्ठ मुखवाली शिलाओं का पता लगाकर ग्रहण करना चाहिये। स्कन्दपुराण में इसका फल भी वर्णन किया है।

उत्तम शालग्राम शुभ को देता, कनिष्ठ अच्छा नहीं होता और मध्यम मध्यम ही फल को देता है। इत्यादि ॥ परिमाण लक्षण समाप्त ॥

अब उनके आसनों का लक्षण बताया जाता है।

चर, स्थिर, विषम और पार्श्व के भेद से आसन चार प्रकार के होते हैं। स्कन्दपुराण में कहा है कि—

शालग्राम शिला के अन्तर्गत चल, अचल, विषम और पार्श्वक ये चार प्रकार के आसन होते हैं। उसी जगह इनका फल भी बताया है। अचल की पूजा से लक्ष्मी अटल रहती है चलमूर्त्ति स्थान का भंग करती है। विषम दुःख का देनेहारा होता है। और पार्श्व उद्वेगदायक है। इस प्रकार से विद्वानों को चाहिये कि उनका लक्षण जानकर ग्रहण करें। यह तो आसनों का लक्षण हुआ।

अब मूर्त्ति भेद का लक्षण कहा जाता है।

सभी शालग्राम की शिला मूर्तियाँ दो तरह की होती हैं। जैसे जलज और स्थलज सो ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है—

जलज और स्थलज के भेद से मूर्त्तियाँ दो प्रकार की जाननी चाहिये। जलज कोमल और चिकनी स्थलज कठोर या रुखी समझी गयी है। इत्यादि।

मूर्तयस्तुष्टिदाः स्निग्धा मोक्षदाः परुषाः स्मृता इति। इतिमूर्तिभेदाख्यं लक्षणम्।

अथ शिलायाः स्थूलसूक्ष्माख्यं लक्षणमुच्यते।

पूर्वोक्तलक्षणलक्षितासु शालग्रामशिलामूर्तिषु सूक्ष्मा एव मूर्तयः फलाधिक्यात्प्रशस्ततरत्वाच्च पूजनीयाः। तथा चोक्तं पद्मपुराणे—

शालग्रामशिलालक्षणानन्तरम्। एतल्लक्षणसंयुक्ता मूर्तयः फलदाः स्मृताः। याश्च तास्वपि सूक्ष्माः स्युस्ताः प्रशस्ततराः स्मृताः॥ यथा यथा शिलासूक्ष्मा महत्पुण्यन्तथा तथा। तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धये॥ तत्राप्यामलकी तुल्या सूक्ष्मा चातीव या भवेत्। तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रियासह वसाम्यहम्॥ अतिस्थूलातु या मूर्त्तिगृहस्थस्तान्न पूजयेदिति निषेधात् स्थूलमूर्त्तिपूजनं वक्ष्यमाणरीत्या सतिसंभवे निषिद्धमिति ज्ञेयम्। इति स्थूलसूक्ष्माख्यं लक्षणम्।

अथ शिलायाश्चक्राख्यं लक्षणमुच्यते

वैखानससंहितायाम्। नारद उवाच। ममाचक्ष्व परं रूपं चक्राणां

इन दोनों भेद का फल भी उसी जगह बताया गया है। कोमल मूर्त्तियाँ तुष्टि और कर्कश मोक्षदायिका होती हैं।

इतिमूर्तिभेदाख्यं लक्षणम्

इसके आगे स्थूल सूक्ष्म शिलाओं का लक्षण कहा जायेगा। पूर्वोक्त लक्षण से लक्षित शालग्राम शिला की मूर्त्तियों में छोटी मूर्तियाँ ही अधिक फल को देनेवाली और श्रेष्ठ होती है। इसलिये छोटी ही मूर्त्ति पूजार्ह होती है। इस पर पद्मपुराण का वचन है कि—शालग्राम शिलाओं की व्याख्या करते हुए इन लक्षणों से संयुक्त मूर्त्तियाँ फलदायक होती हैं। उनमें से भी छोटी मूर्त्तियाँ अधिक अच्छी समझी जाती हैं। जितनी सूक्ष्म शिला होती है उतना ही महान पुण्य होता है। यह जानकर धर्म, काम, अर्थ और सिद्धि के लिये नित्य छोटी ही शिला की पूजा करें। उनपर भी जो आमले के तुल्य की सूक्ष्म शिला होती है, हे ब्रह्मन् उसी पर मैं लक्ष्मी के साथ सदा निवास करता हूँ। गृहस्थ लोग अतिस्थूल मूर्त्ति की पूजा न करें इत्यादि निषेध वाक्य से वक्ष्यमाण रीति के अनुसार स्थूल मूर्त्ति की पूजा करना संभव के रहते निषेध किया है इत्यादि॥

अब शिलासम्बन्धि चक्रों का लक्षण बताया जाता है।

वैखानस संहिता पर नारदजी ने कहा कि हे मुनीश्वर! सर्वसिद्धि और

लक्षणं मुने ।। सर्वसिद्धिकरं चैव सर्वकामार्थसाधकम् ।। वैखानस उवाच । दिव्यवर्षसहस्रं तु हरिराराधितो मया । ततः सोवाच भगवान् विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।। वरं वृणोष्व प्रीतोऽस्मि तपसा तव सुव्रत । इत्याकर्ण्य मया देवो विज्ञप्तो भुवनेश्वरः ।। शालग्रामसमुद्भूतचक्राणां लक्षणं प्रभो । कथयस्व प्रसादेन यदि तुष्टोसि माधव ।। तच्छ्रुत्वा च वचो मह्यं स्तूयमानोऽब्रवीदिदम् ।। विष्णुरुवाच । लक्षणं यत्तु चक्राणां तच्छृणुष्व महामुने ।। धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थैकहेतुकम् ।। केचिल्लाञ्छनसंयुक्ताः शंखाकारेणसंयुताः । केचिल्लिङ्गसमोपेताः केचिच्चक्रेणसंयुताः ।। दशयोजनविस्तीर्णं ममक्षेत्रं द्विजोत्तम । उत्तरे चैव दिग्भागे प्रमाणं योजनं तथा। नीलनाम्नापर्वतस्तु चक्रनामाङ्किता नदी। विष्णुनामाङ्कितस्थानि ममरूपाणि सर्वतः । त्रिकालं शिखरारूढश्चाप्सरोगणसेवितः । शैलमूर्त्तिरहं तत्र अव्यक्ताख्यं च ये विदुः ।। षोडशैरुपचारैर्मे तत्राऽर्चां तु विधाय च । गन्धैर्वा विविधैश्चैव संस्तूय तदनन्तरम् ।। भोजनं च बलिं दत्वा

सभी कामार्थ के साधक चक्रों का ठीक रूप और लक्षण मुझे बताइये । वैखानस जी बोले । दिव्य सहस्त्रवर्ष तक मैंने हरि भगवान की आराधना की तब त्रिभुवनेश्वर भगवान विष्णु प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे कि हे सुव्रत ! मैं तुम्हारी तपश्चर्या से मैं प्रसन्न हूँ वरदान माँगो । इस प्रकार सुनकर भुवनेश्वर भगवान से मैंने प्रार्थना किया कि हे प्रभो, यदि आप प्रसन्न हों तो शालग्राम शिलाओं पर चक्रों का लक्षण बताइये । यह सुनकर स्तुति करते हुए मुझसे भगवान् विष्णु इस प्रकार कहने लगे कि हे महामुने ! अब पुरुषार्थ का एकमात्र मूल कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का देनेवाला चक्रों का लक्षण सुनिये । कितने शङ्ख से, कितने लिङ्ग से और कितने चक्र से लाञ्छित शिलायें होती हैं ।

हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे इस क्षेत्र का विस्तार दश योजन का है उत्तर की ओर एक योजन का प्रमाण है । उस जगह नील नाम का पर्वत और चक्र नाम की नदी है । वहाँ पर चारों ओर विष्णुनाम से अङ्कित मेरे रूप हैं । तीनों काल उस पर्वत की चोटी पर आरूढ़होकर शैलमूर्ति स्वरूप में रहता हूँ । अप्सरायें आकर मेरी सेवा करती हैं । जो मुझे योगी लोग अव्यक्तस्वरूप जानते हैं ।

शालग्राम ग्रहण करने का प्रकार

भगवान कहते हैं कि उस स्थान पर षोडशोपचार से मेरी पूजा करके अनेक प्रकार के सुगन्धों को चढ़ाकर स्तुति करने के पश्चात् भोजन नैवेद्य और

चक्रं ग्राह्यं हरेरिति । मत्स्याङ्किताश्चये चक्रा आयुर्दाः पुष्टिदा नृणाम् । सदा पूज्या गृहस्थेन स्थितस्तत्र हि केशवः ॥ कूर्माङ्किताश्च ये चक्रा महासंततिकारकाः । महार्थकारिका दिव्या हरिस्तत्र व्यवस्थितः ॥ वाराहमूर्त्तिसंयुक्तं यत्तु चक्रं प्रदृश्यते । पूजनाल्लभते राज्यं पृथिव्यामेकराड् भवेत् ॥ नरसिंहाङ्कितं चक्रं दुर्ल्लभं भुवि मानवैः । शत्रूणां नाशनं तद्धि क्लेशघ्नं परिकीर्तितम् । स्तम्भनं परसैन्यस्य महामृत्युहरं परम् । अङ्कितं वामनेन स्याच्चक्रं परमशोभनम् ॥ नानावृद्धिकरञ्चैव अघक्षयकरं भवेत् । चक्रमध्येतु दृश्येत जामदग्न्यस्य रूपकम् ॥ यत्तन्नामाङ्कितं चक्रं जामदग्न्यं प्रकीर्तितम् । इति । गरुडपुराणे—गण्डक्याश्चोत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे । क्षेत्रन्तुविष्णुसान्निध्यात्सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥ योजनानां द्वादशयुग् वहुतीर्थसमाकुलम् । तत्र चक्रनदीनाम तीर्थं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ तस्योत्तरे महाश्रृङ्गी ममप्रीतिकरस्तथा । तच्छायागर्भितास्तत्र पाषाणाश्च खगेश्वर ॥ मच्चिह्नैश्चिह्निताश्चैव तरवो धरणीतले । नाराणामपिपक्षीणां किञ्चित्कालनिवासिनाम् ॥ सर्वास्थिषु

बलिदान देकर हरि भगवान का चक्रग्रहण करना चाहिये ।

जो मत्स्याकार से अङ्कित चक्र हैं ये मनुष्यों को आयु पुष्टि वगैरह देते हैं । गृहस्थ को सदा पूजा करनी चाहिये क्योंकि उसपर भगवान रहते हैं । कूर्माङ्कित चक्र बड़ी सन्तान को देते हैं । और महान दिव्य ऐश्वर्य के दायक होते हैं । उनमें हरि भगवान निवास करते हैं । जो चक्र वराह की मूर्ति से संयुक्त दीखता है उसकी पूजा करने से मनुष्य पृथ्वी भर का छत्रपति सम्राट् हो जाता है । नरसिंह मूर्ति से लाञ्छित चक्र तो पृथ्वी में मनुष्य के लिये दुर्लभ ही है । क्योंकि शत्रुओं का नाश करता है । दुःख को दूर से हटाता है ।

शत्रुओं की फौजपर रुकावट डालता है । और महामृत्यु का भी हरण करता है । वामन के आकार से युक्त चक्र सबसे उम्दा माना गया है । अनेकों चीज का वृद्धिकारी और पापों का संहारी है । यदि चक्र के बीच में परशुराम का लक्षण दीखता हो या उनके नाम से अङ्कित चक्र हो तो उसे जामदग्न्य कहा जाता है । गरुडपुराण में—गण्डकी के उत्तर तट और गिरिराज के दक्षिण भाग में मेरे सन्निधि के कारण जो क्षेत्र है वह सबसे उत्तम माना गया है । कई तीर्थों से युक्त वह २४ योजन का विशाल क्षेत्र है । उसके उत्तर भाग में एक महान् पर्वत है जो मुझे प्यारा लगता है । उसकी छाया के अन्दर हे गरुड जी ! शिलायें और सभी वृक्ष मेरे चिन्हों से अङ्कित हैं । अतएव पृथ्वीतल में उस जगह कुछ कालतक निवास करने वाले मनुष्य और पक्षि के

भवेच्चक्रं मस्तके स्पष्टमेव च। एवं क्षेत्रस्य माहात्म्यं मृगपक्ष्यादयस्तथा॥ चक्रनद्युत्तरे तीरे लभन्ते पुण्यमुत्तमम्। शालग्रामशिलास्तत्र नानामूर्त्तिसमन्विताः। पूजनीयाः प्रयत्नेन चतुर्वर्गफलाप्तये॥ हिरण्यवज्रकीटेन निर्मितं चक्रमुत्तमम्। मठपद्मादिभेदेन तच्चानेकविधं स्मृतम्॥ इति॥ धर्मसंहितायाम्—हिरण्यगर्भो भगवानाद्यो नारायणः स्वयम्। वज्रकीटः प्रभूत्वा यश्चचार वसुधातले॥ सौवर्णं भ्रमरं दृष्ट्वा देवास्तद्रूपधारिणः। उपतस्थुर्महात्मानं भ्रमन्तमतितेजसम्। षडङ्घ्रिभिर्जगत्सर्वं व्याप्तमेतच्चराचरम्॥ हिरण्यगर्भभ्रमरैर्भ्रामितं भ्रान्तवत्सदा। दृष्ट्वा जगत्पतिं विष्णुं वैनतेयः सनातनम्॥ रुरोध शैलरूपेण जगतां हितकारकः। निरुद्धवेगः सहसा प्रविवेश बिलं महत्॥ तस्मिन्प्रविष्टे भ्रमरास्तद्बिलं विविशुः शुभम्। चक्रुः स्वंस्वं महद्वेश्म कोशकारइवात्मनः॥ नास्तिकानां प्रत्ययार्थं वज्रकीटाः षडङ्घ्रयः। चक्राकारं विनिर्माणं तत्रचक्रुर्हि सर्वशः। जलं स्थलं मठश्चैव

मस्तक और सभी अस्थियों में स्पष्ट रूपसे चक्र का चिन्ह रहता है। इस प्रकार उस क्षेत्र का माहात्म्य जानना चाहिये कि मृगपक्षि वगैरह भी चक्रनदी के उत्तरतीर में उत्तमपुण्य को प्राप्त होते हैं। यहां पर अनेकों मूर्ति से युक्त होकर शालग्राम सम्बन्धि शिलाएँ पाई जाती हैं। चतुर्वर्गफलप्राप्ति के लिये इनकी पूजा करनी चाहिये। हिरण्यवज्रकीट से निर्मित चक्र उत्तम होता है। मठपद्मादि के भेद से वह कई तरह का माना गया है॥ धर्म संहिता में कहा है—

किसी समय में अनादिभगवान स्वयं नारायण वज्रकीट होकर पृथ्वीतल में विचरते रहे। अत्यन्त तेजस्वी सुवर्णमय भ्रमररूपधारी उन महापुरुष को देखकर देवता लोग भी उन्हीं के सदृश रूप को धारण करते हुए स्तुति करने लगे अत एव उन भ्रमरों से यह सारा चराचर व्याप्त हो गया यहांतक कि उन हिरण्यगर्भभ्रमरों से सदा साराजगत् डावाँडोल हो रहा है। गरुडजी ने जगत्पति सनातन विष्णु भगवान को इस रूप में देखकर जगत हित के लिये पर्वतरूप से उन्हें रोक डाला। गति के रुक जाने से भगवान सहसा बड़े बील के अन्दर घुस गये। उनके प्रवेश के बाद सभी भ्रमरों ने उसी बिल में प्रवेश किया। और ये सब रेशमी कीड़ों की तरह अपने अपने घर बनाने लगे। अतएव नास्तिकों को विश्वास दिलाने के लिये अभी तक भी वज्रकीट भ्रमरों के समान छः पैर वाले होते हैं।

इन्होंने अपना घर चारों ओर से चक्राकार (किला) बना लिया। जल स्थल और मठ के भेद से वह चक्र तीन प्रकार का समझा गया है। मठ चक्र

तच्चक्रं त्रिविधं स्मृतम् ॥ निःकेसरं कीटभुक्तं तच्चक्रं मठसंज्ञितम् । इदमेव द्विधा प्रोक्तं जलस्थलविभेदतः ॥ एवं चक्रं द्विधा प्रोक्तं तत्रापि जलजं वरम्। विद्यादिमानि चक्राणि द्विजातीनां खगाधिप ॥ पूजायां सुप्रशस्तानि ग्राह्याणि द्विजसत्तमैः ।

विशेषस्तु वाराहपुराणे—वराह उवाच । शिलायाः लक्षणं सम्यग् मया प्रोक्तं सुविस्तृतम् । वसुधे ! त्वामथोवक्ष्ये चक्राणां लक्षणं शृणु ॥ मठकेसरभेदेन चक्रंतु द्विविधं भवेत् । स्निग्धैः सूक्ष्मैः केसरैर्यद्व्याप्तं तत्केसरं भवेत् ॥ तद्धीनं मठचक्रं स्यान्मृद्वीकाकृतिकञ्चयत् । पूर्वोक्त केसरं चक्रं मठचक्राद्विशिष्यते ॥ अत्रास्ति कारणं यच्च तत्ते सम्यङ्निगद्यते। शिलायाऽऽस्यसमोपेता ताम्भुङ्क्ते कीटकश्शनैः ॥ प्रीत्या तस्मात्प्रजायेत चक्रं तत्केसरैर्युतम् । तद्धीनामप्यसौ भुङ्क्ते प्रीत्या वेगेन कीटकः ॥ तस्मादुत्पद्यते चक्रं मठसंज्ञं फलास्पदम् । चक्रास्या च शिलाज्ञेया शस्ताशस्ता वसुन्धरे ! ॥ यत्प्रोक्तं द्विविधं चक्रं तत्पुनर्द्विविधं भवेत् । जलजं स्थलजं चैव लक्षणं तस्य कथ्यते ॥ सुस्निग्धं दीप्तिसंयुक्तं चक्रं तज्जलजं

वह होता है जो कीड़ो से खाये जाने पर निःकेसर हो गया हो । जल और स्थल के रूप से इसी मठचक्र के दो भेद होते हैं । इन दोनों में जलजात चक्र ही श्रेष्ठ होता है । हे गरुड़ जी ! पूजा के योग्य द्विजाति के लायक ये ही चक्र श्रेष्ठ और ग्राह्य होते हैं ।

इनकी विशेषता वराहपुराण में इस प्रकार कही गयी है—वराह जी ने कहा कि हे वसुधे ! मैंने विस्तार पूर्वक तुमसे शिलाओं का लक्षण बताया, अब तुम चक्रों का लक्षण सुनो । मठ और केसर के भेद से चक्र दो प्रकार का होता है । सूक्ष्म और कोमल केसरों से संकीर्ण जो है वह तो केसर चक्र होता है । सूक्ष्म स्निग्ध केसर से रहित या अङ्गूर के आकार का जो होता है वह मठ चक्र होता है । मठ चक्र की अपेक्षा केसर चक्र ही श्रेष्ठ होता है । इसका कारण तुमसे अच्छी तरह कहा जाता है । जो रन्ध्रवाली शिला मिलती है उसे वह कीट बड़ी खुशी से धीरे धीरे खाता है, अतएव उसके केसर से युक्त होकर केसरचक्र उत्पन्न होता है । मुख वा रन्ध्रहीन होने पर भी वह वज्रकीट बड़ी जोर से शिला को चबाता ही रहता है, उससे शुभफल को देनेवाला मठसंज्ञक चक्र उत्पन्न होता है । हे वसुन्धरे ! चक्रमुखी शिला ग्राह्य और अग्राह्य भी होती है । जो दो प्रकार का चक्र कहा गया है वह और भी दो प्रकार का होता है । जैसे—जलज और स्थलज । उसका लक्षण भी कहा जाता है।

भवेत्। कर्कशं हीनतेजस्कं तच्चक्रं स्थलजं भवेत्॥ एतयोर्जलजं श्रेष्ठं नदीपर्वतयोगतः। मध्यमं स्थलजं चक्रं पर्वतस्यैव योगतः॥ पद्माकारं क्वचिच्चक्रं शिलायां जायते धरे! समासेन मया प्रोक्तं चक्राणां लक्षणं प्रिये!॥ सम्यग्विचार्य सुधिया ग्राह्यं पूजार्थमादरादिति।

एवं केसरमठपद्मभेदेन त्रिप्रकाराण्यपि चक्राणि पुनर्जलजस्थलजभेदेन षट्प्रकाराणि भवन्ति। एतद्व्यतिरिक्तं शङ्खचक्रगदापद्मेत्येवं यच्चक्रं तत्त्वायुधप्रायपठितमुक्तचक्रातिरिक्तरेखानिर्मितं ज्ञेयम्। न प्रसिद्धचक्रवत्तद्व्यतिरिक्तं चक्रान्तरं भवतीति निष्कर्षः। इति चक्राख्यं लक्षणम्।

अथ शालग्रामसामान्यलक्षणमुच्यते

वाराहे—चक्रसंख्या न यत्रास्ति वर्णोक्तिर्नास्ति यत्र वै। द्वित्वं काष्ण्यं च विज्ञेयं तत्र तत्र वसुन्धरे!॥ इति सामान्य लक्षणम्॥ अथ च तस्मिञ्छिलाः समग्राश्च मत्स्वरूपा न संशयः। पूजनीयाः प्रयत्नेन किं

जो कान्तिमान् और कोमल हो वह जलजात चक्र होता है। खुरदुरा और कान्ति से रहित हो तो उसे स्थलजात समझना चाहिये। नदी और पर्वत दोनों से संयोग होने के कारण इन दोनों में जलजात ही श्रेष्ठ है। स्थलजात मध्यम होता है क्योंकि उसका केवल पर्वत से ही संयोग होता है। हे पृथिवी! कहीं पर तो शिला में पद्माकार चक्र भी दीखता है। हे प्रिये मैंने चक्रों का लक्षण संक्षेप से कहा, बुद्धिमान लोग अच्छी तरह से इनकी परीक्षा करके आदारपूर्वक पूजा के लिये ग्रहण करें।

इस प्रकार केसर, मठ और पद्म के भेद से तीन प्रकार के चक्र होते हुए भी फिर वे ही जल स्थल के भेद से छः प्रकार के होते हैं। इनके अतिरिक्त शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म इत्यादि जो चक्र के लक्षण बताये गये हैं। वे उक्त चक्र से भिन्न केवल रेखामात्र से निर्मित भगवान के हथियार के निर्देशमात्र से बताये गये हैं ऐसा जानना चाहिये। इसका भावार्थ यही है कि प्रसिद्ध चक्रसे अतिरिक्त उनके सदृश दूसरा चक्र कोई नहीं होता है। चक्रों का लक्षण समाप्त हो गया।

इसके बाद शालग्राम का सामान्य लक्षण बताया जाता है।

वाराहपुराण के अनुसार—हे पृथिवी! जिन शिलाओं में न चक्र की संख्या हो न तो पूर्वोक्त वर्णों का लक्षण ही घटता हो उनमें द्वित्व संख्या और कृष्णवर्ण का भाव जानना चाहिये। यह सामान्य लक्षण हुआ॥ और भी— "उस शालग्राम पर्वत में सभी शिलाओं का स्वरूप मेरा ही है, इनकी अच्छी तरह से पूजा होनी चाहिये। फिर चक्राङ्कितों की तो बात ही क्या है" इस

पुनश्चक्रलाञ्छिताः ॥ इति भगवता वाराहेण यद्यपि सर्वासां शालग्रामशिलानां-पूज्यत्वन्तत्रापि चक्राङ्कितानां पूज्यतरत्वमुक्तम्। तथापि

"शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि शालग्रामगिरिर्हरिः। यस्माद्धरिः स्थितस्तत्तत्प्रादुर्भावैरनेकशः" ॥ इत्यादिवचनैर्मत्स्यकूर्मवराहादि हरिप्रादुर्भावाङ्कित चक्राणां विशेषतः पूज्यतमत्वात्।

तत्रापि ॥ यतिः सम्पूजयेदेनं गृहस्थः परिवर्जयेदित्यादिवचनैर्नृसिंहादि मूर्त्तिपूजने गृहस्थव्यतिरिक्तस्याऽधिकारकथनात्। तासां च मूर्त्तीनां तद्विशेषलक्षणैर्विना तद्विशेषज्ञानाभावेन तत्पूजनासंभवात्तज्ज्ञानार्थं विशेषलक्षणान्युच्यन्ते। तथा चोक्तं पुराणसंग्रहे—अनेकामूर्त्तयः सन्ति तत्तल्लक्षणलक्षिताः। वैलक्षण्यविशेषेण ज्ञातुं शक्या न वै कलौ ॥ वर्णरूपाद्यवयवैः प्रमाणबिललाञ्छनैः। द्वारदेशविभेदेन भेदः कासांचिदुच्यते ॥ इति वर्णादिभेदेन कासाञ्चिन्मूर्त्तीनां भेदो यथा—पद्मपुराणे—विष्णुरुवाच। निवसामि सदा ब्रह्मन् शालग्रामोद्भवाश्मनि। तत्रैव

प्रकार यद्यपि भगवान् बराहजी ने सभी शिलाओं का पूज्यत्व बताया है पर उनमें भी चक्राङ्कितों का ही खास पूज्यत्व कहा है। तब भी—

"ब्रह्मन्! सुनिये मैं कहूँगा। शालग्राम पर्वत हरि का अवतार है क्योंकि अनेकों उत्पत्ति और आकार से युक्त होकर उसमें हरि भगवान ही स्थित हैं। इत्यादि वचनों से मत्स्य, कूर्म, वराह इत्यादि हरि के अवतार से चिह्नित चक्रों का विशेष अतिशय पूज्यत्व माना गया है। उसमें भी—संन्यासी लोग इसकी पूजा करें और गृहस्थ इस मूर्ति को छोड़ दें इत्यादि वचनों से नृसिंहादि मूर्ति की पूजा में गृहस्थ से भिन्न के लिये अधिकार कहा है। विशेष लक्षणों के बिना जाने विशेष ज्ञान को रखते हुए उनकी पूजा करना संभव नहीं हो सकता है, अतएव उस विशेष ज्ञान के लिये तत् तत् शिलाओं के तत् तत् लक्षण कहे जाते हैं सो इस प्रकार पुराण संग्रह में कहा है—

तत्तल्लक्षण से युक्त कई तरह की मूर्तियाँ होती हैं। इनके विशेष लक्षण बताये बिना कलियुग में नहीं जानी जा सकती हैं। वर्ण, रूप इत्यादि अवयव, प्रमाण, छिद्र, चिह्न और द्वार-देश आदि के भेद से इनमें से कितनों का तो लक्षण (भेद) बताया जाता है। वर्णादि भेद से कितनी मूर्तियों का भेद इस प्रकार का है जैसे—पद्मपुराण में—भगवान् विष्णु ने कहा—

हे ब्रह्मन्! मैं शालग्राम पर्वत से उत्पन्न पाषाण पर सदा निवास करता हूँ। उसी में मेरे वर्ण, चक्र इत्यादि के भेद और नामों को सुनिये।

वर्णचक्रादिभेदान्नामानि मे शृणु। शुक्लो रक्तस्तथा कृष्णो द्विवर्णो बहुवर्णवान्॥ एकचक्रस्य वर्णाः स्युः पञ्चसंज्ञा यथाक्रमम्। पुण्डरीकः प्रलम्बघ्नो रामो वैकुण्ठ एव च॥ विष्वक्सेन इति ब्रह्मन् फलं चास्यार्चने शृणु। मोक्षं मृत्युं विषादं च दारिद्र्यमटनन्तथा। ददाति पूजितो नृणां तस्माऽज्ञात्वार्चयेन्नरः॥ इति॥ अत एता वक्ष्यमाणा स्त्रिचक्राश्च पद्मनाभादय एव मूर्त्तयो बहुचक्रैकचक्रिकेति निषेधवाक्यस्य विषयानेतराः। तत्तदपवादकवाक्यानां तत्र तत्रैववक्ष्यमाणत्वात्॥ तत्र बहुचक्रेति त्रिचक्रैव। निरपेक्षबहुशब्दप्रयुक्तत्वात्सापेक्षस्यैव तस्य चतुःपञ्चादिसंख्यावाचकत्वाच्च। पद्मपुराणे—

शुक्लादिवर्णसंयुक्तश्चक्रादि पद्मसंभवः।
वासुदेवो जगद्योनिः कृष्णपीताम्बरोऽव्ययः॥

चक्रे द्वारस्थिते ज्ञेयः सौख्यैकफलदोर्चितः। चक्रेतु मध्यदेशस्थे तेषामाख्यान्तरं शृणु॥ परमेष्ठ्यजितक्रोधस्तथा नारायणाह्वयः। अनन्तश्चेति विज्ञेयो नानामूर्त्तिश्चयो भवेत्॥ राज्यं मृत्युं धनञ्चैव हानिं वै वाञ्छितार्थ-

---

श्वेत, रक्त, कृष्ण, द्विवर्ण, बहुवर्ण के भेद से एक ही चक्र के पाँच वर्ण होते हैं। उनको क्रमशः पुण्डरीक, प्रलंबघ्न, राम, वैकुण्ठ एवम् विष्वक्सेन इस तरह जानना चाहिये। इनकी पूजा से जो फल होता है वह भी सुनिये। पूर्वोक्तक्रम से इनकी पूजा करने पर मोक्ष, मृत्यु, विषाद, दारिद्र्य और परिभ्रमण को देते हैं, अतः भक्तजन इनकी अच्छी तरह से परीक्षा करके पूजा करें।

इस प्रमाण से वे निम्नलिखित और त्रिचक्री पद्मनाभादि मूर्ति के लिये ही बहुचक्री एकचक्री इत्यादि निषेधवाक्य को जानना चाहिये, औरों के लिये नहीं, क्योंकि उन निषेधवचनों को उसी उसी स्थल पर कहेंगे। यहाँ पर बहुचक्र शब्द से कपिञ्जलन्याय के अनुसार त्रिचक्री शिला लेनी चाहिये। क्योंकि बहुशब्द किसी भी संख्या की अपेक्षा नहीं करता और सापेक्षक ही चतुर् पञ्चन् इत्यादि शब्दों का वाचक होता है। इस सम्बन्ध में पद्मपुराण का प्रमाण है कि—

द्वार देश में चक्र के रहते (पूर्वोक्त लक्षण क्रम के अनुसार) वासुदेव, जगद्योनि, कृष्ण, पीताम्बर और अव्यय इस प्रकार जानना चाहिये। इनकी पूजा से सौख्य की प्राप्ति होती है। शिला के मध्यभाग में चक्र हो तो इनकी बात दूसरी होती है सो सुनिये। लक्षण के अनुसार इनके नाम परमेष्ठी, अजितक्रोध, नारायण और अनन्त इत्यादि होते हैं। और अनेक मूर्त्तिवान भी अनन्त कहा जाता है। उक्त लक्षणों को जानकर लोक में पूजा करने से राज्य, मृत्यु, धन, हानि वा वाञ्छितार्थ को देते हैं। अतः मनुष्य इन बातों

कम् । ददाति पूजितोलोके तस्माज्ज्ञात्वार्चयेन्नरः इति शुक्लादीत्यत्रादि-शब्देन पूर्वोक्तरक्तादि वर्णग्राह्या ।। अत्राजितक्रोधशब्देन प्रलम्बघ्नो-गृह्यते । तस्य रक्तवर्णत्वमृत्युफलदायकत्वयोर्वक्ष्यमाणत्वात् । अनन्त शब्देन त्रिचक्रः पद्मनाभः ।। न तु वक्ष्यमाणोऽनन्तः । तस्याऽशुभफल-प्रदत्वस्य वक्ष्यमाणत्वाभावाच्छुभफलप्रदत्वप्रतिपादकवक्ष्यमाणबहुबचन-विरोधाच्च ।। त्रिचक्रपद्मनाभस्य दुःखदायकत्वञ्च तत्रैवोक्तम् । तथाहि—

बहुभिश्चिह्नितश्चक्रैः शुक्लवर्णादि संयुतः । दैत्यारिः कमलाक्षश्च गदापाणिरधोक्षजः । पद्नाभश्च देवः स्यात्प्रसभं दुःखदायकः ।। तस्मादयं नवै पूज्यो बहुचक्रः प्रजापते । इति, बहुभिरित्यस्योपस्थितं परित्यज्याऽ-नुपस्थितपरिकल्पने मानाऽभावात्त्रिभिश्चक्रैश्चिह्नितइत्येवार्थः ।। शुक्लवर्णादीत्यत्रादिशब्देन पूर्वत्र शुक्लवर्णाऽनन्तरोक्तरक्तवर्णो ज्ञेयः । एवञ्च शुक्लरक्तेति द्विवर्णसंयुक्तपद्मनाभ संपद्यते । नानामूर्त्तिरिति

को जानकर पूजा करे "शुक्लादि वर्ण संयुक्तः !..."

इस श्लोक में जो आदि शब्द आया है उसका प्रकार अर्थ है इसलिये "शुक्लः कृष्णस्तथा रक्तः..." इस प्रमाण के अनुसार आदिशब्द से पूर्वोक्त शुक्ल, रक्त प्रभृत्ति बर्णों का ग्रहण करना चाहिये । यहाँ पर "अजितक्रोध" शब्द से प्रलम्बघ्न (बलभद्रजी) का ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि आगे जाकर उसे रक्तवर्ण और मृत्यु फलदायी कहा जायगा । अनन्त शब्द से त्रिचक्री पद्मनाभ ही का ग्रहण करना चाहिये, न कि निम्नलिखित अनन्त का, क्योंकि उसके लिये अशुभफलदायित्व का प्रतिपादन करनेवाला वक्ष्यमाण बचन कोई नहीं हैं और शुभफलश्रुति का वक्ष्यमाण वचन भी विरुद्ध होता है ।

त्रिचक्री पद्मनाभ का दुःखदायित्व भी उसी पर इस प्रकार कहा है—शुक्लादि वर्णों से युक्त होकर बहुत चक्रों करके चिह्नित हो तो वर्ण क्रम से दैत्यारि, कमलाक्ष, गदापाणि, अधोऽक्षज और पद्मनाभ, इस प्रकार की संज्ञा होती है । वह देवता हठात् दुःख को देती है ।

इस कारण हे प्रजापते ! बहुत चक्रवाला वह पूजा योग्य नहीं होता है । "उपस्थित को छोड़कर अनुपस्थित की कल्पना करने में कोई प्रमाण नहीं अर्थात व्यर्थ है" इस न्याय के अनुसार बहुशब्द से एक दो से अधिक एवम् प्रथमो-पस्थितत्रिशब्द को लेना चाहिये । अतएव "बहुचक्र" कहने पर उसका मतलब "त्रिचक्र" समझना चाहिये । शुक्लादि शब्द से रक्त प्रभृत्ति वर्णों को भी जान लेना चाहिये । इस तरह शुक्ल वा रक्त वर्ण का पद्मनाभ होता है ।

विश्वरूप उच्यते। स तु वहुवर्णवान्, शुक्लरक्तकृष्णवर्णवानित्यर्थः। पद्मनाभमूर्तिलक्षणन्तु वर्णादिभेदवर्णनाऽनुप्रसक्तत्वादुक्तम्। काश्चिन्मूर्त्तयस्तु नियतचक्रस्थानभेदा भवन्ति। तदुक्तं पुराणसंग्रहे—

वासुदेवो जगद्योनिः कृष्णः पीताम्बरोऽव्ययः।
चक्रपाणिरितीमे षड्द्वारचक्राः समीरिताः॥

अनिरुद्धो हरिः कृष्णो जामदग्न्यस्तथैव च। वामे वा दक्षिणे वापि पार्श्वे चक्रसमन्विताः॥ लक्ष्मीनृसिंहो विष्णुश्च नारसिंहश्च भीतिदः! वलरामो भूवराहः सयज्ञावामचक्रिणः। लक्ष्मीवराहः कथित एकोदक्षिण चक्रकः॥ वाराहो वामनो माया नारायणचतुर्मुखौ। माधवः परहंसश्च कपिलाख्यो नृसिंहकः॥ दामोदरः श्रीधरश्च मध्यचक्रा नवस्मृताः। चक्रसंस्थाभेदयुक्ताः षड्विंशतिरुदाहृता इति। एतद्व्यतिरिक्तमूर्त्तीनां वामदक्षिणादौ यत्रकुत्रचिच्चक्राणि भवन्तीत्यर्थः।

अथ विशेषमूर्तिनां झटिति लक्षणज्ञानायाऽऽदावेक चक्रादिमूर्तयः प्रदर्श्यन्ते।

नानामूर्ति शब्द से विश्वरूप का ग्रहण करना चाहिये। वह कई वर्ण का होता है अर्थात् शुक्ल रक्त और कृष्ण वर्ण का होता है। पद्मनाभ मूर्ति का लक्षण तो वर्णादि भेदों का वर्णन करते समय कहा जा चुका है।

कितनी मूर्तियों का तो चक्र और स्थान का भेद नियत रहता है। सो पुराण संग्रह में कहा है—

वासुदेव, जगद्योनि, कृष्ण, पीताम्बर, अव्यय और चक्रपाणिनाम के भेद से छःप्रकार के द्वारचक्र होते हैं। जिन को दाहिनी वा बाईं ओर चक्र हैं इन्हे क्रमशः—अनिरुद्ध, हरि, कृष्ण, जामदग्न्य जानना चाहिये।

लक्ष्मी नृसिंह, विष्णु, और नारसिंह ये भीति के दायक होते हैं। बलराम, भूवराह, यज्ञपुरुष वगैरह की बाईं ओर चक्र होता है। एक लक्ष्मी वराह ही ऐसा है जिसकी दाहिनी ओर ही चक्र होता है।

वराह, वामन, महानारायण, चतुर्मुख, माधव, परमहंस, कपिल, नृसिंह, दामोदर और श्रीधर इन नौ मूर्तियों के मध्यभाग में चक्र होते हैं। वे ही चक्र और स्थान के भेद से युक्त होकर छब्बीस प्रकार के कहे गये हैं। मतलब यह है कि इनसे भिन्न मूर्तियों पर दाहिनी वा बाईं ओर जिसी किसी भाग में चक्र होते हैं।

इसके बाद सुगमता के साथ शीघ्र विशेष मूर्तियों के लक्षण जानने के लिये पहले एक चक्रवाली मूर्तियाँ समझाई जाती हैं।

पुराणसंग्रहे—

पुंडरीकः प्रलम्बघ्नो वैकुण्ठो मधुसूदनः। पीताम्बरो नरो रामो बलरामसुदर्शनौ॥ वीरनारायणश्चैव क्षीराब्धिशयनस्तथा। सीरपाणिस्तथा मत्स्यः परमेष्ठी तथैवच॥ मुशली विश्वसेनश्चेत्येकचक्रा इमे मताः॥ अथद्विचक्रमूर्त्तयोऽपि तत्रैव॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च श्वेतवाराहवामनौ।
लक्ष्मीवराहो धरणीयुतः शान्तश्च भार्गवः॥
नृसिंहः पर्शुरामश्च वीररामश्चकेशवः।
लक्ष्मीनृसिंहः शेषश्च उपेन्द्रो दधिवामनः॥
विष्णुर्दाशरथी रामो बालरामो हलायुधः।
रामो विजय कोदण्ड हृष्टपूर्वस्त्रिविक्रमः॥
कृष्णो गोवर्धनः कल्की पद्मनाभो हरिस्तथा।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च गोपालो लक्ष्मीपूर्वकः॥
तथा सन्तानमदनगोपालौ श्रीयुतस्तथा।
बालकृष्णो हयग्रीवो गोपालो वंशपूर्वकः॥
माया नारायणश्चैव गरुडो गरुडध्वजः।
पुण्डरीकाक्षयज्ञौ च श्रीधरश्च गदाधरः॥
लक्ष्मीपतिर्वासुदेवो माधवः शेषशाय्यपि।

पुराणसंग्रह में—

पुण्डरीक १ प्रलम्बघ्न २ वैकुण्ठ ३ मधुसूदन ४ पीताम्बर ५ नर ६ राम ७ बलराम ८ सुदर्शन ९ वीरनारायण १० क्षीरसागरशायी ११ सीरपाणि १२ मत्स्य १३ परमेष्ठी १४ मुशली १५ विश्वक्सेन १६ इतनी मूर्तियाँ एकचक्र की होती हैं।

उसी स्थल पर द्विचक्र की मूर्तियाँ भी बताई गई हैं। जैसे—मत्स्य १ कूर्म २ वराह ३ श्वेतवराह ४ वामन ५ लक्ष्मीवराह ६ धरणीवराह ७ शान्त ८ भार्गव ९ नृसिंह १० परशुराम ११ वीरराम १२ केशव १३ लक्ष्मी-नृसिंह १४ शेष १५ उपेन्द्र १६ दधिवामन १७ विष्णु १८ दशरथि राम १९ बालराम २० हलायुध २१ विजयराम २२ कोदण्डराम २३ हृष्टराम २४ त्रिविक्रम २५ कृष्ण २६ गोवर्द्धन २७ कल्की २८ पद्मनाभ २९ हरि ३० प्रद्युम्न ३१ अनिरुद्ध ३२ लक्ष्मीगोपाल ३३ सन्तानगोपाल ३४ मदनगोपाल ३५ श्री गोपाल ३६ बालकृष्ण ३७ हयग्रीव ३८ वंशगोपाल ३९ मायानारायण ४० गरुड ४१ गरुडध्वज ४२ पुण्डरीकाक्ष ४३ यज्ञ ४४ श्रीधर ४५ गदाधर ४६ लक्ष्मीपति ४७ वासुदेव ४८ माधव ४९ शेषशायी

विदारणनृसिंहश्च नृसिंहो राक्षसान्तकः ॥
आकाशबालकपिल योगज्वालानृसिंहकाः ।
विद्युतजिह्वा घोरकुक्षिविभीषणनृसिंहका ॥
महाहारौ नृसिंहौ द्वौ विकृतास्यस्तथैव च ।
कलिनाशकरो रामो दशकण्ठकुलान्तकः ॥
नरशङ्करपूर्वौ द्वौ रूपनारायणस्तथा ।
दामोदरो लक्ष्मीपूर्वः शुद्धश्च पुरुषोत्तमः ॥
सङ्कर्षणाधोक्षजौ च दत्तात्रेयचतुर्मुखौ ।
त्रैलोक्यमोहनः कृष्णः सौभाग्य वरदस्तथा ॥
कालीयमर्दनः प्रोक्तस्तद्वच्चाणूरमर्दनः ।
कृष्णः सनातनयुतः कृष्णोगोवर्द्धनस्तथा ॥
रुक्मिण्याविजयाच्चूडामणेः सोग्रेधनञ्जयात् ।
पारिजातहरः कृष्णः स्यमन्तकहरस्तथा ॥
सुदर्शनो मुरारिश्च वनमाली च योगराट् ।
अमृताहरणस्तद्वद्गणेशश्च तथैव च ॥
श्रीवत्सलाञ्छनस्तद्वद्धरणीधर एव च ।
देवदेवो जगद्योनिः स्वयम्भूः कपिलस्तथा ॥
धर्मराजो हरिहरो हैहयस्तद्वदेवहि ।
हिरणगर्भस्तद्वत्स्याद्धंसः परमपूर्ववान् ॥

---

५० विदारण नृसिंह ५१ राक्षसान्तक नृसिंह ५२ आकाश नृसिंह ५३ बालनृसिंह ५४ कपिल-नृसिंह ५५ योगनृसिंह ५६ ज्वाला नृसिंह ५७ विद्युन्नृसिंह ५८ जिह्वानृसिंह ५९ घोरनृसिंह ६० कुक्षिनृसिंह ६१ विभीषण नृसिंह ६२ महा नृसिंह ६३ आहारनृसिंह ६४ विकृतास्य नृसिंह ६५ कलिनाशकराम ६६ रावणकुलनाशकराम ६७ नर नारायण ६८ शङ्कर नारायण ६९ रूपनारायण ७० दामोदर ७१ लक्ष्मी दामोदर ७२ शुद्ध पुरुषोत्तम ७३ सङ्कर्षण ७४ अधोक्षज ७५ दत्तात्रेय ७६ चतुर्मुख ७७ त्रैलोक्य मोहन ७८ सौभाग्यकृष्ण ७९ वरदकृष्ण ८० कालियमर्दन कृष्ण ८१ चाणूरमर्दन कृष्ण ८२ सनातनकृष्ण ८३ गोवर्द्धनकृष्ण ८४ रुक्मिणी विजयी कृष्ण ८५ चूडामणिकृष्ण ८६ धनञ्जयाग्रगामी कृष्ण ८७ पारिजातहारी कृष्ण ८८ स्यमन्तकहारी कृष्ण ८९ सुदर्शन ९० मुरारि ९१ वनमाली ९२ योगराट् ९३ अमृतहारी कृष्ण ९४ गणेश ९५ श्री वत्सलाञ्छन ९६ धरणी धर ९७ देवदेव ९८ जगद्योनि ९९ स्वयम्भू १०० कपिल १०१ धर्मराज १०२ हरि १०३ हर १०४ हैहय १०५ हिरण्यगर्भ १०६ हंस १०७ परम हंस

द्विचक्रा मूर्तयश्चैताः साकल्येन प्रदर्शिताः। अत्रशेषशाय्यपीति पुरुषोत्तम इति च पुरुषोत्तम मूर्त्ते द्विरुक्तिस्तस्या अपि शेषपर्यङ्कशायित्वतद्रहितत्वरूपभेदेनाऽनेकधात्वविवक्षयेति ज्ञेयम्। अथ त्रिचक्रा अपिमूर्त्तयस्तत्रैव।

नारायणो हरिहरौ पद्मनाभो हरिस्तथा।
तद्वद्दाशरथीरामः शान्ताख्यो वासुदेवकः॥
हंसः कूर्मोऽच्युतश्चैव केशवो वहुरूपकः।
अधोमुखनृसिंहस्तु शिशुमारस्त्रिविक्रमः॥
मत्स्यस्त्रिमूर्त्तिः सीतेशः पुरुषोत्तम एव च।
त्रिचक्रामूर्त्तयश्चैताः समासेन निरुपिताः॥
अथ चतुश्चक्रा अपि मूर्त्तयस्तत्रैव॥
चतुश्चक्रा हरिहर सीताराम जनार्द्दनाः।
त्रिविक्रमः कंसमर्द्दी लक्ष्मीनारायणस्तथा।
अटपत्रशायी श्रीरामो बुद्धस्तद्वच्चतुर्भुजः।
गोवर्धनधरो लक्ष्मीनृसिंहश्च भवन्ति हि॥

---

१०८ ये १०८ मूर्तियाँ द्विचक्र वाली होती हैं सो उक्त प्रकार से सभी दर्शाई गयी हैं।

यहाँ पर यद्यपि "शेषशायी पुरुषोत्तम" (कृष्ण) इत्यादि शब्दों से एकार्थवाची होने के कारण मूर्तियों की पुनरुक्ति सा मान पड़ता है पर भी शेषपर्यङ्कशायी और अशेषपर्यङ्कशायी अर्थ को मानकर भिन्नार्थकवाची समझ लेना चाहिये एवम् कृष्णादिशब्दों में भी जानना चाहिये। अतएव द्विरुक्तिदोष का परिहार होता है।

तीन चक्रकी मूर्त्तियों का नाम भी उसी जगह पर आया है—नारायण १ हरिहर २ पद्मनाभ ३ हरि ४ दाशरथिराम ५ शान्तवासुदेव ६ वासुदेव ७ हंस ८ कूर्म ९ अच्युत १० केशव ११ बहुरूपी १२ अधोमुख नृसिंह १३ शिशुमार १४ त्रिविक्रम १५ मत्स्य १६ त्रिमूर्ति १७ सीतेश १८ पुरुषोत्तम १९ इतनी संक्षेप से त्रिचक्रवाली मूर्तियाँ कही गयी हैं।

वहीं पर चतुश्चक्रों का नाम भी बताया गया है—

चार चक्र की मूर्तियाँ इतनी होती हैं जैसे—

हरिहर १ सीताराम २ जनार्दन ३ त्रिविक्रम ४ कंसमर्द्दी ५ लक्ष्मीनारायण ६ वटपत्रशायी ७ श्रीराम ८ बुद्ध ९ चतुर्भुज १० गोवर्द्धनधर ११ और लक्ष्मी नृसिंह १२।

अथ पञ्चचक्रे अपि मूर्त्ती तत्रैव ।

सोतारामश्रीसहायौ पञ्चचक्राविमौ स्मृतौ ।

अथषट्चक्रा अपिमूर्त्तयस्तत्रैव ।

श्रीमूर्त्तिस्तारकब्रह्म सीतारामस्त्रिमूर्त्तिकः ।

पुरुषोत्तमोऽव्ययश्च मधुसूदन एव च॥

षट्चक्रा मूर्त्तयः पट्टाभिरामाः समुदीरिताः ।

अथ सप्तचक्रे अपि मूर्त्ती तत्रैव ।

अनन्तः प्रथमो ज्ञेयो नृसिंहः सर्वतोमुखः ।

सप्तचक्राविमौ द्वौतु विज्ञेयौ सर्वसूरिभिः ।

अत्रानन्त इति शुद्धएवानन्तो ज्ञेय इति ।

अथाऽष्टचक्रा अपि मूर्त्तयस्तत्रैव ।

महानारायणश्चैव चक्रपाणिपितामहौ ।

अनन्तश्चेति चत्वारो ह्यष्टचक्राः समीरिताः॥

अत्रत्वनन्त इति महानारायणादिपूर्वसंज्ञकानन्तो ज्ञेय इति ।

अथ नवचक्रा अपि मूर्त्तयस्तत्रैव।

विष्वक्सेनाऽच्युतानन्ता नवचक्राः समीरिताः । अत्राप्यनन्त इति विष्वक्सेनादि पूर्वसंज्ञकानन्तोज्ञेय इति ।

उसीपर पाँच चक्रवाली दो प्रकार की मूर्तियाँ बताई गयी हैं—

जैसे सीताराम १ और श्रीसहाय २ ।

एवम् षड्चक्रवाली मूर्तियाँ निम्नलिखित संज्ञा की होती हैं ।

श्रीमूर्ति १ तारक ब्रह्म २ सीताराम ३ त्रिमूर्ति ४ पुरुषोत्तम ५ अव्यय ६ मधुसूदन ७ ये छः चक्रवाली मूर्तियाँ पट्टाभिराम कही जाती हैं ।

उसी प्रकरण में सात चक्रवाली भी दो प्रकार की मूर्तियाँ कही गयी हैं । जैसे—अनन्त १ सर्वतोमुख नृसिंह २ विद्वान लोग सप्तचक्र मूर्ति के यही दो भेद जानें । यहाँ पर अनन्त शब्द से शुद्ध अनन्त मूर्ति को जानें । इत्यादि ॥

आठ चक्रों की मूर्तियाँ—

महानारायण १ चक्रपाणि २ पितामह ३ अनन्त ४ ये चार आठ चक्रवाली होती हैं । यहाँ पर फिर से अनन्त शब्द आया है इसलिये उसमें शुद्धअनन्त नहीं किन्तु महानारायण प्रभृति कोई अनन्त जानना चाहिये ।

नौ चक्रवाली मूर्तियाँ—

बिष्वक्सेन १ अच्युत २ अनन्त ३ ।

यहाँ पर भी अनन्त शब्द में विष्वक्सेन इत्यादि शब्दों को जोड़ देना चाहिये।

अथ दशचक्रा अपि मूर्त्तयस्तत्रैव ।

हृषीकेशश्च गोविन्दस्त्वनन्तो विश्वरूपकः । महाविष्णुश्च पातालनृसिंह पुरुषोत्तमः ॥ सत्यवीरश्रवाश्चैते विज्ञेया दशचक्रकाः । अत्राप्यनन्त इति हृषीकेशादिपूर्वसंज्ञकानन्तोज्ञेय इति,।

अथैकादशचक्रे अपि मूर्त्ती तत्रैव ।

शुद्धानन्तो रुद्रचक्रो रुद्रानन्तस्तथैवच । अत्र रौद्रलक्षणयुक्तो रुद्रानन्तस्तद्रहित शुद्धएवानन्त इत्यर्थः ।

अथ द्वादशचक्रे अपि मूर्त्ती तत्रैव ।

ज्ञेयो द्वादशचक्रस्तु मुकुन्दः सूर्य एव च । अत्रापि मुकुन्दादि मूर्त्तिवैशिष्ट्यसंभवात्पूर्वसंज्ञकानन्तः पूर्वन्यायाद् द्रष्टव्य इति ।

अथ पुनरेतासामेवाऽनन्तमूर्त्तीनां तत्तन्मूर्त्तिवैशिष्ट्यं वदन् त्रयोदशचक्रां बहुरूपानन्तमूर्त्तिमाह तत्रैव ।

वसुचक्राद्यनङ्गान्ता अनन्ताः पूर्वसंज्ञका । अष्टचक्रादि त्रयोदशचक्रान्ताः पूर्वोक्तमहानारायणाद्यनन्तसंज्ञका इत्यर्थः । अत्र त्रयोदशचक्राद्बहुरूपमूर्त्तिरपि द्रष्टव्येति ।

दश चक्राङ्कित मूर्तियाँ—

हृषीकेश १ गोविन्द २ अनन्त ३ विश्वरूप ४ महाविष्णु ५ पाताल नृसिंह ६ पुरुषोत्तम ७ सत्यवीरश्रवा ८ इन मूर्तियों में दश चक्र होते हैं । यहां पर भी हृषीकेशादि पूर्वक अनन्त लेना चाहिये ।

एग्यारह चक्राङ्कित मूर्तियाँ—

शुद्ध अनन्त १ रुद्रचक्र २ रुद्रानन्त ३ इसमें यदि रुद्र लक्षण से युक्त हो तो उसे रुद्रानन्त और न हो तो शुद्धानन्त कहते हैं ।

बारह चक्र वाली दो प्रकार की मूर्तियाँ—

मुकुन्द १ सूर्य २ । यहाँ पर भी मुकुन्दादि मूर्तियों में कोई विशेषता हो सकती है इसलिये पहले की तरह मुकुन्दादि संज्ञापूर्वक अनन्त को भी जानना चाहिये ।

अब फिर से पूर्वोक्त अनन्त मूर्तियों की तत्तत् विशेषता को कहते हुए तेरह चक्रवाली बहुरूपिणी अनन्त मूर्ति को बताते हैं—

अर्थात् आठचक्र की मूर्ति से लेकर तेरह चक्र पर्यन्त की जो मूर्तियाँ बताई गयी हैं, वे सब पूर्वोक्त महानारायणादि अनन्तसंज्ञक जाननी चाहिये । जैसे ८ चक्र की मूर्ति का नाम महानारायणानन्त, नौवाली का विष्वंवसेनानन्त इत्यादि । तेरह चक्र की बहूरूपा अनन्तमूर्ति भी होती है । ऐसा जानना चाहिये ।

अथ चतुर्दशादि चतुर्विंशतिचक्रान्ता मूर्त्तयोऽपि तत्रैव।

चतुर्दशादिचक्रैश्च युक्ताविश्वम्भरादिकाः। अनन्तास्तत्वसंख्यान्ता विज्ञेया विबुधैः क्रमात्॥ चतुर्दशादि चतुर्विंशतिचक्रान्ताविश्वंभरानंता इत्यर्थः, अनेनैव चतुर्दशचक्रादि चतुर्विंशतिचक्रान्ता विश्वम्भरमूर्त्तयोऽपि सूचिता भवन्ति। अत्राष्टादशचक्रिका पुरुषोत्तममूर्त्तिस्तद्विशिष्टानन्तमूर्त्तिश्च द्रष्टव्येति।

अथ पञ्चविंशतिचक्रादि यावत्संभवचक्रान्ता अपि मूर्त्तयस्तत्रैव।

यावत्संभवचक्रान्तास्ततोऽनन्ताविशुद्धकाः। पञ्चविंशतिचक्रादूर्ध्वमनन्ता इत्येव शुद्धसंज्ञका इत्यर्थः। अत्र त्रिचक्रादूर्ध्वं यावत्संभवचक्राङ्काः पुरुषोत्तममूर्त्तयोऽपि द्रष्टव्या इति।

अथ निश्चक्रा अपि मूर्त्तयस्तत्रैव।

निर्वाणबुद्धबुद्धौ द्वौ योगेशो विष्णुपञ्जरः। सद्योजातो वामदेव ईशानश्चन्द्रशेखरः॥ भवस्तत्पुरुषः शर्वः शिवनाभिरघोरकः। कुण्डलिन्यश्च

अब उसी पर चौदह से लेकर चौबीस चक्रतककी मूर्तियों का नाम बताया जाता है।

विद्वान् लोग को जानना चाहिये कि चौदह से लेकर क्रमशः चौबीस चक्र तक की मूर्तियाँ विश्वंभरादि अनन्त नाम की होती हैं अर्थात् चौदह से चौबीस चक्र पर्यन्त की मूर्तियों को विश्वम्भरानन्त जानना चाहिये ऐसा श्लोकार्थ है। इसीसे मालूम होता है कि उक्त मूर्तियाँ विश्वम्भरादिक होती हैं। इनमें भी अट्ठारह चक्र की मूर्ति पुरुषोत्तम नाम की होती है और साथ ही अनन्त पुरुषोत्तम संज्ञक भी होती है।

अब पच्चीससे लेकर अधिक जितने चक्रों का सम्भव हो उन मूर्तियों को कहा जायगा।

जिनमें पचीस से अधिक चक्रों का जहाँतक सम्भव हो उन मूर्तियों की शुद्ध अनन्त सञ्ज्ञा होती है। इसका अर्थ स्पष्ट है।

यहाँ पर तीन चक्रों से उपर जहाँतक चक्रों का सम्भव हो उन मूर्तियों की पुरुषोत्तम सञ्ज्ञा है यह भी जानना चाहिये।

उसी प्रकरण में निश्चक्र मूर्तियाँ भी—

निर्वाण बुद्ध १ (शुद्ध) बुद्ध २ योगेश ३ विष्णुपञ्जर ४ सद्योजात ५ वामदेव ६ ईशान ७ चन्द्रशेखर ८ भव ९ तत्पुरुष १० शर्व ११ शिवनाभि १२ अघोरक १३

सर्वाश्च निश्चक्राः मूर्त्तयो मताः ॥ एवं लक्षणसंपन्नाः शिलाश्चक्रैरलंकृताः। पूजनीया विशेषेण सर्वकामफलप्रदा इति।

अथैतासां मूर्त्तीनां विशेषतो लक्षणानि वक्तुं किञ्चित्तावदुच्यते। मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहुर्वेदान्तपारगाः। परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम् ॥ अर्चावतारश्च तथा दयालुः पुरुषाकृतिः। इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मां रहस्यविदो जनाः ॥ इति ॥

वैष्णवागमोक्तप्रकारेण यद्यप्यादौ परावस्थनारायणस्यानन्तरं व्यूहावस्थानां वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानां चतुर्मूर्त्तीनामनन्तरं व्यूहविभेदात्मकेशवादिचतुर्विंशमूर्त्तीनामनन्तरं वैभवावस्थानां मत्स्यकूर्माद्यनन्तविश्वरूपादि सर्वमूर्त्तीनामनन्तरमन्तर्याम्यवस्थमूर्तीनां लक्षणानि वक्तुं योग्यानि तथाप्युक्तसर्वावस्थभगवद्रूपाणां शालग्रामभिधार्चावस्थतयाऽवतीर्णत्वात्तेषां येन केनचित्क्रमेण लक्षणानां वक्तव्यत्वे सति पुराणसंग्रहादौ नारायणादि पञ्चमूर्त्तीमन्तर्भावेन केशवादि चतुर्विंशमूर्त्तीनान्तु तत्र तत्र पुराणादिषु

और कुण्डलाकार (गोलाकार) की मूर्तियाँ चक्र से रहित होती हैं। इस प्रकार उक्तलक्षण से सम्पन्न चक्रों से सुशोभित मूर्तियाँ होती हैं। विशेषतः इनकी पूजासे ये सभी मनोरथ को देती हैं। इत्यादि ॥

अब इन मूर्तियों के खास लक्षण बताने के लिये पहले कुछ कहा जाता है। बड़े बड़े वेदान्तियों ने कहा है कि मेरी मूर्ति के पाँच भेद होते हैं जैसे:—

पर १ व्यूह २ विभव (जो सभी प्राणियों का सञ्चालक है) ३ अर्चावतार ४ और पुरुषाकार अनुकम्पा मूर्ति ५। इस तरह रहस्य के जाननेवाले मुझे पाँच प्रकार का जानते हैं ॥ इत्यादि ॥

वैष्णवागम पर कहे अनुसार यद्यपि परावस्था की मूर्ति नारायण इत्यादि के वर्णन करने के बाद व्यूहावस्था (वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इत्यादि) का वर्णन उसके बाद विभव अवस्था का अर्थात् मत्स्य, कूर्म, अनन्त, विश्वरूप, अन्तर्यामी इत्यादि का तत्पश्चात् अर्चावतार अर्थात् मूर्तियों का वर्णन करना चाहिये था, तथापि पूर्वोक्त सभी अवस्था के स्वरूप भी शालग्राम शिला होकर अर्चावतार में परिणत हुए हैं। अतएव यहाँ पर लक्षणक्रम के आग्रह को छोड़कर क्रमभेद से अर्चावतार शालग्राम स्वरूप मूर्ति का ही लक्षण बताया जाता है। क्योंकि नारायण ही में पाचों का समावेश हो जाता है उनका समावेश भी शालग्राम पर है और केशव अन्तर्यामी इत्यादि चौबीस मूर्तियों का तो पुराणादि में प्रत्येक लक्षणस्थल पर लक्षण बताया ही है।

वहुप्रकारक्रमाणामुक्तत्वात्तन्नियमाग्रहं त्यक्त्वा यत्किञ्चित्क्रमभेदेन लक्षणान्युच्यन्त इति ।

तथाह्यत्र विशेषतो लक्षणीया मूर्त्तय आदावुद्देशतोऽनुक्रम्यन्ते ।

मत्स्याद्या दशतत्वैश्च संमिताः केशवादयः । अनन्तस्तु भवेदाद्यो विश्वरूपस्ततः परः ।। विश्वम्भरोहयग्रीवस्ततः क्षीराब्धिशाय्यपि । पुण्डरीकाक्षयज्ञौ च वैकुण्ठोऽमृतहारकः ।। पीताम्बरः सत्यवीरःश्रवाश्रीवत्सलाञ्छनः । वनमाली श्रीसहायो मुकुन्दो गरुडध्वजः । चतुर्भुजो जगद्योनिश्चक्रपाणिर्गदाधरः ।। लक्ष्मीपतिर्देवदेवोऽव्ययश्च धरणीधरः । शेषश्च गरुडो विष्वक्सेनश्चैव सुदर्शनः ।। योगराजो वटदलशायी च नरसंज्ञकः । हंसः परमहंसश्चदत्तात्रेयस्त्रिमूर्त्तिकः । श्रीमूर्तिबहुरूपी च कपिलो मुसलायुधः । मुरारिः शिशुमारश्च पुण्डरीकश्च हैहयः । विष्णुपञ्जरयोगेशावित्येता विष्णुमूर्त्तयः ।। चतुर्मुखः स्वयंभूश्च परमेष्ठी पितामहः ।। हिरण्यगर्भः पञ्चैता ब्रह्मणो मूर्तयः स्मृताः ।। अतः परं शिवस्यापि मूर्तयः शिवनाभिकाः ।। सद्यो जातो वामदेवो घोरस्तत्पुरुषस्तथा । ईशानः शर्वसंज्ञश्च शङ्करश्चन्द्रशेखरः ।। भवश्चैता हरिहरस्त्वेकः सूर्यस्तथैव च । धर्मराजो

अब पहले लक्षण के लायक मूर्त्तियों की अनुक्रमणिका के अनुसार नाम मात्र से निर्देश किया जाता है ।

मत्स्य, कूर्म इत्यादि दश अवतार हैं और केशवादि चौबीस हैं इनकी अनुक्रमणिका इस प्रकार की है। पहला रूप अनन्त का है और दूसरा विश्वरूप का एवं तीसरे हयग्रीव हुए चौथे क्षीराब्धिशायी एवं प्रकार से पुण्डरीकाक्ष, यज्ञ, वैकुण्ठ, अमृतहारक, पीताम्बर, सत्यवीरश्रवा, श्रीवत्सलाञ्छन, वनमाली, श्रीसहाय, मुकुन्द, गरुडध्वज, चतुर्भुज, जगद्योनि, चक्रपाणि, गदाधर, लक्ष्मीपति, देवदेव, अव्यय, धरणीधर, शेष, गरुड, विष्वक्सेन, सुदर्शन, योगराज, वटपत्रशायी, नर, हंस, दत्तात्रेय, त्रिमूर्ति, बहुमूर्ति, वहुरूपी, कपिल, मुसलायुध, मुरारि, शिशुमार, पुण्डरीक, हैहय, विष्णुपञ्जर, और योगेश वे सब विष्णुकी, मूर्त्तियां हैं । चतुर्मुख, स्वयम्भू, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ ये पांच ब्रह्माजी की मूर्त्तियां हुई । इसके बाद शङ्करजी की मूर्त्तियां भी कही जाती हैं । जैसे—

शिवनाम, सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान, शर्व, शङ्कर एवं चन्द्रशेखर और भव । हरिहर की मूर्ति एक होती है इसी तरह—सूर्य, धर्मराज

गणेशश्च कुण्डलिन्यश्च सर्वशः ॥ इत्येता मूर्तयः प्रोक्ताः शालग्राम समुद्भवाः । उद्देशक्रमतश्चासामुच्यते लक्षणान्यपि ॥

तत्राऽऽदौ मत्स्यादिदशमूर्तय उच्यन्ते—

मत्स्यः कूर्मः सूकरो नारसिंह–
स्तद्वत् खर्वो भार्गवश्चाथ रामः।
रामः सीता प्राणनाथस्तथाऽन्यो–
रामः प्रोक्तो रौहिणेयोऽपि बुद्धः ॥
तथा कल्कीति विख्यातो ह्यवताराविभोर्दश ।
नारायणस्य क्रमतः कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ॥

तत्रादौ मत्स्यमूर्त्तिलक्षणानि

ब्रह्माण्डपुराणे—

दीर्घद्वारयुता स्निग्धा द्वारमध्ये द्विचक्रयुक् ।
चक्रमेकं पुच्छभागे दक्षिणे शफराकृतिः ॥
वामे प्रदृश्यते रेखा मत्स्यमूर्त्तिः शुभप्रदा । इति ।

पद्मपुराणे—

त्रयोमत्स्यादयः श्यामा द्विचक्राः स्वाङ्कसंयुताः ।
तेषां संदर्शनादेव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ इति ॥

और गणेश की भी और बची सभी कुण्डलिनियां जाननी चाहिये । इस तरह से शालग्राम पर उत्पन्न होनेवाली मूर्तियाँ कही गयी हैं । नाममात्र से वस्तु को बताना उद्देश है । उसी उद्देशक्रम से इनके लक्षण भी बताये जाते हैं । उन लक्षणों में से पहले मत्स्य आदि दशमूर्तियां कही जाती हैं । जैसे—

मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, सीतापतिराम, रोहिणीपुत्र राम (बलराम) एवं बुद्ध और कल्की इन नामों से प्रसिद्ध उन व्यापक भगवान के अवतार दस हुए हैं । अब क्रमानुसार इनके लक्षण बताये जाते हैं ।

सब से पहले ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार मत्स्यमूर्ति के लक्षण कहे जाते हैं ।

जिसका द्वार लम्बा हो, शिला चिकनी हो, द्वार मध्य में दो चक्र हों, पोंछ की ओर एक चक्र हो, दाहिने भाग में मछली का आकार बना हो और बायीं ओर रेखा दीखती हो तो उस शिला को मत्स्यमूर्ति कहते हैं । वह शुभ फल को देती है ।

पद्मपुराण के अनुसार—

काली शिलाएं हों मत्स्यादिकों के चिह्न तीन और दो चक्र हों तो इनके दर्शन ह से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है ॥ इत्यादि ॥

वाराहपुराणे—

मत्स्याकृतिमुखाकारां मुखसन्दृश्य चक्रकाम् ।
श्रीवत्सबिन्दुमालाढ्यां मत्स्यमूर्त्तिः शुभां विदुः ॥

अत्र निरुपपदत्वात्सर्वत्रबिन्दवः सौवर्णा ज्ञेयाः । तथा—

नानावर्णयुतं दीर्घं स्पष्टचक्रं तु दक्षिणे ।
वामे वा मत्स्यसंयुक्तं मत्स्यं सर्वफलप्रदम् ॥ इति ॥

पुराणसंग्रहे—

बिन्दुत्रयसमायुक्तं शङ्खवच्चक्रलाञ्छितम् ।
दीर्घं दक्षिणवामास्यंमात्स्यं चक्रसमीपगम् ॥

विहगेन्द्रसंहितायाम्—

चक्रस्य दक्षिणे भागे दृश्यते मकराकृतिः ।
वामे वा दृश्यते वीरमत्स्यमूर्त्तिरुदाहृता ॥
पूज्या वन्द्या सदा मर्त्यैर्भवरोगोपशान्तये ॥ इति ॥

ब्राह्मे—

दीर्घा च काचवर्णा च बिन्दुत्रयविभूषिता ।
मत्स्याख्या साशिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ इति ॥

वराहपुराण के अनुसार—

जिस पर मछली के मुँहका आकार बना हो, मुँहपर चक्रदीखता हो, श्रीवत्स, बिन्दु और माला से सम्पन्न हो तो उसको शुभदायक मत्स्यमूर्ति जानना चाहिये। यहां पर बिन्दु शब्द का कोई विशेषण नहीं है इसलिये उसका अर्थ सुवर्ण बिन्दु जानना चाहिये। इसका लक्षण और भी है अर्थात्—नानावर्ण से युक्त हो, कुछ लम्बी और बाईं वा दाहिनो ओर चक्र एवं मत्स्याकार हो तो सब फल देने वाली मत्स्यमूर्ति होती है। इत्यादि ॥

पुराण सङ्ग्रह में—तीन सुवर्ण बिन्दुओं और शङ्खसे युक्त हो (शङ्खवत् का अर्थ शङ्ख की तरह भी होता है।) चक्र चिन्ह के रहते दीर्घाकार और दायीं वायीं ओर मत्स्य के सदृश मुख हो, एवं मुख के नजदीक भी चक्र हो तो वह मत्स्य मूर्ति होती है। विहगेन्द्र संहिता में कहा है कि वीरमत्स्य मूर्ति में चक्र की दाहिनी वा बायीं ओर मकर (घड़ियाल) का आकार दीखता है। जन्ममरण सम्बन्धी रोग को मिटाने के लिये मनुष्यों को उस मूर्ति की पूजा एवम् वन्दना करनी चाहिये। ब्रह्मपुराण में—काँच की जैसी लम्बी, तीन बिन्दुओं से युक्त मत्स्यमूर्ति शिला होती है वह भुक्ति मुक्ति को देती है। विष्णु रहस्य पर—

विष्णुरहस्ये—

मत्स्यरूपन्तु देवस्य दीर्घाकारं सुपूजितम् ।
त्रिन्दुत्रयसमायुक्तं कृष्णवर्णसुशोभनम् ॥ इति ॥

अग्निपुराणे—

मत्स्योदीर्घस्त्रिविन्दुः स्यात्कांस्यवर्णेन पूरितः ॥ इति ॥

अत्रैव निर्णयः—एतेषु वाक्येषु एकस्याएवमत्स्यमूर्त्तेः सचक्रत्वाऽचक्रत्वचिह्नादिवैलक्षण्यन्यूनाऽतिरेकत्वान्युक्तानि ।

तत्र सचक्रत्वादिबोधकवाक्येन निश्चक्रत्वादिकाया मत्स्यमूर्त्तित्वमिराकृतमेवं विपरीतामित्येवं परस्परवाधः ।

अथवा कैश्चिच्चिह्नैर्युक्तात्रिचक्रामत्स्यमूर्त्तिस्तथाद्विचक्राऽपि तथैकचक्रापि तथा निश्चक्रापीत्येवं सामान्यरूपो विकल्पः ।

अथवा बहुचक्रचिह्नयुक्तामुख्याऽल्पचक्रचिह्नयुक्ताऽनुकल्पेत्येवं मुख्यानुकल्परूपो विकल्पः । अथवा त्रिचक्रादिकायां यानि चिह्नानि तिष्ठन्ति

भगवान का मत्स्यस्वरूप दीर्घाकार का प्रशंसा के लायक तीन बिन्दुओं से युक्त काले वर्ण का और अत्यन्त मनोहर होता है ।

अग्निपुराण में—मत्स्यमूर्ति लम्बी तीन बिन्दुवाली काँस्यवर्ण की होती है । इत्यादि ॥ इसका निर्णय ऐसा है—

पूर्वोक्त मत्स्यमूर्ति के लक्षणसम्बन्धी प्रमाण के वाक्यों में एक ही मत्स्य मूर्ति के सचक्र, निश्चक्र, चिन्हों की विलक्षणता याने किसी प्रमाण से कम किसी से अधिक इत्यादि रूप से कई लक्षण बताये गये हैं । जिस प्रमाण से सचक्र मत्स्यमूर्ति सिद्ध होती है वह निश्चक्र लक्षण वाक्य से विरुद्ध होता है । वैसे ही निश्चक्रलक्षण वाक्य से सचक्र को नहीं लिया जा सकता है, प्रमाण तो दोनों तरह के मिलते हैं, इसलिये इन प्रामाणिक वचनों का परस्पर बाध हो गया ।

यों कहें कि कितनी कोई चिन्ह से युक्त होकर तीन चक्र, दो चक्र और एक चक्र की भी होती हैं या कितनी मूर्ति में चक्र ही नहीं रहता है, तो यह भी लक्षण विकल्प हो जाता है । विकल्प में सन्देह बना ही रहता है । विकल्प के भी दो भेद हैं, जैसे—मुख्य वा अनुकल्प अथवा उक्त लक्षणों के अनुसार अधिक चक्र चिन्ह से युक्त हो तो मुख्य और कम होतो सामान्य (अनुकल्प) । यों समझा भी जावे, तो पर भी मुख्यानुकल्प रूप विकल्प (संदिग्ध दोष) रह ही जाता है ।

यदि किसी तरह इस बात को मान लिया जावे कि तीनचक्रवाली मूर्ति में जितने चिन्ह रहते हैं यथा सम्भव उतने चक्रों के नहीं रहते भी लक्षणविरुद्ध

तद्व्यतिरिक्ताराभविरुद्धचिह्नानां यथासंभवमन्यवाक्येभ्य उपसंहारो निश्च-क्रायामपि चक्रस्योपसंहारः। इति।

अथैतेषां पक्षाणां मध्ये कोवा पक्ष उपादेय इत्यत्रोच्यते। तत्राद्यपक्षो न रमणीयः। परस्परबाधेन पूज्यमूर्त्तेरभावप्रसङ्गात्तद्बोधकशास्त्राणां सर्वथा निर्विषयत्वेनाऽप्रमाण्यप्रसङ्गाच्च। अतएव द्वितीयोऽपि न मनोहरः। इतरेतरबाध्यबाधकभावेन विरोधस्यतदवस्थत्वात्।

उत्तरपक्षद्वये तु मुख्याऽनुकल्पत्वेन यथासम्भवविरुद्धगुणोपसंहारेण वा विरोधगन्धाऽभावात्तस्यैव स्वीकारो न्याय्य इत्ययं न्याय उत्तरत्र व्यक्तो-भविष्यति॥ तत्र ब्रह्माण्डोक्तविचक्रकमत्स्यमूर्त्तेर्वर्णानुक्त्वा पाद्माद्युक्त-श्यामवर्णे उपसंहर्त्तव्यः॥ तथा वाराहाद्युक्तमत्स्याकृतिमुखाकारत्वादि चिह्नानि विरुद्धनानावर्णत्वरूपंचिन्हं विना यथासंभवमुपसंहर्त्तव्यानि॥

चिन्ह न हों (लक्षण के अनुसार चिन्ह मात्र पाये जाते हों) तो उसको मत्स्य-मूर्ती जाननी चाहिये, यह भी ठीक नहीं क्योंकि तब तो चक्र हों या न हो चक्रों की बात ही नहीं रह जाती है, अथवा चक्र और आकार के रहते चिन्ह हों या न हों यह भी अर्थ हो सकता है, अतएव उक्त लक्षणों का परस्पर उपसंहार भी होता है। इन चारों में किस पक्ष को लेना चाहिये—इस पर कहा जाता है—

पहला (बाध) पक्ष अच्छा नहीं है क्योंकि अचक्र तो लक्षण के अनुसार मूर्ति को दूसरा रहेगा, लक्षण में परस्पर बाध होता है इसलिये उसे पूज्य मूर्ति ही न मिलेगी और परस्पर विरोध के कारण शास्त्रों में भी श्रद्धा न रहेगी। अर्थात् शास्त्रों को प्रामाणिक न माना जावगा। इसी कारण से दूसरा पक्ष भी सुन्दर नहीं है क्योंकि चक्रहीन, चिन्हयुक्त को लिया जावे या चिन्हहीन चक्रयुक्त को; इस बात का सन्देह किसी प्रकार से छूट नहीं सकता है इसलिये बाध दोष रही जाता है।

और पिछले दो पक्ष में तो, सम्पूर्ण लक्षणयुक्त को मुख्य और कुछ कम को अनुकल्प समझकर के अथवा यथासम्भव (चक्रचिह्न आकार) इत्यादि गुणों को लेकर "अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः" इस न्याय से निर्वाह चलाने में प्रमाण विरोध की गन्ध मात्र भी नहीं रह जाती है—अतएव मुख्यानुकल्प और उपसंहार पक्ष ही ठीक हैं। इसी बात का आगे जाकर स्पष्टीकरण होगा। एवञ्च ब्रह्माण्डपुराण में चक्रहीन मत्स्य स्वरूप का कोई वर्ण नहीं बताया है इसलिये वहां पर पद्म इत्यादि पुराण के अनुसार—श्याम वर्ण में उपसंहार करना चाहिये, याने श्याम समझना चाहिये। इसी तरह वाराहादि पुराणोक्त मत्स्याकार मुखाकार इत्यादि चिह्न अन्य प्रमाण के प्रतिकूल चिह्नों को भी अन्यान्यप्रमाण से उपसंहार करते हुए यथासंभव दोष का परिहार करना चाहिये। प्रायः इन

यदि नानावर्णस्यैवोपसंहारस्तदा विरुद्धश्यामवर्णो नोपसंहर्तव्यः ।

प्रायस्तु बहुवाक्योक्तश्यामवर्णएवोपसंहर्तव्या नैकवाक्योक्तनानावर्णः। सचोपसंहारः संभववशादेव न स्वेच्छया ।

एवं पाद्मोक्तद्विचक्रायां वाराहाद्युक्तैकचक्रायामपि मत्स्यमूर्तौ वाक्यान्तरोक्तचिह्नानामुपसंहारः कर्त्तव्यः ॥ तत्र त्रिचक्रामुख्यतमा, द्विचक्रामुख्यतरा, एकचक्रा मुख्या । एतासां मध्ये उत्तरोत्तरापेक्षयापूर्वपूर्वामुख्या ॥ पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तराऽनुकल्पा ।

तत्रापि बहुगुणयुक्तैकचक्राचेत्सैवमुख्या, तद्विपरीते त्वितरत्वे द्वे अनुकल्पे। एवं द्विचक्रापि त्रिचक्रापीत्येवं मुख्यानुकल्पत्वं च ज्ञेयम्। नन्वष्टाकपालानां द्वादशकपालस्तावकत्ववदेकचक्रद्विचक्रयोस्त्रिचक्रस्तावकत्वात् । न पुनस्त्रिचक्रातिरिक्तैकचक्राद्विचक्रावा मूर्त्तिः स्वीकार्य्येति चेन्न, एकचक्र-

---

बातों की इस तरह से वैठान करनी चाहिये कि, श्यामवर्ण के लिये अधिक प्रामाणिक वाक्य मिलते हैं, एकवर्ण के लिये एक ही प्रमाण है इसलिये नानावाक्योक्त प्रमाण को ही लेना चाहिये, यह तो उपसंहार से काम निकला, परन्तु वह भी अपनी इच्छा से नहीं, किन्तु लक्षणों का सम्भव देखकर ही।

इस तरह पद्मपुराण के प्रमाण से द्विचक्र और वराहपुराणादि के प्रमाण से एकचक्र की मत्स्यमूर्ति में और दूसरे चिह्नों के प्रमाणसम्बन्धी वाक्य को लेकर उसका उपसंहार जान लेना चाहिये। अर्थात् चक्र के अतिरिक्त अन्य चिह्न से भी मिलती जुलती होतो उसे मत्स्यमूर्ति जाननी चाहिये। अतएव यह कहा जा सकता है कि त्रिचक्रमूर्ति मुख्य होती है, क्रमशः द्वि-एकचक्र की मूर्ति उससे कुछ कम की होती है। अर्थात् इस प्रकार जानना चाहिये कि एकचक्रवाली से द्विचक्रवाली उससे भी तीन चक्रवाली उत्तम समझी गयी है। इस प्रकार मुख्य और अनुकल्प का भेद जानना चाहिये। उसमें भी चिह्न इत्यादि अधिक गुण से युक्त हो तो एक ही चक्र की क्यों न हो वह भी मुख्य हो सकती है इसी प्रकार चिह्न और लक्षण के अवान्तर भेद से सभी मुख्य सभी अनुकल्प हो सकते हैं। जैसे उक्तरीतिसे एकचक्रमूर्ति कीअपेक्षा द्वि-त्रिचक्र की मूर्तियाँ अनुकल्प होती हैं। यदि कहिये कि यज्ञादि में अष्टाकपाल की द्वादशकपाल से स्तुति की गयी है, एवम् रीत्या यहाँ पर भी एकचक्र-द्विचक्र मूर्तियों की त्रिचक्र मूर्ति से स्तुति की गयी समझना चाहिये, वास्तव में तो त्रिचक्रवाली ही श्रेष्ट होती है। अतः उसके अतिरिक्त द्वित्रि चक्राङ्कितमूर्तियों को नहीं स्वीकार करना चाहिये।

द्विचक्रमूर्त्योरभावे सति पूर्वोक्तैकचक्रद्विचक्रादिमूर्त्युद्देशकपुराणसंग्रहोक्तवाक्येष्वेतस्या एकचक्रायाश्च परिगणनस्याऽविषयत्वापत्तेः ॥ तस्माद्वाक्यान्तराऽनुरोधेन तिस्रोऽपिमत्स्यमूर्त्तयः स्वीकार्याः ॥ नन्वेवं ब्राह्मोक्तनिश्चक्रापि मत्स्यमूर्तिरतिरिक्ता भवत्विति चेन्न, वाक्यान्तरानुरोधाभावात् सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियत विशेषत इतिन्यायाच्च एतस्यां चक्रोपसंहारस्यैवोचितत्वात् ॥ सचोपसंहारस्त्रयाणां द्वयोरेकस्य वाचकस्य यथासंभवं कार्यः ।

ननु तर्हि द्विचक्रैकचक्रमूर्त्योर्बहुफलदातृत्वेन मुख्यत्वं तद्विरुद्धत्रिचक्रमूर्त्तेरेवानुकल्पत्वमितिचेन्न, साधनगौरवेणैव साध्यगौरवस्याऽवश्यं कल्पनीयत्वात् । अयं न्याय उत्तरत्रापि द्रष्टव्यः । विशेपस्तु तत्र तत्रैववक्ष्यते । इति मत्स्यमूर्तिलक्षणानि ।

ऐसी बात नहीं है । क्योंकि पूर्वोक्त एकचक्र-द्विचक्र मूर्तियों का स्वीकार न किया जाय तो उन मूर्ति के उद्देशक्रम से लक्षण बतानेवाला शास्त्र ही व्यर्थ हो जायगा । क्योंकि उनके लक्षण बताकर परिसंख्या करने की क्या जरूरत रही ? परिसंख्या कहते हैं पाक्षिक नियम को जैसे "विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसङ्ख्येति गीयते" इत्यादि । इसलिये प्रमाण वचन के अनुसार तीनों तरह की मत्स्यमूर्ति का स्वीकार करना चाहिये । न कहिये कि ब्रह्मपुराण के अनुसार निश्चक्र मत्स्यमूर्ति अलग होती है । सो बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस तरह का स्वीकार बतानेवाला दूसरा कोई वाक्य नहीं है । और सामान्य का बाधक विशेष होता है इस न्याय से भी इस प्रकार की मूर्ति में चक्र का (यथासम्भव) उपसंहारक से ही ठीक बैठता है । उपसंहार का मतलब यह है कि जहाँतक संभव हो तीन चक्रों के दो में और दो का एक में मतलब लगाकर समाप्त कर देना चाहिये ।

यदि ऐसी बात कहते हों तब तो त्रिचक्र की मूर्ति की अपेक्षा दो चक्र की, उसकी अपेक्षा एक चक्र की अधिक फलदायक होगी । इस वास्ते द्विचक्र एकचक्र की श्रेष्ठ होगी त्रिचक्र की मूर्ति तो अनुकल्प हो जायगी ।

सो नहीं, कारण के गौरव से कार्य का गौरव भी अवश्य कल्पनीय होता है । अर्थात् बहुत कारण को बताकर उसके सदृश अन्य कार्य के रहते एक ही की ओर प्रमाणों की बोझ लदा देना ठीक नहीं क्योंकि यत्न गौरव हो जाता है । इसी बात को कूर्मादि मूर्तियों के लक्षण पर भी समझना चाहिये । उनमें जहाँ पर विशेष बात होगी वह तो उसीपर कहेंगे ही ।

मत्स्य मूर्ति का लक्षण समाप्त हो गया, अब कूर्म के लक्षण बताये जायेंगे ।

अथ कूर्ममूर्तिलक्षणानि

पद्मपुराणे—

कूर्माकारा च चक्राङ्का शिला कूर्मः प्रकीर्तितः ।
एवं मत्स्यादयो ज्ञेया शालग्राममनीषिभिः ॥ इति ।

अत्र कूर्मप्रसंगात् मत्स्यादीनामपि तत्तदाकाररूपलक्षणमुक्तमिति ज्ञेयम्।

पुराणसंग्रहे—

एतल्लक्षणसंयुक्तं भानोर्वलयपञ्चकम् ।
कूर्मरूपमधश्चक्रं दुर्लभं सर्वकामदम् ॥ इति

अत्रैतच्छब्देन मत्स्यप्रकारगतबिन्दुत्रयसमायुक्तमिति पुराणसंग्रह वाक्योक्तबिन्दुत्रयादिचिह्नानि परामृश्यन्ते । अतस्तत्रैव—

मत्स्याख्या कूर्मसंयुक्ता कूर्माख्या मत्स्यसंयुता ।
पद्मासनस्था सामुद्रा ह्यर्थकामफलप्रदा ॥ इति ।

मत्स्यकूर्मयोः परस्परं कतिपयमुद्रासाम्यमुक्तम् ।

पद्मपुराण के अनुसार कूर्ममूर्ति के लक्षण—

चक्रचिन्हित कूर्माकार शिला को कूर्म कहा जाता है। इसी तरह चक्रयुक्त मत्स्याकार शिला को मत्स्य इत्यादि विद्वान् लोग को जानना चाहिये।

यहाँ पर कूर्म के प्रसङ्ग से मत्स्य, वराह, वामन इत्यादि का भी उसी प्रकार स्वरूपनिर्देश किया गया है, ऐसा जानना चाहिये।

पुराणसंग्रह में लिखा है कि—

यदि सूर्य के मण्डल के सदृश पाँच गोल चिन्ह हों, उसके अधोभाग में चक्र हो और कछुवे के आकार का सा दीखता हो तो वह इन लक्षणों से युक्त दुर्लभ और सभी कामनाओं को देनेवाली कूर्म शिला होती है। इत्यादि॥ "एतल्लक्षण..." पद में जो एतद्शब्द आया है उससे मत्स्यमूर्ति के लक्षणान्तर्गत—"बिन्दुत्रय समायुक्तम्···" इत्यादि पुराणसंग्रह के वाक्यानुसार "तीन बिन्दुओं से युक्त भी हो," इत्यादि पूर्वोक्त लक्षणों की अनुवृत्ति करनी चाहिये। इसी जगह से उसीपर—कूर्म लक्षण से मिलती-जुलती मत्स्यमूर्ति और उससे मिलती-जुलती कूर्ममूर्ति की मुद्रा होती है, यह मुद्रा पद्मासन में रहती है, और सभी कामनाओं को देती है, इस प्रमाण से मत्स्य कूर्मों में परस्पर कितनी मुद्राओं की साम्यता बतलाई गयी है।

नारदपञ्चरात्र का प्रमाण है कि—

नारदपञ्चरात्रे—

हरिद्वर्णः कौस्तुभेन युता उन्नतपृष्ठिमान् ।
वर्तुलावृत्तवान्पृष्ठे कूर्मसंज्ञोमहामणिः ॥ इति ।

ब्राह्मे— कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्तशोभनः ।
हरित वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन सुचिह्नितम् ॥

विष्णुरहस्ये—कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठेवर्तुलावर्तसंयुतः ।
हरिद्वर्ण समाख्यातः कौस्तुभेन सुचिह्नितम् ॥ इति ।
तथा—पाशाङ्कुशाङ्कितं देवं नीलवर्णं विशारदम् ।
कूर्मदेवं भजन्नाम अचलां श्रियमाप्नुयात् ॥ इति ।

तथा—कूर्मचक्रोद्भवं पृष्ठे वर्तुलावर्तपूरितम् । सर्वकामप्रदं ज्ञेयं सुखसौभाग्य वर्द्धनम् ॥ इति ।

वाराहपुराणे—

वर्तुलः कमठाकारो वनमालादि चक्रवान् ।
श्यामाभो हेमबिन्दुश्च कूर्मस्तु भुवि दुर्लभः ॥ इति ।

अन्यत्रापि—कूर्मःस्यादुन्नतशिराः पृष्ठभागे खुरान्वितः ।
विख्यातो दुर्लभः सर्वमनोरथफलप्रदः ॥ इति ।

कौस्तुभ के आकार से युक्त होते हुए हरित वर्ण का एवम् उच्च हो और पृष्ठभाग में गोलचक्र हो तो उसे कूर्मसंज्ञक महामणि (मूर्ति) जानना चाहिये । इत्यादि ॥

ब्रह्मपुराण का प्रमाण—

"तथा" माने मत्स्य के सदृश जो चक्र से सुन्दर होकर गोल एवम् पृष्ठ भाग में उन्नत होते हुए कौस्तुभ चिन्ह से युक्त रहकर हरितवर्ण का दीखता हो उसे कूर्म कहा जाता है ।

विष्णु रहस्य पर—

जो उक्त प्रकार से उन्नत, पृष्ठ भाग में वर्तुलाकार, आवर्त से युक्त होकर हरितवर्ण के साथ साथ कौस्तुभ चिन्ह से भी युक्त हो तो वह कूर्म होता है।

तथा—

पाश और अंकुश चिन्ह से युक्त, श्रेष्ठ, नीलवर्ण के कूर्मदेव को भजता हुआ मनुष्य अचल ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।

और भी—

जो कूर्माकार होते हुए पृष्ठचक्री है और गोलाकार आवर्त से युक्त है उसे सुख सौभाग्य को देनेवाला सभी कामनाओं का पूरक कूर्म जानना चाहिये ।

अन्यत्र भी—

जो पिछले हिस्से में खुर से युक्त होकर ऊँचे सिर का हो उसे कूर्म कहना चाहिये, वह सभी मनोरथ का दाता एवम् दुर्लभ होता है ।

स्कान्दे—

कूर्मञ्च वर्तुलाकारं गम्भीरसुषिरान्वितम् ।
असितं प्रोन्नतं चैव स्थिरासनसमन्वितम् ॥
विस्तृतं द्वारदेशेतु भित्तिलग्नसुचक्रकम् । इति ॥

ग्रन्थान्तरे—

वर्तुलं श्याममृदुलं पृष्ठभागे तथोन्नतम् ।
द्विचक्रं बहुरेखाढ्यं कूर्मदेवं सनातनम् ॥ इति ।

अग्निपुराणे—

कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्तकोऽसितः । इति ।

ब्रह्मांडपुराणे—

चतुर्द्धाकूर्ममूर्त्तिस्यात्पार्श्वभागे खुरान्विता ।
विख्याता दुर्ल्लभा सर्वमनोरथफलप्रदा ॥ इति ।

तथा । बिन्दुत्रयान्विता शंखचक्रध्वजयुतापि च । दीर्घदक्षिण

वाराह पुराण में—

जो गोल, कूर्माकार, वनमाला इत्यादि चक्र से युक्त, श्याम वर्ण का एवम् सुवर्ण बिन्दु से युक्त हो वैसा कूर्म मर्त्यलोक में मिलना दुर्लभ है ।

स्कन्द पुराण में—

जो गम्भीर छिद्र के रहवे गोलाकार श्यामवर्ण का ऊँचा, विशाल मुख का, कोणभाग में चक्र से संयुक्त और स्थिरासन का होता है उसको कूर्म कहते हैं। "अत्राऽऽहुरित्यध्याहारः" ॥

ग्रन्थान्तर में—

जो गोल हो, साँवला और कोमल हो, पृष्ठ भाग में उच्च हो, इसी प्रकार दो चक्र और अधिक रेखाएँ हों तो उसे सनातन कूर्म कहते हैं ।

अग्नि पुराण में—

वैसे ही अर्थात उन्नत, पृष्ठ वर्तुलावर्तसंयुक्त, श्यामवर्ण का कूर्म होता है। (यहाँ पर तथा शब्द से त्रिबिन्दु रेखा वगैरह मत्स्योक्तलक्षण के सदृश कुछ उत्कर्षेप लक्षणों को भी जानना चाहिये) ॥ इत्यादि ॥

ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार—

कूर्म के चार भेद होते हैं। जिसके पार्श्वभाग (बगल) में खुरका चिह्न पाया जाता है वह सभी मनोरथ को देनेवाला प्रसिद्ध और दुर्लभकूर्म होता है। तथा—तीन बिन्दु के साथ शङ्ख, चक्र और ध्वजाकार से भी युक्त हो

वामास्या भानोर्वलयपञ्चकैः ।। भूषिता कूर्ममूर्त्तिः स्याद्दुर्ल्लभा सर्वकामदा ।। इति । तथा—वृत्तायता कूर्ममूर्त्तिः कनकच्छविसंयुता । स्नुहीपुष्पाकृतिर्वाऽपि चक्रस्योभयपार्श्वतः ।। कूर्ममूर्त्तिः खगेशान सर्वकामफलप्रदा । इति ।

तथा—

वर्तुला कमठाकारा दीर्घद्वाराखगेश्वरः ! नाभिचक्रयुतारम्या कूर्माकारा तु पार्श्वतः ।। स्थिरासना चलत्पृष्ठा उन्नता नीललोहिताः । कूर्ममूर्त्तिरितिख्याता पुत्रपौत्रादिवर्द्धना ।। इति ।

अत्रकूर्ममूर्तेः त्रयोमत्स्यादयः श्यामाद्विचक्राः स्वाङ्कसंयुता इति मात्स्यप्रकरणागत सामान्यवाक्याद्विचक्रत्वमेव यद्यपिप्राप्तम्, तथापि नाभिचक्रयुतेत्यनेन प्रकरणगतविशेषवाक्येनऽधिकरणविशिष्टैक चक्रान्तरस्य विहितत्वमपि भवति । कूर्ममूर्त्तेर्द्विचक्रकोद्देशकपूर्वोक्तपुराणसंग्रह वाक्यानुरोधात् । एवमग्रे यत्रयत्र नाभिचक्रत्वकथनं तत्रतत्रोक्तचक्राति-

---

दाहिनी वा बायीं ओर का मुख कुछ लम्बा हो और सूर्य के मण्डलसदृश पाँच चिह्न हों तो वह सभी कामनाओं को देनेवाली कूर्ममूर्ति होती है । तथा—

वृत्त, दीर्घ, सुवर्ण कान्ति का और थूहर के फूल का जैसा चक्र का दोनों भाग हों तो हे गरुड़ जी ! उसे सभी कामनाओं को देनेवाली कूर्ममूर्ति कहा जाता है । इत्यादि ॥

तथा—

हे गरुड़ जी ! गोल, कूर्माकार, दीर्घमुख, नाभि में चक्रवाला, पार्श्वभाग में भी कूर्माकार ही हो स्थिरासन (अर्थात् जमीन पर रखने से नहीं लुढ़कता हो) पृष्ठ भाग से लुढ़क भी सकता हो, उन्नत हो, नीललोहित (नीलरक्त वा साँवला) वर्ण का होतो उसे पुत्र-पौत्रादि सन्तति को देनेवाला कूर्म कहा जाता है। यद्यपि यहाँ पर "मत्स्यादि मूर्तियाँ काली दोचक्रवाली और अपने अपने नाम के आकार की होती हैं" इस प्रमाण से आदिपदेन उसी प्रकरणक्रम के अनुकूल कूर्ममूर्ति पर भी दो ही चक्र होना चाहिये । पर भी "नाभिचक्रयुता" इत्यादि प्रमाण से पूर्वोक्त प्रकरणान्तर्गत प्रमाण का बाध समझना चाहिये । "सामान्य विधि के लिये विशेषविधि बाधक हो जाता है । और अनुक्तलक्षण के लिये तो उसकी अनुवृत्ति रहती ही है । अतएव अधिकरणविशिष्ट एकचक्रत्व लक्षण का विधान भी होता है । क्योंकि कूर्ममूर्ति के लिये द्विचक्र का निर्देश करनेवाला पूर्वोक्त पुराणसंग्रह का वाक्य है ही । इस प्रकार आगे भी जहाँ जहाँ पर नाभिचक्रत्व का वर्णन आता है वहाँ पर भी प्रमाण सिद्ध-चक्र के अतिरिक्त

रिक्तानन्तरं वाक्यान्तरानुरोधाज्ज्ञेयम्। तस्मादियं द्विचक्रा त्रिचक्रा च ज्ञेया। चक्ररहितकूर्ममूर्त्तिलक्षणेष्वपि मात्स्यप्रकरणोक्त न्यायेन द्विचक्रत्वं त्रिचक्रत्वं वानुसंधेयम्। तथा वाक्यान्तरोक्तचिह्नान्तराणां यथासम्भवमुपसंहारस्तद्बहुत्वाल्पत्वाभ्यां मुख्याऽनुकल्पत्वञ्च पूर्ववद् द्रष्टव्यम्॥ इति कूर्ममूर्त्ति लक्षणानि।

अथ वाराहमूर्त्तीनां सभेदलक्षणानि

तत्र चत्वारो वराहस्य भेदाः। तदुक्तं पुराणसंग्रहे—

चतुर्द्धा तु वराहः स्यात्तत्राद्यः शुद्धसंज्ञकः।
पृथ्वीवराहस्त्वपरस्ततो लक्ष्मीवराहकः॥

श्वेतवाराहकश्चाथ तेषां लक्षणमुच्यते। तत्रादौ शुद्धवाराहलक्षणम्। पद्मपुराणे—

वाराहाकृतिराभुग्नश्चक्रादिभिरलङ्कृताः।
वराह इति स प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः॥ इति॥

ग्रन्थान्तरेऽपि—

अतसी कुसुमप्रख्या नीलोत्पलनिभाऽथवा। दीर्घाकारा तु वै दीर्घद्वारयुक्ता

प्रमाणान्तर के अनुसार जानना चाहिये।

कहने का मतलब यह है कि मत्स्यप्रकरणोक्त प्रमाण के अनुसार चक्ररहित कूर्ममूर्ति के लक्षणों पर भी द्विचक्रत्व त्रिचक्रत्व इत्यादि का समावेश करना चाहिये। एवम् अन्य प्रमाण से बताये गये अन्योन्य चिह्नों का भी पूर्वोक्त समाधान के अनुसार अनुसन्धान करना और बहुचक्रत्वाल्पचक्रत्व का भी मुख्यानुकल्परूप से अनुसन्धान करते हुए दोष का परिहार करना एवम् उनका उपसंहार पहले की तरह जानना चाहिये। इस प्रकार कूर्ममूर्ति का लक्षण समाप्त हुआ।

अब भेद के साथ वराह मूर्ति के लक्षण बताये जाते हैं। वराह मूर्ति के चार भेद होते हैं। सो पुराणसंग्रह में कहा —चार प्रकार के वराह होते हैं जैसे पहला शुद्धवराह, दूसरा पृथ्वीवराह, तीसरा लक्ष्मीवराह और चौथा श्वेतवराह; क्रमशः इनके लक्षण भी कहे जाते हैं।

पद्मपुराण में—

जिसकी टेढ़ी आकृति होकर चक्रादि से शोभित होते हुए वराहसा दीखता हो वह सभी फल को देनेवाला वराह कहा जाता है। इति॥

ग्रन्थान्तर में भी—

तिस्सी के फूल या नीलकमल का जैसा लम्बे आकार का लंबे द्वार से युक्त

सुगह्वरा ।। पृष्ठरेखासमायुक्ता वराहाकृतिका तथा। आस्यमात्रं तु वैतार्क्ष्यपादान्तमपिवा तथा ।। दृश्यते तु प्रभाकारा रेखा पृष्ठेऽथपार्श्वके। वराहमूर्त्तिरित्युक्ता राज्यलक्ष्मीप्रदायिका। पुत्र पौत्रादि संवृद्धि प्रजाज्ञानप्रदा सदा ।। इति ।।

पद्मपुराणे—

वराहः सतुविज्ञेयश्चक्रे यस्य सदंबुजे।
तस्य सम्पूजनाद्देही प्राप्नोति मनसेप्सितम् ।।

पाद्मवाराहपुराणयो :—

वाराहशक्तिलिङ्गन्तु चक्रे तु विषमे स्थिते।
इन्द्रनीलनिभं स्थूलं त्रिरेखालाञ्छितं शुभम् ।। इति ।।

वाराहपुराणे—

कूर्माङ्गानीवयत्पश्येद्वाराहं रूपमेव तत्।
गोष्पदं यत्र दृश्येत वराहो नात्र संशयः ।। इति ।।

कूर्माङ्गयुक्तं वराहरूपमित्यर्थः। अत्र द्विचक्रः स्वाङ्कसंयुता इत्यनेनैतस्या वराहाकृतित्वेप्राप्तेसत्यपि कूर्माङ्गानीवेत्यनेन विशेषवचनेनाऽङ्गांशे कूर्म-

---

होकर उसी में लम्बी सुराख भी हो, पिट्ठी की ओर रेखा भी रहे, आकार वराह का हो या मुख चरणों में कोई भी वराह का जैसा हो अथवा कान्ति से युक्त होते हुए पृष्ठ भाग में रेखा हो तो पुत्र-पौत्रादि समृद्धि प्रजा, ज्ञान और राज्य-लक्ष्मी को भी देनेवाला वराह कहा जाता है।

पद्मपुराण में—उस मूर्ति को वराह जानना चाहिये जिसमें शङ्ख वा कमल के रहते चक्र भी हो, उसकी पूजा करने से मनुष्य का मनोरथ सिद्ध हो जाता है ।। इत्यादि ।।

पद्म और वराहपुराणों पर—

चक्र के विषमरूप से रहते इन्द्रनील का जैसा स्थूल और तीन रेखाओं से युक्त रूप को वराहसम्बन्धि शक्तिलिङ्ग कहते हैं। वह शुभ होता है।

वराहपुराण में—

कूर्म की तरह जिसके अङ्ग दीखते हों आकार से वराह हो और जिसपर गाय का खुर दीखता हो उसे वराह जानना चाहिये, इसमें संदेह नहीं है। इसका सारांश यह है कि कूर्म के भी कुछ लक्षण जुटते हों तो वराह रूप होता है। अर्थात् यहाँ पर "द्विचक्रः स्वाङ्कसंयुता" इस प्रमाण से वराह की आकृति के वर्णन किये जाने पर भी "कूर्माङ्गानीव···" इस विशेष वचन से चिह्नांश की अपेक्षा

रूपत्वं बोध्यते। कूर्ममूर्त्तेस्तु सकलाङ्गाया एव कूर्मरूपत्वमिति विवेकः। अस्या उपदेशाऽतिदेशवाक्याभ्यां द्विचक्रत्वमेव।

अथ भूवराहलक्षणम्

वाराहपुराणे—

दीर्घास्यं श्यामलाकारं पृथग्वलयवेष्टितम्।
द्वारदेशे लसच्चक्रं भूवराहं विदुर्बुधाः॥ इति॥

पुराणसंग्रहे—

अधोवक्त्रमसन्दिग्धम्पृष्ठोन्नतमपीनकम्।
वराहं धान्यफलदं सर्वैराराधनीयकम्॥

अङ्कुशाकारवदनं भूवराहं शुभं विदुरिति। अस्या अप्युक्तवाक्याभ्यां द्विचक्रत्वमेव।

अथ लक्ष्मीवराहलक्षणम्

वाराहपुराणे—

दक्षपार्श्वगते चक्रे समेलग्ने प्रदेशतः।
वनमालायुतो लक्ष्मीवाराहः परिकीर्तितः॥ इति॥

अस्याप्युक्तरीत्या द्विचक्रत्वमेव।

अङ्गांश में कूर्म रूप का बोध किया जाता है। कूर्ममूर्ति का तो सकल अङ्ग कूर्म ही रूप का होना चाहिये। इस तरह से लक्षण समन्वय करना चाहिये। इसके पहले के लक्षण और उनकी अनुवृत्तियुक्त वाक्यों से मालूम होता है कि दो ही चक्र होते हैं। वराह पुराण में—दीर्घमुख साँवले वर्ण का अलग मण्डलाकार से घिरी एवं द्वारभाग में चक्र से शोभती हुई मूर्ति को पण्डित लोग भूवराह कहते हैं। पुराण संग्रह में—जिसका अधोमुख स्पष्ट हो, पृष्ट भाग उन्नत तो रहे किन्तु इतना मोटा न हो तो सबके लिये पूजा योग्य धान्य फल को देने वाला वराहरूप होता है। जिसका वदन अंकुशाकार हो उसे विज्ञलोग शुभंदायक भूवराह कहते हैं। पूर्वोक्त प्रामाणिक वचनक्रम से इस मूर्ति में भी दो ही चक्र रहते हैं। वराहपुराण के हिसाब से अब लक्ष्मी वराह का लक्षण कहा जाता है—भीत से सटे हुए बराबर के दाहिनी बगल की ओर चक्र के रहते (वा प्रदेशपदेन अङ्गुष्ठमात्र प्रमाण के होते हुए) वनमाला से भी युक्त हो तो वह लक्ष्मी वराह कहा गया है। उक्त रीति से इसे भी दो चक्र का जानना चाहिये।

अथ श्वेतवाराहलक्षणम्

नृसिंहपुराणे—

गोक्षीरवर्णमतुलं वनमालाङ्कितं तथा।
श्वेतवाराहकं नाम तस्यपुण्यमनन्तकम् ॥ इति ॥

वाराहपुराणे—

दीर्घघोणासमायुक्तमेकदंष्ट्रं सुनिर्मलम्।
वनमालायुतं रम्यं श्वेतवाराहमुच्यते ॥ इति ॥

अस्याप्युक्तरीत्या द्विचक्रत्वं भवति। इतिवराहमूर्त्तिलक्षणानि।
अथ दशावतारक्रमप्राप्तत्वाद्विदारणराक्षसान्तकनृसिंहयोर्लक्षणमुच्यते।

तत्र विदारणनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

अन्तश्चक्रो बृहद्वारो दक्षिणोन्नतमस्तकः।
विदारण इतिख्यातो दंष्ट्राभ्यामुपशोभितः॥

ब्रह्मचर्यविपाकेन नरसिंहोऽर्चितो यदि। वह्निशत्रुभयं तस्य वह्निना दह्यते गृहम् ॥ इति ब्रह्मचर्यविपाकेन परिपक्वतारहितब्रह्मचर्येणेत्यर्थः ॥

नृसिंह पुराण के अनुसार श्वेतवराह का लक्षण कहा जाता है—अनुपम गाय के दूध का सा वर्ण होकर वनमाला से युक्त मूर्ति का नाम श्वेत वराह होता है और उसका पुण्य अनन्त होता है। इत्यादि।

वराहपुराण में—

लम्बी नाक और एक लम्बे दाँत (दाढ़ा) से युक्त निर्मल रमणीय वनमाला से शोभित मूर्ति को श्वेत वराह कहा जाता है। उक्तरीत्या इसके भी दो चक्र होते हैं। वराह मूर्ति का लक्षण समाप्त हुआ।

दशावतार के लक्षणों में अवतार क्रम से प्राप्त होने के कारण निम्नलिखित अवतारों में से पहले विदारण और राक्षसान्तक नृसिंह का लक्षण बताया जायगा उनमें भी पहले विदारण नृसिंह का लक्षण बताया जाता है। भीतर तो चक्र हो, द्वारदेश बहुत बड़ा हो, दाहिने तर्फ से शिर कुछ ऊँचा दीखता हो और दो लम्बे दातों से शोभित भी हो तो विदारण नृसिंह जानना चाहिये।

परिपक्व ब्रह्मचर्य के विरुद्ध रह कर यदि नरसिंह की पूजा की जाय तो उसे अग्नि और शत्रु से भय बना रहेगा और अग्नि से गृहदाह भी होगा।

ब्रह्मचर्य के विरुद्ध परिणाम को ब्रह्मचर्य विपाक कहते हैं, ऐसा अर्थ है।

तथा—

कपिलो ग्रन्थिमालाढ्यो रक्तबिन्दुखुरान्वितः ।
करालवदनो देवः पृथुचक्रस्सुदंष्ट्रकः ॥
विदारणाभिधानश्च नृसिंहो दीर्घकेसरः ।
ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसौ नान्यथा पूजितो भवे, दिति ॥

अथ राक्षसान्तकनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—

बहुच्छिद्रं भिन्नवक्त्रं सुवर्णघनकान्तिमत् ।
तद्राक्षसान्तकं ज्ञेयं नृसिंहं गृहदाहकम् ॥ इति ।

तथा—

अस्पष्टचक्रमल्पास्यं केशभारमनोहरम् ।
सच्छिद्रं राक्षसं ज्ञेयं नृसिंहं गृहदाहकम् ॥ इति ।

अत्र चक्रसंख्याया अनुक्तत्वेन "चक्रसंख्या न यत्रास्ति वर्णोक्तिर्नास्ति यत्र वै । द्वित्वं कार्ष्ण्यं च विज्ञेयं तत्र तत्र वसुन्धरे इति ॥"

और भी—

कपिलवर्ण का, ग्रन्थि और मालाकार से सम्पन्न, लाल बिन्दु एवं खुर के आकार से युक्त, करालमुख का विशालचक्र और सुन्दर लम्बे दाँतवाले तथा लम्बे केशर (जटा) के विदारणसंज्ञक नरसिंह देव होते हैं। इनकी पूजा ब्रह्मचर्य में रहकर ही करनी चाहिये, अन्यथा पूजित न होंगे। इत्यादि।

अथ राक्षसान्तक नरसिंह के लक्षण बताये जाते हैं।

ब्रह्माण्डपुराण में—

बहुत छिद्र से युक्त होकर जिसका मुँह फटा हो और सुवर्ण घन के सदृश कान्ति हो तो उसे गृहदाहक राक्षसों का विनाश करनेवाला नृसिंह जानना चाहिये।

तथा—

जिसका चक्र स्पष्ट न हो, छोटा मुँह हो, केशर के भार से सुन्दर एवं सच्छिद्र हो तो उसको राक्षसान्तकारी गृहदाहक नृसिंह जानना चाहिये। इस प्रमाण में चक्र की संख्या का वचन नहीं है इसलिये "जहाँ पर चक्र की संख्या नहीं कही गयी हो और वर्ण का वर्णन भी नहीं किया गया हो, वहाँ पर चक्र दो और वर्ण कृष्ण जानना चाहिये" इस सामान्य वाक्य के अनुसार दो

सामान्यवाक्याद् चक्रत्वमनुसन्धेयम् ॥ वर्णस्तु कपिल उक्त एव ॥ नृसिंहादिमूर्त्तीनामगृहस्थपूज्यत्वं तत्तद्वाक्यादेव तत्र तत्र द्रष्टव्यम् । अत्र-दशावतारपठितत्वाद्विदारणराक्षसान्तकनृसिंहयोर्लक्षणं कृतम् । अवशिष्ट-सप्तदशनृसिंहलक्षणानि चतुर्विंशतिमूर्त्तिक्रमे स्पष्टी भविष्यन्ति ॥ इति नृसिंहमूर्त्तिलक्षणानि ॥

अथ वामनमूर्तिलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

वामनाख्या हरेर्मूर्त्तिर्द्विविधा परिकीर्तिता ।
शुद्धवामनसञ्ज्ञेका त्वपरा दधिवामना ॥

तत्रादौ वामनलक्षणं पद्मपुराणे—

वामनाख्योभवेद्देवो ह्रस्वकायो महद्युतिः ।
ऊर्ध्वचक्रस्त्वधोवक्रः सोऽपि स्वार्थप्रदो नृणामिति ॥

ब्रह्मपुराणे—

अतसीपुष्पसङ्काशो बिन्दुनापरिभूषितः ।
पारिजातध्वजो वक्रो वर्तुलश्चातिशोभनः ॥
अन्नपानसमृद्ध्यादि सुखसौभाग्यवर्द्धनः ।
आरोग्य सुखदश्चैव वामनः परिकीर्त्तितः ॥ इति ।

चक्र का समझना चाहिये। वर्ण तो कपिल कहा ही है। "गृहदाहकम्" इत्यादि प्रमाण से गृहस्थ से भिन्न आश्रमवाले लोगों को ही नृसिंहादि मूर्तियों की पूजा करनी चाहिये इत्यादि तत्प्रमाणों से जानना चाहिये। यहाँ दशावतार प्रकरण के अनुसार प्रसङ्ग आने से विदारण और राक्षसान्तक नृसिंहों का लक्षण कहा गया, अब बचे सत्रह नृसिंह के लक्षण, चौबीस मूर्तियों के लक्षण प्रकरण में स्पष्ट होंगे।

अब पुराण सङ्ग्रह के अनुसार वामन मूर्ति के लक्षण बताये जायेंगे। शुद्धवामन और दधिवामन के भेद से वामन सञ्ज्ञक हरिभगवान की दो प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं।

पद्मपुराण के अनुसार वामन का लक्षण—

वामनदेव नाटे कद के, बड़े कान्तिमान, ऊर्ध्वचक्र और अधोमुख वाले होते हैं वह भी म य के लिये स्वार्थदायी हैं।

ब्रह्मपुराण में—

तिरसी के फूल के से वर्ण वाले, बिन्दु से शोभित, पारिजात ध्वजावाले, वक्राकार से युक्त गोलस्वरूप वामनदेव होते हैं। वह अन्न, पान, समृद्धि इत्यादि सुख-सौभाग्य के वर्द्धक, आरोग्य और सुख के दाता कहे गये हैं। इति ॥

वाराहे—

इन्द्रनीलनिभाभासं वनमालांऽम्बुजोज्ज्वलम् ।
ह्रस्वं च वर्त्तुलं चैव वामनं परिचक्षते ॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

वर्त्तुलंस्निग्धमत्यन्तं स्पष्टचक्रसमन्वितम् ।
ह्रस्वमुन्नतमुच्चैश्च दीर्घास्यमतिगह्वरम् ॥
स्फुरद्रेखावलियुतं नाभिस्तस्योन्नतोभवेत् ।
चक्रस्योभयपार्श्वे तु स्नुहीपुष्पाकृतिर्भवेत् ॥
केशभारस्तु वै तार्क्ष्य दृश्यते चक्रपार्श्वतः ।
वामनं गृहिणां श्रेष्ठं सुखसौभाग्यसंपदः ॥
गृहपुत्रान्नवृद्धिं च भूलाभं दिशति ध्रुवम् । इति ।

तथा— मध्यचक्रं चातिह्रस्वमतिस्निग्धं च कामदम् ।
स्पष्टचक्रं वामनं च नृणामीप्सितदायकम् ॥

तथा— अतसीकुसुमप्रख्यं किञ्चिदुन्नतमस्तकम् ।
तद्वामनं कामदं स्यात्किंचिदस्पष्टचक्रकम् ॥ इति ।

वराह पुराण में—

इन्द्रनील मणि (नीलम्) के सदृश कान्ति हो, वनमाला, कमल वा शंखाकार से उज्ज्वल, कद के छोटे और गोलस्वरूप हो तो "वामन" कहते हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में—

गाल, अतिस्निग्ध स्पष्टचक्र से युक्त, ऊँचाई में कुछ छोटे, दीर्घमुख, गहरी सुराखवाले एवं साफ रेखावाले से शोभित होकर जिनकी नाभी कुछ ऊँची हो, चक्र के दोनों बगल में थूहर के फूल का जैसा आकार बना हो, चक्र के बगल में केशभार दना हो तो गृहस्थों के श्रेष्ठ सुख-सौभाग्य, सम्पत्ति, गृह-पुत्र-अन्न इत्यादि को देते हुए पृथ्वी के लाभ करानेवाले वामन कहे जाते हैं। यह बात निश्चय जानना चाहिये ॥ इति ॥

जिसके मध्यभाग में चक्र हो, मूर्ति छोटी और चिकनी हो, चक्र स्पष्ट हो तो उस मूर्ति को मनुष्य के ईप्सितदायक वामन भगवान् कहते हैं। अत्राहु-रित्यस्याध्याहारः। तथा—तिस्सी के फूल के वर्ण से प्रसिद्ध, (नील) कुछ ऊँचे मस्तक और कुछ अस्पष्ट चक्र की मूर्ति को मनोरथ के दाता वामन जानना चाहिये। 'तद्वामनमिति क्लीबनिर्देशः वस्तुरूपमात्रपरः॥ इत्येवमन्यत्राऽपि॥"

तथा— वर्तुलं नीलमेघाभं वनमाला समन्वितम् ।
सूक्ष्मरन्ध्रं बृहत्कुक्षिं वामनं भुविदुर्लभम् ॥ इति

पद्मपुराणे—कदम्बकुसुमाकार रेखापञ्चकभूषितः ।
वर्तुल श्चातिह्रस्वश्च वामनः परिकीर्तित्तः ॥

अग्निपुराणे—

वामनश्चातिह्रस्वश्च महानीलः सविन्दुकः । इति । अत्रापि पूर्वोक्त सामान्यवाक्याद्विचक्रत्वमनुसंधेयम् । अवशिष्टदधिवामनलक्षणन्तु संख्यापूर्त्त्यर्थं चतुर्विंशतिमूर्त्तिप्रक्रमे सेत्स्यतीति। इति वामनमूर्तिलक्षणम् ।

अथ सभेदपरशुराममूर्त्तिलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

जामदग्न्यस्तु भगवान् द्विविधः परिकीर्तितः ।
एकस्तूग्रतया ख्यातो द्वितीयः शान्तसंज्ञकः ॥

तत्रोग्रपरशुरामलक्षणं पुराणसंग्रहे—

सितकृष्णारुणोपेतं दीर्घास्यञ्च बृहद्बिलम् ।
भित्तिभागगतं चक्रं वामे वा दक्षिणेऽपिवा ॥
चक्रभागेभवेद्बिन्दुः परश्वाकृतिरेखया ।
युक्त इति शेषः ।

तथा गोल, नीलमेघ के सदृश, वनमालाकार से युक्त, सूक्ष्म छिद्र और विशाल कुक्षि की मूर्ति वामन स्वरूप होती है, वह पृथ्वी में दुर्लभ है। पद्म पु०—कदम्ब पुष्पाकार, पाँच रेखाओंसे शोभित, गोल और छोटा स्वरूप "वामन"कहा गया है।

अग्निपुराण में—

वामन अतिशय छोटे, खूब नीले और बिन्दु वाले होते हैं। इत्यादि।

वामन लक्षण में भी पहले बताये गये सामान्य वचनों से दो चक्र का अनुसन्धान करना चाहिये। शेष—दधिवामन का लक्षण तो संख्यापूर्ति के लिये चौबीस मूर्तियों के प्रकरण में सिद्ध किया जायगा। इस प्रकार वामन लक्षण समाप्त हो गया। अब भेद के साथ परशुराम के लक्षण बतायेंगे।

पुराणसङ्ग्रह के अनुसार—

जमदग्नि पुत्र भगवान परशुरामजी दो हिसाब से प्रसिद्ध हैं, एक तो हैं उग्ररूप के और दूसरे शान्त।

पुराण सङ्ग्रह के अनुसार पहले उग्र परशुराम के लक्षण कहे जाते हैं—सफेद, काला या गुलाबी रङ्ग के, लम्बे मुख और विशाल छिद्रवाले, दाहिनी या बायीं ओर बगल में चक्र चिन्ह से संयुक्त हों, चक्र भाग में बिन्दु हो, रेखाओं से

पृष्ठे वा पार्श्वतो वापि रेखा दंष्ट्राकृतिर्भवेत् ।
जामदग्न्यस्तुभगवानर्चनीयो महीभृताम् ॥ इति ।

विष्णुरहस्ये—

बाणचापाङ्कितोदेयः स्वर्णवर्णः सुखासनः ।
जमदग्निसुतोरामो भुक्तिमुक्तिञ्च यच्छति ॥ इति ।

पुराणान्तरे—

लसत्परशुरेखाढ्यो दूर्वाश्यामस्तथोन्नतः ।
नाभिदेशलसच्चक्रो रामोऽसौ जमदग्निजः ॥ इति ।

अत्रापि पूर्वोक्तसामान्यवाक्याद् द्विचक्रत्वं ज्ञेयम ।

अथ शान्तपरशुरामलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

केवलं लाञ्छितः पृष्ठे परश्वाकृतिरेखया ।
स जामदग्निर्भगवान शान्ताख्यः शान्तिदोऽर्चितः ॥ इति ।

अत्रापि पूर्वोक्तसामान्यवाक्याद् द्विचक्रत्वमनुसंधेयम् । इति परशुराम-मूर्त्तिलक्षणम् ।

परशु (कुठार) का आकार बना हो, पिट्ठी पर वा बगल में लम्बे दाँत का आकार हो तो इस प्रकार की मूर्ति को जामदग्न्य (परशुराम) भगवान जान कर राजा लोगों को पूजा करना चाहिये ।

विष्णुरहस्य में—

बाण चाप से चिन्हित, सुवर्ण वर्ण के सुखासन जमदग्निपुत्र राम होते हैं, वह मुक्ति को देते हैं । पुराणान्तर में—चमकता हुआ कुठार और रेखा से सम्पन्न, दूर्वा वर्ण के श्याम, उन्नत तथा नाभि स्थान में चक्राकार से कान्तिमान ऐसे जमदग्निपुत्र परशुराम होते हैं । इत्यादि ॥

पहले की तरह इनको भी सामान्य वाक्य के अनुसार द्विचक्र जानना चाहिये ।

शान्त परशुराम का लक्षण—

पुराणसङ्ग्रह में—

कुठार की आकृति की रेखा से केवल पृष्ठ भाग में चिन्ह बना हो तो वह पूजने से शान्ति को देनेवाले शान्त परशुराम होते हैं ।

पूर्ववत् इनको भी द्विचक्र जानना चाहिये । परशुराम लक्षण समाप्त ।

अथ दाशरथिरामस्य सभेदलक्षणम्

तत्रादौ भेदाः पुराणसंग्रहे—

राममूर्त्तिर्द्वादशधा तत्राद्यो राम एव हि।
बालरामो द्वितीयः स्यात्सीतारामस्तृतीयकः॥
तारकब्रह्मसंज्ञोऽन्यो दशकण्ठकुलान्तकः।
वीरो विजयकश्चान्यो हृष्टकोदण्डपूर्वकौ॥
कलिनाशकरोरामः श्रीरामश्च ततः परम्।
पट्टाभिरामसंज्ञः स्याद्वादशाः परिकीर्त्तिताः।
अथैषां लक्षणं वक्ष्ये क्रमेण ऋषिसत्तम॥ इति।

तत्रादौ रामलक्षणम्, ब्रह्मपुराणे—

रामचन्द्रस्तथास्निग्धो दूर्वाभश्चक्रशोभितः।
पृष्ठेदण्डस्तथा पार्श्वे रेखाचक्रसमन्वितः॥ इति।

पुराणसंग्रहे—

बाणेन धनुषा युक्तः पद्मरेखासमन्वितः।
कोदण्डी कुक्कुटाण्डाभो मध्य आस्यविराजितः॥
कल्पद्रुमसमायुक्तः पृष्ठे च श्यामवर्णकः।
रामोदाशरथिर्ज्ञेयो दुर्ल्लभो भुवनत्रये॥ इति।

दशरथ पुत्र राम के सभेद लक्षण—

पुराणसङ्ग्रहोक्त इनके भेद—

रामजी की मूर्तियों के बारह भेद होते हैं। सब से पहले राम ही हैं। २ बलराम, ३ सीताराम एवं तारकब्रह्मराम ४, दशकण्ठ कुलान्तकराम ५, वीरराम ६, विजयकराम ७, हृष्टराम ८, कोदण्डराम ९, कलिनाशकराम १०, श्रीराम ११, पट्टाभिराम १२। रामजी के ये बारह भेद बताये गये हैं। हे ऋषि श्रेष्ठ! अब इनका लक्षण क्रमशः कहूँगा। इत्यादि।

उनमें पहले ब्रह्मपुराण के अनुसार राम का लक्षण—

रामचन्द्र, स्निग्ध, धूभ के जैसे, चक्र से शोभित, पृष्ठदण्डी और पार्श्व भाग में रेखा और चक्र से युक्त होते हैं।

पुराणसङ्ग्रह में—चाप, बाण, पद्मरेखा से युक्त, धनुर्धारी, मुर्गी के अण्डे के जैसे मध्यभाग में मुख वाले, कल्पवृक्षाकार से सुशोभित, सावले वर्ण के पृष्ठ भागवाले दाशरथि राम होते हैं, ये तीनों लोक में दुर्लभ हैं।

अत्रापि पूर्ववद्द्विचक्रत्वकथनात्पूर्ववत् त्रिचक्रत्वमपि।

गरुडपुराणे—

एकचक्रा तु वदने कृष्णवर्णसुशोभना।
सा राममूर्त्तिर्विज्ञेया पूजनात्तु कलिप्रदा॥ इति।

एतस्या दुष्टफलदातृत्वेन वक्ष्यमाण बहुचक्रैकचक्रिकेति निषेधवाक्यस्य विषयत्वं पूर्वमेवोक्तम्।

अथ बालरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

पृष्ठभागे पञ्चरेखा चापबाणौ च पार्श्वयोः।
बालरामः स विज्ञेयः पुत्रदायी न संशयः॥ इति।

अस्यापि पूर्ववद्द्विचक्रत्वम्।

अथ सीतारामलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

द्वारद्वये चतुश्चक्रो वामतश्चैकचक्रवान्।
बाणतूणीरचापाढ्यः सीतारामः स्रगन्वितः॥
सर्वसौभाग्यदश्चापि सर्वत्र विजयप्रदः। इति।

ग्रन्थान्तरेऽपि—

द्वारद्वये चतुश्चक्रः श्यामवर्णसमन्वितः।

यहाँ पर भी सामान्यवाक्य की अपेक्षा विशेष चक्र प्रयोजक वाक्य से पूर्ववत् द्विचक्र की अपेक्षा त्रिचक्र भी जानना चाहिये।

सो गरुड़पुराण में—

जिसका अच्छा काला वर्ण हो, मुखपर एकचक्र हो, उसको राममूर्ति जानना चाहिये, उसकी पूजा से कलि का प्रकोप बढ़ता है। इत्यादि॥

"एकचक्रा तु वदने" इत्यनेन तत इतस्ततो बहुचक्रत्वं व्यजते॥

पूर्ववत् इसको, दुष्टफलदायक होने के कारण वक्ष्यमाणबहुचक्रैकचक्रि निषेधवाक्य का विषय जानना चाहिये।

अब बालराम का लक्षण बताया जाता है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार—

दोनों द्वार में चार चक्र हों, बायीं ओर एक हो, बाण, तरकस और धनुष से युक्त हो और माल्यधारी हो तो उस मूर्ति को सीताराम जानना चाहिये। वह सभी सौभाग्य और सर्वत्र विजय देते हैं, इत्यादि।

ग्रन्थान्तर में भी—

दोनों द्वार (मुख भाग) में चार चक्र और श्यामवर्ण से युक्त धनुर्धारी

कोदण्डी कुक्कुटाण्डाभो बाणभूखण्डतूणवान् ॥
पृष्ठदेशे शिरश्चक्रः सीतारामः प्रकीर्तितः।
सर्वसौभाग्यदः सोऽपि सर्वकामफलप्रदः॥ इति।

अयन्तूभयत्रवाक्येष्वपि स्पष्ट एव पञ्चचक्रः।

ब्रह्माण्डपुराणे—

एकस्मिन्नेव वदने चतुश्चक्राम्बुदप्रभः।
चापबाणाङ्कुशच्छत्र ध्वजचामरसंयुतः॥
वनमालाधरो देवः सीताराम प्रकीर्तितः।
सर्वसौभाग्यदः प्रोक्तः सर्वत्रविजयप्रदः॥ इति।
चतुश्चक्रोऽप्ययं स्पष्ट एव।

पाद्मे—

कुक्कुडाण्डसमाकार अधोवक्त्रे च कुण्डलम्।
द्वारदेशे समेचक्रे कल्पवृक्षसुचिह्नितः॥
वामपार्श्वे शिरश्चक्रो रेखया शुभलाञ्छनः।
सीतारामः सविज्ञेयोभुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ इति॥

वक्त्रे इति सामीप्ये सप्तमीत्यनेन वक्त्रसमीपे अधोभागे कुण्डलं भवतीत्यर्थः॥ सचायं त्रिचक्रः स्पष्ट एव।

कुक्कुटाण्डाकार, बाण, भूखण्ड और तरकस से शोभित हो, पृष्ठ देश जिनके एवं शिर पर चक्र हो तो उन्हें सीताराम कहा गया है। वह सभी सौभाग्य और कामनाओं को देते हैं। इनमें पाँच चक्र होते हैं सो दोनों वाक्य से स्पष्ट है।

ब्रह्माण्ड पुराण में—

एक ही वदन में यदि चार चक्र हों, कान्ति मेघ की हो, धनुष, बाण, अङ्कुश, छत्र, ध्वजा और चामर से संपन्न हो, वनमाला धारी हो तो उस देवता को सीताराम कहते हैं। वह सब सौभाग्य और सर्वत्र विजय के देने वाले कहे गये हैं। इन्हें साफ चतुश्चक्र जानना चाहिये।

पद्मपुराण के अनुसार—

कुक्कुटाण्ड के समान आकार होकर मुख के समीप अधोभाग में कुण्डल, एवं द्वारभाग में समान दो चक्र, कल्पवृक्ष से चिह्नित वाम पार्श्व और शिर में चक्र और रेखा से शुभ चिह्न बना हो तो उन्हें भुक्ति-मुक्ति के देने वाले सीताराम जानना चाहिये। "अधोवक्त्रे" यहाँ पर सामीप्य में "...अधिकरणे च" 'सूत्र के चकाराद् सप्तमी हुई है। अतएव "अधोमुख में" नहीं किन्तु "मुख के समीप अधो भाग में" ऐसा अर्थ जानना चाहिये। इसमें स्पष्ट जानना ...कि त्रिचक्र होते हैं।

अथ तारकब्रह्मसीतारामलक्षणम्

पद्मपुराणे—

अन्तः क्षतेन धनुषा गोखुरेण च लाञ्छितः ।
बिलत्रयसमायुक्तः षट्सुदर्शन संयुतः ॥
श्यामलोन्नतपृष्ठश्च स्थूलजम्बूफलाकृतिः ।
सीतारामः सविज्ञेयस्तारक ब्रह्मसंज्ञितः ॥ इति ।
अयं स्पष्ट एव षट्चक्रः ।

अथ दशकण्ठकुलान्तकरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

कोदण्डी कुक्कुटाण्डाभः श्यामलः पृथुरुन्नतः ।
रेखाद्वयसमोपेतो द्वारपार्श्वे खगेश्वर ॥

धनुराकृतिकारेखा दक्षपार्श्वेयुतोऽपिच । पृष्ठतो वा भवेद्रामो दशकण्ठकुलान्तकः ॥ इति । अयं त्वनुक्तचक्रचक्रत्वाद्द्विचक्रः ।

अथ वीररामलक्षणम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

वाणतूणीरचापाढ्यः कुण्डलस्रक् समन्वितः ।
सूक्ष्मकेसरचक्राढ्यो वीररामः श्रियावहः ॥ इति ।

अयमपि पूर्ववद्द्विचक्र एव ।

तारकब्रह्म सीताराम का लक्षण—

पद्म पुराण में कहा है कि—जिसके भीतर छिद्र हो (चोट लगी हो) धनुषाकार और गोपद का चिह्न बना हों, छिद्र तीन हों, सुदर्शन चक्र के चिह्न छः हों, साँवले वर्ण का हो, पृष्ठप्रदेश उच्च हो, मोटे जामून का जैसा आकार बना हो उस मूर्ति के स्वरूप को तारकब्रह्म सीताराम कहना चाहिये। षट् सुदर्शन का मतलब छः चक्र, स्पष्ट ही है।

दशकण्ठ कुलान्तक राम का लक्षण—

धनुर्धारी कुक्कुटाण्डाकार सवले, मोटे, ऊँचे रेखाद्वय सम्पन्न मुखभाग दाहिनी ओर वा पृष्ठभाग में धनुषाकार रेखा से युक्त हों तो उन्हें दशकण्ठ कुलान्तक राम जानना चाहिये। इस मूर्ति में चक्र की संख्या नहीं बताई गयी है, इसलिये द्विचक्र जानना चाहिये।

वीर राम का लक्षण ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार—

बाण, तरकस और धनुष से सज्जित कुण्डल और माला से युक्त, सूक्ष्म केशर और चक्र से सम्पन्न, ऐश्वर्यदाता वीर राम होते हैं। इनको भी द्विचक्र जानना चाहिये।

अथ विजयरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—

दिव्यबाणेनसंयुक्त श्चापतूणीर संयुतः ।
करालवदनो रक्तबिन्दुयुक् चक्रशोभितः ॥
सस्याद्विजयरामाख्यः केशरोपेत चक्रक इति ।
अयमपि सकेशर द्विचक्रः ।

अथ हृष्टरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—

मूर्ध्निमालाधनुर्बाणौ पार्श्वे खुरयुतस्तथा ।
हृष्टराम इति प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ इति ।

अयमपिद्विचक्रः ॥

अथ कोदण्डरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—

धनुषैकेन संयुक्तो वर्त्तुलः किञ्चिदायतः ।
कोदण्डरामः संज्ञः स्यात् शुद्धनीलाम्बुदप्रभः ॥ इति ।

अयमपिद्विचक्रः ।

अथ कलिनाशकररामलक्षणम्

पद्मपुराणे—

जम्बूफलसमाकारः कृष्णवर्णः सबिन्दुकः ।

विजय राम के लक्षण ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार—

दिव्य बाण से संयुक्त, धनुष तरकस धारी, भयङ्कर वदन, दो रक्त बिन्दु और चक्र से शोभित, केशर से युक्त चक्रवाले विजय राम कहलाते हैं। ये भी द्विचक्र हैं।

ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार हृष्टराम का लक्षण—

शिर में माला और धनुर्बाण, पृष्ठदेश में खुर से युक्त हों तो वह भुक्ति-मुक्ति फल के देने वाले विजय राम कहे गये हैं। यह भी द्विचक्र होते हैं।

तथा कोदण्ड राम का लक्षण—

एक धनुष मात्र से युक्त होकर, वर्तुल, कुछ लम्बाकार और शुद्ध नील मेघ के समान कान्तिमान् मूर्ति को कोदण्ड राम कहते हैं। इत्यादि।

पद्म पुराण के अनुसार कलि नाशकर राम का लक्षण—

जामुन के फल सदृश आकार के, काले बिन्दु युक्त, पृष्ठभाग में छिद्र,

पृष्ठे सुषिरमास्ये च चक्रे मकरकुण्डले।
ललाटे हेमबाणेन विन्दुना धनुषायुतः।
कलिनाशकरः प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः॥
अपुत्रो लभते पुत्रं सर्वमङ्गलकारणम्। इति।

पृष्ठेसुषिरमास्ये च चक्रे ललाटे मकरकुण्डले इत्येव द्विचक्रे इत्यर्थः॥

अथ श्रीरामलक्षणम्

वाराहे—

कोदण्डी कुक्कुटाण्डाभः श्यामलोन्नतपृष्ठकः।
रेखाद्वयसमायुक्तो द्वारपार्श्वे धनुर्धरः॥
श्रीराम इति विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। इति।

अस्य यद्यपि सामान्यतो द्विचक्रत्वमेवानुवृत्तन्तथापि तत्रापवादः।

पद्मपुराणे—

वदनेप्येकवदनश्चतुश्चक्रोऽम्बुदप्रभः।
श्रीराम इति विख्यातः पीतकेशर चक्रयुक्॥ इति।

अयं वदनेऽपि पुनरेकवदनस्तयोर्द्विद्विचक्र इत्येवञ्चतुश्चक्र इत्यर्थः। तस्माद्वराहोक्तलक्षणेऽपि चतुश्चक्रएवाऽयम्।

मुख में से चक्र और कुण्डल, ललाट में हेमबाण की बूँद और धनुषाकार से सशोभित हों तो कलि नाशकर राम कहलाते हैं। वह सभी कामनाओं के दाता हैं और सभी मङ्गलों के कारण हैं। अतः (उनकी पूजा से) अपुत्र को भी पुत्र लाभ होता है।

"पृष्ठेसुषिरम्..." इत्यादि के अनुसार इन्हें द्विचक्र जानना चाहिये।

श्रीराम का लक्षण—

वराह में जैसे–कार्मुक वाले मुर्गी के अण्डे जैसे, साँवले, उच्च पृष्ठ, भागवाले, दो रेखाओं से युक्त हों, मुख पार्श्व जिनके धनुर्धारी ऐसे भुक्ति-मुक्ति के दाता होकर संसार में "श्रीराम" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस मूल में भी पूर्ववत् द्विचक्र की अनुवृत्ति होती रही परन्तु उसके लिये पद्मपुराण का अपवाद वाक्य है, जैसे—

एक वदन हो, वदन में भी एक जोड़े चक्र हों, पूरी मूर्ति चतुश्चक्र की हो अर्थात् पार्श्वभाग में भी दो चक्र हों और पीला केशर हो तो वह श्रीराम सञ्ज्ञक मूर्ति होती है। वदन में दो, पार्श्वभाग में दो, इस प्रकार इसे चतुश्चक्र जानना चाहिये।

अतएव वराहोक्त लक्षण में भी इसे चतुश्चक्र ही जानना चाहिये।

अथ पट्टाभिरामलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

पूर्वभागे त्रिवदनः पार्श्वचक्रेण संयुतः।
वाणतूणीरचापाढ्यः कल्पवृक्षसमन्वितः ॥
सिंहासनसमारूढो रामः परिजनैः सह।
पट्टाभिराम इत्युक्तः सर्वलक्ष्मीप्रदोनृणाम्।
सिंहासनसमासीनः सीतारामः प्रकीर्तितः।
महाभिषिक्त इत्युक्तो राजलक्ष्मीप्रदोनृणाम् ॥

इति क्वचित्पाठः त्रिषुवदनेषु पार्श्वचक्रोऽयं षट्चक्रः स्पष्ट इत्यर्थः। इति राममूर्त्तिलक्षणानि।

अथ बलराममूर्त्तिलक्षणान्युच्यन्ते,

तस्यास्त्रयो भेदाः, पुराणसंग्रहे—

बलरामः सीरपाणिः प्रलम्बघ्न इति त्रयः।
प्रभेदा बलरामस्य तेषां लक्षणमुच्यते ॥

तत्र बलरामलक्षणम् पुराणसंग्रहे—

दीर्घाकारो बृहद्वारः श्वेतो लाङ्गलचिह्नितः।

पट्टाभिराम का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—

पूर्व भाग में तीन मुख हों, बगल की ओर चक्र हो, बाण, तरकस और धनुष से सम्पन्न, कल्पवृक्ष से शोभित, सिंहासन पर पोष्य वर्ग के साथ विराजमान हों तो मनुष्य के लिये सर्व श्री के देनेवाले "पट्टाभिराम" कहे जाते हैं।

"सिंहासन पर बैठे हुए सीताराम कहलाते हैं। वह मनुष्य के लिये राज्यलक्ष्मी के देने वाले पट्टाभिराम कहे गये हैं" ऐसा मूलोक्त पाठ भेद पंक्ति का अर्थ है। तीनों मुँह में बगल की ओर चक्र के लक्षण बताने से यह मालूम होता है कि पट्टाभिराम षट्चक्री होते हैं। श्रीराम मूर्त्तियों का लक्षण समाप्त हुआ।

अब बलराम मूर्त्ति के लक्षण बताये जाते हैं।

इस मूर्ति के तीन भेद पुराण संग्रह में इस प्रकार दर्शाये हैं—बलराम, सीरपाणि और प्रलम्बघ्न के नाम से बलराम मूर्ति के तीन भेद होते हैं और उनका लक्षण भी बताया जाता है।

सबसे पहले बलराम का लक्षण—

दीर्घाकार, विशाल मुख, सुफेद, हलके चिह्न से युक्त एक चक्र के,

एकचक्रः समुसलः पृष्ठे नीलोत्पलप्रभः ॥
बलभद्र इतिख्यातो बलवंशविवर्द्धन इति ।

एकचक्रत्वयं स्पष्टएव । ग्रन्थान्तरे—

श्वेताभो हलचिह्नाढ्यो मुसलाकृतिरेव च ।
नीलोत्पलप्रसूनाभः पृष्ठे वाऽथाननेऽपिवा ॥
बलशाली भवेद्रामो वंशकोश विवर्द्धनः । इति ।

तथा—द्वितीयो वामचक्रश्च रेखा चैव तु दक्षिणे ।
बलशाली भवेद्रामो लाङ्गलेनाङ्कितः प्रभुरिति ॥

तथा—स्थूलचक्रो भवेद्देवो हरिल्लोहितकर्णकः ।
बलभद्रः सविज्ञेयो गोत्रकीर्त्तिविवर्द्धनः ॥ इति ।

अत्र "चक्रसंख्या न यत्रास्तीति" सामान्यवाक्यस्यैकचक्रइति पुराण संग्रहोक्त विशेषवाक्येनाऽपवादात्त्रिष्वपि लक्षणेष्वेकचक्रत्वमेव ।

अथ सीरपाणिलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—सर्वत्र रक्तवर्णः स्यात् श्वेतनीलाभवर्जितः ।
सुचक्रो वक्रचक्रो वा सीरपाणिः शुभप्रदः ॥ इति ।

पृष्ठपर मुसलधारी नीलकमल के कान्ति वाले बलभद्र कहलाते हैं । वह बल और वंश वृद्धिकारी होते हैं । इनका स्वरूप एक ही चक्र का है ।

ग्रन्थान्तर में—

श्वेतकान्ति, हलके चिह्नधारी, मुसलाऽकार से युक्त जिनकी पिट्ठी या मुँह नीलकमल के फूल के जैसे हों वह बलशाली राम (बलराम) सन्तान और खजाने को बढ़ाने वाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ।

तथा—द्वितीय वामचक्र युक्त, दक्षिणरेखा सम्पन्न, हल चिह्नाङ्कित प्रभु बलवान् राम कहलाते हैं । तथा—

हरियाली और लाल भरे (भूरे) वर्णवाले स्थूल चक्रवान् पुरुष सन्तान और कीर्ति के बढ़ाने वाले बलभद्रदेव कहलाते हैं । इत्यादि ॥

अत्र "चक्रसंख्या न यत्राऽस्तीति" इस सामान्यवाक्य का "एकचक्रः समुसलः····" यह पुराणसंग्रह का वाक्य बाधक है । इसलिये बलभद्र की तीनों प्रकार की मूर्तियों के लक्षण एकचक्र ही जानना चाहिये ।

सीरपाणि का लक्षण—

पुराणसंग्रह में—

'सर्वत्र लाल वर्ण हो, सुफेद वा नील कुछ भी न हो, सुन्दर वा टेढ़ा चक्र हो तो शुभदायक सीरपाणि जानना चाहिये ॥

वाराहे—

हलरेखामुसलवाञ्छुक्लाभो वनदामवान्।
मधुबिन्दुधरः श्रीमान् रामः सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ इति।

सङ्कर्षणो हलेनाकर्षको हलायुधो राम इत्यर्थः। अयमुभयत्रवाक्येषु पूर्ववदेकचक्रः। तथा—

निष्केसरोर्ध्वचक्रस्त्वधश्चक्रः सकेसरः।
पद्मनाभ इतिप्रोक्तो विपरीतो हलायुधः ॥ इति।

ब्रह्माण्डपुराणे पद्मनाभलक्षणप्रसङ्गेनाऽस्यापि द्विचक्रस्योक्तत्वाद् द्विचक्रोप्ययम्।

अथ प्रलम्बघ्नलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

एकचक्रस्तुवदने रक्तवर्णसमन्वितः।
प्रलम्बघ्न इतिख्यातः पूजितो मृत्युदायकः ॥ इति।

अयंत्वेकचक्रः स्पष्ट एव ॥ इति बलराममूर्त्तिलक्षणानि ॥

वराह में—

हल, रेखा-मुसलाकार से युक्त, शुक्लवर्ण और वनमाला से भूषित, शहद की बूँद जैसी बिन्दु को धारण करने वाले श्रीमान् (संकर्षण) सीरपाणि राम कहलाते हैं। इत्यादि।

संकृषति कर्षति वेति विग्रहे नन्द्यादित्वाल्ल्युः। संकर्षण का मतलब होता है खींचने वाला। इनका शस्त्र है हल उससे यह फँसा लिया करते हैं अतः इनका नाम संकर्षण वा हलायुध राम पड़ा है। पूर्ववत् इनको भी एकचक्र जानना चाहिये। तथा—

जिस मूर्ति में केशर से रहित ऊपर का चक्र हो और केशर के सहित नीचे का उसे पद्मनाभ कहा गया है। इस लक्षण के विपरीत होतो हलाऽऽयुध जानना चाहिये।

ब्रह्माण्डपुराण में पद्मनाभ के लक्षण बताते हुए विपरीत रूप से परिशेषात् इनका भी लक्षण बताया गया है अतएव पद्मनाभ के द्विचक्र होते इनमें भी दो चक्र जानना चाहिये। (यह सुन्दर नहीं, क्योंकि द्विचक्र लक्षण का भी विपरीत अर्थ समझने से परिशेषात् एकचक्र हलायुध लक्षण पर आ सकता है)।

प्रलम्बघ्न का लक्षण, पुराणसङ्ग्रह पर—

लाल वर्ण की होती हुई मुँह पर एक चक्र हो तो वह मूर्ति प्रलम्बघ्न कहलाती है। उसकी पूजा करने से मृत्यु होती है। यह एक चक्र की होती है। इत्यादि।

अथ बुद्धमूर्त्तिलक्षणानि

सा द्विविधा शुद्धा निर्वाणपूर्विका चेति । तत्राद्या ब्रह्मपुराणे—

दृश्यरंध्रद्वयोपेतमन्तश्चक्रद्वयान्वितम् ।
शिरः पृष्टोर्ध्वचक्रञ्च पार्श्वयोर्वाऽपि दृश्यते ॥
नानावर्णयुतं देवं बुद्धसंज्ञं विदुर्बुधाः ॥ इति ।

एतस्यरन्ध्रद्वये एकैकंचक्रमेवं द्विचक्रत्वं शिरःपृष्ठयोः पार्श्वयोर्वा एकमेकं चक्रमेवं द्विचक्रत्वमित्येवं चतुश्चक्रत्वमित्यर्थः ॥

स्कन्दपुराणे—

अन्तःशून्यं वहिःशून्यं बृहत्कुक्षिसमन्वितम् ।
चक्रहीनं गुहावक्त्रं बुद्ध एवं प्रचक्षते ॥ इति

बुद्धों के लक्षण—

बुद्धदेव के दो भेद हैं जैसे शुद्ध बुद्ध और निर्वाण बुद्ध ।

ब्रह्म पुराण पर पहले बुद्ध का लक्षण—

दीखते हुए दो छिद्र हों, अन्दर में दो चक्र हों, शिर में ऊपर की ओर और नीचे चक्र हो अथवा बगल में भी चक्र दीखता हो, एवम् नानावर्ण के हों तो उन्हें विद्वान लोग बुद्धदेव कहते हैं ।

इनके दोनों छिद्र में एक एक और दो चक्र वो शिर या पृष्ठ भाग में, पार्श्व भाग में एक एक अर्थात् दो चक्र, इस प्रकार इनकी चतुश्चक्र मूर्ति होती है, ऐसा मूल में कहा है परन्तु शिर, पृष्ठ, ऊर्ध्व तीनों में चक्र समझने वाले भीतरी दो चक्र और पार्श्व भाग के दो मान कर सप्तचक्र मानते हैं । पार्श्व भाग में चक्र के न होते पञ्च चक्र कहते हैं, भीतरी दो चक्र के साथ शिर, पृष्ठ, ऊर्ध्व या पार्श्व-भाग प्रभृति किसी स्थान में एक चक्र को माननेवाले त्रिचक्र ही बताते हैं । कितने लोग भीतरी दो किसी बगल का एक और शिर पृष्ठ ऊर्ध्व के तीन मान कर षट्चक्र भी बताते हैं, चक्रातिरक्त मूर्ति की वर्णाकृति द्वारा भी निर्णय करना चाहिये ।

स्कन्द पुराण में—मूर्ति को भीतर शून्य हो, बाहर भी शून्य, विशाल कुक्षिवाले, गुहामुख और चक्रहीन मूर्ति को "बुद्ध" ऐसा कहते हैं । निषावे नोक्ते बुद्ध इति प्रथमा ॥

पुराणसंग्रहे--

अन्तर्गह्वरसंयुक्तं चक्रेणरहितं तथा।
बुद्ध एवं विजानीयात्पूजकस्य शुभप्रदम् ॥

एताभ्यां लक्षणाभ्यामस्यनिश्चक्रत्वमपि स्पष्टमेव ।

अथ निर्वाणबुद्धलक्षणम्

अन्तर्गह्वरसंयुक्तं चक्रहीनं तथाभवेत् ।
निर्वाणबुद्धसंज्ञं स्याद्ददाति परमं पदमिति ॥

निश्चक्रयोस्त्वनयोः संज्ञामात्रभेदो न मूर्त्तिभेदः। इति बुद्धमूर्त्ति-लक्षणानि ॥

अथ कल्किमूर्त्तिलक्षणानि

ब्रह्माण्डपुराणे—

अतिरक्तः सूक्ष्मविलः स्पष्ट एव स्थिरासनः।
कृपाणाकृतिकारेखा द्वारस्योपरि मस्तके ॥
म्लेच्छनाशी भवेत्कल्की कलिकल्मषनाशन इति ।

पुराणसंग्रहे—

अतिरक्तं स्पष्टचक्रं स्थिरासनयुतं तथा।
कृपाणाकृतिरेखाढ्यं कल्किदेवं विदुर्बुधाः ॥ इति ।

पुराण संग्रह पर—

भीतरी ओर गुफा होकर चक्र रहित मूर्ति को पूजकको शुभ देने वाली बुद्ध मूर्ति कहते हैं। इन वचनों से इनमें चक्र नहीं होता है। निर्वाण-बुद्ध का लक्षण—

ब्रह्माण्ड···पर—

भीतर की ओर गुफा बन कर चक्र हीन हो तो वह निर्वाण बुद्ध हैं, परम पद को देते हैं। इन दोनों में चक्र नहीं होते हैं अतः मूर्ति का नहीं किन्तु नाम मात्र का भेद रहता है ॥ बुद्ध लक्षण समाप्त ।

कल्कि के लक्षण, ब्रह्माण्ड पुराण पर—

सूक्ष्म छिद्र के अतिलाल ठीक स्थिरासनवाले मुँह के ऊपर मस्तक पर कृपाण (खुखुड़ा) के आकार की रेखा से संयुक्त म्लेच्छ का संहार करते हैं।

पुराणसङ्ग्रह में—

अतिलाल, स्पष्ट चक्र की स्थिर आसन पर रही खड्गाकार रेखा से युक्त मूर्ति को ज्ञानी लोग कल्किदेव कहते हैं।

वाराहे—

इन्द्रनीलनिभो दीर्घो वनमालाविभूषितः ।
अङ्कुशाकारवदनो धर्मदः कल्किविग्रहः ॥

सर्वसौभाग्यदोनृणां सर्वत्र विजयप्रदः । इति । अत्रातिरक्तत्वस्य विहित्वेन अतिरक्तारोगदाचेति वक्ष्यमाणसामान्यनिषेधस्तु न प्रवर्तते।

अयमनुक्तचक्रत्वाद्विचक्रः । इति कल्किलक्षणानि ॥

मत्स्यकूर्मवामनकल्कीनामेकैकभेदो, वराहस्य चत्वारो, नृसिंहपरशुरामबुद्धानां द्वौ द्वौ, दाशरथिरामस्य द्वादश, बलरामस्य त्रयो भेदा उक्ताः । इत्येवं दशावतारमूर्तीनामेकोनत्रिंशद्भेदा भवन्ति ॥

इति मत्स्यादिदशवैभवावतारमूर्तीनां लक्षणानि--

अथान्तर्भूतपरव्यूहावस्थमूर्तिकव्यूहविभवभेदात्मकचतुर्विंशतिमूर्तीनाम् सभेदलक्षणान्युच्यन्ते—

पुराणसंग्रहे—केशवस्त्वेक एव स्यान्नारायणोऽष्टभेदवान् ।
माधवश्चैव गोविन्दो विष्णुर्द्विविध ईरितः ॥
मधुसूदनस्त्वेकएव तद्वज्ज्ञेयस्त्रिविक्रमः ।

वराह में—

इन्द्रनीलमणि के सदृश, दीर्घ, वनमाला से भूषित, अङ्कुशाकार मुख वाले धर्म दायक कल्कि स्वरूप भगवान होते हैं । वह मनुष्यों के लिए सभी सुखभाव और सर्वत्र विजय को देते हैं । अतिलाल से भिन्न मूर्तियों पर "अतिरक्ता रोगदा च····"इत्यादि वक्ष्यमाण निषेध वचनों का समावेश यहाँ पर नहीं हो सकता है । इस मूर्ति की चक्र संख्या नहीं बताई गई है अतः पूर्ववद्द्विचक्र जानना चाहिये । कल्कि लक्षण समाप्त हुआ । मत्स्य, कूर्म, वामन और कल्कि के एक एक भेद । वराह के चार । नृसिंह, परशुराम और बुद्ध के दो-दो । दाशरथि राम के बारह । बलराम के तीन भेद बताये गये हैं । इस प्रकार मत्स्यादि दशवैभवावतार मूर्तियों के उन्तीस भेद होते हैं, एवं रीत से इनके लक्षण समाप्त हो गये ।

अब अन्तर्भूत परव्यूह इत्यादि अवस्था की चौबीस मूर्तियों के व्यूह, विभवादि भेद और उनके लक्षण कहे जाते हैं ।

पुराण सङ्ग्रह में—

केशव का एक ही स्वरूप है, नारायण के आठ भेद हैं ।

माधव और गोविन्द के नाम से विष्णु के दो भेद हैं । मधुसूदन, त्रिविक्रम,

दधिवामनसञ्ज्ञोन्यः श्रीधरो हृषीकेशकः ॥
पद्मनाभश्चैक एव द्विधा दामोदरस्मृतः ।
एकः सङ्कर्षणो ज्ञेयो वासुदेवो द्विधा मतः ॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च पुरुषोत्तम एव च ।
अधोऽक्षजश्चेत्येकैकभेद उक्तो मनीषिणा ॥
मुन्येकसम्मिता भेदा नरसिंहे समीरिता ।
अच्युतोपेन्द्रकौ चैव जनार्दन हरी तथा ॥
एकैकभेदावुद्दिष्टौ श्रीकृष्णस्य द्विविंशतिः ।
चतुर्विंशतिमूर्तीनामेवं भेदा भवन्तिहि ॥
एकर्षिसंमितास्तेषां लक्षणानि यथाक्रमम् ।

कथयामीति शेषः ।

अथ केशवलक्षणम् ।

पद्मपुराणे—

सौभाग्यं केशवो दद्याच्चतुष्कोणो भवेद्धि सः । इति ।
ब्रह्माण्डपुराणे—नीलवर्णस्तथा स्थूलः पृथुचक्रः सुशोभनः ।
रेखात्रयं द्वारदेशे पृष्ठे पद्मेन लाञ्छितः ।
सौभाग्यं केशवो दद्याच्चतुष्कोणो भवेत्ततः । इति ।

दधिवामन, श्रीधर, हृषीकेश और पद्मनाभ इतनी मूर्तियों का एक ही स्वरूप है अतः भेद नहीं होता है । दामोदर के दो भेद हैं । सङ्कर्षणजी एक ही हैं । वासुदेव के दो भेद माने गये हैं । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम और अधोक्षज का भी एक ही भेद है । विद्वान लोगों ने बताया है । नृसिंह पुराण में सात भेद बताये गये हैं । अच्युत, उपेन्द्र, एवं जनार्दन और हरि एक-एक भेद वाले कहे गये हैं । श्रीकृष्ण के बाईस भेद हैं । इस तरह २४ मूर्तियों के भेद होते हैं । उनमें सात भेद वाले जो हैं उनके लक्षण क्रमशः कहे जायेंगे । मूलकारण कहते हैं कि यहाँ पर "कथयामि" इस पद को जोड़ कर श्लोकार्थ करना चाहिये ।

केशव का लक्षण—

पद्मपुराण पर—केशव चतुष्कोण रूप के होते हैं, वह सौभाग्य देते हैं ।

ब्रह्माण्डपुराण में—नील वर्ण के, मोटे, विशाल चक्र वाले, मुख पर तीन रेखा और पृष्ठ भाग में पद्म के चिन्ह से शोभित, सुन्दर और चतुष्कोण के भगवान केशव जी होते हैं (पूजा करने से) सौभाग्य देते हैं ।

वैखानससंहितायाम्—

नाभ्यधस्तु भवेच्छङ्खचक्रे च वदनान्तरे ।
केशवः सच विज्ञेयः सर्वकामफलप्रदः ॥ इति ।

विष्णुरहस्ये—

सुवर्त्तुलस्तथास्निग्धः पृष्ठे च सुषिरं भवेत् ।
नीलवर्णस्तथा स्थूलो वृत्तचक्रः सुशोभनः ॥
केशवस्तु स विज्ञेयः सर्वदुःखविनाशनः ।
तथा—वामपार्श्वेस्थितेचक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ।
रुचिरः सुषिरः स्निग्धः शोभनः सुस्थिरासनः ।
सौभाग्यं केशवोदद्याच्चतुष्कोणो भवेद्यदि ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

राजतैर्बिन्दुभिर्हैमैरन्वितं सूक्ष्मचक्रकम् ।
वनमालान्वितं श्यामं केशवाख्यं विदुर्बुधाः ॥

तथा—

पूर्वपश्चिमदिग्भागे यस्य चक्राणि सन्ति हि ।
केशवं नाम तं विद्यात् महासौख्यप्रदायकम् ॥ इति ।

वैखानससंहिता में—नाभि से नीचे शङ्ख हो, मुँह के अन्दर चक्र हो तो उनको सभी कामनाओं के अनुसार फल देने वाले केशवजी जानना चाहिये ।

विष्णुरहस्य में—

अच्छे गोल, चिकने, पृष्ठ भाग में बिल वाले, मोटे, गोल चक्र के सुन्दर स्वरूप, सभी दुःखों को नाश करने वाले केशवजी होते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

तथा—वाम पार्श्व में चक्र और दाहिने भाग में रेखा के रहते मनोहर, सुच्छिद्र, सुस्निग्ध, स्थिरासन पर बैठे हुए शोभमान स्वरूप होकर चतुष्कोण स्वरूप के हों तो वह सौभाग्य के देनेवाले केशव जी होते हैं ।

ब्रह्मवैवर्त में—

चाँदी या सोने की बुन्दियों से युक्त, सूक्ष्म चक्र और वनमालाधारी श्याम मूर्ति को पण्डित लोग केशव कहते हैं ।

तथा—

पूर्व और पश्चिम भाग में जिसके चक्र हो उन्हें महासौख्य को देने वाले केशवजी जानना चाहिये । "यहाँ पर चक्र शब्द बहुवचन में आया है, बहुवचन

अत्र चक्राणीति बहुवचनं विशेषाभावादुपस्थितत्यागे मानाभावाच्च मुखे द्विचक्रत्वं पश्चादेकचक्रत्वमित्येवं त्रित्वे पर्यवसन्नं ज्ञेयम्। समासान्तर्गत चक्रपदेपि त्रित्वं द्वित्वं वा व्युत्पादनीयम्। इति केशवलक्षणम्।

अथ नारायणस्य समूर्त्तिभेदलक्षणानि

तत्र नारायण-लक्ष्मीनारायण-रूपनारायण-वीरनारायण-मायानारायण-शङ्करनारायण-महानारायणा इत्यष्टौ भेदा भवन्ति।

तत्र नारायणलक्षणम्। ब्रह्मपुराणे—

श्यामं नारायणं विद्यान्नाभिचक्रं तथोन्नतम्।
दीर्घरेखासमोपेतं दक्षिणे सुषिरं पृथु॥

पद्मब्रह्माण्डपुराणयोः—

श्यामो नारायणोदेवो नाभिचक्रस्तथोन्नतः।
दीर्घरेखात्रयोपेतो दक्षिणे सुषिरं पृथु॥

अग्निपुराणे—

श्यामोनारायणो देवो नाभिचक्रस्तथोन्नतः।
दीर्घरेखासमोपेतो दक्षिणे सुषिरान्वितः॥
एकपद्माङ्कितश्चैव दक्षिणावर्तसंयुतः।

से प्रथमोपस्थित तीन चक्रों को लेना चाहिये अर्थात् मुख पर दो और पीछे एक। समस्त वाक्य के बीच में यदि चक्र शब्द का पाठ आवे तो मौका देखकर दो वा तीन चक्रों की व्युत्पत्ति समझ लेना चाहिये।

केशवजी का लक्षण समाप्त हुआ।

अब नारायणजी की मूर्तियों का सभेद लक्षण बताया जाता है—

नारायण लक्ष्मीनारायण, रूपनारायण, वीरनारायण, मायानारायण, शङ्करनारायण और महानारायण, इस प्रकार इन नामों से नारायणजी के आठ भेद होते हैं।

उनमें पहले नारायण का लक्षण। ब्रह्मपुराणपर—

काले वर्ण के, नाभि चक्र वाले, उच्च, दीर्घ रेखा से युक्त, दक्षिण भाग में विशाल छिद्र के भगवान नारायण होते हैं।

पद्म और ब्रह्माण्ड पुराण पर—

श्याम, नाभि चक्र और उन्नत मूर्ति, दक्षिण भाग में, मोटे छिद्र के रहते लम्बी तीन रेखाओं से युक्त, नारायण देव कहलाते हैं। अग्निपुराण में श्याम, नाभि चक्र, उन्नत स्वरूप, दक्षिण छिद्र, दीर्घ ए समान रेखा से युक्त एक पद्माकार से अङ्कित, दाहिनी ओर भौंभरी से युक्त, वर्तुल एवं छत्राकार, सम्पन्न

वर्तुलच्छत्रयुक्तश्च भोगमोक्षप्रदायकः । इति ।
"चतुर्ल्लाञ्छनयुक्तस्तु भोगमोक्षप्रदायक" इत्यन्यत्रपाठे ।

विष्णुरहस्ये—

वामपार्श्वेस्थिते चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ।
पाण्डुवर्णेन संयुक्तः स्थिरासनः सुवर्तुलः ॥
सस्यान्नारायणो देवो नाभिचक्रसमन्वितः ।
गदाकृतिस्तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशत ॥ इति ।

ग्रन्थान्तरे—

नारायणस्तु भगवान्नीलाञ्जन समप्रभः ।
स्पष्टचक्रयुतो वक्त्रे पृष्ठतो विष्टराकृतिः ॥
श्रीवत्सकौस्तुभोपेतः सर्वसिद्धिप्रदोनृणाम् ।
इति । अस्य सर्वत्र वाक्येपु नाभिचक्रत्वकथनात्पूर्ववद् त्रिचक्रत्वमेवेति॥

अथ लक्ष्मीनारायणलक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—

द्वारमेकं चतुश्चक्रं भूषितं वनमालया ।
लक्ष्मीनारायणं देवं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ इति ।

स्वरूप, भुक्ति-मुक्ति के दाता नारायण देव कहलाते हैं । "चार चिन्ह से युक्त हों तो भुक्ति-मुक्ति के दाता होते हैं" ऐसा अन्यत्र पाठ है ।

विष्णु रहस्य में—

वाम पार्श्व में चक्र और दाहिने तर्फ रेखा के रहते गोल, स्थिरासन, नाभिचक्र, मध्य भाग में गदाऽऽकार रेखा से युक्त, पाण्डुवर्ण की मूर्ति हो तो वह नारायण देव हैं ।

ग्रन्थान्तर में—

काले कज्जल के समान कान्ति वाले, मुँह पर स्पष्ट चक्र चिन्ह के रहते, पृष्ठ भाग में पीठ के आकार तथा श्रीवत्स कौस्तुभ से युक्त हों तो मनुष्यों के लिये सर्वसिद्धि के दाता भगवान नारायण हैं ।

इस मूर्ति में भी सर्वत्र नाभिचक्र का प्रमाण आया है अतः पहले की तरह तीन चक्र की जाननी चाहिये । इत्यादि ॥

लक्ष्मीनारायण का लक्षण—

ब्रह्मपुराण में—एक मुख हो, चार चक्र हों, वनमाला से सुशोभित हो तो उस मर्ति को भुक्ति-मुक्ति के दाता भगवान लक्ष्मीनारायण जानना चाहिये ।

पद्मपुराणे—

सूक्ष्मद्वारश्चतुश्चक्रो वनमालाङ्कितोदरः ।
लक्ष्मीनारायणः श्रीमान् भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
तथा—चत्वारि सूक्ष्मचक्राणि द्वारभागे भवन्ति हि ।
उदरे वनमाला च लक्ष्मीनारायणो भवेत् ॥

पूजनीयः सदा भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति। तथा—
गदाकृतित्रिरेखाश्च लक्ष्म्यौकोमध्यदेशतः। ध्वजवज्राङ्कुशोपेतो वामचक्रः सुवर्त्तुलः । लक्ष्मीनारायणो देवस्सर्वाभीष्टप्रदायक ॥ इति ।

गरुडपुराणे—

कृष्णवर्णं चतुष्चक्रं वनमालोपशोभितम् ।
ध्वजवज्राङ्कशोपेतं गोपदेन च चिह्नितम् ॥

लक्ष्मीनारायणं देवं सर्वकामफलप्रदम् । इति ब्रह्माण्डपुराणे—

एकवक्त्रश्चतुश्चक्रो वर्त्तुलश्यामवर्णकः ।
ध्वजवज्राङ्कुशोपेतो मालायुक्तः सबिन्दुकः ॥

पद्मपुराण पर—

सूक्ष्म द्वार और चार चक्र, उदर में वनमाला भी हो तो उनको भोग और मोक्ष फल के देने वाले भगवान लक्ष्मीनारायण कहते हैं ।

तथा—

लक्ष्मीनारायण मूर्ति पर मुख भाग में छोटे २ चार चक्र होते हैं। पेट में वनमाला लटकती है। भक्ति पूर्वक उनकी सदा पूजा करनी चाहिये क्योंकि वह भोग और मोक्ष दोनों फल के दाता हैं ।

तथा—भगवान् लक्ष्मीनारायण सभी अभीष्ट फल के दाता हैं। उनका लक्षण इस तरह का होता है—गदा का आकार होता है और तीन रेखाएँ रहती हैं, बीच में लक्ष्मी का स्थान रहता है। ध्वजा, वज्र और अङ्कुश के चिह्न मूर्ति पर बने रहते हैं। गोलाकार स्वरूप होता है और बायीं ओर चक्र भी होता है ।

गरुड़पुराण में—कृष्णवर्ण, चतुश्चक्र, वनमाला से शोभित। ध्वजा, वज्र और अङ्कुश से युक्त। गाय के खुर जैसे चिह्न से संपन्न मूर्ति को अभीष्ट फल के दाता भगवान् लक्ष्मीनारायण कहते हैं।

ब्रह्माण्डपुराण में—एकमुख, चारचक्र के गोल, साँवले वर्णवाले, ध्वजा, वज्र, अङ्कुश से, माला और बिन्दु से युक्त, न खूब छोटे, न तो खूब मोटे ही हों तो

नाति ह्रस्वो न च स्थूलो लक्ष्मीनारायणः स्मृतः। तस्य दर्शन मात्रेण ह्यभीष्ट फलमाप्नुयादिति ॥

वाराहपुराणे—

स्थिरासनमतिस्निग्धं नातिस्थूलं सुनाभिकम्।
चतुश्चक्रसमायुक्तं चारुरेखासुशोभितम् ॥

लक्ष्मीनारायणं प्राहुस्त्रिपुलोकेषु विश्रुतम्। इति। ब्रह्माण्डपुराणे—

वर्त्तुलं वर्त्तुलद्वारं सुगम्भीरं च गह्वरम। समचक्रं समं वक्त्रं पृष्ठे च वनमालिका। सुवर्णाभश्च कृष्णाभं लक्ष्मीनारायणंविदुरिति। पुराणसंग्रहे-

ध्वजवज्राङ्कशोपेतो वामचक्रः सुवर्त्तुलः।
लक्ष्मीनारायणो देवश्चतुश्चक्रसमन्वितः ॥
पूजनीयः सदा सद्भिर्वैष्णवैर्मोक्षकामुकैरिति।

अत्र वामशब्दः सव्यपर्यायः सुन्दरपर्यायो वा। वामो वल्गुप्रतीपौद्वावित्यमरान्। ततश्च वामचतुश्चक्रसमन्वित इत्येवार्थः ॥

स्कन्दपुराणे—

पक्वजम्बूफलाकारश्चिह्नितो वनमालया।

वह लक्ष्मीनारायण समझे गये हैं। मनुष्य उनके दर्शनमात्र से अभीष्ट फल को प्राप्त करता है।

वराहपुराण में—

स्थिरासन, अति स्निग्ध, ठीक कद के, सुन्दर नाभि और चतुश्चक्र एवम् सुन्दर रेखा से शोभित हों तो उनको तीनों लोक में प्रसिद्ध लक्ष्मी नारायण कहते हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण पर—

गोलाकार, गोल, गम्भीर द्वार और गह्वर (गुफा) से युक्त, तुल्यचक्र, तुल्यमुख, पृष्ठ भाग में, वनमाला से शोभित, सुवर्ण के जैसे कान्तिमान्, कालेवर्ण के स्वरूप वाले को लक्ष्मीनारायण जानते हैं।

पुराणसंग्रह में—ध्वजा-वज्र-अंकुश युक्त, वामचक्री, गोलाकार एवम् चतुश्चक्री मूर्ति को लक्ष्मीनारायण जानना चाहिये। मोक्ष की कामना रखने वाले सज्जन वैष्णवों को उनकी पूजा करनी चाहिये। यहाँ वाम शब्द का अर्थ बायाँ वा सुन्दर है। क्योंकि अमरकोश में उक्त दोनों अर्थ बताये हैं। इसलिये सुन्दर वा वाम चतुश्चक्र युक्त ऐसा अर्थ जानना चाहिये।

स्कन्दपुराण पर—

पके जम्बू फल के आकार वाले, वनमाला से चिह्नित, एक द्वार में चार

एकद्वारे चतुश्चक्रो लक्ष्मीनारायणो हरिरिति ॥

तथा--गोस्तनाकारचक्राढ्यः पूर्वभागे तु पुष्कलः ।
गोपदेन समायुक्तो ध्वजच्छत्रसमन्वितः ॥

श्रीवत्सलाञ्छनोपेतो मालया परिवेष्टितः। अङ्कुशध्वजसंयुक्तो लक्ष्मीनारायणो हरिरिति ॥ तथा--एकंमुखं चतुश्चकं वनमालासुशोभितम् । नातिह्रस्वं नातिदीर्घं शङ्खचक्रादिभिर्युतम् । गदां पद्मं च खड्गं च तोमरं चापि शोभनम् । सुवर्णबिन्दुसंयुक्तं लक्ष्मीनारायणं स्मृतम् ॥ इति, अत्रशङ्खचक्रादिभिरिति यच्चक्रं तत्तु किंचिद्वर्त्तुलरेखात्मकं ज्ञेयम् । नतु केशरादिचक्रान्तर्गतमितिपूर्वमेवोक्तम् ।

तथा—

पक्वजम्बूफलाकारं वर्त्तुलंश्यामवर्णकम् ।
चतुश्चक्रसमायुक्तं वामभागे तु पुष्कलम् ॥

कल्पद्रुमकौस्तुभाभ्यां मस्तकोपरिमण्डितम् । स्वर्णाभं सूक्ष्मवदनं लक्ष्मीनारायणं स्मृतम् ॥ इति ।

चक्र के लक्ष्मी नारायण हरि होते हैं ।

और भी—

गाय के थन के जैसे चक्र सम्पन्न, पूर्वभाग में कमलाकार एवम् गाय के खुर की आकृति तथा ध्वजा, छत्र से युक्त, श्रीवत्स चिह्न-धारी माला से वेष्टित, अङ्कुश ध्वज संयुक्त, लक्ष्मीनारायण हरि होते हैं। (यहाँ पर दो बार ध्वज शब्द आया है अतएव एक का अर्थ चिह्नमात्र है) ।

तथा—उस मूर्ति को लक्ष्मीनारायण समझा गया है जिसका एक मुख हो, चार चक्र हों, शोभा को देनेवाली वनमाला भी हो, वह मूर्ति न उतनी छोटी हो न तो एकदम बड़ी (लम्बी) ही हो जिसमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, तोमर (रायबाँश) के चिह्न हों, सुवर्ण की बिन्दु हो। यहाँ पर शङ्खादि के साथ जो चक्र को भी कहा है वह कुछ गोल और रेखात्मक जानना चाहिये। न कि केशरादि युक्त जानना चाहिये। इस बात को हमने पहले ही कह दिया है। तथा—

पके हुए जामुन के फळ सदृश, साँवले, गोल, चार चक्र से युक्त वामभाग में पुष्कल (रलयोरभेदात्पद्म वा उन्नत), मस्तक पर कल्प वृक्ष और कौस्तुभमणि से भूषित, सुवर्ण के सदृश वर्ण औ छोटे मुख वाले लक्ष्मीनारायण कहलाते हैं। इति ॥

वाराहे—

द्वारदेशे लसद्रेखं पक्षिराजविराजितम् ।
लक्ष्मीनारायणंप्राहुर्दुर्लभं सर्वसिद्धिदम् ॥

एतल्लक्षणसंयुक्तं शेषभोगविचेष्टितम् । लक्ष्मीनारायणप्राहुर्नारदेष्टफलप्रदम् ।

गारुडे—लक्ष्मीनारायणः साक्षाच्चतुश्चक्रयुतस्तथा ।
त्रिचक्रो हि भवेद्वामे चक्रं चात्यन्तशोभनम् ॥

लक्ष्मीनारायणो देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति । चिह्नितो वनमालाभिर्यत्रसन्निहितो हरिः ॥ तस्मिन् गेहे न दारिद्र्यं दुःखशोकभयन्नहि । न चौरादि भयं तत्र न दुष्टैः परिभूयते । अन्ते मोक्षो भवेत्तस्य पूजकस्य न संशय इति ॥ अत्रैकं चक्रं दक्षिणे एवं चतुश्चक्रयुतइत्यर्थः । अस्य बहुवचनसंवादादेकवदने चतुश्चक्रत्वं स्फुटं ज्ञायते ।

अथ नरनारायणलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

नरनारायणो देवः श्वेतवर्णः सुशोभनः ।

वराह पर—

द्वार देश में शोभती हुई रेखा से युक्त होकर गरुड पर विराजमान हों तो सर्वदा उनको सर्वसिद्धि के दाता, मिलने में दुःसाध्य लक्ष्मीनारायण कहते हैं। हे नारदजी ! उक्त लक्षण से युक्त शेषजी की फणा से वेष्टित स्वरूप को इष्टफलदायक लक्ष्मीनारायण कहते हैं ।

गरुडपुराण में—चार चक्र से युक्त साक्षात् लक्ष्मीनारायण होते हैं । तीन चक्र तो बायीं ओर रहते हैं, एक चक्र खूब शोभता रहता है । भगवान् लक्ष्मी नारायण भुक्ति-मुक्ति के दाता हैं जो वनमाला से चिह्नित होते हुए जहाँ पर खास भगवान नजदीक ही रहते हैं । उस घर में न दारिद्र्य, दुःख शोक और भय रह सकते हैं न चोरादि से भय, न तो दुष्टों द्वारा पराजय ही होता है । अन्तकाल पूजा करने वाले का मोक्ष ही होता है, इसमें सन्देह नहीं है । यहाँ पर सुशोभित एक चक्र को जो बताया है वह दाहिनी ओर का जानना एवम् चतुश्चक्र जानना चाहिये । और यहाँ पर बहुवचन के प्रकरण पर एक वचन भी आया है अतः बहु से त्रिचक्र और एक से एकही एवम् चतुश्चक्र का सारांश स्पष्ट है ॥

ब्रह्माण्डपुराण पर नरनारायण का लक्षण—

भगवान् नरनारायण श्वेतवर्ण के सुन्दर, तेजपात पत्ते के जैसे और मालूम

तमालदलसङ्काशः स्वर्णपङ्कविलेपनः ॥ इति

अयमनुक्तचक्रत्वाद्द्विचक्र एव ।

अथ रूपनारायणलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

मुसलायुधमालाऽसिशङ्खचक्रगदान्वितः ।
रूपनारायणो देवो मुखे चाभिमुखं धनुः ॥

सर्वसिद्धिप्रदोदेवः सर्वकामफलप्रदः । इति । अयमप्यनुक्तसंख्यत्वाद्-द्विचक्रएव ।

अथ वीरनारायणलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

तमालदलसङ्काशः स्वर्णसङ्कलितस्तथा ।
वीरनारायणो देवः श्वेतचक्रसुशोभनः ॥

मुसलायुधमालाऽसिशङ्खचक्रगदान्वितः । वीरनारायणोयस्तु प्रोक्त एवैक चक्रकः ॥ अयन्त्वेकचक्रः स्पष्ट एव ।

अथ मायानारायणलक्षणम् ।

स्कन्दपुराणे—

निर्मले सुमुखे चक्रे मध्यचक्रः सुशोभनः ।

पड़ता है कि सोने की तबक भी जड़ी गयी हो ऐसे होते हैं। चक्रसंख्या न कहने से द्विचक्र जानें ।

रूपनारायण का लक्षण, ब्रह्माण्डपुराण पर—

मुसल, अस्त्र, माला, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा इत्यादि से युक्त, खास मुँह के सामने धनुषाकार के भगवान् "रूप नारायण" होते हैं, वह सभी सिद्धि और कामनाओं को देते हैं। यह भी द्विचक्री होते हैं ॥

अब वीरनारायण का लक्षण बताया जाता है।

पुराण संग्रह पर—

तेजपात के सदृश कान्तिमान् माने सुवर्ण से जड़े हों ऐसे खूब सुन्दर और श्वेतचक्री भगवान् वीरनारायण होते हैं।

तथा—

मुसल, आयुध, माला, खड्ग, शङ्ख, गदा और केवल एक चक्र से युक्त स्वरूप भगवान् वीरनारायण कहे गये हैं। एकचक्र साफ ही लिखा है।

मायानारायण के लक्षण-स्कन्द पुराण पर—

निर्मल सुमुख चक्र के साथ साथ बीच में भी सुन्दर चक्रवाले

ताटङ्कनासाभरण हारकेयूरलाञ्छनः ॥
मायानारायणोदेवः सर्वसिद्धिप्रदायकः। इति। अयं स्पष्ट एव द्विचक्रः॥

अथ शङ्करनारायणलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

शिवनाभियुतः पार्श्वेवामे वा दक्षिणेपिवा।
स च शङ्करपूर्वो वै नारायण इतीरितः॥

पुराणसंग्रहे—

गण्डकीगर्भसंभूतं धनुराकारशोभितम्। शङ्खप्रतिमपूर्वार्द्धं पश्चार्द्धं-श्यामलप्रभम्॥ सरोजपुरचक्राग्रमधस्ताद्रक्तबिन्दुमत्। गौरीलक्ष्मीसमा-युक्तं फणिश्रीवत्ससंयुतम्। शीर्षस्थितजटारेखा वनमालापरिप्लुतम्। सर्वाभीष्टप्रदं श्रीशङ्करनारायणात्मकम्॥ यः पूजयन्नरोभक्त्या लब्धंभाग्य-वशान्मुने। कोटिजन्मकृतंपापं स्पर्शात्सद्यो विनश्यति॥ पुत्रपौत्रैः परिवृतो धनधान्य समन्वितः। इह लोके सुखं प्राप्य तत्सायुज्यमवाप्नुयादिति। शिवनाभियुत इति वक्ष्यमाणप्रकारक शिवनाभियुक्त इतिज्ञेयम्। अयमु-भयत्रवाक्येष्वनुक्तचक्रसंख्यत्वाद् द्विचक्रः।

(ताटङ्कंकर्णभूषणमितिनिघण्टुः) नाक और कान में भूषण पहने, हार और बिजायट के आकार से युक्त हों तो सर्वसिद्धि के द्वारा भगवान् मायानारायण जानना चाहिये। इस मूर्ति में दो चक्र होते हैं। बगल बायीं वा दाहिनी ओर चाहे किसी भाग में शिवनाभि दीखती हो तो उन्हें ठीक शङ्करनारायण कहा जाता है।

पुराणसंग्रह पर—

गंडकी के गर्भ से उत्पन्न, धनुषाकार से शोभित, शङ्ख का जैसा हो पूर्वार्द्ध जिसके, और पिछले हिस्से में साँवले वर्णवाले, अग्रभाग में कमल के पत्तों के जैसे आकारवाले, नीचे की ओर लाल बुन्दी से शोभमान, गौरीस्वरूप, लक्ष्मी से युक्त, नागराज शेष जी और श्रीवत्स से भूषित, शिरभाग में स्थित है जटा, रेखा और वनमाला से युक्त, सभी मनोरथ को देनेवाले श्री शङ्करनारायण जी होते हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है उसके फिर भाग्योदय का क्या वर्णन होता है। कोटि जन्म का पाप तो उनको छूते ही तत्काल नाश होता है। वह मनुष्य पुत्र-पौत्र और धन-धान्य से सम्पन्न रह कर इस लोक में सुख भोग करते हुए परत्र उनकी सायुज्य गति को प्राप्त होता है। "शिवना-भियुतः" ऐसा जो पद आया है, निम्न लिखित प्रकार के शिवनाभियुक्त ऐसा जानना चाहिये। यह दोनों वाक्य पर अनुक्त चक्रसंख्या के कारण द्विचक्र का होता है।

अथमहानारायणलक्षणम्

स्कन्दपुराणे—

कृष्णवर्णोमहास्थूलोह्यष्टचक्रसमन्वितः।
शंखचक्रगदायुक्तोमहानारायणः स्मृतः ॥ इति।

अयं स्पष्टएवाऽष्टचक्रः। इतिनारायणमूर्तीनां लक्षणानि

अथमाधव लक्षणम्

विष्णुरहस्ये—

शुक्लवर्णा तथा स्निग्धा पञ्चरेखासमन्विता।
माधवाख्या शिलाज्ञेया मोक्षैकफलदायिनी ॥ इति।

ब्रह्मपुराणे—

स्वर्णबिन्दुसमायुक्तः कृष्णवर्णो महाद्युतिः ॥
रेखात्रयेणसंयुक्त श्चक्रद्वयविभूषितः ॥

माधवोनाभिपार्श्वे च पुष्पकं यत्र दृश्यते। तथा—

स्थूलचक्रसमायुक्तो मधुवर्णसुचिह्नितः।
माधवस्तु तथा ज्ञेयो महारोग्यकरः शुभ इति ॥

वैखानससंहितायाम्—माधवोमधुवर्णाभो गदाकम्बुविलक्षित इति।

महानारायण का लक्षण स्कन्दपुराण पर—

काले वर्ण के, खूब मोटे, आठ चक्र वाले और शङ्ख, चक्र, गदा से युक्त, महानारायण कहे गये हैं। इनके आठ चक्र हैं।

इस तरह नारायण मूर्तीयों के लक्षण समाप्त हो गये।

अब माधव के लक्षण कहे जाते हैं।

विष्णु रहस्य पर—

सुफेद वर्ण की, चिकनी पाँचरेखा वाली शिला को माधव कहते हैं। इनकी पूजा से मोक्षफल मिलता है।

ब्रह्मपुराण में—

सुवर्ण की बुन्दी से युक्त, काले वर्ण के खुब चमकीले, तीन रेखा और दो चक्र से भूषित होते हुए जिन पर नाभि के पासमें पुष्पक भी दीखता हो वह माधव हैं।

तथा—

मोटे चक्र से युक्त होते हुए शहद के वर्ण एवम् अच्छे चिह्नवाले माधव जी होते हैं। वह शुभ और महाऽऽरोग्यकारी हैं।

वैखानससंहिता पर—

गदा और शङ्ख से युक्त मधुवर्ण वाले माधव जी होते हैं।

ब्रह्माण्डपुराणे—

मधुवर्णोमध्यचक्रः स्निग्धः सूक्ष्मतनुस्तथा। माधवः स तु विज्ञेयो यतीनां मोक्षदायक इति।

अनेन मधुवर्णस्यैतस्यगृहस्थानामपूज्यत्वं सूचितम्। वर्णभेदे तु गृहस्थानामपि पूज्यएवाऽयम्, निषेधाभावात्। अयं सामान्यविशेषवाक्याभ्यां द्विचक्रः। इति माधव लक्षणम्।

अथगोविन्दलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

नातिस्थूलः कृष्णवर्णो गोविन्दः पञ्चवक्त्रकः।
वामवक्त्रो बृहद्वारउन्नतोमध्यनिम्नकः॥ इति।

वामवक्त्रसुन्दरवक्त्र इत्यर्थः।

विष्णुरहस्ये—

पताकाध्वजचिह्नाढ्यं पद्मवर्णं सुचक्रकम्।
गोविन्दं पूजयेद्भक्त्या सद्यो लक्ष्मीप्रदायकम्॥ इति।

तथा—

इन्द्रनीलसमाभासा पृथक्चक्रा सुशोभना।
गोविन्दाख्या च सा ज्ञेया मूर्त्तिः सौभाग्यदायिनीति॥

ब्रह्मपुराण में—मधुवर्ण, मध्यचक्री, सिग्धरूप, सूक्ष्मस्वरूप को "माधव" जानना चाहिये, संन्यासि लोग को मोक्ष देते हैं। इत्यादि॥

इस प्रमाण से मधुवर्ण वाले इनकी पूजा गृहस्थों को नहीं करना चाहिये ऐसी सूचना मालूम होती है। यदि वर्ण का फरक पड़ता हो तो गृहस्थ लोग भी पूजा कर सकते हैं क्योंकि वर्ण भेद में कोई निषेध नहीं है। सामान्य विशेष वाक्यों से माधव जी दो चक्रवाले सिद्ध होते हैं। माधव का लक्षण समाप्त हुआ॥

ब्रह्माण्डपुराण पर गोविन्दजी के लक्षण—

अतिस्थूल नहीं और कृष्णवर्ण तथा सुन्दर होते हुए पाँच मुख, विशालद्वार, उच्च एवम् टेढ़ा हो मध्यभाग जिनके ऐसे गोविन्द जी होते हैं। वामचक्र का सुन्दर मुख अर्थ है॥ विष्णु रहस्य पर—

पताका और ध्वजाकार चिह्न वाले, कमल वर्ण के सुचक्र स्वरूप गोविन्द जी की भक्ति पूर्वक पूजा करे तो उसी समय लक्ष्मी को देते हैं॥

तथा—

इन्द्रनील के समान कान्तिवाली, अलग-अलग चक्रवाली सुन्दर और सौभाग्यदायिनी मूर्तिको गोविन्द जी जानें।

पुराणसंग्रहे—गोविन्दः पुण्डरीकाक्षः कृष्णवर्णो महाद्युतिः।

दक्षिणे तु गदाचक्रे वामे पर्वतलाञ्छनमिति॥ गदाप्रायपठितमिदं चक्रं किञ्चिद्वर्त्तुलरेखात्मकं ज्ञेयम्। अस्यपञ्चमुखत्वाद्दशचक्रत्वम्।

इदमेव लक्षणमनुक्तचक्रलक्षणेऽप्युपसंहर्तव्यम्। इति गोविन्द लक्षणम्।

अथ विष्णोः सभेदलक्षणम्

स द्विविधः, विष्णुर्महाविष्णुश्चेति। तत्राद्यः पुराणसंग्रहे—

कृष्णवर्णस्तथाविष्णुः स्थूलचक्रे सुशोभने। यस्यमध्येगदाकारादृश्यन्ते पञ्चरेखिकाः। इति। ब्रह्मपुराणे—कृष्णवर्णस्तथा विष्णुः स्थूलचक्रः सुशोभनः। गदाकारा तथा रेखा लाञ्छनंमध्यदेशत इति।

आग्नेये—

स्थूलचक्रोऽसितोविष्णुर्मध्यरेखागदाकृतिरिति।

वैखानससंहितायाम्—कृष्णवर्णस्तथाविष्णुः स्थूलचक्रे सुशोभने। गदाकृतिस्तथारेखा दृश्यतेपृष्ठमध्यत। इति। तथा—

पुराणसंग्रह पर—

कमल के सदृश नेत्रवाले (पुण्डरीकाक्ष), काले वर्ण के खूब चमकीले दाहिने तर्फ गदा और चक्र, वाम भाग में पर्वताकार के जैसे बने गोविन्द जी होते हैं। प्रायः गदाकार का चक्र याने कुछ गोल रेखा स्वरूप का जानना चाहिये। यह पाँच मुख के हैं अतः दशचक्र के होते हैं। इसी तरह चक्र संख्या प्रमाण-वाक्य में न आवे तो भी उपसंहार से जानना चाहिये।

गोविन्द का लक्षण समाप्त हुआ। विष्णु के सभेद लक्षण—

वह दो प्रकार के होते हैं, एक तो केवल विष्णु और दूसरे महाविष्णु।

प्रथम विष्णु का लक्षण पुराणसंग्रह पर—

वह विष्णु भी काले वर्ण के होते हैं। जिनपर दो बड़े चक्र होते हैं और जिनके बीच में गदा के आकार की पाँच रेखाएँ होती हैं।

ब्रह्मपुराण में—मध्य भाग में गदाऽऽकार रेखाओं के रहते, स्थूल चक्र, कृष्णवर्ण के खूब सुन्दर स्वरूप भगवान् विष्णु होते हैं।

अग्निपुराण में—

स्थूल चक्र, काले वर्ण के मध्य में गदाऽऽकार रेखावाले भगवान् विष्णु हैं।

वैखानससंहिता पर—

काले वर्ण के होते हुए जिन पर दो मोटे चक्र हों और पृष्ठ मध्य में रेखा दीखती हो तो उन्हें विष्णु जानना चाहिये। तथा—

वामचक्रो बृहद्वार उन्नतोमध्यनिम्नगः ।
सकापिलस्निग्धवर्णोविष्णुर्विषयभोगद इति ॥

विष्णुरहस्ये—

बिल्वाकृतिस्तथारेखा सुषिरं चातिपुष्कलम् ।
कृष्णवर्णस्तथाविष्णुः स्थूलचक्रेण शोभितः ॥

गदाकृतिस्तथा रेखा लक्ष्यतेमध्य देशत इति । वराहपुराणे—

कृष्णवर्णस्तथाविष्णुः स्थूलचक्रेण शोभितः । बिल्वाकृतिस्तथारेखा लक्ष्यते मध्यदेशतः ॥ गृहस्थपूजयेन्नित्यं धनधान्यसमृद्धिदम् । इति।

पुराणसंग्रहे—

विष्णुक्रान्तासमाकारो वनमालाब्जचिह्नितः ।
पञ्चायुधधरः श्रीमान् विष्णुरित्युच्यते बुधैरिति ॥

पुराणे—

स्थूलचक्रोभवेद्विष्णुर्मोक्षैकफलदोऽर्चितः । इति ।
अत्र स्थूलचक्रइत्यसकृदुक्तत्वाद्द्विचक्रोऽयम् ।

सुन्दर चक्र, बृहद्द्वार, उच्च, मध्य भाग पर कुटिल, कपिल और स्निग्ध वर्ण के विषय भोग को देने वाले विष्णु कहे गये हैं ।

विष्णु रहस्य पर—

श्रीफलाऽऽकार के रेखा और उत्तम छिद्र से युक्त स्थूल चक्र से शोभित काले वर्ण वाले भगवान् विष्णु कहलाते हैं । उनके मध्य भाग में गदाऽऽकार रेखा भी दीखती है ।

वराहपुराण में—

जिस मूर्ति के बीच में रेखा दीखती हो, कुनुरू (बिम्ब) की आकृति हो स्थूल चक्र से शोभती हुई काले वर्ण की हो वह भगवान् विष्णुदेव हैं । गृहस्थ इनकी नित्य पूजा करे तो धन धान्यादिक ऐश्वर्य के देनेवाले होते हैं ॥

पुराणसंग्रह में—

अपराजिता के समान आकार वाले (नीले) बनमाला और अब्ज कहिये शंख वा कमल से चिन्हित पञ्चास्त्र के धारण करने वाले (पञ्चास्त्र पञ्च सुदर्शन चक्रादि) ऐसे स्वरूप को पण्डितों ने विष्णुदेव कहा है ॥

पुराण में—

स्थूल चक्रवाले विष्णु हैं पूजा से मोक्ष देते हैं ।

यहाँ पर स्थूल चक्र शब्द कई बार आया है, अतः इस मूर्ति को द्विचक्र जानना चाहिये ।

अथ महाविष्णुलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—महाविष्णुस्तु भगवान्दशचक्रेणशोभितः।
स्वर्णरेखासमायुक्तो मणिमाणिक्यदीप्तिमानिति ॥

ग्रन्थान्तरे—रुक्मवर्णोमहाकायो विद्युत्पुंजनिभाननः। कन्दर्पधनुराकारैर्मस्तकोपरिशोभितः ।। महाविष्णुरितिख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदायक इति। अस्य पूर्ववाक्ये निगदव्याख्यानोक्तदशचकस्य मुत्तरवाक्येऽपिसामान्यापवादादुपसंहर्तव्यम्। इति विष्णुमूर्त्ति लक्षणानि।

अथ मधुसूदन लक्षणम्

वाराहपुराणे—

मधुवर्णो भवेद्देवः षट्चक्रेण समन्वितः।
धनधान्यसमृद्धिश्च प्रदद्यान्मधुसूदन इति ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

मधुसूदो महादेव एकचक्रो महाद्युतिः।
सुवर्णेन समायुक्तो महातेजःप्रदः शुभः ॥ इति ॥

पद्मपुराणे—

वर्तुलः स्निग्धवर्णश्च गदाकारश्च दक्षिणे।
मधुसूदन उक्तोऽसावेकचक्रो महाद्युतिः ॥ इति ॥

महाविष्णु के लक्षण, पुराण संग्रह पर--

महाविष्णु भगवान् वह हैं जो दश चक्र से शोभित हों मणिमाणिक्य के सदृश कान्तिमान् और सुवर्ण रेखा से युक्त हों।

ग्रन्थान्तर में—विशाल मूर्ति और सुवर्ण वर्ण के, बिजली के झोंके के जैसे सुन्दर बदनवाले, कामदेव के धनुषाकार (पुष्पाकार) से शोभित है मस्तक जिनका ऐसे भुक्ति मुक्ति के दाता महाविष्णु कहलाते हैं। इस मूर्ति को दशचक्र की जाननी चाहिये क्योंकि पहले स्पष्टरूप से व्याख्यान किया जा चुका है। फिर भी सामान्य और अपवाद वाक्य से उपसंहार जान लेना चाहिये ॥

मधुसूदनजी का लक्षण, पहले वराह पुराण के अनुसार—

छः चक्रों से युक्त मधुवर्ण के भगवान् मधुसूदन हैं, धनधान्य और समृद्धि को देते हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में--

मधुसूदन महान् देव है, वह एक चक्र के खूब कान्तिमान् सुन्दरवर्ण के महान् तेज को देने वाले शुभ स्वरूप होते हैं।

पद्मपुराण में—

गोल, स्निग्ध वर्ण के, गदा का आकार है। दक्षिण भाग में जिनके ऐसे एक चक्रवाले कान्तिमान् पुरुष मधुसूदन कहलाते हैं।

विष्णुधर्मशास्त्रे—

मधुसूदस्तथा देव एकचक्रो महाद्युतिः ।
सर्ववर्णसमायुक्तो महातेजःप्रदः शुभः ।। इति ।।

विष्णुरहस्ये—

विल्वाकृतिर्यत्र रेखा विवरं चातिशोभनम् ।
मधुसूदन उक्तोऽसावेकचक्रो महाद्युतिरिति ।।
तथा—स्वर्णवर्णसमाकीर्णो नीलबिन्दुभिरन्वितः ।
सवर्तुलः स्निग्धवर्णो गदारेखा सुचिन्हितः ।।
मधुसूदन देवोऽयं भुक्ति मुक्ति प्रयच्छति ।। इति ।।

वामनपुराणे—

पीतगोघृतवर्णश्च नागयज्ञोपवीतकः ।
मधुसूदन देवोऽयं भुक्ति मुक्ति प्रयच्छति ।। इति ।।

वैखानस संहितायाम्—

नाभि पार्श्वे शङ्खपद्म मुद्रा यस्मिन्प्रदृश्यते ।
मधुसूदन देवोऽसौ शत्रुहा परिकीर्तितः ।। इति ।।

विष्णुधर्म में—

एक चक्र के, बड़े तेजस्वी, सभी वर्ण से युक्त, कान्ति के दाता, शुभस्वरूप भगवान मधुसूदन देव कहे जाते हैं।

विष्णु रहस्य पर—

जहाँ पर श्री फलाकार की रेखा बनी हो, सुन्दर छिद्र भी दीखता हो और एक चक्र के रहते बड़ा कान्तिमान् स्वरूप हो तो उन्हें मधुसूदन कहा गया है। तथा—

सुवर्ण के वर्ण से व्याप्त और नील बिन्दुओं से शोभित, गोलाकार, स्निग्धवर्ण के गदाकार रेखा के चिन्ह वाले भगवान् मधुसूदन देव हैं। वह भुक्ति और मुक्ति दोनों को देते हैं।

वामन पुराण में—

पीली गाय के घी के जैसे सुन्दर वर्णवाले, सर्प का जनेऊ पहने हुए भगवान मधुसूदनदेव, भुक्ति-मुक्ति को देते हैं।

वैखानस संहिता पर—

जिस पर नाभि के नजदीक शङ्ख, पद्मादि मुद्राएँ दीखती हों वह शत्रुओं के वध करने वाले भगवान् मधुसूदन कहलाते हैं। इत्यादि ॥

वाराहपुराणे—

रक्तवर्णा तथा स्थूला क्रूरा ससुषिरा शिला।
मधुसूदन संज्ञा स्याद् भुक्ति-मुक्तिप्रदायिकेति ॥

एतस्यषट्चक्रत्वमेकचक्रत्वञ्च स्पष्टमेव। अनुक्त चक्रलक्षणेष्वप्येतयोरेकतरमुपसंहर्तव्यम् ॥ इतिमधुसूदन लक्षणम्।

अथ त्रिविक्रम लक्षणम्—

वैखानस संहितायाम्—

स्थूलचक्रद्वयं मध्ये (१) गुडलाक्षकवर्णकः।
द्वारोपरि तथा रेखा ध्वजाऽऽकारा तु दक्षिणे ॥
चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखा वामे समास्तथा।
द्वे चक्रे मध्यदेशे च शिला यस्य चतुर्मुखी ॥
सच त्रिविक्रमो ज्ञेयः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥ इति ॥

एतस्य मध्यदेशे द्वारद्वये चतुश्चक्रत्वं रक्तश्यामवर्णचतुष्कोणा शिलेत्यर्थः ॥

पुराण संग्रहे—

कपिलाभश्चैक वक्त्रश्चक्रत्रितयभूषितः।
त्रिविक्रमस्त्विष्टदः स्यात्पूजकस्य न संशयः ॥ इति ॥

वराहपुराण में—

लाल वर्ण की मोटी, कठिन एवम् छिद्रवाली शिला भुक्ति-मुक्ति को देने वाली मधुसूदन नाम की होती है। यह षट्चक्र वा एक चक्र की भी होती है। चक्र का लक्षण नहीं बताया है पर भी दोनों पक्ष में एक पर उपसंहार करना चाहिये। मधुसूदन लक्षण समाप्त—

वैखानस संहितापर-त्रिविक्रम का लक्षण—

गुड़ वा लाख के समान वर्ण होकर मध्यभाग में मोटे दो चक्र हों, द्वार के ऊपर रेखा हो, दाहीनी ओर ध्वजाकार हों जिस पर चार रेखाएँ दीखती हों वे वामभाग में समान हों, बीच में भी दो चक्रहों, जिस मूर्ति की शिला चतुर्मुखी हो और श्याम वर्ण का कान्तिमान् स्वरूप हो तो उनको त्रिविक्रम जानना चाहिये। मध्ये पर "द्वारि" ऐसा पाठ होना चाहिये (?) मध्यदेश के दोनों द्वार में चार चक्र होते हैं। रक्त, श्याम वर्ण और चतुष्कोण की शिला होती है। ऐसा अर्थ है ॥

पुराणसंग्रह में—

कपिल वर्ण के एक मुख और तीन चक्रों से भूषित त्रिविक्रम हैं, पूजक को वाञ्छित फल देते हैं, सन्देह नहीं है।

ब्रह्माण्ड पुराणे—

त्रिविक्रमस्त्रिकोणाढ्यश्चक्रत्रयसमन्वितः ।
द्विजेन्द्राणामयं पूज्यो नान्येषान्तु कदाचन ॥ इति ॥
तथा—अधश्चक्रं विशालाभमूर्ध्वंचक्रं सुदीर्घकम् ।
भ्रमराञ्जनसंकाशमीषद्दीर्घं त्रिविक्रमम् ॥
चक्रद्वयं बिले विद्यात्पार्श्वे कोदण्डसंयुतमिति विदुरिति शेषः॥
पाद्मे—त्रिविक्रमस्तथादेवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ।
वामपार्श्वे स्थिते चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥ इति ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

त्रिविक्रमस्तथा देवः श्याममूर्तिर्महाद्युतिः ।
वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥ इति ॥

गरुड़पुराणे—

अतसी कुसुमप्रख्यो बिन्दुनापरिशोभितः ॥ इति ॥ तथा—त्रिविक्रमस्तथादेवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥ इति ॥

अग्निपुराणे—

श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो वामे च रक्तकः ॥ इति ॥

ब्रह्माण्डपुराणपर—

त्रिविक्रम भगवान् त्रिकोण और तीन चक्र से युक्त रहते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग ही इनकी पूजा करें और लोग नहीं । तथा—

नीचे का चक्र बहुत बड़ा और ऊपर का लम्बा हो, भ्रमर वा कज्जल के सदृश वर्ण हो, कुछ लम्बी मूर्ति हो, छिद्र पर दो चक्र हों, पार्श्व में धनुष हो तो उनको त्रिविक्रम जानें । "विद्यादिति क्रियायां सत्यां विदुरिति शेष इति यदुक्तं तन्निर्मूलम्" "विदुः" इस पद का शेष समझना चाहिये ।

पद्मपुराण में—

दाहिने भाग में चक्र और बायें में रेखा के रहते महाकान्तिमान् श्यामवर्ण का स्वरूप हो तो भगवान् त्रिविक्रम कहे जाते हैं, इत्यादि ॥

ब्रह्मपुराण में—

वाम भाग में गदा और चक्र हों, दक्षिण तर्फ रेखा हो और बड़ी कान्तिमान् साँवली मूर्ति हो तो उनको त्रिविक्रम देव कहते हैं ।

गरुड़पुराण में—तिस्सी के फूल सदृश वर्ण के बिन्दु से शोभित महान् कान्तिमान् श्यामवर्ण के देव भगवान् त्रिविक्रम हैं ।

अग्निपुराण पर—साँवले होते हुए बायीं ओर लालवर्ण वाले और दाहिनी ओर रेखा से युक्त रूप त्रिविक्रमदेव हैं ।

विष्णुरहस्ये—

त्रिविक्रमाख्यातु शिला हेमवर्णा महाद्युतिः ॥ इति ॥
तथा—त्रिविक्रमो महादेवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ॥ इति ॥
तथा—प्रदक्षिणाऽऽवर्तयुतावनमालाविभूषिता ।
साशिला कृष्णवर्णास्या धनधान्यसुखप्रदा ॥ इति ॥
त्रिविक्रम इति शेषः । अयं चतुश्चक्रस्त्रिचक्रो द्विचक्रश्च स्पष्ट एव ॥
इति त्रिविक्रम लक्षणम्

अथ दधि वामन लक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

अधश्चक्राग्रविलसद्दधिबिन्दु सुवर्तुलम् ।
वामं तन्नीलवर्णाऽभं वदन्ति दधिवामनम् ॥ इति ॥
षयं सुन्दरमित्यर्थः ।
छत्र कुण्डल संयुक्तं वक्रं वा दधि बिन्दुकम् ।
ह्रस्वं च वर्त्तुलं चैव वामनं दधिपूर्वकम् ॥
तथा—एतल्लक्षणसंयुक्तं दधिबुद्बुदशोभितम् ।
वामनं नीलवर्णञ्च ह्रस्वं चैव सुखप्रदम् ॥ इति ॥

विष्णु रहस्य में—सुवर्ण वर्ण की चमकीली शिला को त्रिविक्रम कहते हैं।

तथा—श्यामवर्ण के महान् प्रकाश देव त्रिविक्रम हैं।

तथा—दाहिनी ओर आवर्त से युक्त और वनमाला से भूषित कृष्णवर्ण की शिला धन, धान्य और सुख को देने वाली होती है। इत्यादि ॥

उक्त लक्षण में त्रिविक्रम का नाम जोड़ देना चाहिये। यह दो, तीन वा चार चक्र के हैं। त्रिविक्रम का लक्षण समाप्त हुआ, अब दधिवामन का लक्षण कहा जाता है—

पुराण संग्रह पर—नीचे की ओर चक्र के होते अग्रभाग में दही की बिन्दु लगी हो और गोल होते हुए सुन्दर नीलवर्ण के हों तो उन्हें दधिवामन कहते हैं। वाम याने सुन्दर। छत्र और कुण्डल युक्त मुँह पर दही के बिन्दुवाले छोटे गोलाकार स्वरूप दधिवामन हैं।

तथा—

निम्नलिखित लक्षण के दधिवामन भगवान् होते हैं, जैसे दही के बुलबुलों से शोभित छोटी कद के नीलवर्ण के और नाटे। वह सुखदायी हैं।

विष्णुधर्मोत्तरे—

छत्राऽऽकारं तथाकूर्मं मध्ये चक्रं प्रदृश्यते ।

दधिबिन्दुसमायुक्तं यत्सूक्ष्मं तद्धिवामनम् ॥ इति ॥

ग्रन्थान्तरे—

अतसी कुसुमप्रख्यो बिन्दुनोपरि भूषितः ।

चक्रद्वयसमायुक्तः श्वेतबिन्दुयुतो मुखे ॥

दधिवामनसंज्ञः स्याद्गोभूधान्यधनप्रदः ॥ इति ॥

अयं सामान्य विशेष-वाक्याभ्यां द्विचक्र एव ॥

इति दधिवामन लक्षणम् ॥

अथ श्रीधरलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

चक्रे च मध्यदेशेतु पङ्कजेन समन्वितः ।

सूक्ष्माननः श्यामलाऽऽभः सपुनः श्रीधरः स्मृत इति ॥

तथा—निम्नोदरः शिरः पार्श्वं निम्नमास्यं सुवर्तुलम् ।

निम्नचक्रमतिह्रस्वं श्रीधरं सर्वसिद्धिदम् । इति ॥

पुराणसंग्रहे—

श्रीधरोऽसौ तथा देवश्चिन्हितो वनमालया ।

कदम्बकुसुमाकार ऊर्ध्वं रेखा च पादयोरिति ॥

विष्णुधर्म के उत्तरखण्डपर—

छत्राऽऽकार, कूर्म के सदृश हों, बीच में चक्र दीखता हो और दधि बिन्दु से युक्त छोटी मूर्ति हो तो वह दधिवामन हैं।

ग्रन्थान्तर में—तिस्सी के फूल के वर्ण से प्रसिद्ध, बिन्दु से शोभित, वदन पर श्वेत बिन्दुवाले गाय, जमीन, धान और धन के दाता दधिवामन भगवान हैं। यह भी पूर्ववत् द्विचक्र हैं। दधिवामन का लक्षण समाप्त हुआ, अब श्रीधर जी के लक्षण सुनिये।

ब्रह्माण्ड पुराणपर—

मध्यभाग में चक्र हो, कमल से युक्त रहें, छोटे मुख और काले वर्ण के हों, तो फिर वह श्रीधरजी कहलाये गये हैं।

तथा—कुछ दबा हुआ पेट हो, शिर, बगल और मुँह भी कुछ टेढ़े दीखते हों, चक्र भी टेढ़ा ही हो, खूब छोटी और गोलाकार मूर्ति हो तो उन्हें सर्वसिद्धि को देनेवाले श्रीधर जी कहते हैं॥

पुराणसंग्रहपर—

श्रीधर देव वनमाला से चिह्नित होते हैं, कदम्ब के फूल का जैसा उनका वर्ण होता है और पैर पर ऊर्ध्व रेखा होती है।

ब्रह्माण्डपुराणे—

श्रीधरस्तु तथा देवश्चिन्हितो वनमालया।
कदम्बकुसुमाऽऽकारो रेखापञ्चकसंयुतः ॥ इति ॥

आग्नेये—

श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखः सुवर्तुलः ॥ इति ॥

ब्राह्मे—

पक्वजम्बूफलाकारं दक्षिणाङ्गे च चक्रिणम्।
श्रीधरं नाम विज्ञेयं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
धनधान्यसमृद्धिश्च रत्नानि विविधानि च।
पुत्रपौत्रादिवृद्धिश्च पूजनाल्लभते नरः । इति ॥

विष्णुरहस्ये—

यस्यमध्ये गदाकारा दृश्यन्ते पञ्चरेखिकाः।
वामपार्श्वे स्थितारेखा तथा चैव तु दक्षिणे ॥
श्रीधरस्तुकरेवामे हरिद्वर्णश्च दृश्यते।
सौभाग्यं सततं यत्तत्संपत्सौख्यं ददाति चेति ॥

ब्रह्माण्डपुराण में—

श्रीधरदेव वनमाला से चिह्नित होते हैं। उनका कदम्बकुसुम का वर्ण होता है और पाँच रेखाएँ होती हैं।

अग्निपुराण पर—

श्रीधर वनमाला से चिह्नित पाँच रेखावाले और गोल होते हैं।

ब्रह्मपुराण पर—

पक्व जम्बूफल के आकारवाले, दक्षिण अङ्ग पर चक्र युक्त सर्वसिद्धि के दायक श्रीधरनाम के भगवान् होते हैं। मनुष्य उनकी पूजा करने से धन, धान्य, समृद्धि और हर तरह के रत्न एवम् पुत्र-पौत्रादि सन्तति को प्राप्त करता है। इत्यादि ॥

विष्णुरहस्य पर—

जिस मूर्त्ति के मध्यभाग में गदा के आकार की पाँच रेखाएँ एवम् बायीं और दाहिनी ओर भी दीखती हों। या बायाँ हाथ हरित वर्ण का दीखता हो तो वह श्रीधर जी हैं निरन्तर सौभाग्य, सम्पत्ति, सौख्य, यत्तत् माने सब कुछ देते हैं। और भी—श्रीधरजी कौस्तुभ को लटकाये, सुन्दर, पीतवर्ण के माने सुवर्ण कान्ति के, छत्र और चक्र से युक्त होते हैं।

तथा—कौस्तुभेन तु संयुक्तः पीताभश्चातिशोभनः।
छत्रचक्रसमायुक्तःस्वर्णभश्चसुशोभन इति ॥
तथा—घनशाद्वलसङ्काशं वनमाला विभूषितम्।
किञ्चिद्विषमचक्राढ्यं श्रीधरं श्रीकरं विदुरिति ॥

अत्र विशिष्य विषमचक्रत्वविधानात्सामान्यप्रवृत्तोविषमचक्रादिनिषेधो न प्रवर्तत इति। अयमपि पूर्ववद् द्विचक्रः इति श्रीधरलक्षणम्।

अथ हृषीकेशलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

पञ्चरन्ध्रसमायुक्तं दशचक्रसमन्वितम्।
श्यामलं कोमलं स्निग्धं हृषीकेशं प्रचक्षते ॥ इति
तथा—अर्द्धचन्द्राकृतिर्देवोहृषीकेश उदाहृतः।
तमभ्यर्च्यलभेत्स्वर्गं विषयांश्च समीहितानिति ॥
वाराहपुराणे—इन्द्रनीलनिभाकारः पृथक्चक्रसुशोभनः।
हृषीकेशः समाख्यातः सर्वकामफलप्रद इति।

तथा—

मेघ या हरियाली वर्ण के वनमाला से भूषित, कुछ विषम चक्र हो तो उन्हें श्रीधर जी कहते हैं। यहाँ पर विशेष विषम चक्र का विधान है अतः यहाँ पर सामान्य की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। विषम चक्र का निषेध मतलब है कि बिजोड़ा हो या समभाग का कुछ भाग ठीक न हो, अतएव शब्दानुरोध से तीन चक्र का भी हो सकता है परन्तु मूलकार पूर्ववत दो चक्र का मानते हैं। श्रीधरजी का लक्षण समाप्त हुआ।

हृषीकेशजी के लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—

हृषीकेशजी की मूर्ति पर पाँच छिद्र होते हैं, दशचक्र रहते हैं, श्याम वर्ण का कोमल और चिकना स्वरूप होता है।

तथा—

हृषीकेशजी का उदाहरण ऐसा है कि अर्द्ध चन्द्राकार स्वरूप रहता है। उनकी पूजा करके मनुष्य स्वर्गलाभ और नाना तरह के भोग विलासों को प्राप्त करता है।

वराहपुराण पर—सभी मनोवाञ्छित फल को देनेवाले, इन्द्रनील के समान आकार के, पृथक् पृथक् चक्र से शोभमान भगवान् हृषीकेश जी होते हैं।

वैखानससंहितायाम्—सूकरस्य निभाकारा यस्यकेशाः सुवर्चसः।
वर्मैकं दृश्यते यस्य हृषीकेशः स उच्यते, इति वर्मपञ्जर इत्यर्थः।
नारदीयपुराणे—

जपापिङ्गलकेशो यो हृषीकेशः स उच्यते।
अपाण्डुरेण वर्णेन रूक्षवर्णेन वाभवेदिति॥

विष्णुरहस्ये—प्रदक्षिणावर्त्तयुता वनमालाविभूषिता।
वर्त्तुला यत्र रेखा च पृथक् चक्रसमन्विता॥
इष्टार्थफलदामूर्त्तिस्तान्तुयत्नेन पूजयेत्।

तथा—घर्त्तुलस्निग्धसर्वाङ्गो गदाकारश्च दृश्यते।
दूर्वाभा वर्त्तुला यत्र पीतारेखा तथैव च।
अनेकमूर्त्तिसंयुक्तः सर्वकामफलप्रद इति।

तथा—दिक्षुचैव च सर्वासु यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम्
हृषीकेशः स विज्ञेयः सर्वकामफलप्रद इति।

अस्य चतुर्दिक्षूर्ध्वं च पञ्चमुखत्वादुद्देशवशात्स्पष्टदशचक्रत्वकथनाच्च दशचक्रत्वं ज्ञेयम्। इति हृषीकेश लक्षणम।

वैखानससंहिता पर—सूअर के सदृश चमकीले केशों के साथ एक कवच भी दीखता है जिन पर वह भगवान् हृषीकेशजी हैं। वर्म कवच का नाम है।

नारदीयपुराण में—

जवाकुसुम के सदृश पिङ्गल वर्ण के हैं केश जिनके वह हृषीकेश जी हैं। अपाण्डु (भूरे) वा रूखे वर्ण के भी होते हैं।

विष्णुरहस्य पर—दाहिनी ओर भौं भरी हैं जिनके ऐसे वनमाला से भूषित, वर्तुल और जिस मूर्ति पर रेखा और चक्र भी पृथक् दीखते हों वह इष्ट फल के दाता हैं। यत्नपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये।

तथा—

सम्पूर्ण स्निग्ध अवयव के, गोलाकार, गदा से चिह्नित दूध की जैसी वा गोल पीली रेखा जिन पर दीखती हो ऐसे अनेक मूर्ति से सम्पन्न, सभी कामनाओं को देनेवाले भगवान् हृषीकेश जी होते हैं।

तथा—जिस मूर्ति की चारों ओर ऊर्ध्व मुख दीखता है उसको सभी ईप्सित फल के दाता भगवान् हृषीकेश जानना चाहिये। चारों दिशाओं में और ऊपर भी अर्थात्पञ्च मुखी होने के कारण उद्देशवश प्रत्येक मुख पर दो के हिसाब से इनकी दशचक्र की मूर्ति जाननी चाहिये। हृषीकेश लक्षण समाप्त हुआ, अब पद्मनाभ के लक्षण पढिये—

अथ पद्मनाभलक्षणम्

वराहपुराणे—

पद्मनाभः स्थूलचक्रः शुक्लवर्णः सुशोभनः।
दीर्घद्वारं गुहाङ्कस्थचक्रं चोन्नतनाभिकम् ॥ इति।

तथा—वनमालातु कण्ठेतु श्रीवत्साङ्कश्च दृश्यते। पद्मनाभोभवेद्दे-वः कुर्याच्छत्रु पराजयम्॥ ललाटे शेषनागस्तु शिलार्द्धे च सकाञ्चनम्। सुवर्णाभं तस्य चक्रं शश्वत्सौभाग्यवर्द्धनम्। इति, तथा—मुखे सूक्ष्मं मध्यसूक्ष्ममन्तः सूक्ष्मं च दृश्यते। पद्मनाभं च विज्ञेयं सौख्यदं सर्वकामदमिति॥

विष्णुरहस्ये—

अतसीपुष्पसङ्काशो बिन्दुनोपरिभूषितः।
पद्मनाभइति ख्यातो दुर्लभः सर्वकामद इति॥

तथा—नानावर्णं शिलाचैव पद्मनाभस्य दृश्यते। दृष्टा येनेदृशीमूर्त्तिः सतां यत्नेन पूजयेदिति॥

ब्रह्मपुराणे—

आरक्तं पद्मनाभाख्यं पङ्कजच्छत्रसंयुतम्।
तुलस्या पूजयेन्नित्यं दरिद्रः श्रीश्वरो भवेदिति॥ ब्रह्माण्डपुराणे-

---

वराह पुराण में—पद्मनाभ जो स्थूल चक्र के सुफेद वर्ण के और खूब सुन्दर होते हैं। (उस पर इतना और भी जानिये कि) द्वार लम्बा, गुफा के अन्दर गोद में चक्र और ऊँची नाभी।

तथा—

पद्मनाभ देव ऐसे होते हैं जिनके कण्ठ पर वनमाला (छाती पर) श्रीवत्स का चिह्न, ललाट पर-शेषनाग, शिला के आधे हिस्से पर सुवर्ण स्वरूप और सुवर्णचक्र भी दीखते हों। वह निरन्तर सोभाग्य को बढ़ाते हैं। तथा—सुख, और सभी कामनाओं को देनेवाले भगवान् पद्मनाभ जी वह हैं। जिनका मुख मध्यभाग और अधोभाग सभी सुक्ष्म सा दीखता हो।

अतसी पुष्प के सदृश बिन्दुसे शोभित स्वरूप पद्मभाभ कहलाते हैं, दुर्लभ और सर्वकामदायी हैं। तथा—

पद्मनाभ शिला नानावर्ण की दीखती है, जिसने ऐसी मूर्ति देखी वह उसे यत्न से पूजा करे।

ब्रह्मपुराण में—

सम्पूर्ण लालवर्ण की कमल और छत्र से युक्त पद्मनाभ नाम की मूर्ति की पूजा करने से दरिद्र भी श्रीपति हो जावेगा।

निष्केसरोर्ध्वचक्रस्तु, अधश्चक्रः सकेशरः। पद्मनाभ इतिप्रोक्तो विपरीतो हलायुध इति। एतस्यासामान्यविशेषवाक्याभ्यां द्विचक्रत्वम्। तथा त्रिचक्रत्वमपि स्मर्यते।

पद्मपुराणे—

वहुभिस्त्रिह्नितश्चक्रैः शुक्लवर्णादिसंयुतः। दैत्यारिः कमलाक्षश्च गदापाणिरधोक्षजः॥ पद्मनाभश्चदेवः स्यात् प्रसभं दुःखदायकः। तस्मादयं नैवपूज्यो बहुचक्रः प्रजापते। इति। वहुचक्रैकचक्रिकेति निषेधविषयत्वमस्यैवेति पूर्वमेवोक्तम्॥ इति पद्मनाभ लक्षणम्।

अथ दामोदर लक्षणम्

सद्विविधः—शुद्धो लक्ष्मी पूर्वकश्चेति। तत्राद्यः पद्मपुराणे—

उपर्यधश्च चक्रेद्वे नातिदीर्घं मुखे बिलम्।
मध्ये च रेखालम्बैका सच दामोदरः स्मृत इति॥

पुराणसग्रहे—

दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम्।
दूर्वाभो द्वारसंकीर्णं पीतरेखा तथैव चेति॥

ब्रह्माण्ड पुराण में—केसर रहित ऊर्ध्वचक्र हो, सकेशर अधश्चक्र हो तो पद्मनाभ और लक्षण ठीक उलटा पड़ता हो तो हलायुद्ध (बलभद्र) कहलाते हैं। इस मूर्ति को सामान्य और विशेष वाक्य द्वारा द्विचक्र का जानना चाहिए। (स्मृति के अनुसार) समझा जाता है कि त्रिचक्र भी होते हैं।

पद्मपुराण पर—

बहुत चक्रों के चिह्न शुक्लवर्णादि से युक्त हो तो वह भी पद्मनाभ हैं। हठात् दुःख देते हैं, उन्हें कोई दैत्यारि, कमलाक्ष, गदापाणि, अधोऽक्षज इत्यादि नाम से पुकारते हैं। अतः हे प्रजापते! बहुचक्र की पद्मनाभ मूर्ति को नहीं पूजना चाहिये। इसी पर बहुचक्रिकैकचक्रिक निषेध वाक्य की प्रवृत्ति होती है, इन बातों को पहले ही कह चुके हैं। इति पद्मनाभलक्षणम्।

अब दामोदर जी का लक्षण देखिए।

एक तो शुद्ध दामोदर और दूसरे लक्ष्मी दामोदर इसप्रकार इनके दो भेद हैं। उनमें प्रथम पद्मपुराण के अनुसार—

नीचे और ऊपर दो चक्र हों, दीर्घ मूर्ति न हो, मुँह पर बिल हो, मध्यभाग में एक लम्बी रेखा हो तो वह "दामोदर" कहलाते हैं।

पुराणसंग्रह पर—

दामोदर जी इस प्रकार के होते हैं। मूर्ति बड़ी रहती है, मध्य में चक्र रहता है, दूर्वाकार वर्ण होता है, द्वार भाग में जुटी हुई पीली रेखा भी रहती है।

ब्रह्मपुराणे—दामोदरस्तथामध्ये स्थूलचक्रप्रतिष्ठितः। दूर्वाभो द्वारसङ्कीर्णं पीतरेखा समन्वित इति ॥

नारदपञ्चरात्रे—

मध्यस्थूलं प्रतिष्ठोत्थ चक्रवान् हरिदाकृतिः।
द्वारदेशेऽतिसङ्कीर्णं पीतरेखा सुदामवान् ॥

दामोदराभिधानेन ज्ञेयोऽयं गण्डकीमणिः। पूष्टापादमितः सिद्धसेवितः श्रेष्ठभावन इति ॥

वाराहपुराणे—

स्थूलोदामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्मरन्ध्रो भवेद्यदि।
चक्रे तु मध्यदेशस्थे पूजितस्तु सुसिद्धिद इति ॥

विष्णुरहस्ये—

स्थूलोदामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्मवक्त्रो भवेत्तु यः।
चक्रेतु मध्यदेशस्थे पूजितस्तु सुखप्रदः ॥

पूर्वद्वारे तु सङ्कीर्णं पीतरेखा च दृश्यते। अनेकमूर्त्तिसंभिन्नः सर्वकाम फलप्रदः। इति। ब्रह्माण्डपुराणे--दामोदरश्च विज्ञेयं चक्रद्वयसमन्वितम्। रक्तपुष्पैः समभ्यर्च्य सर्वान्कामानवाप्नुयादिति। अयमपिसामान्यविशेषवाक्याभ्यां द्विचक्रः।

ब्रह्माण्डपुराण में—

दामोदर मध्य स्थूल चक्र, दूर्वावर्ण और द्वार में संकीर्ण पीली रेखावाले होते हैं।

नारदपञ्चरात्र में—

मध्य भाग के मोटे होते हुए चक्र से युक्त, हरित वर्ण के, द्वार भाग में दीखती है पीत वर्ण की रेखा की रस्सी जिनके ऐसे दामोदर भगवान होते हैं।

इनको सिद्धजन से सेवित श्रेष्ठ सेव्य पूष्टा (१) पादमित गण्डकी नदी का पवित्र मणि जानना चाहिए। वराहपुराण में—मध्य भागमें चक्र के रहते यदि सूक्ष्म रन्ध्र के स्थूल स्वरूप हो तो उनको पूजने से सिद्धिदाता दामोदर जी जानना चाहिये।

विष्णुरहस्य पर—

मध्य भाग में चक्र के रहते जो छोटे मुख के स्थूल स्वरूप हों उन्हें दामोदर जानना चाहिए। वह पूजा से सुख देते हैं। वह ही यदि पूर्व भाग में पीली रेखा से व्याप्त दीखते हों और अनेक वर्ण के भेद भी उन पर पाये जाते हों तो सभी कामनाओं के अनुसार फल देते हैं। ब्रह्माण्डपुराण में—दामोदर जी को दो चक्रों से युक्त जानना चाहिए। लाल पुष्पों से उनकी पूजा करके मनुष्य सभी कामनाएँ पूर्ण करेगा। यह भी द्विचक्र हैं।

अथ लक्ष्मीदामोदर लक्षणम् ।

स्कन्दपुराणे—

वर्त्तुलः कृष्णवर्णाढ्यो मध्यचक्रसमन्वितः ।
श्वेतबिन्दुसमायुक्तो लक्ष्मीदामोदरस्मृतः ॥

धनधान्यसमृद्धिः स्यात्पुत्रपौत्रादिवर्धनः । पशुवृद्धिकरो देवो गृहीणां सर्वकामदः । इति । अयमप्यनुक्त चक्रसंख्याकत्वात्प्रकरणगतदामोदरमूर्त्ति-चक्रद्वयसम्बन्धाच्च द्विचक्र एव । इतिदामोदरमूर्त्तिलक्षणम् ॥

अथ सङ्कर्षणलक्षणम्

ब्राह्मपाद्मपुराणयोः—

द्वेचक्रे एकसंलग्नेपूर्वभागेऽतिपुष्कलः ।
सङ्कर्षणः स विज्ञेयो रक्ताभश्चाति शोभन इति ॥

विहगेन्द्रसंहितायाम्—स तु सङ्कर्षणो देवो दीर्घवृत्तोऽरुणच्छविः । द्वे चक्रे एकसंलग्ने भागैके पुष्कलो भवेत् । ह्रस्व लाङ्गल चिह्नं च पार्श्वे वा पृष्ठतोऽथवा । दृश्यते विहगाधीश सङ्कर्षण इति स्मृतः । इति ।

तथाऽन्यत्र । द्वे चक्रे एकसंलग्ने भागैकः पुष्कलो भवेत् । संकर्षणः

लक्ष्मी दामोदर का लक्षण—

स्कन्दपुराणमें—

लक्ष्मी दामोदर वर्तुल, कृष्ण वर्ण के, मध्य भाग में चक्र के रहते सफेद बिन्दु से युक्त कहे गये हैं ।

उनकी पूजा से धनधान्यादि की समृद्धि होती है। पुत्र-पौत्रादि सन्तान बढ़ती है। वह देव पशु वृद्धि करने एवं सभी ईप्सित फल को देने वाले हैं । इनकी भी चक्रसंख्या नहीं बताई गयी है, प्रकरण में दामोदर मूर्तिपर दो चक्रों के सम्बन्ध रहने से दो चक्र के ही होते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

अब दामोदरजी के पश्चात् संकर्षणजी के लक्षण कहे जाते हैं । ब्रह्म और पद्मपुराणों पर—पूर्वभाग में दो चक्र एक ही जगह पर जुटे हों और अत्युत्तम रक्तवर्ण की सुन्दर मूर्ति हो तो उनको सङ्कर्षण जानना चाहिये ।

विहगेन्द्र संहिता पर कहा है कि वही सङ्कर्षण देव हैं जो दीर्घ गोलाकार, लाल वर्ण के हों, एक ही पर दो चक्र सटे हों, एक भाग अत्युत्तम हो, छोटा हलका जैसा चिन्ह भी पृष्ठ वा पार्श्व भाग में हो और गरुड़जी भी दीखते हों तो उनको संकर्षण जानना चाहिये ।

अन्यत्र भी—

दो चक्र एक पर जुटे हों, एक हिस्सा खूब श्रेष्ठ हो, लालवर्ण हो, और सुन्दर

सविज्ञेयो रक्ताभश्च सुदर्शन इति । भागैक इति पूर्वभागो ग्राह्यः । पूर्वभाग इति विशेषवचनात् । आग्नेये–ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्तवर्णक इति अत्र लग्नचक्रत्वस्य विहितत्वाद्वक्ष्यमाणनिषेधो न प्रवर्तते । इति ।

वामनपुराणे—शंखचक्रगदाकूर्ममत्स्याङ्को यश्च दृश्यते । संकर्षणस्तु देवानां सद्योलक्ष्मीप्रदायक इति ।

वराहपुराणे—चक्रद्वयसमायुक्तः कपिलेन च संयुतः।
असौ सङ्कर्षणोनाम यतिभिः पूज्यतेसदेति ।।

अयमपि द्विचक्रः स्पष्ट एव । इति सङ्कर्षणलक्षणम् ।

अथ वासुदेवलक्षणम्

स द्विविधः शुद्ध शान्तश्चेति । तत्राद्यो ब्रह्मपुराणवैखानससंहितयोः–

द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरीयके ।
वासुदेवः सविज्ञेयः शुक्लाभश्चाति शोभन इति ।।

तत्रोत्तरत्र शुक्लभास्करयात्विषेतिपाठान्तरम् ।

मूर्ति हो तो उन्हें सङ्कर्षण जानना चाहिये । "भागैकः" का माने पूर्व भाग जानें । क्योंकि उसके लिये विशेष वचन भी है ।

अग्निपुराण में कहा है कि—

लगे हुए दो चक्र और लाल वर्ण के सङ्कर्षण जी होते हैं । यहाँ पर लग्न चक्र कहा है अतः विशेषविहित होने से निम्नाङ्कित निषेध नहीं होगा ।

वामनपुराण में—शंख, चक्र, गदा, कूर्म और मत्स्याकार चिह्न का जो दिखाई देता है वह उसी क्षण में लक्ष्मी को देने वाले देवताओं के संकर्षण देव कहलाते हैं ।

वराहपुराण में—कपिल वर्ण के दो चक्र वाले सङ्कर्षण देव संन्यासियों के सदा पूज्य हैं । इनको भी साफ द्विचक्री जानना चाहिये ।

सङ्कर्षण लक्षण समाप्त हो गया ।

वासुदेवजी का लक्षण—

वासुदेव भी शुद्ध और शान्त के भेद से द्विविध होते हैं । उनमें से पहले के ब्रह्मपुराण और वैखानस संहिता के अनुसार लक्षण बताये जाते हैं । द्वार देश के नजदीक ही बराबर के दो चक्र दीखते हों, शुक्लवर्ण की मूर्ती भी सुन्दर दीखती हो तो वह वासुदेव जी हैं । अन्तिम चरण में "शुक्लभास्करया त्विषा" ऐसा भी पाठान्तर है । मतलब "श्वेत प्रभाशाली कान्ति में युक्त" ऐसा अर्थ होता है ।

पद्मपुराणे—द्वारदेशे समे चक्रे दृश्यते नान्तरीयके। वासुदेवः स विज्ञेयः सुशुक्लाभः सुशोभन इति। नान्तरीयके गह्वरान्तस्थेनेत्यर्थः।

अग्निपुराणे—

वासुदेवः सितो द्वारि शिलालग्नद्विचक्रक इति। शिलायांलग्ने संयुक्ते इत्यर्थः। विष्णुरहस्ये—द्वारभागे समेचक्रे दृश्यते नान्त[1]रीयके। वासुदेवः स विज्ञेयः शुक्लः पीताम्बरोऽव्ययः। इति। अयमेवपीतवर्णाम्बरचिह्नितः सन्नव्ययो भवतीति प्रसङ्गादुक्तम्। तथा—

वासुदेवो जगद्योनिः पीतवर्णेन चिह्नितः।
चक्रे द्वारप्रदेशे च सौख्यदः परिकीर्त्तित इति॥

अत्रापि प्रसंगात्पूर्ववज्जगद्योनेरपि लक्षणमुक्तम्। तथा-वामपार्श्वे स्थिते चक्रे सितवर्णेन मिश्रितः। वासुदेव स विज्ञेयो विप्राणां भुक्तिमुक्तिद इति। अत्रविप्राणामितिवाक्यशेषान्नक्षत्रियवैश्ययोः पूजने अधिकार इति।

पद्मपुराण पर—

द्वारदेश में बराबर के नजदीक ही लगे दो चक्र दीखते हों और खूब शुक्लवर्ण की अति सुन्दर मूर्ति हो तो उनको वासुदेवजी जानना चाहिये। "नान्तरीयके" का मतलब तो नजदीक में ही कहना ठीक है परन्तु मूल में "गह्वरान्तःस्थेन" गुफा के अन्दर रहने से ऐसा अर्थ समझाया है।

अग्निपुराण पर—

वासुदेव द्वारभाग में श्वेत वर्ण के और शिला से लगे दो चक्रवाले होते हैं। लग्न का मतलब संयुक्त से है। विष्णुरहस्य पर—द्वारभाग में समान आकार के नजदीक पर दो चक्र हैं तो उनको शुक्लवर्ण के पीताम्बरधारी और अव्यय भगवान वासुदेव जानना चाहिये। अर्थात् पीताम्बरधारी से दीखते हों तो उन्हीं वासुदेव को अव्यय जानना चाहिये। यह प्रसङ्गवश समझना चाहिये।

तथा—द्वारदेश में दो चक्रों के रहने से पीतवर्ण से चिन्हित हों तो जगद्योनि भगवान वासुदेव सौख्यदायी कहलाते हैं। यहाँ पर भी इस लक्षण से वासुदेवजी को पूर्ववत् जगद्योनि भी जानना चाहिये।

तथा—वाम भाग में चक्रों के रहते शुभ्रवर्ण से मिश्रित हों तो उनको ब्राह्मणों के लिये भुक्ति मुक्ति के देनेवाले वासुदेवजी जानना चाहिये।

---

१ अन्तरं प्रतिबन्धादिभिर्व्यवधानं तदनु भवतीत्यर्थे छप्रत्ययेऽन्तरीयमिति ततश्च-स्वार्थेकनि "अन्तरीयक"मिति ततो नञर्थकेननेनं "सुप्सुपा" इति समासे नान्त-रीयकमिति द्विवचने नान्तरीयके। नान्तरीयकशब्दोऽवश्यं भाविनिव्यासौ च।

ब्रह्माण्ड पुराणे--

स्थूलाशिला महाचक्रं श्यामचक्रंच वारुणम् ।
वासुदेवं च विज्ञेयं सर्वयज्ञफलप्रदम् ।। इति

वारुणं जलजमित्यर्थः ।। ग्रन्थान्तरे—कृष्णा शिला तु देवस्य सूक्ष्मचक्रंच दृश्यते । वासुदेवस्य चिन्हन्तु सर्वपापहरं शुभमिति । अयमपि द्विचक्रः स्पष्ट एव ।

अथ शान्तवासुदेवलक्षणम्

वाराहे—रेखापञ्चायुधधरो हिमांशु सदृशप्रभः । नाभिचक्रधरः शान्तो वासुदेवः प्रकीर्तितः । इति । अस्यनाभिचक्रत्वकथनात्त्रिचक्रत्वम् । इतिवासुदेवमूर्त्ति लक्षणानि ।

अथ प्रद्युम्नलक्षणम्

ब्रह्मपाद्मपुराणविष्णुरहस्यवैखानससंहितासु—

प्रद्युम्नःसूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीप्तिस्तथैव च ।
सुषिरं छिद्रबहुलं दीर्घाकारं च यद्भवेत् ।। इति

यहाँ पर "विप्राणाम्" ऐसा पद आया है अतः ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय वैश्यादि के लिये इस मूर्ति की पूजा में अधिकार नहीं है ।

ब्रह्मपुराण पर कहा है कि जो शिला स्थूल हो, महाचक्र और श्यामचक्र, वारुण याने शंख वा कमल भी दीखते हों उनको जानने के लायक सभी यज्ञ (अश्वमेध वाजपेयादि वा अष्टका दर्शपौर्णमासादि) के फलदाता भगवान वासुदेव कहते हैं । इस श्लोक में "आहुः" ऐसा जोड़ना नहीं तो वासुदेव शब्द नपुंसक नहीं हो सकता है । वारूण माने जलजात ।। ग्रन्थान्तर में भगवान् वासुदेव मूर्ति की शिला काली और चक्र सूक्ष्म दीखता है । वह शिला पापहारिणी एवं शुभ है । यह भी द्विचक्र ही हैं ।

शान्त वासुदेव का लक्षण—

रेखा और पञ्चआयुध के धारण करने वाले, चन्द्रमा के सदृशकान्तिमान् नाभिचक्र धारी हों तो "शान्तवासुदेव" कहलाते हैं । इनको त्रिचक्र जानना चाहिये क्योंकि नाभी पर भी चक्र बताया है--

वासुदेवजी का लक्षण समाप्त होगया ।

प्रद्युम्नजी के लक्षण—

ब्रह्म और पद्मपुराण तथा विष्णुरहस्य एवम् वैखानससंहिता पर कहा है कि प्रद्युम्नजी पीतवर्ण के दीर्घाकार होते हैं, मूर्ति पर सूक्ष्म चक्र होता है और छिद्र खूब होते हैं । सुषिर कहते हैं छिद्र को, यहाँ पर फिर से "छिद्र बहुलम्"

सुषिरं गह्वरं तद्विशेषणं छिद्रबहुलमित्यादि ।" शखासु छिद्रबहुलमिति वा पाठः । सुशिराइत्यादि तालव्यमध्यपुल्लिङ्ग पाठे प्रद्युम्नइत्यस्य विशेषणं ज्ञेयम् । सर्वमूर्त्तिलक्षणवाक्येषु तद्ग्रन्थगता नानाविधाः पाठभेदाः, ते तु लक्षणसाङ्कर्यादिभयादत्र नलिखिता इति । पञ्चरात्रागमे—

पिङ्गलः सूक्ष्मचक्रात्मा प्रद्युम्नश्चातिसुन्दरः ।
सुच्छिद्रबहुलः प्रौढदेहवान् गण्डकीमणिरिति ॥

ब्रह्माण्डपुराणे--प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतवर्णस्तथैव च । मकराभा-भवेद्रेखा पार्श्वतः पृष्ठतोथवेति ॥ गरुडपुराणे—

प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतवर्णस्तथैव च ।
सुषिरः सूक्ष्मबहुलो दीर्घाकारस्तथा भवेदिति ॥

बहुसूक्ष्मसुषिर इत्यर्थः । अग्निपुराणे--सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलवर्णक इति । पद्मपुराणे--प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रः स्यान्नीलाम्बुजनिभस्तथा । स ददाति श्रियं नृणामभक्त्याऽपि प्रपूजित इति । एतस्यानुक्तचक्रसंख्याकत्वाद् द्विचक्रत्वमेव । इति प्रद्युम्नलक्षणम् ।

ऐसा पाठ आया है इसलिये सुषिर शब्द का गह्वर (गुफा) अर्थ—जानना चाहिये । अथवा "छिद्रबहुलम्" "सुषिरम्" का ही विशेषण है, (अर्थात् सुन्दर छिद्र खूब हों, ऐसा अर्थ है) ॥ "सुशिराः" ऐसा तालव्य शकारादि शिरस शब्द समझा जाय तो "सुन्दर शिरवाले प्रद्युम्नजी" ऐसा भी अर्थ होता है । अतः छिद्र शब्दार्थ वाची पुनरुक्ति दोष नहीं है । वास्तव में सभी मूर्तियों के लक्षण वचनों पर उन उन ग्रन्थों में कई पाठभेद पाये जाते हैं किन्तु वे सब लक्षणों की खिचड़ी उबालना ठीक नहीं इसलिये ये नहीं लिखे गये हैं ।

पञ्चरात्रागम पर--

पिङ्गल, सूक्ष्म चक्रस्वरूप, अति सुन्दर अच्छे छिद्रों से संयुक्त मजबूत आकार के प्रद्युम्नजी होते हैं । वह गण्डकी नदी के शिला स्वरूप मणि ही हैं ।

ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार कहा है--

भगवान् प्रद्युम्नजी दीर्घाकार खूब, सूक्ष्म छिद्रवाल, पीतवर्ण के और सूक्ष्मचक्र से युक्त होते हैं । बहुत ही सूक्ष्म छिद्र होते हैं ऐसा अर्थ जानना चाहिये ।

अग्निपुराण पर--प्रद्युम्नजी सूक्ष्म चक्र, बहुछिद्र और नीलवर्ण के होते हैं ।

पद्मपुराण में—

नीलकमल के सदृश, सूक्ष्मचक्र के प्रद्युम्नजी होते हैं । वह भक्तिरहित होकर पूजा करने से भी मनुष्यों के लिये परमैश्वर्य को देते हैं । इनकी चक्रसंख्या नहीं बताई गई है, अतः द्विचक्र जानना चाहिये ।

प्रद्युम्नजी का लक्षण समाप्त हुआ ।

अथानिरुद्ध लक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—

अनिरुद्धोद्विधाज्ञेयस्तत्तल्लक्षणभेदत इति ।

ब्राह्मपाद्मपुराणयोः—

अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्त्तुलश्चातिशोभनः ।
रेखात्रयं च तद्द्वारे पृष्ठं पद्मेन लाञ्छितमिति ॥

ब्रह्मपुराणे—कृष्णवर्णः समद्वारश्चक्राभ्यां परिभूषितः । सूक्ष्मचक्रं भवेदूर्ध्वं पार्श्वेबकुलपुष्पवत् । अनिरुद्धःपीतवर्णो वर्त्तुलश्चातिशोभनः । सोऽनिरुद्ध इतिख्यातः सर्वलोकैककारणम् ॥ इति ।

अग्निपुराणे—पीतोऽनिरुद्धः पद्माङ्को वर्त्तुलोऽसौ त्रिरेखवानिति ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

कृष्णवर्णः समद्वारश्चक्रं भित्तिसमीपगम ।
सूक्ष्मं चक्रं भवेदूर्ध्वं पार्श्वे चणकपुष्पधृक् ॥

अनिरुद्धइतिप्रोक्तः सर्वलोकैककारणमिति ॥

वाराहे—जपाकुसुम सङ्काशं वनमालाविभूषितम् । धनुर्वाणाम्बुजधरमनिरुद्धं विचेष्टितमिति ।

अनिरुद्ध लक्षण—

ब्रह्मपुराण में कहा है कि तत्तत् लक्षण के भेद से अनिरुद्धजी दो प्रकार के होते हैं ।

ब्रह्म और पद्मपुराणों पर—अनिरुद्धजी नीलकान्ति के गोलाकार सुन्दर द्वारभाग में तीन रेखाओं से युक्त पृष्ठभाग में पद्म से लाञ्छित होते हैं । ब्रह्मपुराण में—समान द्वार और चक्र से भूषित काले वर्ण के भगवान् अनिरुद्धजी होते हैं जिनके ऊपरी भाग में सूक्ष्म चक्र होता है, पार्श्वभाग बगुले के फूल के जैसे होते हैं, वर्ण पीला, आकार गोल और स्वरूप सुन्दर होता है । वह सभी लोक के एकमात्र कारण भगवान अनिरुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

अग्निपुराणमें—

पीतवर्ण के अनिरुद्ध जो हैं वह पद्मचिह्न के, तीन रेखावाले गोलाकार होते हैं ।

भीत के नजदीक (बगल) पर समान द्वार और चक्र हों, ऊपर सूक्ष्म चक्र हो, पार्श्वभाग में चने का पुष्पसा चिन्ह धारण की हो तो उस मूर्ति को सभी लोक के एक मात्र कारण भगवान् अनिरुद्ध कहते हैं । वराह पुराण पर कहा है कि जवाकुसुम के सदृश (लाल) वनमाला से अलंकृत , धनुर्बाण और कमल के धारण किये हुए भगवान् अनिरुद्ध जी हैं ।

तथा–एतद्लक्षणसंयुक्तं सूक्ष्मचक्रं लसन्मुखम्। सौवर्णरूप्यरेखाढ्यमनिरुद्धं विदुर्बुधा इति। अयमपि द्विचक्र एव। इत्यनिरुद्धलक्षणम्।

अथ शुद्धत्वतत्तन्मूर्त्तिविशिष्टत्वभेदभिन्नाऽनेकधामूर्त्तेः पुरुषोत्तमस्यमूर्तिभेदनिर्णयपूर्वकं लक्षणान्युच्यन्ते। नन्वनुपपन्नं पुरुषोत्तममूर्त्तिभेद कथनम्। पुरुषोत्तम एव च, अधोक्षजश्चेत्येकैकभेद उक्त इत्युद्देशवाक्यविरोधादिति चेन्न। माधवः शेषशाय्यपीत्यत्र दामोदरो लक्ष्मीपूर्वः शुद्धश्च पुरुषोत्तम इत्यत्र च पुरुषोत्तममूर्त्तेः शेषविशिष्टत्व तद्रहितत्वरूपभेदेनाऽनेकधात्वस्योद्देशस्य कण्ठोक्तत्वात्। तत्र शेषशायीति शेषपर्यङ्कशायी पुरुषोत्तम इत्यर्थः। उत्तरत्र शुद्धःपुरुषोत्तमश्चेत्यर्थः। शुद्धश्चेति

तथा—

इन लक्षणों से युक्त, सूक्ष्म चक्र, खिले वदन और सुवर्ण वा चाँदी की जैसी रेखाओं से सुन्दर मूर्ति को पण्डित लोग अनिरुद्ध जी कहते हैं।

यह भी दो ही चक्र के हैं। अनिरुद्ध जी का लक्षण समाप्त हुआ।

अब नाम मात्र की (शुद्ध) और तत् तत् नाम पर विशेषण युक्त भेद से भिन्न कई मूर्तियों के लक्षण पुरुषोत्तममूर्तिभेद के निर्णय पूर्वक बताये जाते हैं।

आप ऐसा न कहिये कि–पुरुषोत्तम ही तो अधोऽक्षज भी हैं, नाममात्र ही न भिन्न है, उद्देश वाक्य में "पुरुषोत्तम एवं च, अधोऽक्षजश्च" ऐसा एकैकभेद वा अभेद ही माना है, नहीं तो वह विरुद्ध होगा। इस वास्ते पुरुषोत्तम मूर्त्तियों का भेद कहना ठीक नहीं है।

"माधवः शेषशाय्यपि" "दामोदरो लक्ष्मीपूर्वः···" "शुद्धश्च पुरुषोत्तमः" इत्यादि वाक्यों में शेष सहित माधव वा माधव मात्र, दामोदर मात्र वा लक्ष्मी दामोदर एवम् शुद्ध पुरुषोत्तम इत्यादि रूप से कई भेद मानकर शास्त्रकार ने सबके नाम सदृश लक्षण भी मुक्तकण्ठ से कहा है, सो यदि भेद को बताना नहीं होता तो फिर क्यों कहा? कहा तो जानिये कि नामानुकूल मूर्तिभेद होते ही हैं। इसलिए वहाँ पर शेषशायी ऐसा जो कहा है उसका अर्थ यह है कि शेषरूप पलङ्ग पर शयन करने वाले अर्थात् पुरुषोत्तम। (आप यह तो नहीं कह सकते कि भगवान् सदा शेष पर शयन करके ही रहते हैं, अन्यत्र नहीं, क्योंकि अव्याप्ति दोष होगा। वह सदा सर्वत्र हैं। जब उनको व्यापक मानते हैं तो जिस अंश में व्यापकता रूप से उन्हें अन्यत्र भी मानते हैं उस अंश में शेषशायी मात्र न होने के कारण शुद्ध वा अशेषशायी पुरुषोत्तम कहे जाते हैं, एतावता उनके भेद सिद्ध होते हैं। "शुद्धश्च पुरुषोत्तमः" में जो चकार है उसका पुरुषोत्तम शब्दसे भी सम्बन्ध कर दिया जा सकता है जैसे "शुद्धः पुरुषोत्तमश्च" मतलब होता है

पदस्य काकाक्षिन्यायेनोभयत्रसम्बन्धात् । तथापि तयोर्वाक्ययोर्विरोध एवेति चेन्न । अमुकलक्षणेनाऽमुकनामा पुरुषोत्तमो भवतीतिविशेषोक्तेः कुत्राप्यभावेन यस्यायस्यामूर्त्तेरुत्तमाङ्गे चारु चक्रत्वं तन्मूर्तिस्तत्तन्नामा पुरुषोत्तमो भवतीति सामान्यतो वाराहोक्तत्वेन च तथा भूतेयमियमिति तन्निर्देशानर्हत्वात् पुरुषोत्तमोऽप्येक एवंत्युक्तमित्यविरोधस्य तत्रोन्नेयत्वात्। ननु तथापि द्विचक्रमूर्त्युद्देशे शेषशायीत्युक्तत्वाद्विचक्रयोरेव पुरुषोत्तममूर्त्योर्भेदः सिद्धो न त्रिचक्रकादीनामितिचेन्न ॥

शेषपर्यङ्कशायी पुरुषोत्तममूर्त्तिलक्षण वाक्ये चक्रसंख्याया अनुक्तत्वात्तत्र वाक्यान्तरोक्तानामष्टादशानां षण्णां त्रयाणां द्वयोर्वाचक्रयोर्यथासंभवं सामान्यापवादेनोपसंहर्तव्यत्वादष्टादशादि चक्राणामपि पुरुषोत्तममूर्त्तीनां शेषपर्यङ्कशायित्वसंभवात् । तत्र द्विचक्रशेषशायिपुरुषोत्तममूर्त्त्युद्देशोऽ-

---

भेद शुद्ध और पुरुषोत्तम भी । क्योंकि जैसे कौवे की आँख की गोळी कभी इधर कभी उधर काम आने पर लुढ़कती है उसी न्याय से कार्यवश चकार का पुरुषोत्तम पर का सम्बन्ध कर दिया जाता है, न कहिये कि तब भी तो उन दोनों वाक्यों का विरोध होता है, यह भी बिलकुल नहीं क्योंकि इस लक्षण से इस नाम के पुरुषोत्तम होते हैं ऐसा विशेष वचन कहीं पर भी नहीं है, किन्तु जिस जिस मूर्ति के शिर पर सुन्दर चक्र हों उन उन की संख्या वही वही नाम के पुरुषोत्तम मानकर होती है ऐसा वराहपुराण में भी कहा गया है इसलिये उन उन लक्षणों की ऐसी ऐसी मूर्ति कहकर विशेष नाम को न बताना अच्छा नहीं अतः सविशेषण भेद प्रतिपादक लक्षणवाक्यसे भिन्नरूप मानकर भेदरूप को बताया गया है। नहीं तो "पुरुषोत्तमोऽप्येक एव" ऐसा एवकार सहित एक शब्द पढ़ने की क्या आवश्यकता रही । इसका मतलब यह है कि विशेषण रहित पुरुषोत्तम एक ही हैं । इसलिए भेद बताने पर लक्षणवाक्य चरितार्थ होते हैं। वास्तव में एक तो है ही हैं अतः कोई विराध नहीं है, ऐसा अनुमान कर लेना चाहिए। यदि कहिये कि द्विचक्र मूर्ति के लक्षणों पर "शेषशायी" ऐसा कहा है इस वास्ते द्विचक्रमूर्ति के ही भेद सिद्ध होते हैं, त्रिचक्रों के नहीं । यह बात भी नहीं है क्योंकि शेषपर्यंङ्कशायी पुरुषोत्तम मूर्तियों के लक्षण वाक्य पर चक्र संख्या नहीं बताई गयी है । वहाँ पर अन्य वाक्य से उक्त अट्ठारह छः तीन वा दो चक्रों के यथासम्भव रहते सामान्य वाक्य का विशेष वाक्य से उपसंहार मानकर अट्ठारह चक्र पर्यन्त की पुरुषोत्तम मूर्त्तियों का शेषपर्यङ्कशायित्व होना सम्भव हो सकता है। अतः दोष नहीं है । वहाँ पर जो द्विचक्रमूर्ति का निर्देश किया गया है उसमें

न्यासामप्युपलक्षणार्थः। इयांस्तु विशेषः।

तत्र द्वित्रिषट्चक्राणां शेषपर्यङ्कशायित्वस्य गरुडासनत्वादिवच्चिह्नविशेषमात्रत्वेन तासां मूर्त्तीनां पुरुषोत्तम इत्येवसंज्ञा संपद्यते। द्विचक्रादि षट्चक्रान्तानां शेषभोगविशिष्टत्वेसत्यनन्तमूर्तित्वाऽवचनात्।

दशचक्राष्टदशचक्रयोस्त्वनन्तमूर्तित्वघटक शेषपर्यङ्कशायित्वेसति हृषीकेशादि पूर्वसंज्ञकानन्त पुरुषोत्तम इति वा संज्ञा सम्पद्यते। षट्चक्रादूर्ध्वंयावत्संभवचक्रान्तानां शेषभोगविशिष्टत्वेसत्यनन्तमूर्तित्वस्योद्देशवाक्येपूक्तत्वात् इति। अत उद्देशवाक्येषु शेषशायिशब्दध्वनितोऽप्यनन्तमूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तेस्तदुपलक्षणकत्वेनेतरानेकमूर्त्ति विशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तेरप्यवगमादुद्देशवाक्येऽपि शुद्धत्वविशिष्टत्व भेदभिन्नाः पुरुषोत्तममूर्त्तयोपदिष्टाएवेति सूपपन्नमिति।

त्रिचक्रादि अन्य मूर्तियों का भी भाव घुसा हुआ (उपलक्षणार्थ) है।

प्रश्न का भाव यह है कि पुरुषोत्तम जी का भेद क्यों कहा ? उत्तर में कहा कि अनेक विशेषण जुटने पर उपाधिभेद को मानकर भेद निर्देश किया। जैसे किसी ने पण्डित देवदत्त कहा, किसी ने योगी देवदत्त, यद्यपि देवदत्त एक है पर पण्डित कहनेवाला उसके पाण्डित्य के लक्षणों को बतायेगा और योगी कहनेवाला योगी के, वैसे ही यहाँ पर भी विशेषण मात्र से भेद बताकर उसी नाम से जानना है। पुरुषोत्तम मूर्ति तो अभेद्य ही है। यही विशेषता है कि शेषपर्यङ्कशायीतो खास होते नहीं, सिर्फ चक्रों को देखकर लक्षण घटाना है जैसे गरुडासन कहा हो तो वैसा चिह्न का दरकार है न कि गरुड़ जी ही साथ लगे रहते हैं अतः द्वित्रिषट् चक्रों के आधार पर उन मूर्तियोंकी पुरुषोत्तम ऐसी संज्ञा होती है ऐसा कहना ही ठीक है। यह तो नहीं न कहा है कि शेषफणाके साथ द्वि त्रि षट् इत्यादि चक्र हों तो वह "अनन्त" होते हैं। दश चक्र और अट्ठारह चक्रों की हो अनन्तमूर्ति घटक शेषशायी होने पर हृषीकेशपुरुषोत्तम, विश्वम्भर पुरुषोत्तम (अनन्तपुरुषोत्तम इत्यादि) ऐसी संज्ञा भी होती है। छः चक्रसे लेकर जहाँ तक जितने चक्रों का संभव हो सके शेषफणा युक्त होने पर "अनन्त" मूर्तित्व बताने का लक्षण वाक्य है ही है अतः लक्षण वाक्यों पर "शेषशायी" शब्द से अनन्त मूर्ति विशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्ति की ध्वनि तो साफ मालूम पड़ती है पर भी उसे उपलक्षण मात्र मानते हैं इसलिये और कई अन्य मूर्तिविशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्ति का भी बोध होता है। लक्षणवाक्य में भी शुद्धत्व और सविशेषणत्व भेद विशेषण से विभिन्न नाम स्वरूप वाली पुरुषोत्तम मूर्तियों के नाना लक्षण बताये गये हैं। अतः कोई शंका नहीं है।

तत्रादौ शुद्धपुरुषोत्तमलक्षणम्। नारदपञ्चरात्रे—

अष्टासु च दिशास्वास्यमूर्ध्वमास्यञ्च यद्भवेत्।
पुरुषोत्तमो भवेद्देवो भोगमोक्षगुणप्रद इति ॥

एतस्य नवास्यत्वादष्टादशचक्रत्वं ज्ञेयम्। तथा ब्रह्मपुराणेऽपि—

प्राच्यादिष्वष्टकाष्ठासु यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम्।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥

ग्रन्थान्तरेपि—

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योदूर्ध्वं दृश्यते मुखम।
पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥

पद्मपुराणेऽपि—विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योदूर्ध्वं दृश्यते मुखम्। भुक्तिमुक्ति प्रदो देवो विज्ञेयः पुरुपोत्तम इति।

पुराणसंग्रहे—दिक्षुचैव च सर्वासु यस्योदूर्ध्वं दृश्यते मुखम्। स देवदेवो विज्ञेयः पुराण पुरुपोत्तम इति ॥ एतस्यपञ्चमुखत्वादशचक्रत्वम्।

शुद्ध पुरुषोत्तम का लक्षण—

नारद पञ्चरात्र पर—

आठों दिशाओं में मुखों के रहते ऊर्ध्व मुख भी हों तो वह भोग और मोक्ष गुणों को देनेवाले भगवान् "पुरुषोत्तम" हैं। इनके नौ मुख हैं, अतः प्रत्येक मुख पर दो चक्र के हिसाब से अट्ठारह चक्र होते हैं।

ब्रह्मपुराण पर भी—

पूर्व आदि आठों दिशाओं में और ऊर्ध्व भागमें भी मुख हों तो उनको भुक्ति मुक्ति फलको देने वाले भगवान् पुरुषोत्तम जानना चाहिये।

ग्रन्थान्तर में भी—

सभी दिशा और विदिशाओं एवम् ऊर्ध्व भाग में भी मुख दीखते हों तो उनको भुक्तिमुक्ति फल के दाता पुरुषोत्तम जानना चाहिए। पद्मपुराण में भी— अर्थ वही है।

पुराणसंग्रह पर भी—

अर्थ सब वही हैं केवल पुरुषोत्तम के नाम पर देवदेवपुराण पुरुषोत्तम शब्द आया है। मूल में "दिक्षु चैव च" देखकर "विदिक्षु" ऐसापद न देखकर चार-दिशा और ऊर्ध्व भागके सभी मुखोंको जोड़ कर पञ्चमुख समझते हुए दशचक्र कहा है मगर "चैव च" पर जो चकार की पुनरावृत्ति किया है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि विदिशाओं का भी अभिप्राय है अतः नौमुख और अट्ठारह चक्र जानें।

ब्रह्माण्डपुराणे—

षट्चक्रं वर्तुलाऽऽकारं वनमालासुशोभितम् ।
पुरुषोत्तममिति ख्यातमष्टसिद्धिप्रदायकम् ।। इति ।

एतस्य षट्चक्रत्वं स्पष्टमेव । तथा तत्रैव—मध्यचक्रः सुवर्णश्च मस्तके पृथुचक्रकः । पुरुषोत्तमोभवेद्देवः पूजकस्य शुभप्रद इति ।। एतस्य त्रिचक्रत्वमिति । पुराणसंग्रहे—अतिकृष्णो रक्तरेखो बृहद्वक्रश्च चक्रवान् । क्वचित्कपिलसंयुक्तः स्थूलो वा सूक्ष्म एवच । पुरुषोत्तमः सविज्ञेयो द्वारचक्रेण मण्डितः । पाशांकुशयुतश्चक्रं बाह्यपार्श्वे सुचारुकम् । इति ।। अत्र पाशांकुशसाहचर्य्याच्चक्रं पूर्ववत् किञ्चिद्रेखात्मकं ग्राह्यम् ।

नारदीय पुराणे—खगासनसमारूढो बाणासनशरोपगः । उभे चक्रे प्रदृश्येते सर्वसौभाग्यदायक इति । अत्र खगो गरुडो, बाणासनं धनुः । एतस्य द्विचक्रत्वं स्पष्टमेव ।

पुराणसंग्रहे—अतसीपुष्पसङ्काशो बिन्दुना परिभूषितः ।
पुरुषोत्तम उक्तोसौ सर्वसौभाग्यवर्द्धन इति ।।

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि—

षट् चक्रके, गोल, वनमाला से सुशोभित, अष्टसिद्धि के दाता भगवान् पुरुषोत्तम कहलाते हैं । इस मूर्ति पर छः चक्र ही होते हैं ।

उसी पर और भी—

मध्य भाग में चक्र के होते हुए मस्तक पर भी मोटे चक्रवाले सुन्दर स्वरूप पुरुषोत्तम देव हैं । वह पूजक के लिए शुभफल देते हैं । यह त्रिचक्रवाले हैं ।। पुराणसंग्रह पर—अति कृष्ण वर्ण के लाल रेखा और बड़े चक्रवाले चक्री कहीं-कहीं पर कपिल वर्ण के भी सूक्ष्म वा स्थूल स्वरूप के द्वार चक्र से शोभित बाह्यपार्श्व में भी सुन्दर चक्रवाले और पाश एवं अङ्कुशाचिन्हधारी हों तो उनको पुरुषोत्तम कहना चाहिए ।

यहाँ पर पाश और अङ्कुश शब्द के साथ चक्र भी आया है अतः उसे भी कुछ रेखाकार जानना चाहिये । नारदीय पुराण पर कहा है कि—

गरुड़ पर विराजमान, धनुष के शर पर अवस्थित प्रत्यक्ष द्विचक्र के भगवान सर्व सौभाग्यदायक होते हैं । खग = गरुड़ । बाणासन = धनुष । द्विचक्रमूर्ति ।

पुराणसंग्रह पर—

अतसी पुष्प सदृश, बिन्दु से सुशोभित ऐसे भगवान् सभी सौभाग्यवर्द्धक भगवान् पुरुषोत्तम कहे गये हैं ।

विष्णुरहस्ये—पारिजात ध्वजोपेतो वर्त्तुलो वज्रसंयुतः। पुरुषोत्तमः स विज्ञेयः सर्वसौभाग्यदायकः ॥ एतं यो भजते मर्त्यः शेषपर्यङ्कशायिनम्। पुत्रपौत्रकलत्राद्यैर्विष्णुलोकं सगच्छतीति ॥ अथ तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तमलक्षणम् । वाराहपुराणे—

अनन्तोमूर्ध्नि चक्राढ्यो ह्यनन्त पुरुषोत्तम इति ।

तथा—

यस्यामूर्त्तेरुत्तमाङ्गं चारुचक्रसमन्वितम् ।
तत्तन्मूर्त्तिः खगेशान तन्नामापुरुषोत्तम इति ॥

अयमर्थः । उक्तवक्ष्यमाणमूर्त्तीनां मध्ये यस्यामूर्त्तेर्मस्तके तत्तल्लक्षणातिरिक्तं चारुचक्रं केशरादिषड्विधचक्रान्तर्गतचक्रं चेद्भवति तदा मत्स्यपुरुषोत्तमः कूर्मपुरुषोत्तम इत्यादयो द्विचक्राद्रूर्ध्वं सप्तचक्रपर्यन्तं तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयो भवन्ति । तदूर्ध्वं महानारायण तत्पूर्वसंज्ञकान्तादि विशिष्ट पुरुषोत्तममूर्त्तयस्त्रयोदशचक्रपर्यन्तं भवन्ति ।

तदूर्ध्वं विश्वम्भरतत्पूर्वसञ्ज्ञकानन्तादिविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयश्च-

---

विष्णु रहस्य पर—पारिजात, एवं ध्वजाकार से युक्त, वर्तुल वज्रचिन्हित मूर्तिको पुरुषोत्तम जानिये, वह सभी सौभाग्य के दायक हैं। जो मनुष्य इस शेष पर्यङ्कशायी स्वरूप का भजन करता है वह पुत्र, पौत्र और कलत्र से युक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है। अब तत्तन्मूर्ति विशिष्ट पुरुषोत्तम के लक्षण बताये जायेंगे।

वराहपुराण में—शिर पर चक्रवाले अनन्त हैं, वही अनन्त पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

तथा—

हे गरुड़जी! जिस मूर्ति का शिर हो और वह सुन्दर चक्र से युक्त हो तो उसे उसी मूर्ति के पुरुषोत्तम कहते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त सभी लक्षणों के रहते चक्रसहित मूर्ति का शिर मत्स्य का सा दीखता हो तो वह मत्स्य पुरुषोत्तम, सचक्र मूर्ति का शिर कूर्म जैसा हो तो वह कूर्म पुरुषोत्तम इत्यादि। एवञ्च दो चक्र से ऊपर सात चक्र पर्यन्त शिर चक्राकार देखकर मत्स्य पुरुषोत्तम, कूर्म पुरुषोत्तम, वराह पुरुषोत्तम इत्यादि तत्तन्नाम सहित की पुरुषोत्तम जी की मूर्तियाँ होती हैं। सात चक्र से ऊपर के महानारायण पुरुषोत्तम होते हैं इत्यादि सविशेषण पुरुषोत्तम जी की मूर्तियाँ तेरह चक्रपर्यन्त की होती हैं॥ इत्यादि॥

तेरह से लेकर चौबीस चक्रपर्यन्त की मूर्तियाँ अनन्तादि नाम विशिष्ट

तुर्विंशति चक्रपर्यन्तं भवन्ति। तदूर्ध्वं शुद्धानन्तविशिष्टपुरुषोत्तममूर्त्तयो-यावत्संभव चक्रपर्यन्तं भवन्ति। तासां मध्ये दिङ्मात्रेणोदाहरणम्। "अनन्तोमूर्ध्निचक्राढ्यो ह्यनन्त पुरुषोत्तम इति। इति पुरुषोत्तममूर्त्तीनां सभेदलक्षणानि।

अथाऽधोक्षजलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

अतिकृष्णो रक्तरेखो वृत्तदेहः सुचक्रकः।
किञ्चित्कपिलसंयुक्तः स्थूलो वा सूक्ष्म एव वा॥
अधोक्षज इतिख्यातः पूजकस्य शुभप्रद इति।

वाराहपुराणे—

पार्श्वे चक्रद्वयं सूक्ष्ममधोवदनसंयुतः।
अधोऽक्षजस्तु विज्ञेयो यतिभिः पूजितः सदा॥ इति।

अयमेकः सर्वाश्रमपूज्य इतरस्तु यतिपूज्यो द्विचक्रः स्पष्ट एव। इत्य-धोक्षजलक्षणम्।

अथ नृसिंहस्य मूर्त्तिभेदलक्षणानि

तत्रादौ भेदाः, पुराणसंग्रहे—

तेषां शुद्धो भवेदाद्यो लक्ष्मीयुक्तस्ततः परः। वालश्च कपिलो योगः

पुरुपोत्तम सञ्ज्ञक होती हैं। उससे ऊपर यावत्संभवचक्रपर्यन्त की मूर्तियाँ भी शुद्ध अनन्त इत्यादि सविशेषण अनन्तादि सञ्ज्ञक होती हैं। उन मूर्तियों के उदाहरणों का यहाँ पर दिग्दर्शनमात्र कराया गया है। पुरुषोत्तममूर्त्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए।

अधोऽक्षज का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि पूजन के लिये शुभफल के देने वाले अधो-ऽक्षज जी अति कृष्णवर्ण के, लाल रेखा, गोलाकार रूप और सुन्दर चक्रवाले कुछ कपिलवर्ण से युक्त सूक्ष्म वा मोटे भी होते हैं। इति।

वराह पुराण पर—

पार्श्व में दो चक्रवाले सूक्ष्म स्वरूप के अधोमुख अधोऽक्षज कहलाते हैं। वह संन्यासियों के सदा पूज्य हैं। पूर्वोक्त लक्षण के सर्वाश्रमी के पूज्य हैं। सिर्फ यह दो चक्रवाले यति पूज्य हैं। अधोऽक्षज लक्षणसमाप्त॥

अब नृसिंह के मूर्ति भेद और उनके लक्षण कहे जायेंगे।

पहले पुराण संग्रह के अनुसार उनके भेद बताये जा रहे हैं। नृसिंहजी के इनमें भेद इतने हैं जैसे—शुद्ध नृसिंह १ लक्ष्मी नृसिंह २ बाल नृसिंह ३

सर्वतोमुख एव च। पातालाकाशकौ विद्युदधोमुखविभीषणौ ।। हारज्वाला कुक्षिपूर्वाविवृतास्यमहाद्यकौ। अघोर पूर्वकाश्चैते नृसिंहाः परिकीर्तिताः। तेषां दशावतारेषु राक्षसान्तकविदारणौ। उक्तौ चैवावशिष्टानां लक्षणानि-क्रमाद् ब्रुवे। तत्र शुद्धनृसिंहलक्षणम्। पुराणसंग्रहे—

नरसिंहो महादेवः पृथुचक्रः सुदंष्ट्रकः।
पूज्यते ब्रह्चर्येण नान्यथा पूजितोभवेदिति ।। ग्रन्थान्तरे—

पीतवर्णस्तु देवानां रक्तभास्वरलोचनः। नारसिंहो भवेद्देवो मोक्षदः पूजितोभवेदिति ।।

पद्मपुराणे—यस्य दीर्घमुखं पूर्वकथितैर्लक्षणैर्युतः। रेखाश्च केशराकारा नारसिंहो मतो हि स इति ।। गरुडपुराणे—

वर्तुलं स्थूलमत्यन्तं स्पष्टचक्रसमन्वितम्।
ह्रस्वमुन्नतमुच्चैर्वा दीर्घास्यमतिगह्वरम ।।

स्फुरद्रेखावलियुतं नाभिस्तस्योन्नता भवेत्। चक्रस्योभयपार्श्वेतु स्नुही-पुष्पा कृतिर्भवेत्। केशभारस्तु वैवर्ण्यं दृश्यते चक्रपार्श्वत इति। तथा—

कपिल नृसिंह ४ योग नृसिंह ५ सर्वतोमुख नृसिंह ६ पाताल नृसिंह ७ आकाश नृसिंह ८ विद्युन्नृसिंह ९ अधोमुख नृसिंह १० विभीषण नृसिंह ११ हार नृसिंह १२ ज्वाला नृसिंह १३ कुक्षि नृसिंह १४ विवृताऽऽस्य नृसिंह १५ महा नृसिंह १६ और अघोर नृसिंह १७ ॥

इनमें से दशावतार प्रकरण में राक्षसान्तक और विदारण नाम के दो नृसिंह के लक्षण कह चुके हैं। अब बचे सबके लक्षणों को क्रमशः बतायेंगे ॥

उनमें से पहले पुराण संग्रह के अनुसार शुद्ध नृसिंह जी का लक्षण—नरसिंहजी महान् देव हैं, स्थूल चक्र, और सुन्दर दाँत (दहाड़े) वाले होते हैं। ब्रह्मचर्य में रहकर ही उनकी पूजा की जाती है अन्यथा पूजा नहीं हो सकती है।

ग्रन्थान्तर में—

पीतवर्ण होकर लाल कान्ति के नेत्रवाले पूजा से मोक्ष के दाता भगवान् देवदेव नृसिंह होते हैं। पद्मपुराण में—जो पूर्वोक्त लक्षणों से घटित हों मुँह कुछ दीर्घ और केशराकार रेखाएँ भी हों तो वह खास नारसिंहजी हैं। गरुड़ पुराण पर—गोलाकार, अति स्थूल, स्पष्ट चक्र युक्त, छोटा वा बड़ा शरीर का उन्न शरीर, दीर्घ मुख, अति गम्भीर चमकती हुई रेखावली से युक्त, उच्च नाभि चक्र के दोनों भाग में सेहूँड़ के फूल का जैसा आकार, जटाओं का भार और चक्र के पास में विवर्णता इत्यादि जिनके लक्षण हों, वह भगवान नृसिंहदेव हैं।

नृसिंह पीतवर्णस्तु महाचक्रो महागुरुः। यतिः सम्पूजयेदेनं गृहस्थः परिवर्जयेदिति। अयं सामान्यवाक्याद्विचक्र एव।

अथ लक्ष्मीनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे--

वामभागेस्थिते चक्रे वनमालाविभूषितः।
लक्ष्मीनृसिंहो विज्ञेयो भुक्तिमुक्ति फलप्रद इति॥

पद्मपुराणे--वामपार्श्वे स्थिते चक्रे कृष्णवर्णे सबिन्दुके। लक्ष्मीनृसिंहो-विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति।

नृसिंहपुराणे—

वामपार्श्वे स्थिते चक्रे कृष्णवर्णः स बिन्दुकः।
लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥

अन्नपानमहावृद्धि सौभाग्यारोग्यवर्द्धन इति। ब्रह्मपुराणे—नरसिंह-स्त्रिबिन्दुःस्यात्कपिलः पञ्चबिन्दुकः। वामाश्रिते पुष्कले तु लक्ष्मीनरहरि-स्मृतः। इति। कपिलनृसिंहलक्षणविशिष्टोऽयं लक्ष्मीनृसिंह इत्यर्थः।

तथा:—

नृसिंहदेव पीले वर्ण के, महास्थूल और महान् चक्रवाले होते हैं। इनकी पूजा संन्यासी करें, गृहस्थ दूर ही से छोड़ दें। सामान्यवाक्य से यह भी द्विचक्र हैं।

लक्ष्मी नृसिंह का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—वामभाग में चक्र के रहते वनमाला से भी भूषित हों तो उनको भुक्तिमुक्ति के देने वाले लक्ष्मीनृसिंह जी जानना चाहिये।

पद्मपुराण पर—बायीं ओर बिन्दु के साथ काला वर्ण का चक्र हो तो उन्हें भुक्तिमुक्तिफलदायक लक्ष्मी नृसिंह जानना चाहिये।

नृसिंह पुराण में—

वामपार्श्व में बिन्दु सहित काला वर्ण का चक्र हो तो वह भुक्तिमुक्ति के देनेवाले लक्ष्मीनृसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं और वह अन्न पान सौभाग्य और आरोग्य को खूब बढ़ाते हैं।

ब्रह्मपुराण पर कहा है कि—नरसिंहदेव तीन बिन्दु से युक्त होते हैं। यदि कपिलवर्ण के हों तो पाँच बिन्दु से युक्त भी होते हैं, वामभाग श्रेष्ठ होता है। उन्हें लक्ष्मी नृसिंह समझा गया है।

इनको कपिलनृसिंह विशिष्ट लक्ष्मीनृसिंह जानना चाहिये।

तथा—द्विचक्रं च बृहद्वक्त्रं कपिलं कनकप्रभम्। लक्ष्मीनृसिंह तन्नाम्ना ब्रह्मचारिभिरर्चितम्। इति। मत्स्यपुराणे—

द्वारद्वये चतुश्चक्रं विकरालमुखन्तथा।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं यतिपूज्यमकर्कशम्।
कर्कशं तु वनस्थानां गृहीणां न सुखप्रदम्॥ इति।

अत्र विकरालमुखत्वस्य विहितत्वात्तन्निषेधस्तु न प्रवर्तते स्ववेष्टत-तुरीयांशमित्यादि वक्ष्यमाणप्रकारकविकरालमुखमकर्कश कोमलाऽऽकारश्चे-ल्लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयमित्थंभूतमिमंगृहीणामपिपूज्यमित्यध्याहारः। कर्कशं तु यतिपूज्यं वनस्थानामपि पूज्यं गृहीणां तु न सुखप्रदमित्यन्वयः। सर्वत्रद्वितीयान्तानां तत्तत्पुराणादिगत शालग्राम प्रकरणान्तर्गतक्रियापदा-न्वयान्नाऽनुपपत्तिः लक्ष्मीनृसिंहः कृष्णवर्ण एव गृहस्थपूज्यो नेतरः। द्विचक्रश्चतुश्चक्रश्चाऽयं स्पष्ट एव।

तथा—द्विचक्र, विशालवदन, कपिलवर्ण और सुवर्णकान्ति हो तो उस मूर्ति को ब्रह्मचारी के पूज्य लक्ष्मीनृसिंह कहना चाहिये।

मत्स्य पुराण में—दोनों द्वार में चार चक्र हों, विकराल मुख हो, और कर्कश मूर्ति न हो तो उनको संन्यासियों के पूज्य लक्ष्मी नृसिंह जानना चाहिये।

कर्कश मूर्ति वानप्रस्थियों के लिये अच्छी होती है, गृहस्थों के लिये सुखदायक नहीं होती है। यहाँ पर विकराल मुख मूर्ति का विधान किया है अतः कर्कश अंश का निषेध नहीं लग सकता है। "स्ववेष्टन तुरीयांशम्" इत्यादि निम्नलिखित प्रकार से यदि विकराल याने अकर्कशको मलाकार की मूर्ति हो तो उसे लक्ष्मीनृसिंह जानना चाहिये, इस लक्षण की ऐसी मूर्ति गृहस्थियों की अपूज्य है। ऐसा ऊपर से जानना चाहिये। अर्थात् इसका अन्वय ऐसा होता है कि कर्कश मूर्ति गृहस्थ के सिवा यति और वानप्रस्थी दोनों की पूज्य है। सर्वत्र "द्वितीया विभक्त्यन्त" पदों के मिलने पर यदि नाम और लिङ्ग से ठीक अर्थ नहीं बैठता हो तो उनउन पुराण में पूर्वापरोक्त "आहुः, प्रचक्षते" इत्यादि, शालग्राम प्रकरण के क्रियापदों का सम्बन्ध समझना चाहिये अतः कोई दोष नहीं है। जैसे स्कन्द में "कूर्मञ्च वर्तुलाकारम्" इत्यादि कहा है वहाँ पर आहुः इत्यादि जानना चाहिये, इस बात को उनउन स्थलों में पहले ही न कह करके मूल में सिंहावलोकनन्याय से यहाँ पर कहा है। कृष्णवर्ण लक्ष्मीनृसिंह ही गृहस्थ पूज्य हैं अन्य नहीं। यह द्विचक्र वा चतुश्चक्र होते हैं।

अथ बालनृसिंहलक्षणम्

पद्मपुराणे—

सूक्ष्मरन्ध्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाभिरन्वितम्।
तत्बालनरसिंहाख्यं यतिसंसार मोचनमिति॥

अस्य शुद्धनृसिंहलक्षणोक्त पीतवर्ण उपसंहर्तव्यः। द्विचक्रत्वं तु स्पष्टमेव।

अथ कपिलनृसिंहलक्षणम्

अग्निपुराणे—नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात्पञ्चबिन्दुयुगिति।

पद्मपुराणे—नृसिंहः कपिलोज्ञेयः स्थूलवक्त्रोग्रदंष्ट्रकः। त्रिबिन्दुः पञ्चबिन्दुर्वा ब्रह्मचर्येण पूजितः। ददाति वाञ्छितं नृणामघौघस्याशुनाशकः॥ अन्यथा जायते क्लेशो नात्र कार्याविचारणेति॥ वैखानससंहितायाम्—

कपिलाख्यो नृसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः।
ब्रह्मचार्यधिकारोऽस्ति नान्यथा पूजनं भवेदिति॥

अयमपि सामान्यवाक्याद्विचक्रएव।

बालनृसिंह का लक्षण—

पद्मपुराण में कहा है कि—सूक्ष्म छिद्र के वनमाला से युक्त द्विचक्रवाले संन्यासियों के लिये मोक्ष के दाता भगवान् बालनृसिंह होते हैं। इनका भी शुद्धवत् पीतवर्ण होता है ऐसा पूर्वोक्त उपसंहार से जानना चाहिये। यह द्विचक्र हैं।

कपिलनृसिंह का लक्षण—

अग्नि पुराण में—नृसिंह कपिल, और स्थूलचक्र के, पाँच बिन्दु वाले होते हैं।

पद्म पुराण में—कपिलवर्ण, स्थूल चक्र, उग्रदंष्ट्रा एवं त्रि वा पाँच बिन्दुवाले और महान पापराशि के विनाशक भगवान् नृसिंह देव ब्रह्मचर्य में रहकर पूजित हों तो मनुष्या के लिये वाञ्छित फल देते हैं। अन्यथा क्लेश होता है। इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

वैखानस संहिता पर—

कपिल नृसिंह स्थूल चक्र के खूब सुन्दर होते हैं, उनकी पूजा में ब्रह्मचारी मात्र का अधिकार है अन्यथा उनकी पूजा नहीं होती है। यह भी सामान्य वाक्य से द्विचक्र ही हैं।

अथ योगनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—स्थूलचक्रद्वयं मध्ये गुडलाक्षासवर्णकः । द्वारोपरि तथा रेखा नृसिंहो योग सञ्ज्ञक इति । विष्णुरहस्ये—

सव्यभागे स्थिते पद्मे दृश्यते हेमबिन्दुकम् ।
योगो नृसिंहो देवोशो गोत्रकीर्त्तिप्रवर्द्धन इति ॥

"गोत्रकीर्तिप्रवर्द्धनः" इतिकथनाद् गृहस्थानामप्ययं पूज्यः स्पष्ट एव द्विचक्रश्च ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

सप्तचक्रं बहुमुखं समन्तात्स्वर्णभूषितम् ।
सर्वतोमुखमाख्यातं बहुवर्णन्तु मोक्षदमिति ॥ तथा—

सप्तचक्रः समाख्यातो नृसिंहः सर्वतोमुख इति । अयन्तु सप्तचक्रः स्पष्ट एव ।

अथ पातालनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—तृतीयचक्रादारभ्य पार्श्वतो दशचक्रकः । पूर्वोक्त चिन्ह हीनश्च बहुरूपधरो भवेत् । पातालनरसिंहोऽसौ यतीनां मोक्षदायक इति ॥

योग नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्म पुराण पर—मध्यभाग में दो स्थूल चक्र हो, गुड़ वा लाक्षाके समान वर्ण हो तथा द्वारोपरि रेखा भी हो तो उनको वालनृसिंह कहते हैं ।

विष्णु रहस्य पर—

बायें भाग में पद्म के रहते सुवर्ण की बुन्दी भी दीखती हो तो वह गोत्र और कीर्ति के बढ़ाने वाले देवेश बाल नृसिंह कहे जाते हैं ।

"गोत्रकीर्तिप्रवर्द्धनः" ऐसा कहा है इसलिये गृहस्थ के भी यह पूज्य हैं। द्विचक्र हैं ।

सर्वतोमुख नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—सात चक्र के बहुमुख चारों ओर सुनौले रङ्ग से भूषित बहुवर्ण के मोक्षदायक सर्वतोमुख नृसिंह कहलाते हैं । तथा सात चक्र के नृसिंहदेव सर्वतोमुख कहलाते हैं । यह सात चक्र के हैं ।

पाताल नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह में—पार्श्वभाग में तीन से दशचक्रपर्यन्त के पूर्वोक्त चिन्ह रहित बहुत रूपधारी यतियों को मोक्ष के देनेवाले यह पाताल नृसिंह कहलाते हैं ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

बृहच्चक्रं बृहद्द्वारं बहुवर्णमनोहरम् ।
तं पातालनृसिंहाख्यं भिक्षूणाममृतप्रदमिति ॥

तथा—बहुच्छिद्रं भिन्नवक्त्रं सुवर्णकनकान्वितम् । पातालनरसिंहाख्यं-वनवासिभिरर्चितमिति ॥ अयं मुखे द्विचक्रस्तृतीयचक्रादारभ्याष्टचक्राणि पार्श्वत एवं दशचक्र इत्यर्थः ।

अथाऽऽकाशनृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—अस्याष्ट चक्रमध्यस्थमल्पभारं महोदरम् ।
आकाशनरसिंहाख्यं वनवासिभिरर्चितम् ॥ इति ।

अस्याप्यनुक्तवर्णत्वात्सामान्य नृसिंहलक्षणोक्तपीतवर्णोवा कापिलं नारसिंहंत्वित्युक्तं कपिलवर्णो वोपसंहर्तव्यः । एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् सामान्यवाक्यादेव द्विचक्रत्वमपि ।

अथ विद्युज्जिह्व नृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—द्विचक्रं द्विमुखं स्थूलं दूर्वाभं चोन्नतं शिरः ।
दारिद्र्यफलदः पुंसां विद्युज्जिह्वनृसिंहक इति ॥

ब्रह्माण्ड पुराण में—

बृहत् चक्र, बृहद् द्वार, बहुवर्ण की मूर्ति को पाताल नृसिंह कहते है । वह संन्यासियों के लिये मोक्ष के दाता होते हैं ।

तथा—बहुत छिद्र हों, भिन्न मुख हो, सुन्दर सुवर्ण से युक्त हो तो उस मूर्ति को वनवासियों से पूजित होने लायक पाताल नृसिंह जानना चाहये । इनके मुँह पर दो चक्र होते हैं । तीन से आठ तक बगल में एवं यह दशचक्र के होते हैं ।

आकाश नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर कहा है कि—वनवासियों के पूज्य आकाश नृसिंहके मध्य भाग में आठ चक्र होते हैं । वजन कम ही रहता है, पेट बड़ा दीखता है । इत्यादि ।

इस मूर्ति का भी कोई वर्ण नहीं बताया गया है अतः सामान्य नृसिंह लक्षणोक्त पीतवर्ण वा "कपिलं नारसिंहं तु" इस लक्षण से कपिल वर्ण पर उपसंहार करना चाहिये । इसी तरह आगे भी जानना चाहिये ।/सामान्य वाक्य से द्विचकत्व भी जानना चाहिये ।

विद्युज्जिह्व नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर—द्विचक्र, द्विमुख, स्थूल, दूर्वावर्ण और उच्च शिरवाले विद्युज्जिह्व नृसिंह हैं । उनकी पूजा से मनुष्यों को दरिद्र होना पड़ता है । यह भी द्विचक्र हैं ।

अयमपिपूर्ववद्द्विचक्र एव। अथाऽधोमुखनृसिंहलक्षणम् ब्रह्माण्ड-पुराणे—पुरःपार्श्वे च पृष्ठे च चक्रैरभ्युपशोभितम्। अधोमुख इतिख्यात-मर्चकानां विमुक्तिदमिति। अयन्त्वधोमुखः सन् त्रिचक्रः स्पष्ट एव।

अथ विभीषण नृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

दीर्घाकारं दीर्घचक्रं झषकास्यं बृहत्तनुम्।
विभीषणमितिप्रोक्तं दीर्घदुःखफलप्रदमिति॥

झषकास्यं मत्स्यमुखाऽऽकारमित्यर्थः। अयन्तु सामान्यवाक्याद् द्विचक्र एव।

अथ हारनृसिंहलक्षणम्।

पुराणसंग्रहे—

सूक्ष्मरन्ध्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाविभूषितम्।
तद्धारनरसिंहाख्य नृणां संसारमोचकम्॥ इति।

अयन्तु स्पष्टएव द्विचक्रः।

अधोमुख नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—आगे, पीछे और बगल पर भी, चक्रों से खूब शोभित मूर्ति का नाम अधोमुख नृसिंह है, पूजकों को मुक्ति मिलती है। अधोमुख नृसिंह जी अधोमुख हैं अतः त्रिचक्र हैं। (सम्भव है कि पञ्चचक्र भी होते हैं क्योंकि दो चक्र तो पूर्ववत् सिद्ध हैं, और तीन चक्र भी लक्षण पर बतये गये हैं)।

विभीषण नृसिंह के लक्षण—

पुराण संग्रह पर—

दीर्घ आकार के दीर्घचक्र और मत्स्यमुख, विशाल शरीर वाले विभीषण नृसिंह कहलाते हैं, पूजा से दीर्घ काल तक दुःख देते हैं। झषक माने मछली वा मत्स्य। सामान्य० द्विचक्र।

हार नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह में कहा है कि सूक्ष्म छिद्र के, द्विचक्र संपन्न, वनमाला से विभूषित हार नृसिंहजी कहलाते हैं। वह मनुष्यों को संसार से मुक्त कर देने वाले हैं। इनको भी स्पष्ट द्विचक्र के जानिये।

अथ ज्वाला नृसिंहलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे--

सूक्ष्मचक्रं द्विचक्राढ्यं वनमालाविभूषितम् ।
तच्च ज्वालानृसिंहाख्यं नृणां संसारमोचकम् ॥ इति ।

अयमपि स्पष्टद्विचक्रः । अत्र बाल हार ज्वाला नृसिंहानामीषल्लक्षणभेदः ।

अथ कुक्षिनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अस्पष्टचक्रमल्पास्यमल्पभारं महोदरम् । तत् कुक्षि नारसिंहाख्यं वनवासिभिरर्चितमिति । अयन्तु सामान्यवाक्याद्विचक्र एव ।

अथ विवृतास्य नृसिंहलक्षणम्

ह्माण्डपुराणे--

विवृतास्यं वामचक्रं वर्तुलं कपिलप्रभम् ।
नारसिंहं गृहस्थानां भीतिदं बिन्दुभिर्वृतम् ॥ इतिं ।

अयमपि पूर्ववद्द्विचक्र एव ।

ज्वाला नृ सह के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर---

सूक्ष्म चक्र के होते हुए द्विचक्र के वनमाला से शोभित हों तो वह मनुष्यों को संसार से छुटाने वाले ज्वाला नृसिंह कहलाते हैं ।

इनका स्वरूप भी द्विचक्र का ही है क्योंकि श्लोक ही पर पाठ आया है । बस, यही जानिये कि बाल, हार, ज्वाला इत्यादि नृसिंहों का थोड़ा मात्र लक्षण भेद हैं ।

कुक्षि नृसिंह का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—अस्पष्ट चक्र, छोटे मुँह और अल्प भार के महान् उदर वाले कुक्षि नृसिंह कहलाते हैं । वानप्रस्थों को ही इनकी पूजा करनी चाहिये । यह भी द्विचक्र हैं ॥

विवृतास्य नृसिंह का लक्षण—

ब्रह्म पुराण में कहा है कि—जिस मूर्ति का मुख फटा है, चक्र बायीं ओर है, आकार गोल है, प्रभा कपिल वर्ण की है और विन्दु भी दीखती है तो उसे गृहस्थों को भय दिलाने वाले विवृतास्य नृसिंह जानना चाहिये । यह पूर्ववत् द्विचक्र हैं ।

अथ महानृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—भयङ्करमुखश्चैव विकटस्ताम्रवर्णकः। महानृसिंहो देवोऽपि पूजितो मुक्तिदायक इति। अयमपि पूर्ववद् द्विचक्र एव।

अथाऽघोरनृसिंहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—दंष्ट्राकरालवदनं बृहच्चक्रसमन्वितम्। अघोराख्यंनारसिंहं यतीनां मोक्षदायकम्। इति। अयमपि पूर्ववद्द्विचक्र एव। अत्र लक्ष्मी नृसिंहयोगनृसिंहव्यतिरिक्ता नृसिंहमूर्त्तयः सर्वा अप्यगृहस्थ पूज्या इति ज्ञेयम्। तासां मोक्षैकफलदातृत्वाद्गृहस्थानां विशिष्य प्रतिषिद्धत्वाच्चेति। इति सभेद नारसिंहमूर्त्तिलक्षणानि।

अथाऽच्युतलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—चतुर्विलोह्यष्टचक्रैर्वामदक्षिणपार्श्वगैः।
अधिष्ठितोमुखेप्येकं कुण्डलद्वयशोभितः॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गबाणकौमोदकीधरः। भूषणध्वजपुष्पैश्च छत्रवज्राङ्कुशैर्वृतः॥ सोऽच्युतः कथितो नाम्ना दुर्लभस्तपसाविनेति। पुराणसंग्रहे—

महा नृसिंह के लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—

लाल वर्ण के, विकट स्वरूप, भयङ्कर मुखवाले महा नृसिंह देव हैं। पूजा से मुक्ति को देते हैं। पूर्ववत् द्विचक्र हैं॥

अघोरनृसिंहकालक्षण—

पुराणसंग्रहपर—

लम्बे दांत से अतिभयङ्कर है वदन जिनके ऐसे विशालचक्रवाले अघोर-नृसिंह हैं, संन्यासियों के लिए मोक्ष दायक होते हैं। यह भी द्विचक्र के ही होते है। यहाँ पर लक्ष्मी नृसिंह और योग नृसिंह को छोड़कर सभी नृसिंह की मूर्तियाँ गृहस्थ के लिये पूज्य नहीं होती हैं, ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि वे सब मोक्षफल को मात्र देती हैं। विशेषतः गृहस्थों के लिये निषेध वचन भी हैं।

नारसिंह मूर्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए, अब अच्युत के लक्षण बताये जाते हैं।

ब्रह्मपुराण में—चारछिद्र के वाम, दक्षिण और पार्श्व भाग में आठ चक्रों से युक्त एवं मुख पर भी एक चक्राङ्कित और दोनों तर्फ कुण्डलसे शोभित शंख, चक्र, गदा, धनुष, वाण, और कौमोदकी के धारण किये, भूषण, ध्वज, पुष्प, छत्र, वज्र, अङ्कुश इत्यादियों से वेष्टित हो तो वह भगवान अच्युत कहलाते हैं, विना तपश्चर्या से इनका मिलना दुर्लभ है।

बहिश्चक्रसमायुक्तमन्तश्चक्रद्वयान्वितम् ।
देवं तमच्युतं ज्ञेयं सूक्ष्मरन्ध्रं सुशीतलम् ॥ इति ।

तथा—ऊर्ध्वमूलमधोहीनं श्यामं च बहुलं मुखम् । अच्युतं नामदेवेशं द्वयोर्लोकप्रदायकमिति ॥ वाराहपुराणे—अच्युतो मधुवर्णाभो भास्वच्चक्रोऽतिशोभनः । पार्श्वे बिन्दुसमायुक्तो नैष्ठिकैरर्चितोभवेदिति ॥

अयं नवचक्रस्त्रिचक्रश्च स्पष्ट एव । इत्यच्युत लक्षणम् ।

अथ जनार्दनलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—श्यामं स्थूलं महास्निग्धं मध्यचक्रं सुशोभनम् । देवं जनार्दनं नाम महालक्ष्मीप्रदायकमिति ॥ ब्रह्मपुराणे—

द्वारद्वये चतुश्चक्रो जनार्दन इहोच्यते ।
चक्रद्वयं मध्यगतं चक्रद्वयं च पृष्ठत ॥ इति

ब्रह्मपुराणे—पूर्वभागैकवदनः पश्चादेकास्यसंयुतः । जनार्दनश्चतुश्चक्रः श्रीप्रदो रिपुनाशन इति ॥

पुराण संग्रह पर—

बाहरी भाग के चक्रके साथ साथ फिर भी दो चक्र हों तथा—सूक्ष्म छिद्रके, सुशीतल स्वरूप हों तो उन देव को अच्युत कहते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

तथा—ऊर्ध्वभाग में मूल हो, अधोभाग में न हो, श्यामवर्ण की मूर्ति हो, ज्यादे मुख हों तो उनको देवदेव "अच्युत" जानना चाहिये । उनकी पूजासे दोनों लोक सुधर जाते हैं ॥

वराह पुराणमें—अच्युत जी मधुवर्ण के, चमकते चक्रवाले खूब सुन्दर पार्श्व भाग में बिन्दु युक्त होते हैं । नैष्ठिक लोग इनकी पूजा करें ॥

यह लक्षणानुसार नौ और तीन चक्रके भी होते हैं ।

अच्युतजी का लक्षण समाप्त हुआ ।

जनार्दनजी का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार—

सांवले, खूब चिकने मध्य चक्रवाले, सुन्दर जनार्दन नामके देव हैं । यह महान् ऐश्वर्य के दाता हैं ।

ब्रह्मपुराण में—दोनों द्वार पर चार चक्र हों अर्थात् दो चक्र तो मध्यभाग में हों और दो पृष्ठ भाग में तो वह जनार्दन कहे जाते हैं ।

तथा—पूर्व की ओर एक मुख हो, पश्चिम की ओर भी एक ही हो और चार चक्र से युक्त हों वह श्रीप्रदायक, शत्रुविनाशकारी जनार्दन कहलाते हैं ।

पुराणसङ्ग्रहे—जनार्दनं विजानीयाद्वनमालाविभूषितम् । ऊर्ध्वाधो द्वे समे वक्त्रे सूक्ष्मवक्त्रैः सुचिह्नितः ॥ व्यूहक्षेत्र-समुत्पन्नश्चतुश्चक्री जनार्दन इति। पद्मपुराणे—द्वारद्वये चतुश्चक्रः समद्वारविभूषितः। जनार्दनः स विज्ञेयः पुत्रलाभं प्रयच्छतीति ॥ तथा शंखचक्राब्जमालाङ्कोनीलः स्थूलाकृतिः शुभः। जनार्दन इति ख्यातो हिमांशुपरिशीतल इति। अयं तु वदनद्वये स्पष्ट एव चतुश्चक्रः।

इति जनार्दनलक्षणम्।

अथोपेन्द्रलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

उपेन्द्रो मणिवर्णाभो ह्रस्वचक्रोऽतिशोभनः।
श्यामलः कोमलाभश्च वक्त्रपार्श्वे सुचक्रयुगिति ॥
शंखचक्राब्जमालाङ्को नीलस्थूलाकृतिः शुभः।
स उपेन्द्र इतिख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥ स्कान्दे—

उपेन्द्र इन्द्रनीलाभश्छत्राकारोमहाबलः। समचक्रः समाङ्गश्च पार्श्वे

पुराण संग्रह पर—

नीचे ऊपर दोनों ओर समान मुख हों, सूक्ष्म मुखों से चिन्हित एवं व्यूह क्षेत्र पर समुत्पन्न चतुश्चक्री हों तो वह जनार्दन हैं।

पद्मपुराण में—

दोनों द्वार में चार चक्र हों, समान द्वार (मुख) से सुन्दर हों तो वह जनार्दनजी हैं, पुत्रलाभ को देते हैं।

तथा—शङ्ख, चक्र, कमल और वनमाला के धारण किये स्थूलआकार के शुभ नील स्वरूप जनार्दन कहलाते हैं। वह चन्द्रमाके सदृश शीतल होते हैं। यह मूर्ति दोनों मुँह पर कुल चार चक्रवाली होती है।

जनार्दनजीका लक्षण समाप्त हुआ।

उपेन्द्रजी का लक्षण—

उपेन्द्रजी मणिसदृश कान्तिमान्, छोटे चक्र के एवं मुखके पास सुन्दर चक्र सम्पन्न कोमल छबिवाले साँवले अतिसुन्दर होते हैं। इति।

तथा—

शङ्ख, चक्र, कमल और वनमाला के चिन्ह वाले शुभ नील वर्ण के स्थूलाकार हों तो वह भुक्ति मुक्ति के दाता उपेन्द्र कहलाते हैं।

स्कान्द पर—

उपेन्द्रजी इन्द्रनील के सदृश चमकीले छत्राऽऽकार के महान् बलिष्ठ, समान

रेखात्रयान्वित इति। अयं सामान्यवचनाद्‌द्विचक्र एव। इत्युपेन्द्रलक्षणम्॥

अथ हरिलक्षणम

ब्रह्माण्डपुराणे—अल्पद्वारसमोपेता हरिमूर्त्तिरुदाहृतेति। ब्रह्मपुराणे—ऊर्द्ध्वमुखं विजानीयाद्धरितं हरिरूपिणम। काममोक्षप्रदं चैव अर्थदं च विशेषतः। तथा—ऊर्ध्वमुखं विजानीयाज्जपाभं वर्तुलं शुभम्। अधोबिन्दुसमायुक्तं सर्वकामार्थसाधकमिति॥ विष्णुरहस्ये— अतसीपुष्पसङ्काशा बिन्दुवज्रसमन्विता। पारिजातध्वजोपेता वर्तुला चातिशोभना॥

प्रदक्षिणावर्त्तयुता वनमालाविभूषिता। सा शिला हरिसंज्ञास्याद्धनधान्यसुखप्रदेति। पुराणसंग्रहे—श्यामलं कोमलं स्वल्पं द्वारं पार्श्वे सुचक्रकम्। हरिमेनं विजानीयात्सर्वपापप्रणाशनमिति॥ अत्रापिपूर्ववद् द्विचक्रत्वमेव।

गरुडपुराणे—

दूर्वामरकताभा च नाभिचक्रा तथोन्नता।
हरिमूर्त्तिरितिख्याता शंखमुद्रासमन्वितेति॥

अत्र नाभिचक्रत्वकथनात्पूर्ववद् त्रिचक्रत्वम्। इतिहरेर्लक्षणम्।

चन्द्रके समान ही अवयववाले पार्श्वमें तीन रेखाओंसे युक्त होते हैं।

यह भी द्विचक्र की मूर्ति होती है। उपेन्द्रका लक्षण समाप्त हुआ।

ब्रह्माण्डपुराण के मुताबिक हरिका लक्षण—

समान सूक्ष्म द्वार से युक्त हो तो हरिमूर्ति कही गयी है।

ब्रह्मपुराण पर—हरिभगवान् हरितवर्ण के ऊर्ध्वमुख होते हैं। वह कामनाके अनुसार फल या मोक्षके दाता विशेषकरके धनदायक भी होते हैं।

तथा—जवाकुसुम के सदृश, ऊर्ध्वमुख, शुभ, गोलाकार, अधोभागमें बिन्दु से युक्त सर्व कामार्थ के साधक भगवान् हरि होते हैं। विष्णु रहस्य पर—तिस्सी के फूल सदृश कान्तिवाली, बिन्दु और वज्रसे युक्त, पारिजात और ध्वजाकार-चिन्ह के साथ प्रदक्षिणावर्तयुक्त, वनमाला से शोभित जो शिला है—उसे धन-धान्य और सन्तान को देनेवाली "हरि" नामकी जानना चाहिये।

पुराणसंग्रह पर—श्यामवर्ण के कोमल अल्पस्वद्वारयुक्त और पार्श्व भाग में सुन्दर चक्र वाले हों तो इनको सभी पापके नाशक हरिभगवान जाने। पूर्ववत् द्विचक्र०॥

गरुड पुराणमें—

दूभ वा पन्ना के सदृश कान्तिवाली नाभी पर चक्राकार, शंखमुद्रा से युक्त एवं उन्नत हो तो वह शिला हरिमूर्ति कहलाती है।

इस मूर्ति की नाभी पर भी चक्र बताया है अतः इसे तीन चक्र की जाननी चाहिये। हरि लक्षण समाप्त॥

अथ कृष्णस्य समूर्त्तिभेदलक्षणानि

तत्रादौ भेदाः पुराणसंग्रहे—

कृष्णः सबालो गोपालो गोवर्द्धनधरोपि च ।
त्रैलोक्यमोहनः कृष्णः सौभाग्यवरदस्तथा ॥

रुक्मिण्या विजयाच्चूडामणेः सोऽग्रे धनञ्जयात् । सनातनपारिजातस्यमन्तकहरौ तथा ॥ कंसकालीयचाणूरोत्तरमर्दनपूर्वकाः । गोवर्द्धनश्रीसन्तानलक्ष्मीमदनवंशदाः ॥ उत्तरः किञ्च गोपालो वस्त्रापहरणस्तथा । भेदास्तेषामतो वक्ष्ये लक्षणानि यथाक्रमम् ।

तत्र कृष्णलक्षणम् । ब्रह्माण्डपुराणे—

समचक्राद्वारदेशे कृष्णवर्णसुशोभना ।
सा कृष्णमूर्त्तिर्विज्ञेया पूजिता सौख्यदायिनी ॥

तथा—कृष्णः पीतः कृशतनुर्वक्त्रपार्श्वे तु चक्रयुक् । द्वारतुल्यो भवेन्नाभिः कूर्चाकारस्तु पृष्ठतः ॥ कृष्णोवृत्ताकृतिस्तार्क्ष्य सर्वेषां पापनाशन इति ॥

अब समेद कृष्णमूर्ति के लक्षण बताये जाते हैं—

इनके भेद पुराण संग्रह पर इस प्रकार कहे गये हैं—

जैसे—(शुद्ध) कृष्ण, बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, गोवर्द्धनधारी कृष्ण, त्रैलोक्य मोहनकृष्ण, सौभाग्यवरदकृष्ण, रुक्मिणी कृष्ण, विजयकृष्ण, चूड़ामणिकृष्ण, धनञ्जय कृष्ण, सनातन कृष्ण, पारिजातहर कृष्ण, स्यमन्तकहर कृष्ण, कंसमर्दनकृष्ण, कालियमर्दन कृष्ण, चाणूर मर्दन कृष्ण । इसी प्रकार से गोवर्द्धन गोपाल, श्रीगोपाल, सन्तान गोपाल, लक्ष्मी गोपाल, मदन गोपाल, वंश गोपाल, वस्त्रापहारी गोपाल, इतने तो कृष्णगोपाल के भेद हैं । अब आगे जाकर क्रमशः इनके लक्षण भी बताये जायेंगे ।

उनमें पहले (शुद्ध) कृष्ण का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराणपर—

वह कृष्णमूर्ति होती है जिसके द्वार देश में समचक्र हो और कृष्ण ही वर्ण की हो, सुन्दर हो वह पूजन करने से सौख्य को देती है । तथा—हे गरुड़जी ! कृष्णजी प्रायः कृष्ण वर्ण के होते हुए पीत वर्ण के पतले मुखके पास में चक्रधारी द्वारसदृश नाभिवाले पृष्ठप्रदेश में कूर्चाकार (मार्जनी सदृश) गोलस्वरूप सर्वपापों के ध्वंसकारी होते हैं ।

तथा--रेखापञ्चायुधधरं वनमालाविभूषितम्। अब्जचिह्नं सूक्ष्मरन्ध्रं कृष्णमेनं प्रचक्षते ॥ इति।

पद्मपुराणे—

प्रदक्षिणावर्तयुतावनमालाविभूषिता।
या शिला कृष्णसञ्ज्ञा सा धनधान्यसुखप्रदेति ॥

अयं मुखस्य द्वारदेशेऽन्तपार्श्वे वा द्विचक्रः स्पष्ट एव।

अथ बालकृष्णलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

उन्नतो मूर्ध्नि कृष्णाभो निम्नोऽधस्तात् त्रिबिन्दुकः। स बालकृष्णो विज्ञेयो दीर्घास्यः पुत्रभाग्यदः ॥ इति। अयंसामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्र एव।

अथ गोपालकृष्णलक्षणम्

ब्रह्माण्डे--कृष्णोऽतिकृष्णो न स्थूलश्चक्राभ्यामुपलक्षितः। वनमाला-युतः कण्ठे पृष्ठे श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ दण्डशृङ्गयुतः पार्श्वे वेणुना शोभितो मुखे। सगोपाल इति प्रोक्तो गोभूधान्यधनप्रद इति। अयं स्पष्ट एव द्विचक्रः।

तथा—रेखा के सहित पाँच अस्त्रोंको धारण किये, वनमाला से भूषित, कमल के चिह्न के साथ सूक्ष्म छिद्र वाले भी हों तो उनको कृष्ण कहते हैं। पद्मपुराण में—दक्षिणावर्त से युक्त होकर वनमाला से भूषित जो शिला है वह कृष्ण सञ्ज्ञक होती है। वह धन, धान्य और सुख की देने वाली होती है। मुखके द्वार पर व पास ही में दो चक्र वाली होती है।

बालकृष्ण का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण पर—

उच्च, शिर पर काले वर्ण के, अधो भागपर कुछ टेढ़े, दीर्घमुख और त्रिबिन्दु वाले बालकृष्ण होते हैं। पुत्र और भाग्य के दाता हैं। द्विचक्र ही० ॥

गोपालकृष्ण का लक्षण—

ब्रह्माण्ड में जो कि कृष्ण होकर भी अति कृष्ण हों, पतले हों, दो चक्र से उपलक्षित हों, कण्ठ में वनमाला और पृष्ठ में श्रीवत्स के चिन्ह हों, पार्श्व में दण्ड और शृङ्गधारी हों, मुख पर वेणु (वंशी) से सुशोभित हों तो वह गो, भूमि, धन और धान्यादिके देने वाले गोपाल कृष्ण कहे जाते हैं। यह द्विचक्र होते हैं सो स्पष्ट ही है ॥

अथ गोवर्द्धनधरकृष्णलक्षणम्

पञ्चरात्रागमे—दीर्घाकारः कृष्णवर्णश्चतुश्चक्रसमन्वितः। ऊर्ध्वरेखा समायुक्तः पार्श्वे रजतबिन्दुकः॥ स्वर्णबिन्दुसमायुक्तो वनमालाविभूषितः। गोवर्द्धनधरो देवो गोभूधनविवर्द्धन इति॥ वैखानसागमे—

घनश्यामश्चतुश्चक्रो बिन्दुद्वय समन्वितः।
गोवर्द्धनधरः श्रीमान् सर्वसौभाग्यवर्द्धन इति॥

वामनपुराणे—गोकर्णसदृशं वक्त्रं बहुरूपं विशेषतः। सुवर्णरूप्यबिन्द्वाढ्यं चतुश्चक्रादिकं भवेत्। कलशाङ्कश्च देवेशः सुवर्णसदृशः प्रभः॥

गोवर्द्धनो भवेद्देवः सोऽचलां श्रियमर्थद इति।

अयन्तु स्पष्टएवैकवदने वदनद्वये वा चतुश्चक्रः। चतुश्चक्रादिकमित्यत्रादि शब्दादुद्देशवशाच्च द्विचक्रोप्ययम्॥

अथ त्रैलोक्यमोहनकृष्ण लक्षणम्।

पुराणसङ्ग्रहे—कल्पद्रुमं कोमलाङ्गं वनमालाविभूषितम्। कृष्णवर्णं तथा सूक्ष्मं सूक्ष्मचक्रेण संयुतम्॥ अङ्कुशं च शरश्चापमूर्ध्वरेखासम-

---

गोवर्धनधारीकृष्ण के लक्षण—

पञ्चरात्रागम में कहा है—

दीर्घाकार, कृष्णवर्ण, चार चक्रसे युक्त, ऊर्ध्व रेखा और पार्श्वभाग में रजत-बिन्दु तथा सुवर्ण बिन्दु एवं वनमाला से शोभित हो तो वह देव गोवर्द्धनधारी कृष्ण हैं, गो, भूमि, धन-धान्यादि की वृद्धि करने वाले हैं।

वैखानसागम में—

मेघश्याम, चतुश्चक्र, द्विबिन्दुकस्वरूप, सर्वसौभाग्यवर्द्धक श्रीमान् गोवर्द्धन धारी कृष्ण हैं।

वामन पुराण में कहा है—

गाय के कान का जैसा मुख हो, विशेष करके बहुवर्ण हों, सुवर्ण और रजत बिन्दु से सम्पन्न हों, चार चक्र हों, कलशाका चिन्ह भी हो और सोने की जैसी कान्ति भी हो तो अटल ऐश्वर्य को देने वाले गोवर्द्धनधर भगवान् कृष्ण कहलाते हैं। यह विशेष वाक्य से चतुश्चक्र हैं। पूर्ववत् लक्षणवाक्य से द्विचक्र भी होते हैं। आदि शब्द से उद्देश्य वाक्य का ग्रहण होता है।

त्रैलोक्य मोहन कृष्ण का लक्षण —

पुराण संग्रह में—

कल्प वृक्ष का चिह्न हो, कोमल अङ्ग हों, वनमाला भूषण हो, सूक्ष्माकार तथा कृष्णवर्ण हो, अङ्कुश, बाण, धनुष और ऊर्ध्व रेखा के चिह्न पाये जाते हों तो उस

न्वितम् । त्रैलोक्यमोहनं कृष्णं सर्वसम्पत्प्रदायकम् । इति । अयं सामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्र एव ।

अथसौभाग्यवरदकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे --उन्नतः पृष्ठभागे स्यादधोभागेतु वर्त्तुलः । नीलवर्णप्रतीकाशो धनुर्बाणसमन्वितः । साङ्कुशो वामपार्श्वे च वनमालाविभूषितः ॥ सौभाग्यवरदः कृष्णः सर्वसम्पत्प्रदायक इति । अयमपिपूर्ववद्द्विचक्रः ।

अथ रुक्मिणीकृष्णलक्षणम्

पुराणसङ्ग्रहे--स्निग्धं श्याममुखं सूक्ष्मं तप्तजाम्बूनदप्रभम् । समचक्रं सुशोभाढ्यं वामपार्श्वे सबिन्दुकम ॥ अङ्कुशं वनमाला च ऊर्ध्वरेखासमन्वितम् । रुक्मिणीवल्लभं देवं रुक्मिणीकृष्णसञ्ज्ञकमिति । अयमपि द्विचक्रएव ।

अथ विजयकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—धात्रीफलसमाकारः कृष्णवर्णेनसङ्गतः । धनुर्बाणसमायुक्तो विजयः कृष्णसञ्ज्ञकइति । अयमपि द्विचक्रएव ।

मूर्ति को त्रैलोक्य मोहन कृष्ण जानना चाहिये । वह सर्व सम्पत्ति के देने वाले हैं । यह सामान्य विशेष वाक्यों द्वारा द्विचक्र ही हैं ।

सौभाग्यवरद कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—

सर्वसम्पत्ति के दाता सौभाग्यवरद कृष्ण ऐसे होते हैं—

पृष्ठ भाग ऊँचा रहता है, अधोभाग गोलाकार होता है, नीलवर्ण की छवि होती है, धनुर्बाण और अङ्कुश के चिन्ह होते हैं, वामभाग में वनमालाकार भूषण रहता है । यह भी पूर्ववत् द्विचकी होते हैं ।

रुक्मिणी कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह में कहा है कि—चिकना स्वरूप, श्यामवदन, सूक्ष्म आकार, तप्त सुवर्ण की कान्ति, समचक्र तथा सुन्दर मूर्ति, वाम भाग में बिन्दु, अङ्कुश, वनमाला और ऊर्ध्वरेखा के चिह्न ये सब उनकी मूर्ति पर लक्षण रहते हों तो उनको रुक्मिणी वल्लभ, रुक्मिणी कृष्ण कहते हैं । यह भी द्विचक्र के ही हैं ॥

विजयकृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—आँवले के फल तुल्य आकारवाले कृष्णवर्ण से युक्त धनुर्बाण चिह्नधारी विजयकृष्ण कहे जाते हैं । द्विचक्र ॥

अथ चूडामणिकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे—जम्बूफलसमाकारः कुक्कुटासनसंस्थितः। वलयाकृतिरेखाढ्य ऊर्ध्वरेखासमन्वितः। धनुः पाशाङ्कितो देवश्चक्रद्वयसमन्वितः॥ मालया वेष्टितश्चैव कृष्णश्चूडामणिः स्मृत इति। अयं तु स्पष्टद्विचक्रएव।

अथ धनञ्जयकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे--सव्यापसव्यरेखाभिर्भूषितः सूक्ष्मचक्रकः। पार्श्वे खुरयुतो देवोधनञ्जयविभुः शुभ इति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ सनातनकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे--हिरण्यगर्भसङ्काशः स्थूलचक्रसमन्वितः। कृष्णः सनातनः श्रीमानष्टैश्वर्यफलप्रद इति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ पारिजातहरकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे--कृष्णोऽयं पारिजाताढ्यः पारिजातहरः स्मृतः। ब्रह्मचर्यव्रतस्थेन पूजनीयः प्रयत्नत इति। अयमपि द्विचक्रएव।

अथ स्यमन्तकहरकृष्णलक्षणम्

स्कान्दे--अतसीवर्णकः स्थूलश्चक्रभागेऽतिशोभनः। वनमालापरिवृतः

चूड़ामणिकृष्ण का लक्षण—

स्कन्द पुराण पर—

जामुन के फलके समान आकार हो, कुकुटासन पर विराजमान हों, ऊर्ध्व रेखा के साथ चूड़ी के आकार की रेखाएँ हों, धनुष, पाश, वनमाला और दो चक्र से अङ्कित हों तो वह चूड़ामणि कृष्ण कहाते हैं। यह भी अनुक्त चक्र होने के कारण द्विचक्र ही हैं।

धनञ्जय कृष्णका लक्षण—

स्कन्दपुराण पर--

बायीं और दाहिनी रेखा से युक्त, सूक्ष्मचक्री, पार्श्व भाग में खुराकार चिह्न से शोभित, शुभस्वरूप भगवान् धनञ्जय देव हैं। द्विचक्री हैं।

सनातन कृष्ण का लक्षण—

स्कन्दपुराण पर--हिरण्य गर्भ सदृश स्थूल चक्रवाले श्रीमान् अष्टैश्वर्य के दाता भगवान् सनातन कृष्ण हैं। यह भी द्विचक्री हैं।

पारिजातहर कृष्ण का लक्षण—

पारिजात वृक्षके चिन्ह से युक्त भगवान् पारिजात हर कृष्ण कहलाते हैं। ब्रह्मचर्य व्रतमें रहकर यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये। द्विचक्री०।

स्यमन्तकहर कृष्ण का लक्षण—

तिस्सी के फूल सदृशवर्ण वाले, स्थूल चक्र भाग के, अति सुन्दर, वनमाला

पृष्ठे श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ स्यमन्तहारी विज्ञेयः पुत्रश्रीकीर्तिवर्द्धन इति । अयमपि द्विचक्र एव ।

अथ कंसमर्द्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—पूर्वभागैकवदनः पार्श्वैकवदनश्च सः । कंसमर्दी भवेत् कृष्णो नीलाम्बुदसमप्रभ इति । अयन्तु वदनद्वये चतुश्चक्रस्पष्ट एव ।

अथ कालीयमर्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—वामदक्षिणपर्यंतमुखाढ्य श्चक्रशोभितः रेखाढ्यः कृष्णवर्णाढ्यो बिन्दुत्रयविभूषितः । कालीयमर्दनः कृष्णः सर्वारिष्टविनाशन इति । अयम्पूर्ववद् द्विचक्रएव ।

अथ चाणूरमर्द्दनकृष्णलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—रक्तबिन्दुद्वययुतः श्यामो दन्तिभुजोपमः । रेखा दक्षिणतो वामे मुष्टिवद्दृढबिन्दुकः ॥ चाणूरमर्द्दनाख्यः स्यात्सर्वशत्रुनिकृन्तत इति । अयमपि द्विचक्र एव ।

अथगोवर्द्धनगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—

वर्तुलो मस्तके निम्नः पार्श्वे रजतबिन्दवः ।

से वेष्टित, पृष्ठ में श्रीवत्स के चिन्हवाले हों तो उनको पुत्र, लक्ष्मी और यशको बढाने वाले स्यमन्तकहारी कृष्ण जानना चाहिये । द्विचक्र ॥

कंसमर्द्दन कृष्ण का लक्षण—

पुराणसंग्रह में इस प्रकार कहा है—पूर्वभाग में एक मुख, पार्श्व भाग में भी एक ही मुख हो और काले मेघ की छवि हो तो वह कंसमर्दी कृष्ण हैं ।

यह दो मुख होने से चतुश्चक्र हैं ।।

कालीय मर्दन कृष्णका लक्षण—

पुराण संग्रह पर कहा है कि—वाम से दक्षिण पर्यन्त मुख से सुशोभित चक्र चिन्हित तीन बिन्दुओं से भूषित, रेखा और कृष्णवर्ण से सम्पन्न हों तो वह सर्वारिष्ट के विनाशकारी कालीयमर्दन कृष्ण हैं । पूर्ववत् द्विचक्री ॥

चाणूर मर्दन कृष्ण का लक्षण—

पुराण संग्रह पर—लाल दो बिन्दुओं से युक्त, काले हाथी के सूँढ समान दीर्घ बाहु, दक्षिण रेखा और वाम भाग में मुष्टि वत् दृढ़बिन्दु से सुशोभित सर्व शत्रु के विनाशकारी चाणूरमर्दन कृष्ण कहलाते हैं । द्विचक्री स्वरूप को पूर्ववत् जानें ।

गोवर्द्धन गोपाल का लक्षण—

गोलाकार होकर भी मस्तक पर कुछ दबे हुए (टेढ़े) पार्श्व में चाँदी की

गोवर्द्धनाख्यो गोपालो दीर्घरेखातु दक्षिणे ॥
सर्वकष्टविनाशी स्याद्गोभूधान्यधनप्रद इति । अयमपि द्विचक्र एव।

अथ श्रीगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे--एतल्लक्षणसंयुक्तं दीर्घाकारं महोदरम् । श्रीगोपालमिमं प्राहुः सरेखं वंशलाभकम् ॥ इति । एतल्लक्षणसंयुक्तं द्विचक्रादि सामान्यकृष्णलक्षणयुक्तमित्यर्थः ॥

अथ सन्तानगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डे--दीर्घाकारः कृष्णवर्णः सार्द्धचन्द्रनिभाननः स स्यात्सन्तानगोपालः पुत्रपौत्रादिवर्द्धन इति । अयमपि द्विचक्रः ।

अथ लक्ष्मीगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे-कुक्कुटाण्डसमोपेतः श्रीधरो वनमालया । वेणुलाङ्गलचिह्नाभ्यां कुण्डलाभ्याञ्च चिह्नितः ॥ लक्ष्मीगोपालको देवो दुर्लभो भुवनत्रये । वित्तलाभादिकक्षेमसम्पद्भुक्तिफलप्रदइति । अयमपि द्विचक्र एव ।

बिन्दु, दाहिने भाग में दीर्घ रेखा वाले हों तो गोवर्धन गोपाल जानना चाहिये। वह सर्व सङ्कट के विनाश करने तथा गो, भूमि, धान्य और धन के देनेवाले हैं। यह भी द्विचक्र के हैं।

श्रीगोपालके लक्षण

पुराण संग्रह में—दीर्घाकार, महोदर और रेखायुक्त इस लक्षण के श्रीगोपाल होते हैं, उनकी पूजा से वंशलाभ होता है। मतलब यह है द्विचक्रादि सामान्य लक्षण युक्त हों।

सन्तान गोपाल का लक्षण--

ब्रह्माण्ड पुराण में—

सन्तान गोपालजी पुत्रपौत्रादिक को बढ़ाते हैं। दीर्घकार, काले वर्ण के अर्द्धचन्द्राकार बदनवाले होते हैं। यह भी द्विचक्री हैं।

लक्ष्मीगोपाल के लक्षण—

पुराणसंग्रहमें—

कुक्कुटाण्ड के समान आकार वाले, वनमाला से सुशोभित, बाँसरी और हल के चिन्ह से युक्त देव लक्ष्मीगोपाल हैं। वह तीनो लोक में दुर्लभ हैं। धन लाभादिक कल्याण सम्पत्ति और भोगफल को देते हैं। इनको भी द्विचक्री जानना चाहिये ॥

अथ मदनगोपाललक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—यो गोपालः पार्श्वभागे कल्पाख्यतरुयुग्भवेत् । सस्यान्मदनगोपालो मालाकुण्डलभूषितः ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्यसर्वलोकैकवश्यद इति । सामान्यगोपाल एव कल्पवृक्षवनमालाकुण्डलयुक्तश्चेत्तर्हि स एव मदनगोपालो भवति । यो गोपालइति सिद्धवन्निर्देशेन सामान्यगोपालस्य परामर्शात् सर्वनाम्नः पूर्वप्रधानपरामर्शित्वात् । एवं यत्रयत्रोक्तवक्ष्यमाण· गोपाललक्षणेषु मूर्त्तिविशेषद्योतकं चक्रादि नोक्तं तत्र तत्प्रकृतिभूतसामान्य- मूर्त्तिलक्षणोक्तं ग्राह्यमिति । पुराणान्तरे—

अर्द्धश्यामोऽर्द्धरक्तश्च शङ्खचक्रगदाधरः ।
दीर्घच्छिद्रयुतः सस्याद्गोपालो मदनाह्वयः ॥ इति

अयमपिद्विचक्र एव ।

अथ वंशगोपाललक्षणम्

पुराणसंग्रहे—श्यामं स्निग्धं तथा सूक्ष्मं वनमालाविभूषितम् । चक्रद्वयं चारूवेणुबिन्दुत्रयसमन्वितम् ॥ धनुर्बाणसमायुक्तं वंशगोपालसंज्ञकम् । इति । अयमपि द्विचक्रएव ।

मदनगोपाल के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—जो गोपाल जी हैं वह पार्श्वभाग में कल्पवृक्ष से युक्त होते हैं और माला, कुण्डलों से भूषित होते हैं । वही पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य के दायक और सर्वलोक के वशकारी मदनगोपाल कहाते हैं । सामान्य गोपाल ही उक्त लक्षण से युक्त हों तो मदनगोपाल होते हैं ऐसा भाव है, क्योंकि "यो गोपालः···ऐसा सिद्धवन्निर्देश क्यों किया ? उससे मालूम होता है शेष, मदनगोपाल के लक्षण सिद्ध गोपाल के जरिये से जाने जाते हैं । यत् शब्द सर्वादि है, सर्वनाम शब्द पूर्वोक्त सिद्ध वस्तु का बोध कराता है । अतएव जहाँ जहाँ पर निम्नाङ्कित गोपाल के लक्षणों में मूर्ति विशेष के द्योतक चक्रादि चिन्ह नहीं कहे गये हों वहाँ पर सामान्य गोपाल के लक्षण ग्रहण किये जाते हैं ।

पुराणान्तर पर—

अर्ध श्याम वर्ण के और अर्ध रक्त वर्ण के शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये, दीर्घ छिद्र से युक्त हों तो वह मदनगोपाल हैं । द्विचक्री० ॥

वंश गोपाल के लक्षण—

पुराण संग्रह में—श्याम और स्निग्ध वर्ण के, सूक्ष्म स्वरूप, वनमाला से भूषित, दो चक्र, तीन बिन्दु और सुन्दर वेणु से युक्त, धनुर्बाण के धारण किये वंश गोपाल कहलाते हैं । यह भी द्विचक्र है ॥

अथ वस्त्रापहारि गोपाललक्षणम्

अधः स्यात्प्रमदाहस्तः पार्श्वे वस्त्रेणचिह्नितः। प्रच्छन्नसूक्ष्मचक्रस्तु वामे वा दक्षिणेऽपिवा॥ वस्त्रापहारी गोपालः सर्वसम्पत्प्रदायक इति। अयमपि सामान्यविशेषवचनाभ्यां द्विचक्रएव। इतिकृष्णमूर्त्तीनां सभेदलक्षणानि।

एवं केशवादीनामेकैको भेदो नारायणस्याष्टौ विष्णुदामोदरवासुदेवानां देवानां द्वौद्वौ नृसिंहस्य सप्तदश कृष्णस्यगोवर्द्धनपूर्वसञ्ज्ञकोभयमूर्त्त्यो रैक्याद्द्वाविंशतिर्भेदा उक्ता इत्येवं शुद्धपुरुषोत्तममूर्त्यासह केशवादि चतुर्विंशतिमूर्त्तीनामेकसप्ततिर्भेदा भवन्ति। तत्तन्मूर्त्तिविशिष्टपुरुषोत्तम मूर्त्तीनां तु यथासम्भवं भेदा भवन्तीति। इति चतुर्विंशतिमूर्त्तिलक्षणानि।

अथाऽनन्तस्य लक्षणान्युच्यन्ते

एतस्य शुद्धत्वनानामूर्त्तिविशिष्टत्वाभ्यामनेके भेदाः सम्भवन्ति। तत्र शुद्धानन्तलक्षणम्। पुराणसङ्ग्रहे—

ध्वजाऽकारयुतारेखा लक्ष्यते मध्यदेशतः।

वस्त्रापहारी गोपाल के लक्षण—

हाथ पर नीचे का हिस्सा स्त्रियों का जैसा हो, पार्श्वभाग में वस्त्र का चिन्ह हो, वाम वा दक्षिणभाग में गुप्त सूक्ष्मचक्र वाले हों तो उनको सर्व सम्पत्ति के दाता वस्त्रापहारी गोपाल जानना चाहिये। पूर्ववद्द्विचक्र की मूर्ति है॥

इस प्रकार से कृष्ण मूर्ति के सभेद लक्षण समाप्त हुए॥

एवञ्च केशवादियों के एक एक भेद हैं। नारायण के आठ भेद हैं। विष्णु, दामोदर और वासुदेव के दो दो भेद हैं। नृसिंहजी के सत्रह भेद हैं। गोवर्द्धनादि पूर्वक कृष्ण और गोपालजी को एक समझ कर दोनों के कुल भेद इक्याईस होते हैं। इस प्रकार शुद्ध पुरुषोत्तम मूर्ति को केशवादि चौबीस मूर्ति के साथ जोड़कर सभी मूर्तियों के एकहत्तर भेद होते हैं। सो कह चुके हैं। तत् तत् मूर्तिविशिष्ट पुरुषोत्तम मूर्वियों के तो यथासम्भव भेद होते हैं। इत्यादि।

चौबीस मूर्तियों के सभेद लक्षण समाप्त हुए॥

अब अनन्त के लक्षण बताये जाते हैं।

अनन्त के शुद्धरूप और नाना रूप के भेद से कई मूर्तिभेद के सम्भव होवे हैं तथापि पहले शुद्ध अनन्त का लक्षण कहा जाता है।

पुराण संग्रह पर—

जिस मूर्ति के बीच में ध्वजाकार रेखा दीखती है, महास्थूल, शेषजी का

शेषाकारो महास्थूलः सप्तचक्रसमन्वितः ॥
अनन्तइति विख्यातः सर्वसम्पत्तिदायकः ॥ इति ।
अयंसप्तचक्र स्पष्ट एव ।

अथ नानामूर्त्तिविशिष्टत्वशुद्धत्वभेदभिन्नाऽनन्तमूर्त्तीनां लक्षणानि ।

पञ्चरात्रागमे—नागभोगाङ्कितो नानावर्णसङ्कीर्णशेखरः अनन्तो गण्डकीरत्नं पूजितः कामपूर्त्तिकृदिति ।

अग्निपुराणे—

अनन्तो नागभोगाङ्को नानैकानेकमूर्त्तिमानिति ।

ब्रह्मपुराणे—नानावर्णस्त्वनन्तः स्यान्नागभोगेन चिह्नितः । अनन्तमूर्त्तिसङ्कीर्णः सर्वकामफलप्रद इति । वैखानससंहितायाम्—

नानावर्णमनन्तञ्च नागभोगेनचिह्नितम् ।
अनन्तमूर्त्तिसम्भिन्नं जानीयुः सर्वकामदम् ॥ इति ।

पद्मपुराणे—नानावर्णस्त्वनन्तस्यान्नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्त्तिसम्भिन्नसर्वकामफलप्रद इति । पुराणसंग्रहे—नानावर्णो ह्यनन्ताख्यो नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमूर्त्तिसंभिन्नः सर्वकामफलप्रदः । प्रदक्षिणावर्तकृतवनमालाविभूपितः ॥ कृष्णवर्णयुतश्चापि धनधान्यसुखप्रदः । पूजनोयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्चवर्तुल इति ।

जैसा आकार होता है और सात चक्र होते हैं वह सर्व सम्पत्ति के दाता भगवान अनन्त कहलाते हैं । शुद्ध अनन्त सप्तचक्रो हैं ॥

नानामूर्ति विशिष्टत्व और शुद्धत्व भेद से विभिन्न अनन्त मूर्तियों के लक्षण-पञ्चरात्रागम में कहा है कि नाग की फणा से चिन्हित अनेकवर्ण से संकीर्ण है शेखर जिनके ऐसे अनन्त जी गण्डकी के मणि हैं । इनकी पूजा करने से कामना की पूर्ति करने वाले होते हैं ।

अग्निपुराण पर—

अनन्तजी सर्प के शरीर से वेष्टित नाना स्वरूप अनेकानेक मूर्ति धारी होते हैं । ब्रह्म पुराणमें—सर्पशरीर के चिन्ह वाले नाना वर्ण के अनन्तजी होते हैं । अनेक मूर्ति के भेद से विभिन्न अनन्तजी सभी कामना के अनुसार फलदायी हैं वैखानस संहिता पर—सर्प के शरीर से वेष्टित, नानावर्ण के सभी कामना के देनेवाले, अनेकों मूर्तियों के भेद से विभिन्न हो तो अनन्त जी जानें ॥

पद्मपुराण में कहा है—कि नाग के शरीर से चिन्हित अनेक भेद ग्रस्त एवं अनेकों वर्ण के अनन्तजी होते हैं, यह कामना के अनुसार फलदायक हैं । पुराणसंग्रह पर भी—अर्थ वही है । विशेष यह है कि—दाहिनी ओर से घूमती हुई वनमाला से भूषित कृष्णवर्ण के भी होते हैं, वह धन, धान्य और सुखको देते हैं । वह स्थिर, स्निग्ध तथा गोल हों तो और भी यत्न से पूजा करना चाहिये ॥

विष्णुरहस्ये—

द्वारोपरि तथा रेखा ध्वजाकारा सुशोभना।
नानावर्णो ह्यनन्तः स्याद्भोगिभोगेन चिह्नितः॥

चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमन्वितः। अनेकमूर्त्तिसंयुक्तः सर्वकामफलप्रद इति॥ तथा—नातिस्थूलं नातिह्रस्वं वनमालायुतं हरिम्। अनन्तमितिविख्यातं भूमौ सर्वत्रदुर्लभमिति॥

पद्मपुराणे—अनन्तचक्रैर्बहुभिश्चिह्नैरप्युपलक्षितः।
अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रद इति॥

अत्रानन्तचक्रैरिति सप्तचक्रादूर्ध्वं यावत्सम्भवचक्रैरित्ययमर्थ उद्देशवाक्यबलाद्वेदितव्यः। अतोऽष्टचक्रादि त्रयोदशचक्रान्ता महानारायणानन्तोऽच्युतानन्त हृषीकेशानन्त इत्याद्यास्तत्पूर्वसंज्ञका अनन्ता भवन्ति। तत्रैकादशचक्रः शिवनाभियुक्तः सन् रुद्रानन्तोऽन्यथातु शुद्धानन्तः। चतुर्दशादि चतुर्विंशति चक्रान्ता विश्वंभरानन्ताः तत्राष्टादशचक्रः पुरुषोत्तमानन्तोऽपि। तदूर्ध्वमनेकाकारसंयुक्ता अपि यावत्संभवचक्रान्ता अनन्ता इत्येव विशुद्धसञ्ज्ञका भवन्तीति। इत्यनन्तमूर्त्तिलक्षणानि।

विष्णुरहस्य पर—

अनन्तजी नानावर्ण के होते हुए भी सर्प के शरीर से चिन्हित रहते हैं, द्वार के ऊपर तो रेखा रहती और ध्वजाकार युक्त सुन्दर मूर्ति होती है। जहाँ पर चार रेखाएँ दीखाई देती हैं वह पार्श्वभाग के रहते—अनेकों मूर्तियों से संयुक्त रहते हैं और सभी कामनाओं के दायक हैं॥ तथा—अति स्थूल न हो, अति ह्रस्व (छोटे) भी न हों, वनमाला से युक्त हों तो उनको अनन्त संज्ञक हरि कहते हैं। उनको प्राप्त करना भू-पृथ्वी में दुर्लभ है॥ पद्मपुराणमें—अनन्त चक्र और बहुतेरे चिन्हों से उपलक्षित हों तो उनको अनन्त जानना चाहिये। वह सर्व देव-पूजा के फल को देते हैं॥ "अनन्त चक्रैः······"इस प्रमाण से सात से ऊपर जितने भी अधिक चक्रों का सम्भव हो ऐसा लाक्षणिक वाक्य द्वारा जानना चाहिये। अब आठ से लेकर तेरह चक्र पर्यन्त महानारायण-अनन्त, अच्युत-अनन्त, हृषीकेश-अनन्त इत्यादि पहले कुछ नामवाले अनन्त होते हैं। उनमें एग्यारह चक्रवाले शिवनाभि युक्त हों तो रुद्रानन्त नहीं तो शुद्धानन्त जानना चाहिये। चौदह से चौवीस चक्र तक के विश्वम्भरानन्त होते हैं। उनमें भी अट्ठारह चक्रवाले पुरुषोत्तमानन्त भी होते हैं। चौबीस से उपर जितनी संख्या तक के चक्र हों वे सब विशुद्ध अनन्त सञ्ज्ञक होते हैं। इस प्रकार अनन्तों के लक्षण बताये गये हैं।

अथ विश्वरूपलक्षणम

पुराणसङ्ग्रहे—

पञ्चवक्त्रं स्थूलतरं पुरुषं बहुचक्रकम् ।
विश्वरूपमनन्तं वा पुत्रपौत्रादिकप्रदमिति ॥.

ब्रह्माण्डपुराणे—

विश्वरूपो हरिः साक्षात्पारावतगलोपमः ।
बहुचक्राङ्कितोऽनेकमूर्त्तिरूपसमन्वितः ॥

पञ्चवक्त्रः स्थूलचक्रः पुरुषो बहुचक्रकः । विश्वरूपो ह्यनन्तोवा पुत्रपौत्रादिकप्रद इति ॥ अत्र पञ्चमुखत्व तत्सहचरबहुत्वयोः प्रयोगाद्दशचक्रकोऽयं विश्वरूप इत्यर्थः । अनन्तोवेत्ययमेव पूर्वोक्तानन्तमूर्त्तिलक्षणघटितः सन् विश्वरूपानन्तसंज्ञको भवतीत्यर्थः ।

अथ विश्वम्भरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—चक्राणामाचतुर्विंशद्युक्तो विश्वम्भरः शुभः । भुक्तिप्रदो ह्यसौ नृणामन्ते मोक्षप्रदायक इति ॥ अयं चतुर्दशचक्रादूर्ध्वमाचतुर्विंशति चक्राङ्कितो विश्वम्भर इत्युद्देश वाक्यमेव ज्ञापयति । अस्यैवाऽनन्तमूर्त्तिलक्षणघटितत्वे सति विश्वम्भरानन्तसञ्ज्ञा सम्पद्यते ।

विश्वरूप के लक्षण—

पुराण संग्रह पर कहा है—पाँच मुख के बहुत चक्रवाले अतिस्थूल पुरुष को विश्वरूप वा अनन्त कहते हैं । वह पुत्र पौत्रादि दायक होते हैं ।

ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है कि—

साक्षात् विश्वरूप हरि भगवान् कबूतर के कण्ठ के जैसे वर्णवाले, बहुत चक्र से चिन्हित नानामूर्ति और रूपधारी होते हैं । अपिच पञ्चमुख, स्थूल चक्र होकर बहुचक्र भी हों तो वह विश्वरूप वा अनन्त हैं और पुत्रपौत्रादि के आदिप्रदेन षडेश्वर्य के दाता हैं । पञ्चमुख के साथ ही बहुचक्र शब्द भी आया है अतः प्रत्येक मुख पर दो चक्र के हिसाब से दशचक्र की मूर्ति जाननी चाहिये, मूल में तो ऐसा कहा है परन्तु स्थूल चक्र को उनसे अलगही मानलिया जाय तो एग्यारह चक्र भी होते हैं । "अनन्तो वा" ऐसे विकल्प वचन से पूर्वोक्त अनन्त मूर्ति के लक्षण से घटित होते हुए विश्वरूप कहलाते हैं ऐसा भाव है ।

विश्वम्भरजी के लक्षण

ब्रह्माण्डपुराण पर—चौबीसचक्र पर्यन्त की शुभ मूर्ति का नाम विश्वम्भर । यह मनुष्यों के लिये भोग और अन्तकाल में मोक्ष के दायक होते हैं । यह चौदह चक्र से ऊपर चौबीस पर्यन्त चक्रवाले विश्वम्भर होते हैं, ऐसा लक्षण वाक्य द्वारा ही बोध होता है । अनन्त मूर्ति के लक्षणों से घटित हो तो इसी मूर्ति को "विश्वम्भरानन्त" भी कहा जाता है ।

अथ हयग्रीवलक्षणम्

पद्मपुराणे—हयग्रीवा यथा लम्बरेखिका या शिलाभवेत्। हैयग्रैवी शिलासास्यात् पूजिता ज्ञानदा नृणामिति ।। अग्निपुराणे—

हैयग्रीवोङ्कुशाकारो रेखानीलसबिन्दुकः। इति। पद्मपुराणे—हैयग्रीवस्तु विज्ञेयो योऽङ्कुशप्रतिरूपकः। चक्रध्वजसमायुक्तः पूजितः सौख्यदो भुवि। इति, वाराहे—हयग्रीवोङ्कुशाकारो रेखाचक्रसमन्वितः। कृष्णवर्णः सविख्यातो महासारस्वतप्रद इति।

ब्रह्मपुराणे—

हयग्रीवो हयाकारो रेखा चक्रसमीपगा।
बहुरूपसमाकीर्णः पृष्ठे स्यान्नीलरूपक इति ।।

पद्मपुराणे—हयग्रीवोङ्कुशाकारो रेखा चक्रसमीपगा। हरिद्वर्णः स आख्यातो बहुबिन्दुसमन्वित इति ।। तथा—हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखाः पञ्च भवन्ति हि। बहुबिन्दुसमाकीर्णो दृश्यते नीलरूपकः। इति। तथा—

हयग्रीव के लक्षण—

पद्मपुराण में—जो घोड़े की गर्दन की जैसी लम्बी रेखा वाली शिला होती है उसको "हैयग्रैवी" शिला (हैयग्रीव) कहते हैं। पूजा करने से मनुष्यों के लिये ज्ञान देती है।

अग्निपुराण में—

अङ्कुशाकार, बिन्दुधारी, नीलवर्णवा नील रेखा से युक्त हयग्रीव जी होते हैं। फिर पद्म ही पुराण में—हयग्रीवजी अङ्कुश के सदृश चक्र और ध्वजा से संयुक्त मर्त्यलोक में पूजा से सौख्य के दाता होते हैं।

वराहपुराण पर कहा है—हयग्रीव जी अंकुशाऽऽकार, रेखा और चक्र से युक्त कृष्णवर्ण के होते हैं। वह सरस्वती सम्बन्धी ज्ञान (विद्या) के दाता हो कर उक्तनाम से प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मपुराण में—

हयग्रीव जी घोड़े के आकार के बहुत रूप (वर्ण) से व्याप्त होते हैं। उस मूर्ति पर चक्र के पास में रेखा होती है और पृष्ठ भाग नील वर्ण का होता है। पद्मपुराण में और भी कहा है कि—हयग्रीवजी अङ्कुशाकार के होते हैं। चक्र के पास ही में रेखा होती है। बहुत बिन्दु से युक्त होकर वह हरित वर्ण से प्रसिद्ध हैं। तथा—हयग्रीव जी नीलवर्ण के, बहुत वर्ण और बिन्दुओं से युक्त, अङ्कुशाकार मूर्ति होकर पाँच रेखा वाले दीखते हैं।

अश्वाकृतिमुखं यस्य साक्षमालं शिरस्तथा। पद्माकृतिर्भवेद्वापि हयशीर्षा त्वसौ मत इति। पुराणसङ्ग्रहे—

हयग्रीवोऽपि भगवान् रक्तपीतादिमिश्रितः।
अङ्कुशाकृतिकस्तार्क्ष्य चक्रद्वयसमन्वितः॥

पद्माकृतिस्तथा पार्श्वे कुण्डलाकृतिरेव वा। ज्ञानदो मोक्षदो नृणां भोगदो विनतासुतेति। अयं सामान्यविशेषवाक्याभ्यां द्विचक्रः।

अथ क्षीराब्धिशायिलक्षणम्

स्कान्दे—एकचक्रं च वदने पद्मायुधलसत्तनुः। पृष्ठे सुवर्त्तुलारेखा क्षीरकान्तिसमन्वितम्॥ चक्रस्योभयपार्श्वे च फणिपञ्जरशोभितम्। सुवर्त्तुलं तथा स्निग्धं क्षीराब्धिशयनं विदुरिति। अयन्त्वेकचक्रः स्पष्टः।

अथ पुण्डरीकाक्षलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—पार्श्वे वा मूर्ध्नि पृष्ठे वा चामरद्वयसंयुता। कमलद्वयसंयुतेति पाठान्तरम्। पुण्डरीकाक्षमूर्त्तिः स्यात् सर्वलोकवशङ्करीति।

तथा—कमल वा अश्व के आकार का जैसा शिर, अश्वाकार मुख और जपमाला वा रुद्राक्षमाला से युक्त हों तो वह हयग्रीव कहलाते हैं।

पुराणसंग्रह पर लिखते हैं कि—

हे गरुड़जी! हयग्रीव भगवान भी लाल पीला इत्यादि वर्ण से संकीर्ण, अङ्कुशाकार और दो चक्र से युक्त होते हैं। उनका पार्श्वभाग पद्माकार वा कुण्डलाकार का होता है। हे वैनतेय! वह मनुष्यों के लिये ज्ञान, भोग और मोक्ष के दाता हैं। इत्यादि। यह भी सामान्य विशेष द्वारा द्विचक्र होते हैं॥

क्षीराब्धिशायी का लक्षण—

स्कन्दपुराण में लिखा है कि उस मूर्ति को "क्षीराब्धिशायी" कहते हैं जिसके मुँह पर एक चक्र हो, कामदेवकासा सुन्दर गात्र हो, पृष्ठ भाग में गोलाऽऽकार की रेखा हो, दूध की जैसी उज्ज्वल कान्ति हो, चक्र के दोनों बगल में साँप के शरीर से वेष्टित हो, खूब गोल स्वरूप हो तथा चिकना भी हो। यह एक चक्री०॥

पुण्डरीकाक्ष जी का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर कहा गया है कि—

पार्श्वभाग वा शिर अथवा पृष्ठ भाग पर दो चामर हो अथवा पाठ भेद माने तो (चामर नहीं किन्तु) कमल से युक्त हो तो उसे सर्वलोक को वश में रखने वाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष कहलाते हैं।

तथा—

द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारा सुशोभना।
पार्श्वे वा मूर्ध्नि पृष्ठे वा नयनद्वयसंयुतेति ॥

अयमनुक्तवर्णचक्रत्वात्कृष्णवर्णो द्विचक्रश्च।

अथ यज्ञमूर्त्तिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—यज्ञमूर्त्तिस्तु भगवान् पीतरक्तादिमिश्रितः द्वारस्य वामतश्चक्रे स्रुक्स्रुवौ दक्षिणेतथेति ॥ पुराणसङ्ग्रहे—

पीतरक्ता यज्ञमूर्त्तिरितिवेदविदो विदुरिति।

अयं चक्रे इति द्विवचनाद्द्विचक्रः।

अथ वैकुण्ठलक्षणम्

पञ्चरात्रागमे—चक्रवान् पार्श्ववान् वृत्तो गुणी रत्नगुणोपमः।
वैकुण्ठ उपरिष्टाद्वा रेखायुक्तोऽतिशोभनः ॥ इति।

ब्रह्माण्डपुराणे—वैकुण्ठो मणिवर्णाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम्। द्वारोपरि तथारेखा कञ्जाकारा सुशोभनेति ॥ अग्निपुराणे—

तथा—

द्वारोपरि रेखा हो, कमलस्वरूपकी खूब सुन्दर, पार्श्व, शिर वा पृष्ठ पर दो नेत्र से युक्त हो तो वह मूर्ति "पुण्डरीकाक्ष" कहलाती है। इस मूर्ति का वर्ण और चक्र कुछ भी नहीं बताया गया है अतः द्विचक्र और कृष्णवर्ण की जाननी चाहिये।

यज्ञमूर्ति का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराणमें—यज्ञमूर्ति भगवान् पीतरक्तादि वर्ण से मिश्रित होते हैं। उस मूर्ति के द्वार सम्बन्धी वामभाग में दो चक्र होते हैं और दक्षिण भाग में स्रुक् स्रुव होते हैं। (स्रुक्=यज्ञ पात्र, स्रुव=एक हाथ की यज्ञ में अग्नि पर घी डालने की लपर की लकड़ी) ॥ पुराणसंग्रह में—पीतरक्त वर्ण से मिश्रित मूर्ति को वेदपाठी लोग यज्ञमूर्ति कहते हैं। यह मूर्ति द्विवचन से दो चक्र की है।

वैकुण्ठ का लक्षण—

पञ्चरात्रागम पर—चक्रवान्, प्रशंसनीय पार्श्वभाग वाले, गोल, गुणाकर रत्न के समान गुणदायी, ऊपर और द्वारभाग में रेखा युक्त, अति सुन्दर मूर्ति वैकुण्ठजी कहे गये हैं।

ब्रह्माण्डपुराणमें—

वैकुण्ठजी का वर्ण मणिसदृश होता है, एकचक्र, एक कमल तथा द्वार के ऊपर कमलाकार वा शंखाकार की रेखा होती है। अग्निपुराण में—वैकुण्ठजी

वैकुण्ठस्त्वेक चक्राब्जो मण्याभः स्वच्छरेखक इति ।

वैखानससंहितायाम्—वैकुण्ठोमणिरत्नाभश्चक्रमेकंतथाम्बुजम्। द्वारोपरि तथा रेखा पद्मचिह्नेन चिह्नितः ॥ इति । ब्रह्माण्डपुराणे—

वैकुण्ठोमणिवर्णाभो वामपार्श्वैकचक्रकः ।
द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारासुशोभना ॥

तथा—अतिस्निग्धः सुवृत्तश्च वर्त्तुलद्वारसंयुतः । बिलमध्ये तथा चक्रं दृश्यतेऽत्यन्तशोभनम् । वैकुण्ठोमणिवर्णाभो वामपार्श्वैकचक्रकः ॥ चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे द्युमणिर्भासुरो भवेत् । वकुलाकृतिश्च दृश्येत मोक्षादि फलदायक इति ॥ विष्णुरहस्ये—

पद्मरेखागदाकारलाञ्छनं मध्यदेशतः ।
वैकुण्ठोमणिरत्नाभश्चक्रमेकं तथाम्बुजमिति ॥

तथा—वैकुण्ठोमणिरत्नाभो वामतश्चैकचक्रकः । ह्रस्वचक्रोऽतिशोभन

एकचक्र और एक ही शंख वा कमल से युक्त, मणि सदृश कान्तिमान् स्वच्छ रेखा वाले होते हैं ।

वैखानस संहिता में—

वैकुण्ठजी की कान्ति मणि सदृश होती है । एक चक्र और एक ही शंखाकार होता है । द्वार के ऊपर रेखा होती है । एवं पद्म का चिह्न भी रहता है । यहाँ पर अम्बुजपद से शंख लीलिये क्योंकि पद्म का नाम पृथक् कहा है । ब्रह्माण्डपुराण में वैकुण्ठजी मणि के सदृश तथा वामभाग में एक चक्रवाले द्वारदेश में पद्माकार सुन्दर एक रेखा से शोभित होते हैं ।

तथा—अति स्निग्ध, गोलाकार, और गोलाकार ही के द्वारवाले वैकुण्ठजी होते हैं । मूर्ति संबन्धी छिद्र के मध्यभाग में सुन्दर चक्र दीखता है । वह मणि वर्ण के होते हैं ॥

एवञ्च वैकुण्ठजी मणिवर्ण के, वाम पार्श्व में एक चक्रवाले, चक्र के दक्षिण भागमें कान्तिमान् सूर्य से युक्त होते हैं, और बकुलाकार भी दीखते हैं फल यह मोक्षादि के दायी हैं ।

विष्णु रहस्यपर—

वैकुण्ठजी मणिरत्न के सदृश होते हैं । मध्यभाग में पद्म, रेखा और गदाकार के चिन्ह रहते हैं, एक चक्र तथा एक शंख भी रहता है ।

तथा—वैकुण्ठजी मणि रत्न (श्रेष्ठमणि) के समान कान्तिमान्, वाम भाग

इति वा पाठः। द्वारोपरि तथा रेखा पद्माकारासुशोभनेति ॥ तथा—वैकुण्ठो मणिरेखा च चक्रमेकं गदाम्बुजम्। द्वारोपरि तथा रेखा घटाकारा सुशोभनेति ॥ तथा—मधुवर्णं तथा स्थूलं चक्रं वामाङ्गसंस्थितम्। वैकुण्ठं नाम देवेशं ब्रह्मलोक प्रदायकम् ॥ इति। अयन्तु स्पष्ट एवैकचक्रः। अनुक्तचक्रलक्षणेष्वप्येकमेव चक्रं ज्ञेयम्।

अथऽमृताहरणलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—वर्त्तुलोह्रस्ववदनो ह्रस्वचक्रोऽतिकोमलः। मध्यचक्र इति वा पाठः। अमृताहरणो देवो नीलोत्पलसमप्रभ इति। अयमनुक्त चक्र-संख्यात्वाद्द्विचक्रः। अथपीताम्बरलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—

द्वारदेशे भवेच्चक्रं बहुवर्णसमन्वितः।
पीताम्बरधरोदेवः सौख्यदः फलदोऽर्चित इति ॥

एतस्य चक्रमित्येकवचननिर्देशादेव चक्रत्वं स्पष्टमेव।

अथ सत्यवीरश्रवसो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—सुवर्तुलो ह्रद्यचक्रः सर्वाङ्गे हेमबिन्दवः। सत्यवीरश्रवाः

में एक चक्रवाले (पाठ भेद मानें तो अल्पचक्र और अति सुन्दर-स्वरूप) द्वार भाग के ऊपर पद्माकार रुचिर रेखा से युक्त होते हैं।

तथा—कोई पद्माकार रेखा के स्थान पर घटाकार रेखा और सादा भी मानते हैं, बाकी पूर्ववत् जानें ॥ अपिच-मधुवर्ण के, स्थूलाकार, वामाङ्गचक्री लक्षण के हों तो ब्रह्मलोक के दाता वैकुण्ठसंज्ञक भगवान् कहे जाते हैं। यह एकचक्र है सो स्पष्ट ही है। यहाँ पर अनुक्त चक्रलक्षण में एकचक्र ही जानना चाहिये।

अमृताहरण का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—गोलाकार, ह्रस्ववदन, ह्रस्वचक्र वा पाठान्तर से मध्य चक्रवाले, अति कोमल और नील कमल के सदृश कान्तिमान्, अमृताहरण देव कहलाते हैं। अनुक्तचक्र होने के कारण यह द्विचक्र हैं।

पीताम्बर का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—जिनके द्वार देश में चक्र हो वह बहुवर्ण से युक्त हों तो पूजा करने से सौख्य और फलको देने वाले पीताम्बरधारी भगवान् कहलाते हैं।

चक्र शब्द पर एक वचन देखा गया है, अतः इनको एकचक्री जानें।

सत्यवीरश्रवा के लक्षण—

ब्रह्मपुराण पर बताया है कि—अच्छे गोल, सुन्दर चक्र वाले और सर्वाङ्ग

प्रोक्तः सवसौभग्यवर्द्धन इति। तथा—वर्त्तुलः पञ्चवक्त्रः स सर्वाङ्गे हेमबिन्दवः। सत्यवीरश्रवाः प्रोक्तः सर्वसौभाग्यवर्धन इति।

अस्य पञ्चास्यत्वकथनाद्दशचक्रत्वं स्फुटमेव। अयं पूर्वोक्तानन्तलक्षण-घटितः सन् सत्यवीरश्रवोऽनन्तसञ्ज्ञको भवति।

अथ श्रीवत्सलाञ्छनलक्षणम्

पुराणसंग्रहे - श्रीफलाकारसदृशं पीतं च समचक्रिणम्। श्रीवत्स लाञ्छनं नाम स्त्रीहत्याया विनाशनम् इति। तथा—

श्रीफलाकारकं ज्ञेयं पीताख्यं वामचक्रिणम् श्रीवत्सं नामदेवेशं हत्या-कोटिविनाशनम्॥ इति। अयमपि द्विचक्रः॥

अथ वनमालिनो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—शिला शुभ्रा च सुसूक्ष्मा शुभ्रचक्रा सुशोभना। वनमाली सविज्ञेयो ह्यश्वमेधफलप्रद इति। अयमपिद्विचक्रः

अथ श्रीसहाय लक्षणम्

पुराणसंग्रहे—चक्रैस्तु केवलैर्यस्तु पञ्चभिः समलङ्कृतः। वनमालाङ्कित-श्चैव सज्ञेयः श्रीसहायक इति। अयन्तु पञ्चचक्रः स्पष्टएव।

में सोने की बिन्दुओं से युक्त हों तो सभी सौभाग्य के बढ़ाने वाले "सत्य वीर-श्रवा" कहे जाते हैं। तथा—

पाँच मुख के गोलाकार और सर्वाङ्ग पर सुवर्ण बिन्दुओं से युक्त हों तो वह सभी सौभाग्य के बढ़ाने वाले सत्यवीरश्रवा कहे जाते हैं। पाँच मुख को बताने से ही मालूम होता है कि ये दश चक्र होते हैं। पूर्वोक्त रीति से, अनन्त लक्षण घटित होते हुए सत्यवीरश्रवा अनन्त कहाते हैं। ऐसा भाव है।

श्रीवत्सलाञ्छन का लक्षण—

श्रीफलाकार के सदृश, पीतवर्ण और समान चक्रवाले, स्त्री हत्या संबन्धी पापके विनाशकारी "श्रीवत्स लाञ्छन" नाम के देव कहाते हैं॥

श्रीफलाकार याने बेल के जैसे वामचक्री और पीले वर्ण के करोड़ों हत्या के विनाश करनेवाले "श्रीवत्स लाञ्छन" सञ्ज्ञक भगवान् हैं॥ द्विचक्री॥

वनमाली का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण का वचन है कि—सुफेद, सूक्ष्म, सुन्दर और शुभचक्र वाली शिला को अश्वमेध के फल को देनेवाले भगवान "वनमाली" जानना चाहिये। द्विचक्री॥

श्रीसहाय का लक्षण—

पुराण संग्रह पर बताया है कि—जो खाली पाँच चक्रों से मात्र अलंकृत हैं, साथ ही वनमाला भी दीखती है, तो वह श्रीसहाय सञ्ज्ञक होते हैं। स्पष्ट ही यह पञ्चचक्री मूर्ति है॥

अथ मुकुन्दलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अत्यास्यो बहुचक्रश्च श्यामवर्णस्तथोज्ज्वलः। मुकुन्दः सर्वपापघ्नः पौण्डरीकफलप्रद इति॥ अत्यास्य षण्मुख इत्यर्थः।

तथा चोक्तं ब्रह्माण्डे—

षण्मुखेन मुकुन्दाख्यः सतां मुक्ति प्रदायक इति।

एतस्य षण्मुखत्वाद् द्वादशचक्रत्वम्। अयं पूर्वोक्तानन्तलक्षणलक्षितश्चेन्मुकुन्दानन्तसञ्ज्ञको भवति।

अथ गरुडध्वज लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—स्वर्णशृङ्गखुरः सौम्यो वर्तुलः स्निग्धकेशरः। चक्रे मध्यगते कृष्णरेखाबिन्दुविभूषितः। लक्ष्मीकरो वैनतेय गरुडध्वज सञ्ज्ञकः। इति। अयमपि चक्रे इति द्विवचनाद् द्विचक्र एव।

अथ चतुर्भुजलक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—चतुर्भुजश्चतुश्चक्रो नवमेघसमद्युतिः। मण्डलाकारचक्रः स्यात्सर्वेषामभयप्रद इति। अत्रविशेषाभावादेकस्मिन् वदने वदनद्वये वा चतुश्चक्रत्वं ज्ञेयम।

मुकुन्द का लक्षण—

अतिमुख और बहु चक्रधारी, साँवले वा सुफेद वर्ण के सभी पाप को हरण करते हुए पौण्डरीक (सभी धर्मकार्य) के फलदाता भगवान् मुकुन्द जी होते हैं। अतिमुख = षण्मुख॥

क्योंकि ब्रह्माण्ड में बताया है कि—षड्मुख; सज्जनों के लिये मुक्ति के देने वाले मुकुन्द कहलाते हैं॥ षड्मुख के बारह चक्र होते हैं क्योंकि प्रत्येक पर दो चक्र होते हैं॥ पूर्ववत् इनको "मुकुन्दानन्त" जानना चाहिये।

गरुडध्वज के लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—सुवर्ण के सींग और खुरवाले सुन्दर, गोलाकार, चिकनी, जटाधारी, बीच में दो चक्रों के रहते कृष्ण रेखा और बिन्दु से भूषित हों तो हे गरुड़ जी! वह गरुड़ध्वज कहलाते हैं और लक्ष्मीदायक होते हैं। यह भी "चक्रे" इस द्विवचनपद से दो चक्र के मालूम पड़ते हैं।

चतुर्भुज का लक्षण—

ब्रह्मपुराण का वचन यह है कि—नये मेघ के समान कान्तिवाले, मण्डलाकार, चतुश्चक्रधारी, सबके अभयदाता भगवान् चतुर्भुज कहे जाते हैं। विशेष वचन तो कोई नहीं है कि, जिनके चार चक्र कहाँ पर होते हैं; सो पता लगा लिये जावें अतः एक ही मुखपर वा दो पर चार चक्र होते हैं ऐसा फलतः जानना चाहिये।

अथ जगद्योनिलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—द्वारश्चक्रो रक्तवर्णो जगद्योनिः सुखप्रदः। तस्यदर्शनमात्रेण ह्यभीष्टफलमाप्नुयादिति। अयमपि द्विचक्रः।

अथ चक्रपाणिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—पूर्वभागे त्रिवदनः पश्चादेकास्य संयुतः। चक्रपाणिरिति ख्यातश्चक्रवर्तित्वदायक इति॥ एतस्य चतुर्मुखत्वादष्टचक्रत्वम्।

अथ गदाधर लक्षणम्

ब्रह्मपुराणे—गदाधरस्तथा देवो गुरुरूपः समन्ततः। चक्रस्निग्धोऽति कृष्णश्च पद्ममेकं च दक्षिण इति॥ गुरुरूपो बृहस्पतिवर्णः पीतइत्यर्थः।

पुराणसंग्रहे—गदाधरस्त्रिरेखाभिर्लाञ्छितो मध्यदेशतः। ध्वजवज्रांकुशैः पीतो वामचक्रः सुवर्तुल इति॥

जगद्योनि का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर प्रमाण आया है कि—रक्तवर्ण के द्वार पर चक्रवाले सुखदायक जगद्योनि कहाते हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य इच्छानुसार फल को पाकर कृतार्थ हो जाता है। यह भी द्विचक्री है॥

चक्रपाणि का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण के प्रमाण से कहा जाता है कि—आगे तो तीन मुख हों, पीछे एक हीं हो तो वह चक्रवर्तित्व याने साम्राज्य के दाता चक्रपाणि कहे जाते हैं। चतुर्मुख, अष्टचक्र॥

गदाधर जी का लक्षण—

ब्रह्मपुराण के हिसाब से—गदाधर जी चारों ओर गुरु (स्थूल वा वजनदार) रूप के चक्रों से स्निग्ध, दक्षिण भाग में एक कमल के धारण किये अति कृष्ण होते हैं। मूल में गुरुरूप को बृहस्पति वर्ण अर्थात् पीतवर्ण कहकर समझाया है। परन्तु यहाँ पर गुरु शब्द से देवगुरु को लेना संगत नहीं दीखता है क्योंकि उसी श्लोक में आगे जाकर "कृष्णश्च" ऐसा भी कहा है, चकार लक्षण समुच्चयार्थ है, वर्ण समुच्चयार्थ नहीं। वास्तव में यह अन्यप्रमाण से पीतवर्ण के भी होते ही हैं परन्तु अन्य प्रमाण से, सो आगे बताया जाता है॥

पुराणसंग्रह पर बताया है कि—गदाधर जी का वर्ण पीला होता है। मध्य भाग में तीन रेखाएँ होती हैं, आकार गोल होता है और ध्वजा, वज्र एवं अंकुश के चिह्न होते हैं।

स्कन्दपुराणे—चक्रद्वयं शुभं यस्य श्यामाङ्गो वर्त्तुलाकृतिः। देवो गदाधरोनाम राजसूयफलप्रदः॥ इति। अयं स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ लक्ष्मीपतिलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—मुखे वै पार्श्वतो वापि मयूरगलसन्निभः। कृष्णवर्णः सूक्ष्मचक्रः पृथुलास्यः स्रगन्वितः॥ लक्ष्मीपतिरितिख्यातो लक्ष्मीसम्पत्तिदायकः। इति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्रएव।

अथ देवदेवलक्षणम्

स्कन्दपुराणे—दूर्वाभः सूक्ष्मवदनः पीतरेखाः सुसूक्ष्मकाः। विदिक्षु दिक्षु सर्वासु दृश्यन्ते च समन्ततः॥ सदेवदेवो विज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तम इति॥ अयमपि द्विचक्रः। अथाऽव्यय लक्षणम्

ब्राह्मे—प्रदक्षिणावर्त्तयुतो वनमालाविभूषितः। कृष्णवर्णयुतश्चापि धनधान्यसुखप्रदः॥ पूजनीयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्च वर्तुलः। बहुवक्त्रो द्वारचक्रः सौख्यदस्तेन चाव्यय इति॥ अस्य बहास्यत्वकथना दुपस्थितत्यागे मानाभावेन त्रिवक्त्रत्वात् षट्चक्रत्वं भवति।

स्कन्दपुराण में—जिस मूर्ति के दो चक्र हों, अङ्ग श्याम हो, आकार गोल हो, उस मूर्ति के देव गदाधरजी हैं, वह राजसूय यज्ञ का फल देते हैं। द्विचक्र०॥

लक्ष्मीपति का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—मुख वा पार्श्वभाग मोर का कण्ठ जैसा हो, वर्ण काला, चक्र सूक्ष्म, मुख विशाल, और भूषण माला हो तो वह श्री सम्पत्ति के देनेवाले लक्ष्मीपति कहलाते हैं। द्विचक्र मूर्ति०॥

देवदेव का लक्षण—

स्कन्दपुराण में लक्षण कहा है कि देवदेव इस प्रकार के होते हैं, जैसे कान्ति दूर्वासदृश की, वदन सूक्ष्म और रेखाएँ भी पीतवर्ण की अतिसूक्ष्म होकर आठों दिशाओं पर दीखती हैं। उनको ही पुराणपुरुषोत्तम कहते हैं। द्विचक्रस्वरूप०॥

अव्यय का लक्षण—

ब्रह्मपुराण में ऐसा प्रमाण है कि,—दाहिनी ओर आवर्तवाले वनमाला को पहने हुए, स्थिररूप, चिकने, गोल, काले वर्ण के, बहुमुख और द्वारपर चक्र इत्यादि चिन्हवाले भगवान अव्यय संज्ञक होते हैं। यह धन धान्यादिक सुख के दाता हैं, सुखदायी होने से ही इनकी अव्यय सञ्ज्ञा पड़ी है, अतः इनकी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, प्रत्येक मुख पर दो चक्रों का हिसाब आया है, अतः बहुशब्द से पहले की उपस्थित संख्या तीन है, इसलिये "बहु वक्त्रः" से तीन मुख लीजिये, उनपर छः चक्र होते हैं॥

अथ धरणीधरलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—वर्त्तुलो द्वारचक्रश्च शिलास्थूलः सुशोभनः। धरणीधरः स विज्ञेयः सर्वयज्ञफलप्रद इति ॥ अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्रः।

अथ शेषस्य लक्षणम्

पद्मपुराणे—नागवत्कुण्डलीभूतरेखापङ्क्तिः स शेषक इति।

ब्रह्माण्डपुराणे—अथवा कुण्डलीभूत नागभोगसमन्वितः। शेषमूर्त्तिस्तु भगवानशेषैश्वर्यदायक इति ॥ तथा-पृष्ठादिमूर्द्धपर्यन्तं वलयाकाररेखया। सुवर्णनिभया द्वित्रिचतुःपञ्चादिसंङ्ख्यया ॥ संयुक्ता समचक्राढ्या श्यामा नीला सिताऽपिच। शेषमूर्त्तिरितिख्याता सर्वैश्वर्य प्रदायिकेति। अयन्तु स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ गरुडलक्षणम्

पद्मपुराणे—पक्षाकारे च पङ्क्तीद्वे मध्ये लम्बाच रेखिका। गरुडः स तु विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिप्रदायक इति ॥ ब्रह्माण्डे—द्विपक्षमभ्यामुपेतं यद् गारुडं भुवि दुर्लभम्। दुर्लभं समचक्रं च कलौ कल्मषनाशनमिति ॥

धरणीधर का लक्षण—

पुराणसंग्रह में—जिस स्वरूप की शिला गोल होती है। द्वारपर चक्र रहते हैं। आकार स्थूल और सुन्दर होता है उनको सर्वयज्ञ के फलों को देने वाले धरणीधर जी जानना चाहिये। अनुक्त चक्र हैं अतः द्विचक्र के होते हैं ॥

शेषजी का लक्षण—

पद्मपुराण पर कहा गया है कि—साँप की तरह कुण्डलाकार रेखाओं की पंक्ति जिस पर दीखती है उस मूर्ति को "शेषजी" जानना चाहिये।

ब्रह्माण्डपुराण में—अशेष ऐश्वर्य को देनेवाले शेषजी वह होते हैं जिनका स्वरूप कुण्डलाकार, सर्प शरीर से घेरा गया हो।

तथाच—पृष्ठ से लेकर शिर तक चूड़ी के आकार की सुवर्ण जैसो तीन चार या पाँच रेखा से वेष्टित हो, श्याम वा नील श्वेत किसी वर्ण के समान चक्रवाले हो तो वह मूर्तिदेव सर्वैश्वर्य के दाता शेषजी होते हैं ॥ द्विचक्री० ॥

गरुड़जी का लक्षण—

पद्मपुराण में—पक्ष याने पाँख वा डैने के आकार की दो पंक्ति हों, मध्य में एक लम्बी रेखासी दीखती हो तो उस मूर्ति को भुक्तिमुक्ति के दाता गरुड़जी जानना चाहिये ॥

ब्रह्माण्डपुराण में—

दो पक्ष (पङ्ख) से युक्त गरुड़मूर्ति का पाना पृथ्वी पर दुर्लभ है, समानचक्र

तथा—कल्मषौघविनाशी स्याद्वलयाकाररेखया। सुवर्णनिभयाद्वित्रि चतुष्टयसमेतया॥ संयुक्ता शुभदात्रीस्या च्छ्यामा नीला च पीतकेति। एवं भूता या शिला स कल्मषौघविनाशी गरुड इत्यर्थः॥ तथा—द्विपक्षाभ्यामुपेतं च द्वारेङ्घ्री विषमौस्थितौ। स्थूलं चिन्हं मुखे यस्य कलशेन समन्वितम्। वैनतेयं वीजानीयाल्लाञ्छनैस्तु सुलाञ्छितम्। इति द्वाराधः प्रदेशे रेखानिर्मितं विषमसंस्थानकमङ्घ्रिद्वयं यस्येत्यर्थः।

पद्मपुराणे—

पद्माकारे तु पङ्क्ती द्वे मध्ये दीर्घा च रेखिका। गरुडः सतु विज्ञेय इति। अस्याप्यनुक्तसंख्याकत्वात्पूर्ववद् द्विचक्रत्वमेव।

अथ विष्वक्सेन लक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अष्टचक्रश्चतुर्वक्त्रश्शिरश्चक्र समन्वितः। श्वेतरेखा समायुक्तः कृष्णवर्णः स्थिरासनः॥ शङ्खचक्रगदायुक्तो धनुर्बाणसमन्वितः।

को भी पाना तो और भी दुर्लभ है, क्योंकि वह कलियुग में पापों का विनाश करने वाली होती है तथा--चूड़ी के आकार की सुवर्णसदृश दो, तीन वा चार रेखा से युक्त, पापपुञ्ज का विनाश करनेवाली श्याम, नील वा पीतवर्ण की शिला गरुड़मूर्ति होती है। ऐसी उक्त शिला पापपुञ्ज के नाशक गरुड़जी हैं, ऐसा भाव है।

तथा—जो दो पङ्ख से युक्त हो, जिसके द्वारभाग में दोनों पैर समरूप से स्थित न हों, स्थूल चिन्ह भी मुँह पर कलश के साथ दिखाई देता हो और चिन्हों से भी चिन्हित हों तो उनको गरुड़ जी जानें। मतलब ऐसा है कि द्वार के पिछले भाग में रेखाओं से बने हुए विषमरूप से स्थित हैं दोनों चरण जिसके वह गरुड़जी हैं इत्यादि॥

पद्मपुराणमें—

पंद्म की आकृति की दो पंक्ति हो, मध्य भाग में दीर्घ रेखा एक हो तो वह गरुड़ जी हैं। पूर्ववत् द्विचक्री०॥

विष्वक्सेन का लक्षण—

पुराणसंग्रह में ऐसा वचन आया है कि—

श्रीमान् विश्वक्सेनजी वह कहाते हैं जिनकी मूर्तिपर, शिर में एक तथा और भी आठ तो चक्र ही होते हैं, मुख चार होते हैं, सुफेद रेखा रहती है, काला वर्ण होता है, आसन स्थिर होता है, शङ्ख, चक्र, गदाएँ रहती हैं एवं धनुर्बाण और यज्ञसूत्र (जनेऊ) के चिन्ह भी होते हैं।

यज्ञसूत्रधरः श्रीमान् विष्वक्सेनः प्रकीर्तित इति। स्कन्दपुराणे—पद्मकोश-प्रतीकाशो नवचक्रसमन्वितः। विश्वक्सेनस्तु भगवानश्वमेधफलप्रद इति। अयं नवचक्रः स्पष्टएव।

अथ सभेदसुदर्शनमूर्त्तिलक्षणानि

पुराणसंग्रहे—

सुदर्शनं त्रिधा ज्ञेयं लक्षणान्तरभेदतः।
शुद्धं सुदर्शनं चैव तथोभयसुदर्शनम्॥

सुदर्शनं समाख्यातं ज्ञेयं लक्षणकोविदैरिति। तत्रादौ शुद्धसुदर्शन-लक्षणम्। पुराणसंग्रहे—एकचक्रं शिरोदेशे पार्श्वेशङ्खादिचिह्नितः। असौ सुदर्शनो देवः पूजनात्सर्वकामद इति॥ पद्मपुराणे—अतसीपुष्पसङ्काशो विन्दुना परिशोभितः। सुदर्शनस्मृतो देवः श्यामो भूतिसुखप्रद इति॥ ब्रह्मपुराणे—सुदर्शनस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः। वामपार्श्वे गदाचक्रं रेखा चैव तु दक्षिणे॥ इति।

ब्रह्माण्डपुराणे—एकचक्रं शिरोदेशे कृष्णवर्णमुखस्तथा। सुदर्शनः सविज्ञेयः सर्वपापप्रणाशन इति। पद्मपुराणे—चक्राकारेण पङ्क्तिः सा

स्कन्दपुराण में—

कमल के गट्टे के सदृश प्रभावान्, नौ चक्रों से युक्त विष्वक्सेनजी होते हैं। भगवान् विष्वक्सेन जी अश्वमेध यज्ञ का फलप्रदान करनेवाले होते हैं।

॥ नवचक्रमूर्ति ॥

सुदर्शन मूर्ति के भेद और लक्षण—

पुराण संग्रह पर—लक्षण के जाननेवाले इस प्रकार सुदर्शनजी को जानें। जैसे कि सुदर्शनजी अन्योन्य लक्षणों से तीन प्रकार के होते हैं, एक तो शुद्ध और दो ऊभय प्रकार के। उनमें पहले शुद्ध का लक्षण-पुराण संग्रह पर ही कहा है कि पूजा करने से सुदर्शनजी सभी कामनाओं के दाता होते हैं, जिनके शिरोभाग में एक चक्र होता और पार्श्व में शंखादिक चिह्न होते हैं।

पद्मपुराण में कहा है कि—

अलस के फूल के सदृश वर्णवाले, बिन्दुसे शोभित, साँवले रङ्ग के, ऐश्वर्य और सुख के प्रदान करनेवाले भगवान् सुदर्शनदेव कहे गये हैं।

ब्रह्मपुराण में—सुदर्शनदेव श्यामवर्ण के, महान् कान्तिमान् होते हैं। उनके वाम भाग में गदा और चक्र होते हैं, तथा दक्षिण में रेखा होती है।

ब्रह्मपुराण का वचन है कि—

जिनके शिरपर एक चक्र हो तथा काला मुँह हो तो उनको सर्वपाप के ध्वंसकारी सुदर्शनजी जानना चाहिये।

यत्र रेखामयी भवेत्। स सुदर्शन इत्येवं ख्यातः पूजाफलप्रद इति। तथा—पद्माकारं वृत्तचक्रं निम्ननाभि सुदर्शनम्। सुदर्शनं तथा ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनमिति ॥ तथा—पद्माकारं लिखेच्चक्रं निम्ननाभिसुशोभितम्। यतिभिः पूजनीयं तदेकचक्रं सुरक्तकमिति॥ तथा—सुदर्शनं कृष्णवर्णमुत्तमं परिकीर्तितम्। मधुवर्णं मध्यमं स्यात्कपिलन्तु परित्यजेदिति ॥ तथा—नागाङ्कितं कृष्णवर्णं बिन्दुना परिशोभितम्। स्वर्णरेखासमायुक्तं नराणां भुक्तिमुक्तिदमिति ॥—अतिसूक्ष्मं श्यामवर्णं सव्याकारं सितं मुखे। कोमलं वर्तुलं स्निग्धं नराणां भुवि दुर्लभम् ॥ तथा—मधुवर्णं तथा रूक्षं रक्तकेसरमण्डितम्। सच्छिद्रं वृत्तहीनञ्च गृहस्थः परिवर्जयेदिति ॥ अयमेकचक्रः स्पष्टएव।

अथोभयसुदर्शनलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—एकचक्रंशिरोभागे तथाधोप्येकचक्रकम्। श्यामवर्णं सूक्ष्मरूपं नागाङ्केनापि चिह्नितम्। सुदर्शनं चोभयाख्यं देवानामपि दुर्लभम्॥ एतं यः पूजयेन्नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयादिति। अयं तु द्विचक्रस्पष्ट एव।

पद्मपुराण में कहा है कि पूजा करने से सभी फल के देनेवाले सुदर्शन जी ऐसे होते हैं जिनकी रेखारूप चक्राकार हो और जहाँपर आकार रेखास्वरूप हो।

तथा—पद्माकार, वर्तुलचक्र, निम्ननाभी, सुदर्शन (चक्र) धारी, सर्वपाप विनाशकारी सुदर्शन ही होते हैं। तथा—लाल वर्ण के एक ही चक्रवाले सुन्दर और निम्न नाभिवाले सुदर्शनजी संन्यासी से मात्र पूजित होने चाहिये। तथा—सुदर्शन जी जो काले वर्ण के कहे गये हैं वह उत्तम हैं, मधुवर्ण के मध्यम होते हैं और कपिल वर्ण के अधम अतः उनका परित्याग करना चाहिये। तथा सर्पाङ्कित कृष्णवर्ण के बिन्दु से शोभित और सुवर्णाकार रेखा से युक्त हों तो मनुष्यों के लिये भुक्तिमुक्ति के दाता होते हैं। तथा—

अति सूक्ष्म, श्यामवर्ण के, मुँहपर बायें भाग में श्वेत आकारवाले, कोमल, गोल और चिकने स्वरूप के सुदर्शनजी पृथ्वीपर प्राप्त करना मनुष्यों के दुर्लभ हैं। तथा—मधुवर्ण के रूक्ष, लाल केसर से मण्डित, सछिद्र, और वृत्तहीन उक्तमूर्ति की पूजा गृहस्थ न करें। एक चक्र० ॥

उभय सुदर्शन का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर—शिरपर एक चक्र और अधोभाग में एक हो, वर्ण श्याम हो, सूक्ष्म हो, चिह्न नाग का हो तो वह देवताओं के भी दुर्लभ उभय सुदर्शन कहे जाते हैं। जो इनकी नित्य ही पूजा करता है वह सभी कामनाओं का प्राप्त करता है। द्विचक्री० ॥

अथ समसुदर्शनलक्षणम्

तत्रैव--द्वाभ्यां शिरसि चक्राभ्यां पङ्क्त्याकारेण भूषितः। श्याम-वर्णः पार्श्वभागे गदाशङ्खादिसंयुतः। समसुदर्शनोदेवो भूतलेऽतीव दुर्लभः। पूजनीयः सदा सद्भिर्भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति। अयमपि स्पष्ट एव द्विचक्रः।

अथ योगराजलक्षणम्

विष्णुरहस्ये—

वामाङ्गे पुष्कलं स्निग्धं द्विचक्रं च सुसूक्ष्मकम्। अयमपि स्पष्ट एव द्विचक्रः। (?) योगराजं विजानीयाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् (?)

अथ वटपत्रशायिनो लक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—वटपत्रशायी भगवान् वर्त्तुलोऽत्यन्तशोभनः। क्षीरबुद्बुदवत्तार्क्ष्य नीलश्वेतविमिश्रितः। वक्त्रस्य वामतः शङ्खो दक्षिणे पद्ममेव च। वदनैकं मध्यदेशे चतुश्चक्रस्त्रिबिन्दुक इति।

अयं स्पष्ट एव चतुश्चक्रः।

अथ नरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—नरमूर्त्तिस्तु भगवानतसीकुसुमप्रभः। एकचक्रसमोपेतो ब्रह्मसूत्रश्च पार्श्वके॥ इति। अयन्तु स्पष्टएवैकचक्रः।

समसुदर्शन का लक्षण—

उसी पर—(पुराणसंग्रहमें) शिर पर पंक्तिके आकार के द्विचक्रों से भूषित, श्यामवर्ण, पार्श्व में गदाशंखादि से युक्त हों तो पृथ्वी पर अत्यन्त दुर्लभ सुदर्शन देव कहलाते हैं, सज्जनो को उनकी पूजा करनी चाहिये क्योंकि वह भुक्तिमुक्ति फलों के प्रदान करनेवाले हैं॥ यह भी द्विचक्र०॥

योगराज का लक्षण—

वामाङ्ग उत्तम (अथवा कमल) स्निग्ध एवं सूक्ष्म द्विचक्रसे युक्त स्वरूप हो तो मुक्तिभुक्ति के दाता योगराज कहलाते हैं। श्लोकार्ध को लुप्त देखकर यहाँ पर पूरा किया गया है (?)। द्विचक्री०॥

वटपत्रशायी का लक्षण—

गरुड़ जी! वटपत्रशायी भगवान् अत्यन्त सुन्दर गोलाकार दूध की फेन के बुलबुले के जैसे नील और श्वेत वर्ण से संयुक्त होते हैं, वदन के वाम भाग में शंख, दक्षिण भाग में कमल, मध्यभाग में एक मुख, चार चक्र और तीन बिन्दुएँ, ये सब उनके चिन्ह होते हैं। चतुश्चक्री।

नर का लक्षण—

नर मूर्त्ति के भगवान् नीलवर्ण के अर्थात् तिस्सी के फूल सदृश एक चक्र से युक्त, पार्श्व में ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) धारण किये होते हैं।

अथ हंसलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—हंसस्तु धनुराकारो नीलश्वेतविमिश्रितः। चक्रपद्मसमोपेतः केवलं मोक्षदो भवेदिति। गरुडपुराणे—हंसः शङ्खाकृतिश्चैव नाभिचक्रस्तथोन्नतः। दक्षिणे धनुराकारो वामे कुमुदपुष्पकम्। दृश्यते भिन्नवर्णस्तु मोक्षवर्गप्रदः शुभ इति। अस्य नाभिचक्रत्वकथनात् पूर्ववत् त्रिचक्रत्वम्।

अथ परमहंसलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे–परहंसः खगेशान शिखण्डिगलसन्निभः। स्निग्धश्चायतवृत्तश्च वर्त्तुलद्वारसंयुत इति॥ तथा—बिलमध्ये तथा चक्रे दृश्येते ह्यतिशोभने। चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे द्युमणिर्भास्वरो भवेत्। वराहरेखा तद्वामे दृश्यते विनतासुत। मूर्त्तिः परमहंसाख्या चतुर्वर्गफलप्रदेति। अयं द्विवचनात् स्पष्ट एव द्विचक्रः।

हंस का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में—हंसदेव धनुषाकार, नीलश्वेतवर्णों से मिश्रित, चक्र और कमल से संयुक्त होते हैं। वह केवल मोक्षदायी हैं।

गरुड़पुराण में कहा है कि—

हंसदेव का स्वरूप शंखाकार का होता है, नाभि पर चक्र और मूर्ति उन्नत होती है, दाहिने भागमे धनुष का आकार और बाये में कुमुदपुष्प होता है वर्ण कई दीखते हैं एवम् पूजा से मोक्षफल प्राप्त होता है। नाभि पर भी चक्र का विधान है अतः पूर्ववत् इनको त्रिचक्रस्वरूप जानना चाहिए।

परमहंस मूर्तिका लक्षण—

हे गरुड़जी! परमहंस देव मोर के कण्ठ सदृश, स्निग्ध, दीर्घवृत्त वर्तुलद्वार से युक्त होते हैं।

तथा—

और छिद्र के मध्यभाग पर सुन्दर दो चक्र दीखते हैं, चक्र के दक्षिण पार्श्व में चमकदार सूर्य नारायण होते हैं, उसकी बायी ओर वराह की रेखा दीखती है, हे वैनतेय! इस प्रकार परमहंस नाम की मूर्त्ति चतुर्वर्ग अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफल को देती है॥

"चक्रे" इस द्विवचन पदसे दो चक्र की मूर्ति जाननी चाहिये।

अथ दत्तात्रेयलक्षणम्

पुराणसङ्ग्रहे—पीतोऽरुणोसिताभश्च ह्रस्वपृष्ठोन्नतो भवेत्। अक्षमालाकृतिः पृष्ठे दत्तात्रेयः शुभप्रद इति ॥ तथा—कृष्णो रक्तश्च पीतश्च दत्तात्रेयाभिधो भवेत्। इति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्र एव।

अथ त्रिमूर्त्तिलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—ऊर्ध्वाधस्तु त्रिवदनः षट्चक्रःश्यामलाङ्गधृक्। त्रिमूर्त्तिरिति विख्यातः सर्वसौभाग्यदायक इति ॥ वामनपुराणे—

चक्रत्रयसमेता वा त्रिमूर्त्तिः स्याच्छुभप्रदेति। अयं स्पष्टएव षट्चक्रस्त्रिचक्रश्च।

अथ श्रीमूर्तिलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—अधोऽधस्तात्त्रिवदनः षट्चक्रः श्यामलो विभुः। श्रीमूर्त्तिलक्षणं प्रोक्तं सर्वसौभाग्यदायकमिति ॥ स्कान्दे—शङ्खचक्रादिकमलकमण्डलुनिशाकरैः। मुखत्रयेण संयुक्तः श्रीमूर्त्तिस्तु शुभप्रद इति ॥ अयं स्पष्टएव षट्चक्रः।

दत्तात्रेय का लक्षण--

पुराणसंग्रह में प्रमाण मिला है कि दत्तात्रेय-मूर्ति शुभदायक होती है। उसके पहचान ऐसे हैं कि पीला, गुलाबी वा सुफेद तो वर्ण होते हैं, पृष्ठ भाग छोटा होता है मूर्ति उन्नत होती है और पृष्ठ भाग पर रुद्राक्षमाला का जैसा आकार प्रतीत होता है। तथा—पीत रक्त वा श्वेतवर्ण के दत्तात्रेय जी कहलाते हैं। द्विचक्र० ॥

त्रिमूर्तिका लक्षण—

ब्रह्माण्ड में लिखा वचन ऐसा है कि—ऊपर और नीचे पर कुल मिलाकर तीन बदन वाले, छः चक्र और सावले अङ्गों के धारण किये "त्रिमूर्ति" नाम से प्रसिद्ध सर्वसौभाग्यदाता भगवान् होते हैं। वामन पुराण में कहा है कि—अथवा तीन ही चक्रों से युक्त भी शुभदायक त्रिमूर्ति देव कहलाते हैं। त्रिचक्री या षट्चक्री० ॥

श्रीमूर्ति का लक्षण—

पुराणसंग्रह पर कहा है कि पिछले भाग पर नीचे तीन मुख हों, छः चक्र हों, श्यामल वर्ण हो तो उनको सर्व सौभाग्यदायक श्रीमूर्ति जानना चाहिये।

स्कन्द पुराणमें लिखा है—शंख, चक्र, इत्यादि कमल, कमण्डलु और चन्द्राकार वगैरह चिह्नोंके रहते त्रिमुख हों तो उनको शुभदायक श्रीमूर्ति जानना चाहिये। यह स्पष्ट ही षट्चक्रवाले हैं ॥

अथ बहुरूपीलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—अभ्यन्तरे पृथक्चक्रे बहुलास्यः समन्ततः। बहुरूपी समाख्यातः पूजितो मोक्षदायक इति ॥ बहुलास्यो विस्तीर्णास्यः तस्मिन्द्विचक्रो बहिरेकचक्र एवं त्रिचक्र इत्यर्थः। बहुलास्यो मुखत्रययुक्तस्तेष्वेकैक चक्र एवं त्रिचक्र इत्यर्थो वा।

तथा—

तृतीयचक्रादारभ्य प्राक् चतुर्दशचक्रतः। पातालनरसिंहो वा बहुरूपोऽथवा भवेदिति ॥ अयं मुखे द्विचक्रस्तृतीयचक्रादारभ्य सर्वत्र चक्रयुक्त एवं चतुर्दशचक्रतः प्राक् त्रयोदशचक्रः पातालनृसिंहलक्षणविशिष्टो बहुरूप इत्यर्थः। अस्य पूर्वोक्तानन्तलक्षणलक्षितत्वे बहुरूपानन्तसञ्ज्ञा सम्पद्यते।

अथ कपिललक्षणम्

स्कान्दे—कपिलो वर्तुलोऽत्यन्तस्पष्टचक्रसमन्वितः। पञ्च बिन्दुसमोपेतः परविद्याप्रदो नृणामिति। अयमनुक्तचक्रत्वाद् द्विचक्र एव।

बहुरूपी का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराणमें—अभ्यन्तर में पृथक् पृथक् चक्र हों चारोंओर से खूब मुख खुटे हों तो पूजा से मोक्षदाता बहुरूपी देव कहलाते हैं। बहुलास्य = विस्तीर्ण वदन। भीतरी दो बाहरी एक एवं त्रिचक्री मूर्ति होती है। बहुलास्य से तीन मुख युक्त लीजियेगा तो उनमें एक-एक चक्र के हिसाब से त्रिचक्री ऐसा भी अर्थ हो सकता है। पूर्ववत् प्रत्येक मुख के दो चक्र से षट्चक्री भी जानना चाहिये ॥

तथा—

तीन से लेकर चौदह चक्र पर्यन्त की मूर्तियों को पाताल नृसिंह वा बहुरूपी जानना चाहिये। यह देव मुखपर दो चक्रवाले होते हैं, तीसरे लेकर चौदह से पहले अर्थात् तेरह चक्र के पाताल नृसिंह लक्षण विशिष्ट बहुरूप कहे जाते हैं, ऐसा भाव है। इनको ही पूर्वोक्त अनन्त के लक्षण अनुसार समझा जावे तो बहुरूपानन्त संज्ञा होती है ॥

कपिलजी का लक्षण—

स्कन्दपुराण का वचन है—कपिलजी गोल, अत्यन्त स्पष्ट चक्र से युक्त पाँच बिन्दुवाले परविद्या अर्थात् मनुष्यों के लिये विदेशी वा विपक्षी विद्या के दायक होते हैं। यह भी अनुक्त चक्र होने के कारण द्विचक्र हैं। कपिलजी का लक्षण समाप्त हुआ ॥

अथ मुशलायुधलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—मुशलाकाररेखाभिश्चैकचक्रेण लाञ्छितः। मुशलायुध-नामास्याच्छंखचक्रगदान्वितः। पूजनाच्चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति। अयन्त्वेकचक्रः स्पष्टएव।

अथ मुरारिलक्षणम्। अयमपि द्विचक्रः।

अथ शिंशुमार लक्षणम्। ब्रह्माण्डपुराणे—शिंशुमारो दीर्घकायो बिल्वशाल्यतिगह्वरः। पुरस्तु पृष्ठभागेतु चक्रेणैकेन संयुतः॥ सर्वाधारः सविज्ञेयः सर्वसिद्धिप्रदो नृणामिति। पृष्ठभागे एकचक्रं वक्त्रेच द्वयमेवं मिलित्वा चक्रत्रयोऽयमित्यर्थः।

अथ पुण्डरीकलक्षणम्

ब्रह्माण्डपुराणे—एकचक्रयुतोवक्त्रे शुक्लवर्णसमन्वितः। पुण्डरीकः समाख्यातः पूजितोऽसौ विमोक्षद इति॥ अयमेकचक्रः स्पष्ट एव।

अथ हैहयलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—गर्भागारे तु चक्रे द्वे पद्मे दक्षिणतो बहिः। पद्मपत्राकृति-

---

मुशलाऽऽयुध का लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण में प्रमाण मिलता है कि—मुशलाऽऽयुध नाम के भगवान शंख, चक्र और गदा से युक्त होकर मुशलाऽऽकार रेखाओं और एक चक्र से चिह्नित रहते हैं, पूजा करने से सबके लिये भुक्तिमुक्ति के दाता होते हैं। एक चक्री०॥ मुरारि का विशेष लक्षण नहीं पाया जाता अतः द्विचक्री जानना चाहिये।

शिंशुमार का लक्षण—

शिंशुमार को सर्वाधार और मनुष्यों के लिये सर्वसिद्धि के दाता जानना चाहिये, उनके लक्षण ऐसे होते हैं—शरीर दीर्घ होता है श्रीफल सदृश आकार होता है, अति गह्वर भाग दीखता है और आगे एक पीछे एक एवम् दो चक्र होते हैं। अर्थात् आगे पीछे मुख पर के सबको जोड़कर त्रिचक्र के जानना चाहिये॥

पुण्डरीक के लक्षण—

ब्रह्माण्डपुराण पर इस प्रकार कहा है—

पूजा करने से सभी (सौख्य के देनेवाले) विशेषतः मोक्ष के देनेवाले पुण्डरीक जी इस प्रकार के होते हैं, मुख पर एक चक्र होता है और वर्ण श्वेत होता है। एक चक्री०॥

हैहय के लक्षण—

गर्भ स्थान में दो चक्र बाहरी ओर दक्षिण भाग में दो पद्म अथवा पद्म

र्वापी हेमवर्णसमाकुलः ॥ हैहयस्तु भवेद्देवः सर्वसिद्धिप्रदायक इति। अयं द्विचक्रः स्पष्टएव।

अथ विष्णुपञ्जरलक्षणम्

पद्मपुराणे—वज्रकीटोद्भवा रेखाः पंक्तिभूताश्च यत्र वै। शालग्रामशिलाया सा विष्णुपञ्जरसञ्ज्ञितेति। एतस्य निश्चक्रत्वं स्पष्टमेव।

अथ योगेश्वरलक्षणम्।

ब्रह्माण्डपुराणे—दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामसमुद्भवम्। सच योगेश्वरोनाम ब्रह्महत्यां व्यपोहति। इति। लिङ्गं किञ्चिच्चिह्नमित्यर्थः। अयमपि निश्चक्र एव। एवमनन्तस्यानेके भेदा विश्वरूपादीनामेकैकः सुदर्शनस्य त्रयो भेदा उक्ता इत्येवमनन्तव्यतिरिक्तविश्वरूपादिमूर्त्तीनां षट्चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति। अनन्तस्य तु यथासम्भवभेदा भवन्तीति। इतिमूर्त्तयः।

अतःपरं ब्रह्मणो मूर्त्तय उच्यन्ते तत्र चतुर्मुखलक्षणम्

पाद्मे—चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपगाः। द्वे चक्रे मध्यदेशेच याशिला स्याच्चतुर्मुखीति ॥

पत्र के समान आकार और सुवर्ण वर्ण की मूर्ति हो तो वह सर्वसिद्धि के दाता भगवान् "हैहय" संज्ञक देव होते हैं। द्वि चक्री० ॥

विष्णुपञ्जर के लक्षण—

पद्मपुराण के अनुसार कहा जाता है कि—जिस पर वज्र कीट से उत्पन्न रेखाएँ श्रेणीबद्ध होती हैं इस प्रकार की शालग्राम शिला "विष्णुपञ्जर" कहलाती है। इस मूर्ति में चक्र नहीं होते हैं क्योंकि चक्र संख्या की चर्चा ही नहीं है ॥

योगेश्वर का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—जिनके शिखर में शालग्राम पर उत्पन्न हुआ कुछ चिन्ह दीखता है वह योगेश्वर कहलाते हैं और वह ब्रह्महत्या को दूर करते हैं। लिङ्ग कोई चिन्ह ॥ निश्चक्र० ॥

इस प्रकार अनन्त के अनेकों भेद, विश्वरूपादिकों के एक-एक भेद, सुदर्शन के तीन भेद बताये गये हैं। अब ऐसा जानें कि अनन्त को छोड़कर विश्वरूपादि मूर्तियोंके छेयालीस भेद और अनन्त के यथासम्भव भेद होते हैं। इति ॥

अब ब्रह्माजी की मूर्तियाँ कही जाती हैं।

पद्मपुराण के अनुसार उनमें पहले चतुर्मुख का लक्षण—

जिस पर पार्श्वभाग के नजदीक ही चार रेखाएँ एवम् मध्यभाग में दो चक्र दीखते हैं उस शिला को चतुर्मुखी जानना चाहिये (चतुर्मुख = ब्रह्मा) ॥

ब्रह्माण्डे—
चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः पार्श्वसमीपतः। द्वे चक्रे मध्यदेशे च सा शिला स्याच्चतुर्मुखीति ।। अयमपि स्पष्टएव द्विचक्रः।

अथ स्वयम्भूलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—स्वर्णवर्तुलरेखाभिरावृतो नीलवर्णवान्। दीर्घास्यपृथुचक्रस्तु स्वयम्भूरिति विश्रुतः।। केवलं मोक्षफलदो ह्यर्चकस्य न संशय इति। अयमनुक्तचक्रसंख्यत्वाद् द्विचक्रः।

अथ परमेष्ठिनो लक्षणम्

पाद्मे—परमेष्ठी साऽब्जचक्रः पृष्ठच्छिद्रश्च बिन्दुमानिति।

पुराणसंग्रहे—परमेष्ठी तु मुक्ताभश्चक्रपद्मसमन्वितः। सुवर्त्तुलस्तथा पीतः पृष्ठे च सुषिरन्तथेति ।।

ब्रह्मपुराणे—परमेष्ठी लोहिताभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम्। बिल्वाकृतिस्तथा रेखा सुषिरं चातिपुष्कलमिति।

विष्णुरहस्ये—दीर्घरेखा समोपेतो दक्षिणे सुषिरं पृथक्। परमेष्ठी लोहिताभश्चक्रमेकं तथाम्बुजम् ।। इति।

ब्रह्माण्ड में—

जिस पर पार्श्व भाग के समीप में चार रेखाएँ दीखती हैं, और मध्यभाग में दो चक्र भी वह शिला चतुर्मुखस्वरूप की होती है। द्विचक्री० ।।

स्वयम्भू के लक्षण—

सुवर्ण की गोलाकार रेखाओं से वेष्टित, नीलवर्ण, दीर्घमुख और विशाल चक्रवाले "स्वयम्भू" नाम से प्रसिद्ध हैं, वह पूजक के लिये केवल मोक्षफल को देते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह द्विचक्री हैं।

परमेष्ठी के लक्षण—

पद्मपुराण में कहा है कि—परमेष्ठी जी कमल, चक्र, पृष्ठ भाग पर सच्छिद्र बिन्दुधारी होते हैं।

पुराण संग्रह में—

परमेष्ठी जी मोती के सदृश चमकते हुए चक्र और पद्म से युक्त होते हैं, आकार गोल पीत वर्ण का होता है पृष्ठ भाग में छिद्र भी होता है।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि—

परमेष्ठी जी वह हैं जो लाल वर्ण के होते हैं, उनमें एक चक्र और एक कमल का चिह्न रहता है, आकृति रेखायुक्त श्रीफल सदृश की होती है, एक अत्युत्तम छिद्र भी रहता है।

विष्णु रहस्य में—दीर्घ रेखा, दक्षिण के तर्फ अलग छिद्र, लाल वर्ण, एक चक्र और एक पद्म के धारण किये परमेष्ठी जी होते हैं।

वैखानससंहितायाम्—परमेष्ठी तु रक्ताभश्चक्रपद्मसमन्वितः। बिम्बाकृतिस्तथा पृष्ठे सुषिरं चातिवर्त्तुलम् ॥ पीतवर्णयुतो वापि भुक्तिमुक्तिवरप्रद इति। अयं स्पष्ट एवैकचक्रः।

अथ पितामहलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—पितामहश्चतुर्वक्त्रो ह्यष्टचक्रसमन्वितः। ध्वजाकारयुता रेखा दृश्यते मध्यदेशतः। पूजनीयः प्रयत्नेन स्थिरः स्निग्धश्च वर्तुल इति ॥ अयं स्पष्ट एवाष्टचक्रः।

अथ हिरण्यगर्भलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—हिरण्यगर्भं जानीयान्मधुपिङ्गलविग्रहम्। ईषद्दीर्घं मनोज्ञं च स्निग्धं सकलकामदमिति ॥ तथा—चन्द्राकृतिं हिरण्याख्यां रश्मिज्वालां विनिर्दिशेत्। सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभनम्। इति ॥ तथा—हिरण्यगर्भो भगवान् त्रिविधोऽत्र प्रदृश्यते। अमुखः स्वर्णविन्दुश्च स्वर्णगर्भ इति क्रमादिति ॥ तथा—हिरण्यगर्भो भगवान् पवित्रो भुवि दुर्लभः। अंतर्ध्वनिसमायुक्तः कृष्णवर्ण सुवृत्तक इति ॥ तथा—वर्त्तुलो

वैखानस संहितापर—परमेष्ठी जी तो वर्ण के लाल, एक चक्र और पद्म से संयुक्त भी होते हैं। पृष्ठ भाग बिम्ब के सदृश (लाल) होता है। खूब गोल छिद्र भी होता है, अथवा उक्त लक्षण सम्पन्न पीतवर्ण के भी होते हैं वह भुक्ति मुक्ति तथा वर प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ एकचक्र० ॥

पितामह जी का लक्षण—

पुराण संग्रह पर लिखा है कि—पितामह जी चार मुख और आठ चक्र के होते हैं। मध्य में ध्वजाकार रेखा दीखती है, स्थिर, स्निग्ध एवम् वर्तुलाकार होते हैं इनकी यत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये। अष्टचक्र स्पष्ट हैं ॥

हिरण्यगर्भ का लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराण में—मधुसदृश पिङ्गल शरीरवाले, कुछ लम्बे, चिकने और सुन्दर स्वरूप को सकल कामनाओं के दाता हिरण्यगर्भ जी जानें।

तथा—चन्द्राकार कान्ति की ज्वाला होकर अति सुन्दर अतएव स्फटिक की छवि के सदृश चमकीले प्रायः सुवर्ण रेखाओं से सम्पन्न ऐसे स्वरूप को भगवान हिरण्यगर्भ जी जानें। तथा—

यहाँ पर हिरण्यगर्भजी तीन प्रकार के मालूम पड़ते हैं—अमुख १ स्वर्ण बिन्दुमान् २ हिरण्यगर्भ ३ इस क्रम से भेद को जानें।

तथाच—पृथ्वी पर भगवान् हिरण्यगर्भ पवित्र और दुर्लभ हैं। भीतर से आवाज आती है, वर्ण काला और आकार गोल होता है ॥ तथा—

ह्रस्ववदनो मध्यचक्रोऽतिकोमलः। श्रीवत्सकमलाकारलाञ्छनं पृष्ठपार्श्वके ॥ हिरण्यगर्भो विख्यातः पृथुनाभिसमन्वितः। हिरण्येन विमिश्रस्तु श्रीप्रदः कुलवर्द्धन इति। अयमनुक्तचक्रसंख्यत्वात् द्विचक्र एव। इति ब्रम्हमूर्त्तयः।

अतःपरं शिवस्य मूर्त्तय उच्यन्ते

तत्र शिवनाभलक्षणम्। स्कान्दे—कूर्माकृतिरधोभागे लिङ्गभागे खुरान्वितः। शिवनाभ इतिख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद इति ॥ तथा—चक्राकारं कृष्णवर्णं सत्रिशूलं जटाधरम्। शिवनाभश्च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदमिति।

अथ सद्योजातलक्षणम्

स्कान्दे—हेमवर्णयुता हेमविन्दुभिश्च समन्विता। मस्तके गोखुरैर्युक्ता चन्द्रगङ्गा समन्विता। सद्योजाताभिधा श्रेष्ठा पुत्रपौत्रविवर्द्धनीति ॥

अथ वामदेवलक्षणम्

स्कान्दे—लिङ्गशक्तौ रक्तवर्णा श्वेता चन्द्रजटायुधा। वामदेवाभिधा श्रेष्ठा गृहिभिः पूजिता सदेति ॥

गोल, अल्पमुख, मध्यचक्री, अतिकोमल, पृष्ठ और पार्श्वभागमें श्रीवत्स और कमलके आकारके चिह्न और विशालनाभियुक्त होकर हिरण्यसे विशेष मिश्रित हों तो वह "हिरण्यगर्भ" नामसे प्रसिद्ध श्रीसंपत्तिके दाता सन्तानकी वृद्धि करने वाले होते हैं। द्विचक्री ब्रह्ममूर्तियां समाप्त हुईं।

अब आगेसे शिवमूर्तियाँ कही जा रही हैं—

पहले शिवनाभजीका लक्षण—स्कन्द पुराणमें कहा है कि--अधो भागपर कूर्मका आकार और लिङ्ग भागमें खुरका आकार होतो भुक्ति मुक्ति फलके देनेवाले शिवनाभ कहलाते हैं। तथा—चक्राकार, कृष्णवर्ण की त्रिशूल युक्त जटाधारी मूर्तिको सर्वकामनाओंके अनुसार फलदायक "शिवनाभ" कहना चाहिये। सद्योजातका लक्षण—स्कन्दपुराणमें कहा है कि–सुवर्ण वर्णसे युक्त और सुवर्ण ही की बिन्दुओंसे युक्त एवम् मस्तकपर गायके खुरके आकार, चन्द्रमा और गङ्गासे सुशोभित मूर्ति "सद्योजात" नाम की पुत्रपौत्रादि सन्तान की बढ़ाने वाली श्रेष्ठ कही जाती है।

वामदेव जी का लक्षण—

स्कन्द पुराणमें कहा है—लिङ्गशक्तिमें लालवर्णकी श्वेत, चन्द्रमा जटा और आयुधसे युक्त वामदेवनामकी श्रेष्ठ मूर्ति होती है, गृहस्थोंसे सदा पूज्य है।

अथाऽघोरलक्षणम्

स्कान्दे—सर्वत्र लोहिताकारा मूर्ध्नि रक्तजटा शशी। अघोरा सा परित्याज्या गृहिभिर्यतिपूजितेति ॥

अथ तत्पुरुषलक्षणम्

स्कान्दे— पूर्वे विद्युज्जटाभानुरूर्ध्वे लिङ्गजटाशशी । तत्पुरुषाभिधाना सा दुर्लभा सर्वकामदेति ।

अथेशानलक्षणम्

स्कान्दे—क्वचित्कपिलसंयुक्ता कृष्णनीलजटेन्दुका । पार्श्वरेखासमोपेता ईशाना मुक्तिदायिकेति ।

अथ शर्वलक्षणम्

स्कान्दे—द्विलिङ्गोवा त्रिलिङ्गोवा चतुःपञ्चादि लिङ्गवान् शर्वदेवः समाख्यातो देवो देवत्वदायक इति ॥ तथा—स च शङ्करनामास्याद्देवो दिव्यफलप्रद इति । तथा—लिङ्गैः पञ्चभिरालीढा षड्भिर्वा सप्तभिस्तथा । तत्तन्मूर्त्तिफलं पुण्यं मया वक्तुं नपार्यते । शङ्करेति समाख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदेति ।

अघोर का लक्षण—

स्कन्दमें—सर्वत्र लोहितवर्णकी शिर पर लाल जटा और चन्द्रमासे युक्त "अघोर" नामकी मूर्ति होती हैं । गृहस्थ लोग उसे त्याग देवें क्यों कि वह संन्यासियों से ही पूज्य होती है ।

तत्पुरुषजी का लक्षण—

स्कन्द पुराणका वचन है कि— र्वभागमें विद्युजटा और सूर्य हों ऊर्ध्वभागमें लिङ्ग, जटा और चन्द्रमा हों तो वह तत्पुरुष संज्ञक मूर्ति दुर्लभ और सर्वकामदा होती है ।

ईशानका लक्षण—

स्कन्दपुराणमें लिखा है कि कहींपर कपिलवर्णकी होती हुई कृष्ण तथा नील वर्णकी भी हो, चन्द्रमा और पार्श्वभागमें समान रेखा से भी युक्त हो तो वह मुक्तिदायिनी ईशानमूर्ति कहलाती है ।

शर्वका लक्षण—

स्कन्दपुराणका वाक्य है कि—द्विलिङ्ग, त्रिलिङ्ग वा चतुर्लिङ्ग, पञ्च इत्यादि लिङ्गवान् हों तो वह देव देवत्वके दायक "शर्व" कहलाते हैं ॥ तथा—उन्हीका पर्यायवाचक नाम शङ्कर भी है वह देव दिव्यफलदायक होते हैं । अपि च—पाच, छः वा सात लिङ्गोंसे संयुक्त उन उन मूर्तियों का फल कहाँतक वर्णन किया जावे मुझसे भी कहते पार नहीं किया जा सकता है । वह भुक्ति मुक्तिको देने वाली शङ्करमूर्ति कही जाती है ॥

अथ चन्द्रशेखरलक्षणम्

स्कान्दे—पञ्चवक्त्राङ्कितो देवो रौप्यवर्णः स्थिरासनः। चन्द्रशेखरको ज्ञेयो महाभयविनाशन इति ॥ विष्णुरहस्ये—पाशाङ्कुशाङ्कितं देवं नीलवर्णसमन्वितम्। भवदेवं विजानीयादचलां श्रियमाप्नुयादिति ॥

एताः सर्वा अपि शिवमूर्त्तयो निश्चक्रा एव भवन्ति। तत्र चिन्हातिरिक्त चक्रसद्भावे प्रमाणाभावादिति।

अथ हरिहरलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—चक्रद्वयसमोपेत चक्रद्वययुतोऽपि वा। शिवनाभियुतो मूर्ध्नि पृष्ठेवापि तथैव च ॥ एतं हरिहरं विद्यात्सुखसौभाग्यदायकमिति।

तथा—

चतुश्चक्रो हरिहरो द्विमुखोर्ध्वं तथाप्यधः। विनश्यन्ति गृहस्थानां गृहं क्षेत्रं धनं कुलमिति ॥ एतल्लक्षणलक्षितएव विरुद्धो नान्य इति ॥ विष्णुरहस्ये—मधुवर्णोश्चातिसूक्ष्मो मध्यचक्रश्च शोभनः। चन्द्रबिम्बान्वितः स्निग्धः सस्याद्धरिहरो विभुरिति। अयं द्वित्रिचतुश्चक्रः स्पष्ट एव।

चन्द्रशेखरजीका लक्षण—

स्कन्दपुराण पर—पाँच मुखके चिह्न वाले, रौप्यवर्ण के स्थिरासन देव चन्द्रशेखरजी कहलाते हैं वह महाभयके विनाशकारी होते हैं। विष्णुरहस्यपर—पाश और अङ्कुशसे अङ्कित नीलवर्ण वाले देवको भवदेव (चन्द्रशेखर) जाने। मनुष्य उनकी पूजासे अचला लक्ष्मीको प्राप्त करता है। ये सभी शिवमूर्तियाँ निश्चक्रही होती हैं क्योंकि चिह्न (लिङ्ग) के सिवा चक्रोंके अस्तित्वमें कोई प्रमाण नहीं पाया जाता है।

हरिहरका लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराणमें कहा है कि—समान दो चक्र हों वा जैसे तैसे दो चक्रसे युक्त हो, पृष्ठ या शिर पर शिवनाभिसे भी युक्त हो तो इस मूर्तिको सुख-सौभाग्यदायक भगवान् हरिहर जाने ॥ तथा—

चतुश्चक्रके भी हरिहर होते हैं नीचे और ऊपर करके दो मुख होते हैं ऐसी मूर्तिकी पूजा करनेसे गृहस्थोंके घर, खेत, धन, कुल सब नाश हो जाते हैं ॥ अतः इस लक्षणसे सिद्धमूर्ति ही गृहस्थोंकी अपूज्य है सब नहीं ॥ विष्णुरहस्यमें कहा है कि—मधुवर्णके, अत्यल्प, मध्यचक्रवाले चन्द्रबिम्बसे युक्त होते हुए, सुन्दर स्निग्धस्वरूपके हों तो वह सर्वव्यापी "हरिहर" भगवान् हैं। यह मूर्ति त्रिचतुश्चक्रकी भी होती है ॥

अथ सूर्यलक्षणम्

ब्रह्माण्डे—बाह्ये वाभ्यन्तरेवापि चक्रद्वादशसंयुता। सूर्यमूर्त्तिरितिख्याता सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ इति। स्कान्दे—षड्मुखं वर्त्तुलाकारं चक्रद्वादशसंयुतम्। शङ्खचक्रगदाखड्गरथचिह्नेन चिह्नितम्। कृष्णवर्णसुशोभाढ्यं रक्तरेखासमन्वितम्। सूर्यदेवं च विज्ञेयं सर्वकालफलप्रदमिति ॥

वैखानससंहितायाम्—

अष्टचक्रश्चतुश्चक्रः शंखचक्रसमन्वितः।
स्वर्णरेखासमायुक्तः सूर्यदेव उदाहृतः ॥ इति

अयं स्पष्ट एव द्वादशचक्रः।

अथ धर्मराजलक्षणम्

विष्णुरहस्ये—त्रिकोणस्तु भवेद्योवै चक्रं यत्र नदृश्यते। धर्मराजस्तु स प्रोक्तः शोकसन्तापकारकः ॥ इति। चक्रं न दृश्यते गूढचक्रत्वात्। एतस्यानुक्तचक्रसंख्याकत्वाद् द्विचक्रत्वम्।

अथ गणेशलक्षणम्

पुराणसंग्रहे—शुण्डादण्डेन दन्ताभ्यां शोभनाभ्यामलङ्कृता। एकेन

सूर्यनारायणका लक्षण—

ब्रह्माण्ड पुराणपर—बाहर वा भीतरकी ओर हो, बारह चक्रोंसे युक्त मूर्ति हो तो वह सर्वव्याधिके विनाशकारी सूर्यनारायण कहलाते हैं ॥ स्कन्द पुराणमें छः मुखके गोलाकार बारह चक्रोंसे युक्त, कालावर्ण और लाल रेखासे शोभित शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, और रथके चिह्नवाले, सभी कामनाओंके फल देनेवाले भगवान् सूर्यनारायण कहलाते हैं। (स्वरूपशब्दमभिप्रेत्य क्लीबत्वम् सूर्यदेवमित्यादौ अर्श आद्यचा सिद्धम्, आहुरित्यस्याध्याहारो वा) ॥ वैखानस संहीता पर—आठ + चार = बारह चक्रवाले सुवर्ण रेखा और शङ्ख चक्रसे युक्त हों तो सूर्यदेव कहे जाते हैं। सूर्यमूर्ति पर बारह चक्र होते हैं ॥

धर्मराजका लक्षण—

विष्णु रहस्यपर—जो त्रिकोणाकार है जिस पर चक्र नहीं दीखता है उस मूर्तिको शोक सन्तापकारी धर्मराज जानना चाहिये। चक्र इसलिये नहीं दीखता कि वह अतिसूक्ष्म वा गुप्त रहता है। द्विचक्री० ॥

गणेशजीका लक्षण—

पुराण संग्रहका वचन है कि, एक लम्बा सूँड़ और दो सुन्दर दाँत हों

थाऽथ दन्तेन रक्तबिन्दुभिरन्विता। पार्श्वभागैकवक्त्राच चक्राभ्यां शोभिता च या। गणेशमूर्तिः सा ज्ञेया विघ्नाघौघविनाशिनीति ॥ तथा—पूर्वलक्षण-संयुक्ता श्यामा रक्ताथवा शुभा। एतां यः पूजयेन्नित्यं तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ विघ्नाः सपदि लीयन्ते ह्यन्ते मोक्षो भवेद् ध्रुवमिति। अयं स्पष्ट एव द्विचक्रः।

अथ कुण्डलिनीनां लक्षणानि

ताश्च वैष्णवशैवादिभेदेन अनेकविधा भवन्ति। पुराणसंग्रहे—केशराढ्या शिरोभागे मध्येगर्तं भुजङ्गवत् सार्द्धत्रिवलयाकाररेखया लाञ्छिता तथा ॥ श्यामवर्णशिला या तु विष्णुकुण्डलिनी मता। शंखचक्रादिचिह्नैस्तु वक्त्रैकेन च संयुता। प्रसुप्तभुजगाकाररेखया वक्त्रमध्यके ॥ शोभिता या शिला श्यामा विष्णुकुण्डलिनी हि सा। अस्याः सम्पूजनान्मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ त्रिशूलैः केशरैर्वापि या शिला शोभिता भवेत्। वक्त्रेवा गर्तमध्येवा वलयाकाररेखया ॥ सार्द्धत्रिवलियुक्ता या प्रसुप्तभुजगेन्द्रवत्।

अथवा एक ही दाँत और लाल बिन्दुसे शोभित और पार्श्वभाग पर एक मुख हो वह भी चक्रसे शोभित हो तो उस मूर्तिको विघ्नोंके समूहको नाश करने वाले गणेशजी जानना चाहिये। तथा—पूर्वोक्त लक्षणसे सम्पन्न श्याम वा लाल वर्णवाली श्रीगणेश-मूर्ति शुभ होती है। जो नर इसकी नित्यपूजा करता है उसकी लक्ष्मी स्थिर रहेगी विघ्न वगैरह तत्काल नाश हो जाते हैं और निश्चय ही अन्त कालमें मोक्ष होगा।

॥ द्वि चक्री ॥ गणेशजीके लक्षण समाप्त हो गये ॥

अब कुण्डलिनियोंके लक्षण बताये जाते हैं—

कुण्डलिनियाँ शैव और वैष्णवके भेदसे कई तरहकी होती हैं ॥

पुराणसंग्रहका वचन है कि—शिरोभागमें केशर हो, मध्यभागमें सर्पाकार की गर्त (गड़ाहा) हो, अर्द्धभाग त्रिवलयाकार रेखासे चिन्हित हो तथा श्यामवर्ण शिला हो तो वह विष्णु कुण्डलिनी कहलाती है वलय = चूड़ी। एक मुख और शंख चक्रादि चिह्नोंसे युक्त, मध्यभागमें सोते हुए सापके आकारकी रेखासे शोभित और श्यामवर्णकी जो शिला होती है वह "विष्णु कुण्डलिनी" होती है। इसकी पूजा करनेसे मनुष्य भुक्ति-मुक्तियों का लाभ करता है।

शिव कुण्डलिनीके लक्षण—

जटा (केशर) वा त्रिशूलसे शोभित मुँह वा गर्तके मध्यभागमें वलयाकार रेखा और जैसे कि सोता हुआ साँप हो तदाकार सार्द्धत्रिवलीसे संयुक्त उस

तन्मध्ये त्वेकलिङ्गेन त्रिभिर्वा भूषिता भवेत् ॥ श्वेतबिन्दुभिराकीर्णा शिवकुण्डलिनी तु सा ॥ यस्तु पूजयते नित्यं शिवकुण्डलिनीं नरः । यावज्जीवं सुखं भुक्त्वा सोंते सायुज्यमाप्नुयात् ॥

तथा—गर्तेवा वक्त्रमध्ये वा योन्याकारेण रेखया। योनेरुपरि मध्ये वा कुण्डलीभूतसर्पवत् ॥ अर्द्धाधिकत्रिरेखाभिर्भूषिता या शिला शुभा । शक्तिकुण्डलिनी सातु देवानामपिदुर्लभा॥ शक्तिकुण्डलिनीं देवीं नित्यं यः पूजयेन्नरः । इन्द्रादिदुर्लभान् भोगान् भुक्त्वा निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मादिदेवशक्तीनामानन्त्याच्च खगेश्वर । शक्तिकुण्डलिनीभेदा ह्यनन्ताः सम्भवन्तिहि॥ तत्तच्चिह्नेन साज्ञेया सर्वलक्षणकोविदैः। गर्तेवा वक्त्रमध्येवा दन्तः शुण्डाथवा भवेत् ॥ पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्ता गाणेशीयञ्च सा भवेत्। सूर्यमण्डलयोगेन सौरीज्ञेया विचक्षणैरिति। एताः सर्वा अपि कुण्डलिन्यो निश्चक्रा एव भवन्ति । इति सर्वकुण्डलिनीनां लक्षणानि ।

त्रिवलीके बीचमें एक वा तीन लिङ्गोंसे भूषित एवम् श्वेतबिन्दुओंसे व्याप्त जो शिला है वह "शिव कुण्डलिनी" कहलाती है। जो मनुष्य शिवकुण्डलिनीकी नित्य पूजा करता है वह आजीवन सुख भोग करके अन्त कालमें सायुज्य गति को प्राप्त होता है ॥

शक्ति कुण्डलिनीका लक्षण—

गर्त वा मुखके बीचमें योनिके आकारकी रेखा और उस योनिके ऊपर वा बीचमें सर्पकी तरह कुण्डलाऽऽकार साढ़े तीन रेखाओंसे भूषित जो शुभ शिला है वह देवताओंसे भी दुष्प्राप्य "शक्ति कुण्डलिनी" होती है। जो नर नित्य शक्तिकुण्डलिनी देवीकी पूजा करता है वह इन्द्रादियोंके लिये दुर्लभ भोगोंका भोग करके मोक्ष हो जाता है ॥ हे गरुड़जी ! ब्रह्मादिक देवताओंकी शक्तियाँ अनन्त होती हैं इसलिये शक्तिकुण्डलिनियोंके भेदोंका अन्त न होना सम्भव है ॥

उन उन (देवताओंके आकार सदृश) चिन्हसे पता लगाकर लक्षणके ज्ञाता लोग उन उन नामकी देवशक्ति (कुण्डलिनी) का पहिचान करें ।

जैसे गणेश शक्ति—गर्त या मुख के अन्दर दाँत या सूढ़ होकर पूर्वोक्त लक्षण संयुक्त हो तो उसे गणेश कुण्डलिनी जानना चाहिये । एवम् सूर्य मण्डल से युक्त हो तो सूर्य सम्बन्धी कुण्डलिनी होती है ।

इसी तरह विद्वान लोगोंको चाहिये कि तत्तद्देवकुण्डलिनियोंका पता लगा लेवें ॥ ये सभी कुण्डलिनियाँ निश्चक्र होती हैं ॥

कुण्डलिनियों के लक्षण समाप्त हो गये ।

एवं मत्स्यादिदशमूर्तीनामेकोनत्रिंशल्लक्षणानि तथा केशवादिचतुर्विंशतिमूर्त्तीनामेकसप्ततिस्तथानन्तादिमूर्त्तीनां सप्तचत्वारिंशद् ब्रह्मणः पञ्च शिवस्य सर्वशङ्करसञ्ज्ञकमूर्त्योर्द्वित्वविवक्षया दश हरिहरसूर्यधर्मराजगणेशानामेकैकं कुण्डलिनीनां पञ्चेत्येवमेकसप्तत्यधिकशतसङ्ख्यकानि लक्षणानि वृत्तानीति ।

अथ पुनरेतासां मूर्त्तीनां सुलक्षणानि दुर्लक्षणानि च विविच्यन्ते ।

विष्णुरहस्ये—ब्रह्मोवाच । भगवन्देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । संशयं मे समुत्पन्नं छेत्तुमर्हस्य शेषतः ॥ शालग्रामं तु यत्पुण्यं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्र तिष्ठति विश्वात्मा सर्वदेवनमस्कृतः । तत्रोत्पन्नाः स्वयं बिम्बाः सूक्ष्माः सूक्ष्मतरास्तथा ॥ प्रादुर्भावैश्च विविधैर्लाञ्छनैश्च समन्विताः । अर्थदाः कामदाश्चैव धर्ममोक्षप्रदायकाः ॥ शस्ता अशस्ताः किम्भूता एतदाख्यातुमर्हसि । श्रीभगवानुवाच । शृणु ब्रह्मन् ! प्रवक्ष्यामि शालग्रामे स्थितं हरिम् । हरिस्तत्रस्थितो नित्यं प्रादुर्भावैरनेकधा ॥ लाञ्छनैर्विविधाकारैर्लाञ्छितं यच्च दृश्यते । चक्राङ्कितं हरेश्चापि शालग्रामस्य लक्ष-

---

उक्तप्रकार से मत्स्यादि दश मूर्तियों के उनतीस तथा केशवादि चौबीस मूर्तियों के एकहत्तर, अनन्तादि मूर्तियों के सत चालीस, ब्रह्माजी के पाँच, शिव और सर्वशङ्कर मूर्तिकी द्विविधत्व विवक्षासे दश और हरिहर, सूर्य, धर्मराज एवम् गणेशजी के एक एक, अपि च कुण्डलिनियों के पाँच, इन सबको इकट्ठे जोड़कर कुल एकसौ एकहत्तर १७१ मूर्तियों के लक्षण समाप्त हो गये ॥

अब फिर से उन उक्त मूर्तियों के सुलक्षण और दुर्लक्षणों का विचार किया जाता है ।

विष्णुरहस्य पर—

भगवान ब्रह्माजी ने कहा कि हे शङ्खचक्रगदाधर, देवदेवेश, भगवन्! मुझे सन्देह हो रहा है उसे सम्पूर्ण रूपसे आप निवारण करें । शालग्राम नामक पुण्यक्षेत्र तीनों लोकमें प्रसिद्ध है, वहाँ पर सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत विश्वात्मा भगवान स्थित हैं । उस जगह पर अनेकों अवतार और चिह्नोंसे युक्त होकर स्वयम् भगवानके सूक्ष्मातिसूक्ष्म बिम्ब उत्पन्न हुए हैं ये सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके दायक हैं, किन्तु योग्य अयोग्य क्या कैसे हैं ? आप इस बात का वर्णन करें। श्रीभगवानजीने कहा, ब्रह्मन् ! सुनिये—शालग्रामपर्वत पर अवस्थित हरि भगवानका मैं वर्णन करूँगा ! भगवान हरि उस स्थान पर कई अवतारोंसे रहते हैं । जो अनेकों चिह्न और आकारोंसे अङ्कित दीखते हैं । यद्यपि शालग्राम सम्बन्धी हरि देव चक्रसे चिह्नित भी हों तथापि यथायोग्य लक्षणोंका विचार करके

णम् ॥ यथायोग्यं विचार्यैव ग्रहीतव्यं प्रयत्नतः। आदौ शिलां परीक्षेत ग्राह्याग्राह्यविभागतः। स्थिरासना सुवृत्ता च फलाकारा यवानना। कृष्णा च पाण्डुरा पीता नीलाश्यामाथ शुक्लका। कपिलाभा च काचाभा दूर्वाभा रक्तपिङ्गला ॥ एताः शुभा शिलाग्राह्या मिश्राश्चैव विशेषतः। स्थिरासना परिज्ञेया स्वस्थासना सुखप्रदा ॥ वृत्ता सुवृत्तदा प्रोक्ता फलाकारा फलप्रदा। यवानना च विज्ञेया वाक्सौन्दर्यप्रदायिका ॥ मंत्रसिद्धकरी स्निग्धा नित्यं श्रीकान्तिदायिका। कीर्त्तिभाग्यप्रदा स्निग्धा पाण्डरा पापहारिणी ॥ पीता पुत्रप्रदा नित्यं लक्ष्मीशान्तिप्रदा तथा। नीलाबह्वन्दा ज्ञेया तथा वै कान्तिदायिनी। पुष्टिवृद्धिप्रदा श्यामा श्वेता सात्विकदायिनी ॥ नेत्रे उन्मीलिते यस्या अक्षसूत्रकमण्डलू। कपिलाख्या भवेन्मुद्रा ज्ञानैश्वर्यप्रदायिनी ॥ कामप्रदा च काचाभा दूर्वाभा पशुदायिका। रक्तारोग्यप्रदा नित्यं मिश्रामिश्रफलप्रदा ॥ धात्रीफलप्रमाणा या करसंपिहिता गता। पूजनीया शिलाभावे तत्रजातद्रुमोपिका ॥ तत्राप्यामलकी तुल्या सूक्ष्मावाऽतीव या भवेत्। तस्या-

---

ही यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकारसे कि पहले तो शिलाकी परीक्षा करे जो कि ग्राह्य अग्राह्य क्या है? सो ग्राह्याग्राह्य विभाग इस प्रकार का है— स्थिर आसनवाली, गोलाकार, फलाकार, यवमुखी, कालेवर्णकी, पाण्डुवर्णकी, नीली, पीली, साँवली, सुफेद, कपिल वर्णकी, काँच सदृश, दूर्वा वर्णकी, लाल भूरे वर्णकी और विशेषतः मिश्रवर्णकी इतनी शुभ शिलाएँ ग्राह्य होती हैं। स्थिरासनशिला वह है जो आसन पर ठीक बैठती हो वह सुखदायिनी होती है। वृत्तशिला वृत्तिदायक है। फलाकार फलदायक होती है। जौ की नोखके जैसे मुखवाली (यवानना) शिला वचन और सौन्दर्यको देनेवाली जाननी चाहिये। चिकनी शिला मन्त्रकी सिद्धि देती है और नित्य ही श्री, कान्ति, कीर्ति और भाग्यकी दायिका होती है, पाण्डु वर्णकी पापहारिणी होती है, पीतवर्णकी पुत्र, लक्ष्मी और शान्तिप्रदा होती है। तथा नील वर्णकी शिलाको अधिक अन्नदायिनी जाननी चाहिये। श्याम शिला पुष्टि और वृद्धि करती है। श्वेतशिला सत्व सम्बन्धी गुणदायिनी होती है। काच सदृश कामना की दाता और दूर्वावर्ण की (हरित) पशुदायिनी होती है। लालशिला आरोग्य फल को देती है और मिश्र वर्ण की शिला मिश्रफल दायिनी होती है ॥ जो आँवलेके प्रमाण की हो, हथेली के बाँध देने से हाथ पर छिप सकती हो ऐसी शिला की पूजा करनी चाहिये। यदि शिला न मिली तो उस पर्वत का वृक्ष भी पूज्य होता है ॥ उसमें भी आँवले की तुल्य वा उससे भी छोटी अतीव सूक्ष्मा जो शिला होती है हे ब्रह्मन्! उसी

मेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम् ॥ यथा यथा शिला सूक्ष्मा तथैव च महत्फलम् । तस्मात्तां पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धय इति ॥

पद्मपुराणे—श्यामाकृष्णा तथा पीता श्वेता कृष्णा च कापिला। अतिरक्ता धूम्रवर्णा पिशङ्गा मधुपिङ्गला ॥ बहुवर्णा कलङ्का च तथा च स्निग्धवर्णिनी । इत्यादि वर्णभेदेन ज्ञेया नानाविधाः शिलाः ॥

स्निग्धा सूक्ष्मा शीतलाङ्गा वृत्ताचोन्नतमस्तका। वामचक्रा चारुचक्रा मध्यचक्रा सुगह्वरा ॥ वनमालाधरा वृत्तवदना कमलादिवत् । एताग्राह्या विशेषेण साधकस्य सुखप्रदाः ॥ स्निग्धा सिद्धिप्रदा नित्यं सूक्ष्मा दिव्यफलप्रदा। सन्तोषं शीतलाङ्गा च वृत्तासिद्धिप्रदायिका ॥ वशीकरा चार्चनीया तथा चोन्नतमस्तका । सर्वसिद्धिकरी श्यामा कृष्णा कीर्त्तिविवर्द्धिनी ॥ श्वेता मोक्षप्रदा चैव पीता धनकरी स्मृता । सुखदा बहुवर्णा च रक्ता राज्यकरी तथा ॥ वामचक्रा मध्यचक्रा पुत्रपौत्रविवर्धिनी। कीर्त्तिप्रदा चारुचक्रा गह्वरा प्राणदा भुवि ॥ वनमालायुता चापि दारसौभाग्यदायिका। वृत्ताऽऽनना

पर मैं लक्ष्मी के साथ सदा निवास करता हूँ। जितनी शिला सूक्ष्म होती है उतना ही महान् फल होता है। इसवास्ते चतुर्वर्ग वा त्रिवर्गफलसिद्धि के लिए उसी सूक्ष्म शिलाकी पूजा करनी चाहिये। पद्मपुराण में कहा है कि अनेक वर्णों के भेद से कई प्रकार की शिलाएँ होती हैं जैसे, श्यामवर्ण की काली, पीली, सुफेद, खूबकाली, कपिलवर्ण की खूबलाल, धूम्रवर्णा सुनहरी, मधुवर्ण की, बहुवर्ण की कलङ्कयुक्त और स्निग्ध इत्यादि ॥

सूक्ष्म, स्निग्ध तथा शीतलअङ्ग की, गोलाकार, उन्नतमस्तकवाली, वामचक्रा, सुन्दरचक्रा, मध्यचक्रा तथा गह्वर (गुफा) युक्त, वनमालावाली गोल वदन वाली और कमलादिक से युक्त, विशेषतः इतनी शिलाएँ ग्राह्य होती हैं क्योंकि पूजक के लिये सुखदायक होती हैं ॥

अब इनके फल क्रमशः कहे जाते हैं—स्निग्ध शिला नित्य सिद्धिप्रद होती है, सूक्ष्म दिव्यफल को देती है, शीतलाङ्गी सन्तोष देती है, गोलाकार सिद्धिदायिका होती है, उन्नत मस्तकवाली पूजा से सबकी वशकारिणी होती है एवम् श्यामशिला सर्वसिद्धिकरी, श्यामा वा कृष्णा कीर्तिवर्द्धिनी, श्वेत मोक्षदात्री, पीली धनकरी, बहुवर्ण की सुखदायिनी, लाल राज्यदात्री तथा वाम वा मध्यचक्र की सन्तानवृद्धि करने वाली, सुन्दरचक्रकी कीर्तिदायिनी, गुंफावाली (गह्वरा) प्राणदात्री वनमालायुक्त स्त्री और सौभाग्य की दायिका होती है ॥

भुक्तिकरी वाचां कौशल्यदायिका ।। पद्मादियुक्ता सौभाग्यधनधेनुफलप्रदा । स्थिरासनयुता चापि राज्यभोगापवर्गदा ।। चक्रैस्तुकेशराद्यैर्वा लाञ्छनैस्सम-लङ्कृता । वनमालालाञ्छिताया तत्रास्ते श्रीसहायवानिति ।। ब्रह्मपुराणे—सर्वकर्मप्रदा सौम्या कराला भयदुःखदा। स्निग्धा च श्रीकरी नित्यं रूक्षा दारिद्र्यदायिनी ।। शुक्ला मोक्षप्रदा नित्यं रक्ता राज्यफलाप्तये । पीता दारिद्र्यनाशाय मिश्रा मिश्रफलाप्तये ।। सुमुखी श्रीकरी नित्यं तथा नीलाऽन्नदायिनी । कपिला हरते पापं ब्रह्मचर्येण पूजिता ।। दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव ध्यानयोगेन पूजिता । शालग्रामशिलाचक्रे संस्थितो भगवान् हरिः ।। निर्दहत्याखिलं पापं ज्वलितोग्निरिवेन्धनमिति ।।

पद्मपुराणे—नारद उवाच । शालग्रामशिलाभेदलक्षणं मूर्त्तिनिर्णयम् । कथ्यतां भगवंस्तस्याः फलं चापि शुभाशुभम् ।।

ब्रह्मोवाच । श्यामा नीला तथा पीता रक्तवर्णा तथैव च । पाण्डुरा कृष्णवर्णा च कपिलाश्चापि ताः शिलाः ।। पलीहरा स्यात्कपिला

तथा वृत्तमुखी, भुक्तिकरी और वाक्चातुर्य दायक, पद्म इत्यादि चिन्हयुक्त शिला सौभाग्य, धन और नवप्रसूता गौ की देने वाली और स्थिरासन से युक्त शिला राज्य, भोग और मोक्षप्रद होती है। जो शिला चक्र वा केशरादि चिन्हों से अथवा वनमाला से भूषित है उसपर लक्ष्मी सहित भगवान निवास करते हैं।

—ब्रह्मपुराण में—

सौम्यमूर्त्ति सर्व कर्मप्रदायिनी होती है इसीप्रकार करालमूर्ति भय और दुःखदात्री तथा स्निग्धमूर्ति नित्य श्रीप्रदा और रूक्षमूर्ति दारिद्र्यदायिनी होती है। मोक्ष के लिये श्वेत, राज्य प्राप्ति के लिये लाल, श्रीप्राप्ति के लिये सुमुखी मूर्तियाँ प्रशस्त होती हैं। तथा नील मूर्ति अन्नदायिनी होती है। ब्रह्मचर्य में रह कर कपिल मूर्ति की पूजा करने से (ब्रह्म हत्यादिक) पाप छूट जाते हैं, ध्यान योग से पूजा की जावे तो दर्शन और स्पर्शन से ही पाप दूर होता है ।। शालग्राम शिला चक्र में संस्थित हरि भगवान् लकड़ी को जलती हुई आग की तरह सम्पूर्ण पापों का दाह करते हैं।

पद्मपुराणमें—

नारदजी ने पूछा कि हे भगवन्। शालग्राम शिलाओं के सभेद लक्षण, मूर्ति का निर्णय और उसके शुभ अशुभ फलों का वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी ने कहा—वे शिलायें विभिन्न वर्ण की होती हैं; जैसे—श्याम, नील, पीत, रक्त, पाण्डु, कृष्ण एवम् कपिल वर्ण की ।। कपिलवर्ण की शिला

नीला लक्ष्मीप्रदायिका। पुष्टिवृद्धिप्रदा श्यामा शुक्ला मुक्तिप्रदायिनी ॥ पीता धनकरी ज्ञेया रक्ता राज्यकरीस्मृता। अतिरक्ता रोगदास्या त्कृष्णा कीर्तिप्रदायिका॥ पापघ्नी पाण्डुरा नित्यं रूक्षा चोद्वेगकारिणी। स्थूला निहन्ति चैवायुर्वक्रा दारिद्र्यदायिनी। स्निग्धा सिद्धिप्रदा शश्वन्निष्फला स्यादलाञ्छना। करालं विकरालं च अध ऊर्ध्वास्यमुष्णकम्। दर्दुरं स्फुटितं दग्धं त्रिकोणं च विवर्जयेत्॥ अन्तःस्फुटितचक्रञ्च बद्धचक्रं तथैव च। बहुरेखं बहुच्छिद्रं तिर्यक्चक्रं तथा त्यजेत्॥ वृत्तसूत्राष्टमो भागश्चोत्तमो मध्यमावुभौ। भागत्रयं कनीयस्तु शालग्रामस्य लक्षणम्॥ अधआस्यं क्षयकरमूर्द्ध्वमुच्चाटनं स्मृतम्। आयुष्यं हरते घृष्टं करालं कुलनाशनम्॥ दुर्दरं दग्धमुष्णं च दारिद्र्यकलिदुःखदम्। मित्रघ्नं बद्धचक्रं च त्रिकोणं बन्धुनाशनम्॥ बहुरेखं बहुच्छिद्रं विदुः पुत्रविनाशनम। विकले अर्थहानिः स्यात्कलङ्कक्षयकारकम्। इति

पत्नीनाश करती है, नील लक्ष्मीदायक होती है। श्याम वर्ण की पुष्टि और वृद्धिप्रद होती है। शुक्लवर्ण की मुक्तिदायिनी होती है एवम् पीली धनकरी, रक्तवर्ण की राज्यकरी मानी गयी है। अतिरक्तवर्ण की रोग दात्री, कृष्णवर्णकी यशस्करी, पाण्डुवर्ण की पापघ्नी और रूक्षवर्ण की सदा चित्तविभ्रम कारिणी समझी गयी हैं॥ स्थूल मूर्ति आयुक्षीण करती है, टेढ़ी दारिद्र्यदायिनी होती है तथा स्निग्धवर्णकी सिद्धिदायिनी और विनाचिह्नकी सदा निष्फल होती है। विकट, अति भयङ्कर, अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, कुछ गरम जैसी (मेढ़कके सदृश) खटखटाहट देनेवाली, टूटीफूटी, जली हुई और त्रिकोण इतनी मूर्तियोंका वर्जन करें। तथा भीतरमें फूटे चक्रवाली, सटे चक्रवाली बहुत रेखाओंसे युक्त, बहुत छिद्रोंसे युक्त और तिरछे चक्रवाली शिलाओंको भी त्याग देवें। (मूर्तिकी नापसे) गोलसूत्रका आठवाँ हिस्सा मुँह पर ठीक आ जाता हो तो उसे उत्तम, दोनों भागको बराबर करनेसे अर्थात् मूर्तिप्रमाण सूत्रका चौथा हिस्सा ठीक मूर्तिके मुँहके बराबरका होता हो तो उसे मध्यम एवं उक्त रीतिसे तीसरा भाग ही ठीक बैठता हो तो कनिष्ठ, इस प्रकार शालग्रामका लक्षण जानना चाहिए। अधोमुख क्षयकारी और ऊर्ध्वमुख उच्चाटनकारी होता है। टकराया हुआ शालग्राम आयुष्यका नाश करता है, विकट कुल नाश कर डालता है। खटखटाता, जला हुआ और उष्णसा दारिद्र्य, कलह और दुःखदायी होता है। सटे (बद्ध) चक्रवाला मित्रघाती, त्रिकोण बन्धुविनाशकारी होता है और बहुत रेखा तथा बहु छिद्रवाले शालग्रामको पुत्रविनाशकारी समझते हैं॥

स्कन्दपुराणे—स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च। रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूलात्वलाञ्छना ॥ कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका। बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथवा पुनः ॥ बद्धचक्राऽथवा काचिद्भग्नचक्रांत्वधोमुखी। स्निग्धा सिद्धकरी मंत्रे कृष्णा कीर्त्तिर्ददाति च। पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्रप्रदायिनी ॥ नीला संदिशते लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिनी ॥ रूक्षा चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिका ॥ स्थूला निहन्ति चैवायुर्निष्फलास्यादलाञ्छिता। कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका। बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवापुनः ॥ बद्धचक्राऽथवा यास्याद्भग्नचक्रात्वधोमुखी। पूजयेद्यः प्रमादेन दुःखमेवलभेत स इति। अग्निपुराणे—तथा व्यासमुखी भग्ना विषमा वक्रचक्रिणी। विषमावर्तनाभिश्च नारसिंही तथैव च। कपिला विभ्रमावर्ता रेखावर्ता च या भवेत् ॥ दुःखदा साच विज्ञेया सुखदा न कदाचन इति ॥ स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला तथैव समच-

---

लक्षण कला रहित शालग्रामदेव अर्थ नाश करते हैं और कलङ्क मूर्ति क्षयकारिणी होती है। स्कन्दपुराणमें—शिलाओंके स्वरूप निम्नलिखित प्रकारसे दर्शाये गये हैं। जैसे—स्निग्धा, कृष्णा, पाण्डुरा, पीता, नीला, रक्ता, रूक्षा, वक्रा, महास्थूला, निश्छिद्रा, कपिला, कर्बुरा, भग्ना, बहुचक्रा, एकचक्रा, बृहन्मुखी, बृहच्चक्रा, लग्नचक्रा, बद्धचक्रा, अथवा कितनी भग्नचक्रा और अधोमुखी भी होती हैं। अब क्रमशः इनके फल बताये जाते हैं—स्निग्धशिला मंत्रोंकी सिद्धिदात्री होती है। एवम् कृष्णा कीर्तिकरी, पाण्डुरा पापदहनी, पीता पुत्रप्रदायिनी होती हैं। नीला लक्ष्मीको देती है, रक्ता रोगप्रदायिनी, रूक्षा चित्तसंभ्रमकारिणी, वक्रा (टेढ़ी) दारिद्र्यकारिणी होती है, स्थूला आयुष्यनाश करती है और निश्छिन्द्रा निष्फल ही होती है। तथा च—कपिला, कर्बुरा (कपोत वर्णकी), भग्ना (टूटीफूटी), बहुचक्रा, एकचक्रा, विशालचक्रा, विशालमुखी, लग्नचक्रा, (जूटे हुए चक्रवाली) अथवा बद्धचक्रा, अथवा भग्न (छिन्न) चक्रा और अधोमुखी इन शिलाओंकी प्रमादसे जो नर पूजा करता है वह केवल दुःखभागी होता है। इत्यादि ॥

अग्निपुराणमें—

तथा—विस्तीर्णमुखी, भग्ना, विषमा, वक्रचक्रिणी, विषमावर्ता, विषमनाभि, नारसिंही, कपिला, विभ्रमावर्ता और रेखावर्ता इतने प्रकारकी जो शिला होती है वह केवल दुःखदायिनी मात्र है सुखदात्री कभी नहीं होती है। स्निग्धा (चिकनी), श्यामा, शुक्ला, समचक्रा, घोरमूर्ति, अनन्तमूर्ति, गम्भीरमूर्ति,

क्रिका ।। घोरमूर्त्तिरनन्ताख्या गम्भीरासम्पुटा तथा । सूक्ष्मामूर्त्तिश्च सुमुखी पूजिता सिद्धिदायिका । धात्रीफलप्रमाणा या करेणोभयसम्पुटा ।। पूजयेद्यः प्रयत्नेन भक्त्या तान्तु प्रपूजयेत् । पूजिते फलमाप्नोति इहलोके परत्र चेति ।

नरसिंहपुराणे—छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियम् । बर्वरे च महद्दुःखं शूलाग्रे मरणं ध्रुवमिति ।।

ब्रह्माण्डपुराणे—त्याज्यां शिलामथो वच्मि शृणु ब्रह्मन् समाहितः । तिर्यक्चक्रा परित्याज्या स्फोटा रूक्षा तथैव च ।। कुरूपा निष्ठुरास्या च कराला विकरालिका । कपिला विषमावर्त्ता व्यात्तास्या कोटरा तथा ।। आसने चलना भग्ना महास्थूला विगर्हिता । आसने सुषिरं यस्याश्चक्रेणैकेन संयुता । दर्दुरा बहुचक्रा च लग्नचक्राऽप्यधोमुखी ।। सच्छिद्रा च सरक्ता च वृत्तचक्रा प्रदग्धिका । चक्रेण वृत्तचक्रा च वृत्तचक्रा प्रकीर्त्तिता । बहुरेखा समायुक्ता भग्नचक्रा तथैव च ।। दीर्घचक्रा परित्याज्या पङ्क्तिचक्राविशेषतः । मस्तकास्या ह्यचिह्ना च वर्ज्यास्त्वेताः सदा बुधैः । क्रूरदंष्ट्रा

सम्पुट तथा सूक्ष्ममूर्ति और सुमुखी ये सब पूजा करनेसे सिद्धिदायिनी होती हैं। आवलेके प्रमाणकी जो दोनों हाथोंसे छिपी जा सकती हो, यत्नपूर्वक पूजा करने वालेको और भी अच्छी तरहसे उस मूर्तिकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजाके करनेसे पूजकको यहाँ पर और परलोकमें भी अच्छा फल मिलता है ।।

नरसिंह पुराणका प्रमाण मिला है कि—

छत्राकार मूर्ति पर राज्य, गोलाकार पर महान् ऐश्वर्य, और बर्बट (राजमाष सदृश) पर पूजा करनेसे बड़ा दुःख होता है, शूलाग्र (शूलकी नोक सदृश) पर पूजन करे तो निश्चय ही मृत्यु होती है।

ब्रह्माण्ड पुराणमें—

हे ब्रह्मन्! अब त्याज्य शिलाओं का वर्णन करता हूँ सावधान होकर सुनिये। तिरछे चक्रवाली, टूटी फूटी, रूखी, कुरूप, निष्ठुरमुखी, विकट रूपकी, विकराल (भयङ्कर), कपिलवर्णकी, विषमाऽऽवर्तवाली, फटे मुखकी, खड़हरी, आसन पर डोलनेवाली, टूटी हुई, अति स्थूल व विगर्हित इतनी शिलाएँ निन्दित होती ह। आसन पर छिद्रवाली, एक चक्रसे युक्त, दर्दुरा (खटखटाती), बहुतचक्रवाली, लग्नचक्रा, अधोमुखी, सछिद्रा, खूब लालवर्णकी वृत्तचक्रा "चक्रसे गोलाकार जो दीखती है वह वृत्तचक्रा कहलाती है।" बहुत रेखाओंसे युक्त भग्नचक्रा और दीर्घचक्रा इतनी शिलाएँ त्याज्य हैं। विशेष करके पङ्क्तिचक्राको तो त्याग ही देना चाहिये। मस्तक पर मुखवाली और बिना चिह्नकी शिलाओंका

समायुक्ता स्फोटा बुद्बुद्संयुता। अचिराच्छुष्कतां याति यस्यां लिप्तं तु चन्दनम् ॥ रूक्षा सा च शिला ज्ञेया पूजकानामनिष्टदा। कुरूपा कुत्सिताकारा निष्ठुरानिर्द्रवा स्मृता। स्ववेष्टनतुरीयांशमास्यं यस्याः शुभा हिसा॥ तस्मादधिक वक्त्रा च करालेति प्रकीर्त्तिता। तृतीयांशस्य संयुक्ता दंष्ट्रया विकरालिका॥ संवृतास्या परिज्ञेया वेष्टनाच्चाष्टभागतः। व्यात्तास्या चाधिका ज्ञेया वृत्ताधिक्येतु कोटरा॥ स्थूलात्वष्टाङ्गुलायामा पूजकस्याङ्गुलेन तु। अधिके तु महास्थूला तां गृही नतु पूजयेत्॥ अधोमुखास्त्वधश्चक्रा ऊर्ध्वास्या चापि निन्दिता। तिर्यक्चक्रान्विता सा स्याद्भ्रमणक्लेशसंयुता। क्रूरारोगप्रदा नित्यं स्फोटाच्चायुर्विनाशिनी॥ रूक्षाचोद्वेगदा नित्यं दुःखदारिद्र्यदायिका। कुरूपा दैन्यदा चैव निष्ठुरा पुण्यनाशिनी॥ अनस्या मौर्ख्यदा चैव कराला भयदायिका। ऐहिकामुष्मिकं हन्ति विकराला स्वभावतः॥ कपिला पत्निहा नित्यं व्यात्तास्या जयनाशिनी। कोटरा पूजकं

भी वर्जन कर देना चाहिये। क्रूर दाँतोंसे युक्त फुटी हुई और बुलबुलाती जैसे कि जिस मूर्ति पर लेप किया गया चन्दन शीघ्र ही सूख जाता है उस शिलाको रूक्षा (रूखी) जानना चाहिये। वह पूजकोंके लिये अनिष्टदायक होती है। कुरूपा उसको कहते हैं जो वदसूरत ही हो एवं निष्ठुरशिला वह होती है जो नीरस रहती है। पहले उस मूर्त्तिकी किसी सूत्रसे नाप करले और उस सूत्रका चतुर्थांशके बराबर जिस शिलाका मुख होता है वह शुभ मानी जाती है। इससे कुछ बड़े मुखवाली कराल (विकट) कहलाती है। पूर्वोक्त सूत्रकी नापसे तृतीयांश समान दाँतसे युक्त मुखवाली विकरालिका कहलाती है। उसी वेष्टन सूत्रका आठवां भागके समान मुखवाली संवृत्तास्या कहलाती है। उस नापसे अधिक व्यात्तास्या (फटेमुखवाली) और वृत्तकी अधिकता हो तो कोटरा जाननी चाहिये। पूजककी अंगुलीके प्रमाणसे आठ अङ्गुलकी लम्बी स्थूल कहलाती है। उससे भी अधिक नापकी हो तो महास्थूल जाननी चाहिये गृहस्थ उसे पूजा न करे। अधोमुखी, अधश्चक्रा और ऊर्ध्वमुखी भी निन्दित होती है। तिरछेचक्र वाली शिला भ्रमण और क्लेशदायिनी होती है। क्रूरमूर्त्ति रोगदायिका है फुटी हुई नित्य आयुका विनाश करती है। रूखी चित्त विभ्रम करनेवाली और नित्य दुःखदारिद्र्य दायिका होती है। कुरूप तकलीफ देती है निष्ठुर पुण्यनाशकारिणी होती है विनामुखकी मूर्खत्वदात्री और करालमूर्ति भयदायक होती है। एवंरीत्या विकराल स्वभाव ही से ऐहिक और परलोकको नष्ट करती है। कपिलवर्णकी पत्नीघातिनी और व्यात्तमुखी जयनाशिनी जाननी चाहिये। कोटरा पूजककी

हन्ति तथा बन्धुविनाशिनी ॥ आसने चलना नित्यं प्रवासस्य च दायिनी । भग्ना धनहरा नित्यं महास्थूला व्ययप्रदा ॥ गर्हिता पापदा प्रोक्ता कीर्त्तिहा सुषिरासना । एकचक्रा कुलघ्नीस्यान्मस्तकास्या च पुत्रहा ॥ दुर्दरा कुष्ठदा ज्ञेया बहुचक्राभयप्रदा । बहुचिन्ताप्रदा छिद्रा लग्ना चान्ध्यप्रदा हिसा ॥ अधोगतिप्रदा ज्ञेया तथैवाधोमुखा तु सा । वृत्तचक्रा बयो हन्ति यशोघ्नी बहुरेखिका ॥ पङ्क्तिचक्रा पतिं हन्ति बृहच्चक्रा गृहक्षयी । अचिह्ना निष्फला ज्ञेया निराशायाः प्रदायिनी ॥ शेषा या गर्हिता प्रोक्ता तां गृही न तु पूजयेदिति ।

स्कन्दपुराणे--अथाग्राह्यान्प्रवक्ष्यामि शालग्रामशिलागतान् । न स्थूलं न कृशं भिन्नं नातिकृष्णं नकर्कशम् ॥ करालं विकरालं च तिर्यक् चक्रं विदिङ्मुखम् । पृथुचक्रं चोर्ध्वचक्रमधःपार्श्वशिरोमुखम् ॥ वक्त्रदुष्टं बद्धचक्रमचक्रं वक्रचक्रकम् । भग्नचक्रं भग्नवक्त्रं तथा विषमचक्रकम् ॥ अणुचक्रं बहुचक्रं पङ्क्तिचक्रं विवर्णकम् । धूम्रातिरक्तकपिलं

ही हिंसा करती है । अथिच बन्धुविनाशिनी भी होती है । आसन पर हिलनेवाली नित्यप्रवासको देती है । भग्नशिला धनहारिणी और महास्थूल खर्च करानेवाली जाननी चाहिये ।

विगर्हित शिला पापको देती है, छिद्रासनवाली यशोविनाशक है । एवं एक चक्रा हो तो कुलघ्नी, मस्तक मुखी हो तो पुत्रघातिनी, खटखटाती हो तो कुष्ठदा, बहुचक्रा हो तो भयप्रदा, छिद्रवाली हो तो बहुचिन्ता प्रदायिनी, लग्नचक्रा हो तो पूजकको अन्धा बनानेवाली एवं अधोगति को देनेवाली, जाननी चाहिये । वैसे ही अधोमुखी भी होती है । वृत्तचक्रवाली आयुका नाश करती है, बहुत रेखावाली कीर्ति विनाशिनी होती है । पंक्तिचक्रवाली पतिहिंसा करती है, विशाल चक्रकी शिला गृहका क्षय करती है । बिना चिन्हकी शिला निष्फल जाननी चाहिये । क्योंकि वह कभी इच्छाकी पूर्ति होने नहीं देती है । उक्त लक्षणसे बची हुई निन्दित जो शिला कही गई है गृहस्थ उसे पूजा न करे ।

स्कन्दपुराणपर—ब्रह्माजीके प्रति भगवान्ने कहा है कि अब शालग्राम शिला सम्बन्धिअग्राह्यस्वरूपोंका वर्णन करूँगा । न तो स्थूल ग्राह्य है न तो कृश या भिन्न ही एवं न अतिकृष्ण ग्राह्य है नतो कर्कश ही । एवं कराल, विकराल, तिर्यक्चक्र, (तिरछाचक्रवाला) विदिशाओं पर मुखवाला, विशालचक्र, ऊर्ध्वचक्र, अधोमुख, पार्श्वमुख, शिरोमुख, मुख से दुष्ट, बद्धचक्र, चक्रसे रहित, वक्रचक्र (टेढ़े चक्र का) टूटेचक्रका, टूटेमुखका तथा विषमचक्रका; सूक्ष्म चक्रका, एवं बहुचक्र,

कलङ्कं मधुपिङ्गलम् ॥ सन्दिग्धवर्णं स्फुटितं भग्नोष्ठं वक्रकं तथा । अन्तः स्फुटितभग्नं च दुर्दरं निम्नमस्तकम् ॥ अतिस्थूलमतिह्रस्वमन्तःसलिल-धारिणम् । त्रिकोणं बहुरेखाढ्यं चिह्नहीनं चलासनम् ॥ अर्द्धमुन्नतमुष्णं च दग्धं घृष्टं च रूक्षकम् । छिद्रासनं बहुच्छिद्रं स्फोटमैहिक-वाञ्छिभिः ॥ पूजायां वर्जनीयं स्यान्निष्कामश्चेन्नदुष्यति । करालं कुलनाशं स्याद्विकरालमनिष्टदम् । कार्यविघ्नकरं तिर्यक् त्रिदिग्वक्त्रं तु शोकदम् ॥ अतुष्टिदं स्थूलचक्रमूर्द्ध्वमुच्चाटनं भवेत् । अधोवक्त्रं पार्श्ववक्त्रं क्षयरोगविधायकम् ॥ शिरोवक्त्रं पुत्रवृद्धिप्रतिबन्धकमीरितम् । दुःखप्रदं वक्रतुण्डं मित्रघ्नं बद्धचक्रकम् । अचक्रं सर्वशून्यं च पक्वचक्रं भय-प्रदम् । पापदं भग्नचक्रं च स्तेयदं भग्नवक्त्रकम् । विपदं विषमचक्रं बहुचक्रं कुलक्षयम् ॥ पङ्क्तिचक्रं पतिघ्नं स्याद्विवर्णं कुलनाशनम् । अधर्मदं धूम्र-वर्णमतिरिक्तं तु रोगदम् । कपिलं पत्निहन्त्यकलङ्कं क्षयकारकम् । मधुवर्णं मध्यमं स्याद्धन्ति संदिग्धवर्णकम् ॥ स्फुटितं पुत्रनाशाय भग्नौष्ठं भुक्तिनाश-

---

पंक्तिचक्र, कुरूप, धूँधला, अतिकाल, मैला, कलंकी, मधुवर्ण, संदिग्धवर्ण, फूटा हुआ, ओठकटा, टेढ़ा, भीतरसे टूटा या फूटा, दुर्दर, (दर्दुर पाठमाने तो मेंढक आकारका) गम्भीर मस्तक वाला, अतिस्थूल, अतिह्रस्व, अन्दरमें पानीवाला, त्रिकोण, बहुरेखासम्पन्न, चिन्हहीन चंचलासन, आधा किसीका ऊँचा, तपमान, जला, रगड़ा गया, रूखा, छिद्रासन, अधिक छिद्रका और फूटा हुआ इत्यादि शालग्रामोंकी पूजा नहीं करनी चाहिये। जो लोग इहलौकिक फलकी वान्छा रखते हैं: यदि निष्कामनासे पूजाकरे तो दोष नहीं है। अब उपरोक्त शालग्रामोंके क्रमशः फल बताये जाएंगे। कराल कुलका नाश करता है, विकराल अनिष्टदायी है, तिर्यङ्मुख कार्य में विघ्न डालता है, त्रिदिशामुख शोकदायी है इसीप्रकार स्थूलचक्र से असंतोष, ऊर्ध्वचक्रसे उच्चाटन, अधोमुख और पार्श्वमुखसे क्षयरोग, शिरोमुख से पुत्र वृद्धि का प्रतिबन्ध (संतान की रुकावट) बताया है। वक्रमुख दुःखदायी है। बद्ध चक्र से मित्रघात, अचक्र सर्वशून्य तथा पक्वचक्र से भय होता है। भग्नचक्र पापदायी है। भग्नमुख से चोरीका कलंक लगता है। विषम चक्र विपदायी है। बहुचक्र कुलका क्षय करता है। पङ्क्तिचक्र पतिका घात करता है। और विवर्ण कुल नाशकारी है। धूम्रवर्णवाला अधर्म देता है। अतिकाल रोग बढ़ाता है। कपिलवर्णका पत्नीघातकारी है। एवं कलङ्कीको क्षयकारी जानना चाहिये। मधुवर्ण मध्यम फलका होता है। संदिग्ध वर्णवाला घातकारी है। स्फुटित से पुत्रनाश, भग्नौष्ठ से भोग नाश होता है।

नम् । आस्थानभङ्गदं भग्नं दुदरं क्लेशदं स्मृतम् ॥ स्रयावहं नग्रशीर्षमति-स्थूलं धनापहम् । अतिह्रस्वमपूजार्हं त्रिकोणं बन्धुनाशनम् ॥ बहुरेखा-ङ्कितं दद्यादसत्यं राजसंसदि । सक्षतं तु सचिह्नं स्यात्स्थाननाशं चलास-नम् ॥ कुलवृद्धिविनाशाय अर्द्धमुन्नतमीरितम् । चित्तदाहदमुष्णं च दग्धं मृत्युभयप्रदम् । उद्वेगदायकं रूक्षं घृष्टच्छिद्रं तु रोगदम् । पैशून्यदं बहुच्छिद्रं स्फोटमायुष्यनाशनम् ॥ इति

अत्र करालाभयदुःखदेत्यादि शालग्रामदोषप्रतिपादकानि वाक्यानि गृहस्थविषयाणि ।

भग्नं विषमसानं च भग्नचक्रैकचक्रकम् ।

कपिलं नरसिंहं च वर्जयेच सदागृहीति ब्रह्मपुराणवचनात् । अधिकेतु महास्थूला तां गृही न तु पूजयेत् । शेषा या गर्हिता प्रोक्ता तां गृही न तु पूजयेदित्युदाहृतवचनाच्च ।

यद्वा सकामार्चनविषयत्वेन योज्यानि । करालं विकरालं चेत्युपक्रम्य

टूटाहुआ निवासस्थान का बिछोड़ा करनेवाला होता है ।

दुदंर क्लेशदायी समझा गया है । (क्वचिद्दुर्दुरमिति वा पाठः) मूलोक्त श्लोकोंका सुगमता के लिये वाक्यपरिवर्तनद्वारा अर्थ किया गया और जा रहा है । नतशीर्षसे स्रव, अतिस्थूल से धननाश जानना चाहिये, अतिह्रस्व पूजनीय नहीं होता है । और त्रिकोणसे बन्धुनाश, बहुरेखाङ्कित से राजसभा में असत्यता, (पोलापन) सचिन्हसे पुण्यक्षय, चलासन से स्थान नाश, अर्द्ध उन्नत से कुलवृद्धिका विनाश, तपमानसे चित्तपर जलन, दाघसे मृत्युका भय, रूक्ष से उद्वेग, घिसे छिद्रवाले से रोग, बहुछिद्र से पैशुन्यता और स्फोट से आयुष्यनाश जानना चाहिये ॥

यहां पर "कराला भयदुःखदा" इत्यादि शालग्राम दोष प्रतिपादक वाक्यों को गृहस्थ के लिये जानना चाहिये । क्योंकि टूटे हुए, विषम प्रमाण के, टूटेफूटे चक्रवाले, एक चक्र वाले, कपिलवर्ण के और नरसिंहजीके लक्षण वाले शालग्रामों को गृहस्थ सदा वर्जन करे ब्रह्मपुराणपर ऐसा वचन है । "पूर्वोक्त लक्षणों के अतिरिक्त" अधिक में महास्थूल मूर्ति की पूजा गृहस्थ न करें ॥ और "उक्तलक्षणों से बची हुई अर्थात् जो अयुक्त मूर्ति है उसे निन्दित जानकर गृहस्थ पूजा न करें । इत्यादि प्रमाणों का उदाहरण भी दिया है ॥ अथवा कामना की इच्छा रख कर उक्त गर्हित मूर्तियों की पूजा करना ठीक नहीं है, इत्यादि आप समझ लीजिये । इस वास्ते कि "करालं विकरालं च···" यहाँ

पूजायां वर्जनीयं स्यान्निष्कामश्चेन्नदुष्यतीत्येवं ब्रह्माण्डे—निष्कामे दोषाऽभावप्रतिपादनेनार्थात्तद्वर्जनीयत्वस्य सकाम एव पर्यवसितत्वात्। स्निग्धा श्यामा तथा शुक्लेत्याद्युक्तप्रकारेण शोभनमूर्त्तिपूजने नैवैहलौकिकपारत्रिकफलप्राप्तेश्च। अथवा मुख्यशालग्राममूर्त्तिसम्भवविषयत्वेन योज्यानि। तदसम्भवे तु शालग्रामपूजाया नित्यत्वात् रूक्षाद्या अपि शालग्राममूर्त्तयः पूज्याः।

मुख्याः स्निग्धादयस्तत्राऽमुख्यारूक्षादयो मताः। मुख्याभावेत्वमुख्याहि पूज्या इत्युच्यते परैरिति वचनात् ॥ खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं द्विधा स्थितम्। शालग्रामोद्भवं चक्रं शिलादोषं न संस्पृशेत् ॥ शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रिका। खण्डिता स्फुटितावापि शालग्रामशिला शुभेत्यादि वचनैर्मुख्यशालग्रामशिलामूर्त्त्यभावविषये खण्डितस्फुटितादीनां दोषाभावस्योक्तत्वाच।

से शुरू कर "निष्कामश्चेन्न दुष्यति" यहाँ तक से ब्रह्माण्ड पुराण में सकाम के लिये ही वर्जनीय शिला विषयक दोष बताया गया है, निष्काम के लिये कोई दोष नहीं। "स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला" इत्यादि प्रकार से सुन्दर मूर्ति की पूजा से ही ऐहलौकिक और पारत्रिक फल की प्राप्ति भी बतायी है। दर असल में तो ऐसा जानना चाहिये कि लक्षणोक्त मुख्य मूर्तियों के रहते अलक्षणों की पूजा नहीं होती है, यदि लक्षणोक्त मूर्ति न मिली तो गृहस्थों को भी जैसी तैसी प्राप्त मूर्तियों की ही पूजा करनी चाहिये। क्योंकि शालग्राम की पूजा होनी ही चाहिये कारण कि वह नित्य कर्म है। अतः उक्त प्रकार से यही सिद्ध होता है कि अभाव अवस्था में रूक्षादि सभी सबकी पूज्य होती है।

"कई सज्जनों ने कहा है कि स्निग्धादि मूर्तियां मुख्य हैं, रूक्ष इत्यादि गौण हैं। यदि मुख्य मूर्ति प्राप्त न हो सके तो अमुख्य (गौण) की ही पूजा करनी चाहिये" ऐसा वचन है और भी कहा है कि "चाहे खण्डित हो, फूट गयी हो, चाहे दो टूक हो गयी हो या उसका पार्श्वभाग ही भिन्न हो उस शिला को कोई दोष छू तक नहीं सकता है जब कि उस शालग्राम शिला पर उत्पन्न हुआ चक्र दीखता रहता है॥ और भी यदि खण्डित व फूटी टूटी हुई भी हो तो क्या है सचक्र शालग्राम शिला शुभ और पूजनीय ही होती है। इत्यादि वचनों द्वारा मुख्याभाव में गौण (खण्डित स्फुटितादि) पूजा का भी दोषाभाव बताते हुए विधान किया है।

इदमेवाभिप्रेत्य सर्वासां शालग्राममूर्त्तीनामभीष्टफलदायकत्वमुक्तम्।

तथा हि पञ्चरात्रागमे पाद्मसंहितायाम् —

"शालग्रामशिलाश्चेता सौम्या सर्ववरप्रदा। श्रीकरी पीतवर्णा च रक्ताकामप्रदायता। कृष्णा पुष्टिप्रदा नित्यं पिङ्गला भोगदा सदा। शिलाश्चक्रसरिज्जाताः सर्वा मोक्षफलप्रदा॥ भुक्तिस्वर्गगतिदाः सर्वा शिलाश्चक्रसरिद्भवाः। प्रादुर्भावैश्च मीनाद्यैस्तथा दिव्यायुधैरपि॥ लाञ्छिताः कौस्तुभाद्यैश्च भूषणैः कमलासन। अङ्किताः पूजनीयाः स्युर्भुक्तिमुक्तिफलार्थिभिः॥ सर्वाः स्वयम्भुवो ज्ञेया शिलाश्चक्रसरिद्भवाः। नित्य सन्निधिरेतासु परस्य परमात्मनः॥ न प्रतिष्ठा विधातव्या नचैवावाहनादिकम्। शालग्रामशिला यत्र पूज्यते भगवन्मयैरिति।

वसिष्ठसंहितायामपि—न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया। शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन्सन्निहितः सदा॥ मूर्त्यन्तरेषु बिम्बेषु नयष्टव्यं तदेवतत्। शालग्रामशिलायांतु यष्टव्या मम मूर्त्तय इति।

इसी प्रमाण का अभिप्राय रखकर सभी शालग्राम संबन्धी मूर्तियाँ पूजा के लिये अभीष्ट फलदायक होती हैं, ऐसा कहा है॥

पञ्चरात्रागम में पद्म संहिता पर प्रमाण आया है—

शालग्राम सम्बन्धी शिला सुफेदही सभी वर की देनेवाली सौम्य होती है। इसी तरह पीली श्रीकरी, लाल कामदा, काली पुष्टिदायिनी और मधुवर्णकी सदा भोगदा होती है। चक्रसरित् में उत्पन्न हुई सभी शिलायें कामना के अनुसार भोग, मोक्ष और स्वर्ग की दायिनी होती हैं। (सरित् = अल्पनदी)॥ हे ब्रह्मन्! मत्स्यादिक अवतारों से और दिव्य आयुध तथा कौस्तुभादि भूषणों से अङ्कित शिलाएँ भुक्तिमुक्त्यादि फलार्थियों की पूजनीय होती हैं। चक्र सरित् में उत्पन्न सभी शिलाएँ स्वयम्भू स्वरूप की हैं, इनके सन्निधि में परात्पर परब्रह्म रहते हैं। जिस जगह पर भगवद्भक्त लोगों द्वारा शालग्राम की पूजा की जाती है वहाँ पर उसमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये न तो आवाहनादिक करना चाहिये।

वशिष्ठ संहिता पर भी—शालग्रामकी पूजा में सदा विष्णुभगवान उसी शिला की सन्निधि में रहते हैं। इसलिये जप प्राणप्रतिष्ठा संस्थापन इत्यादि क्रियाकलापकी कोई आवश्यकता नहीं है। शालग्राम शिलाके रहते अन्यमूर्ति सम्बन्धि बिम्बपर नहीं पूजा करनी चाहिये। क्योंकि वह भी वही है। इस शिलापर तो मेरी मूर्तियां पूजनीय होती हैं।

अन्यत्रापि—शालग्रामशिलायां तु नावाहनविसर्जने। शालग्रामशिलादौ यन्नित्यं सन्निहितो हरिरिति ॥

मंत्रराजानुष्टुब्विधानेपि—अमन्त्रेण नवै पूज्यः स्वमन्त्रेण स्वमुद्रया। स्वध्यानेन सदापूज्यो नान्यथा पूजयेद्धरिम् ॥

स्वमूर्त्तिः स्वेन मंत्रेण पूज्यैवावाहनं विना। सर्वाः शिलाः समभ्यर्च्याः पुरुषसूक्तेन नित्यशः॥ आवाहने ऋचा दद्यात्पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः। तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै यास्ते चोद्वासने ऋचा॥ अन्यं पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यज्ञसम्पूर्तिसिद्धये इति॥ इदं तु प्रसङ्गादुक्तम्। इति ग्राह्याग्राह्यशिलाभेदलक्षणानि ॥

अथ ब्राह्मणादिवर्णभेदेन पूज्या शालग्रामशिलामूर्तयस्तदधिकारिणस्तत्संख्यादयश्चोच्यन्ते। हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे—ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु नृपैः संकर्षणस्तथा। प्रद्युम्नः पूज्यते वैश्यैरनिरुद्धस्तु शूद्रजैः। चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्या स्त्रयोराजन्यजातिभिः। वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथैकः

अन्यत्र भी कहा है—

शालग्राम शिलामें आवाहन विसर्जन कुछ नहीं होते हैं। क्योंकि हरिभगवान् नित्यही उन शिलादियों पर सन्निहित रहते हैं। मंत्रराजानुष्टुप् विधान में भी कहा है—बिनामंत्र से शालग्राम की पूजा नहीं करनी चाहिये। तत्तल्लक्षणोक्त तत्तन्मूर्ति के मंत्र मुद्रा और ध्यानसे सदा पूजा करनी चाहिये। अन्यथा हरि की पूजा न करें। आवाहन को छोड़कर तत्तन्मूर्ति, तत्तन्मंत्र से ही पूजा होती है।

नित्यप्रति पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा इत्यादि) से सभी शिलाओंकी पूजा करनी चाहिये। आवाहन की जगहपर वैदिक मंत्र से हरिभगवान् को पुष्पाञ्जली चढ़ावे एवं रीत्या उनको सम्बोधन के लिये भी वैदिक मंत्र का प्रयोगकरे। विसर्जन की जगह पर भी पूजा की सांगता सिद्धि के लिये दूसरी बार पुष्पाञ्जली चढ़ावें। इत्यादि। यह बात तो प्रसंग से कही गयी॥

ग्राह्याग्राह्यशालग्रामों के सभेद लक्षण समाप्त हुए।

अब आगे से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातिके भेद से शालग्राम शिला सम्बन्धि पूज्य मूर्तियां और उनके अधिकारी उनकी संख्या वगैरह सब बताये जाते हैं। विष्णुधर्मोत्तर खण्ड पर हेमाद्रि में कहा है कि—ब्राह्मणों को वासुदेव की, क्षत्रियों को सङ्कर्षण की, वैश्यों को प्रद्युम्न और शूद्रों को अनिरुद्ध की पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण उक्त चारों मूर्त्तियों की, क्षत्रिय तीन की, वैश्य दुई आग की एवं शूद्र अन्तिम एक की पूजा कर सकते हैं।

शूद्रजातिभिरिति ।। ब्रह्माण्डपुराणे—वासुदेवो विप्रजनैरुपास्यः पूजये त्सदा । सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्धश्च यथाक्रमम् ।। क्षत्रादिभिः पूजनीयाः सर्वकामफलप्रदाः । विप्राणां मूर्त्तयस्सर्वाः पूजनीयाः प्रयत्नतः ।।

पुराणसङ्ग्रहेऽपि—वासुदेवोब्राह्मणस्य पूजनीयोऽखिलेष्टदः । सङ्कर्षणः क्षत्रियस्य प्रद्युम्नो वैश्यपूजितः ।। अनिरुद्धस्तु शूद्राणाम्पूज्यस्सर्वफलप्रदः । विप्राणाम्मूर्त्तयस्सर्वाः पूजनीयाः प्रयत्नतः । क्षत्रियस्य त्रयः पूज्या वैश्यानां द्वयमेव च ।। शूद्रस्यैका भवेत्तार्क्ष्य सर्वदा सर्वसिद्धये इति ।

वृद्धगौतमेन तु विशेषोऽभिहितः । लक्ष्मीनारायणा १ ऽनन्त २ नृसिंहा ३ ऽच्युत ४ केशवाः ५ । हिरण्यगर्भ ६ प्रद्युम्न ७ गोपाल ८ गरुडध्वजाः ९ ।। रामा १० ऽनिरुद्धा ११ वक्रास्य १२ दामोदर १३ गदाधराः १४ । चतुर्भुज १५ महानील १६ मुकुन्द १७ पुरुषोत्तमाः १८ ।। पीताम्बर १९ हरिब्रह्म २० कृष्ण २१ श्रीधर २२ माधवाः २३ । वासुदेवे २४ ति विख्याताश्चतुर्विंशत्तथा शिलाः । वक्रास्यो वक्रं भुग्नमास्यं यस्य स हयग्रीव इत्यर्थः । महानीलो वामनः । वामनश्चातिह्रस्वश्च महानीलः

ब्रह्माण्डपुराण का प्रमाण है कि— ब्राह्मण लोग वासुदेव की सदा पूजा और उपासना करें । और क्रमशः सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के लिये हैं वे सर्वाभीष्टफलदायक हैं । कहने का मतलब यह है कि ब्राह्मणों के लिये तो सभी मूर्त्तियां यत्न पूर्वक पूजनीय होती हैं । इत्यादि ॥ पुराणसंग्रह पर लिखा है कि—ब्राह्मण के लिये पूजनीय सर्वाभीष्ट फलदायक वासुदेवजी ही हैं । तथा क्षत्रिय के पूज्य सङ्कर्षण, वैश्यों के प्रद्युम्न और शूद्रों के अनिरुद्ध हैं । वे सभी शुभ फल के दायक हैं ब्राह्मणों की सभी मूर्त्तियां विशेष यत्न से पूजनीय होती हैं बची तीन क्षत्रियों की और दो वैश्यों की इस प्रकार हे गरुडजी ! सर्वार्थ सिद्धि के लिये शूद्रों की एक अन्तिम मूर्त्ति मात्र सदा पूज्य होती है ।

इसपर वृद्धगौतमजी ने कुछ विशेष बताया है कि—निम्नलिखित चौबीस प्रकारकी शिलायें वासुदेव के नाम से कही जाती हैं । वे ये हैं—लक्ष्मीनारायण १ अनन्त २ नृसिंह ३ अच्युत ४ केशव ५ हिरण्यगर्भ ६ प्रद्युम्न ७ गोपाल ८ गरुडध्वज ९ राम १० अनिरुद्ध ११ वक्रास्य १२ दामोदर १३ गदाधर १४ चतुर्भुज १५ महानील १६ मुकुन्द १७ पुरुषोत्तम १८ पीताम्बर १९ हरिब्रह्म २० कृष्ण २१ श्रीधर २२ माधव २३ और वासुदेव २४ ॥ वक्रास्य कहते हैं टेढ़ेमुखवाले को अत एव वक्रास्य हयग्रीव जी हैं । महानील = वामन ।

सबिन्दुक इत्यग्निपुराणलक्षणवाक्यात्। ब्रह्मेति हरेर्विशेषणम्।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रयतीनामिष्टदोऽर्च्चितः।
त्रिवर्णस्याधमानां च न जात्वखिलयोषिताम्॥

तत्रादौ ब्राह्मणपूज्या मूर्त्तय उच्यन्ते।

शिलाश्चैकद्विपप्राष्टादशपञ्चदशान्विताः। पूजार्हास्सर्वदाद्यानाङ्गण्डकीसरिदुद्भवाः॥ लक्ष्मीनारायणानन्तहिरण्यगर्भपुरुषोत्तमचतुर्भुजसञ्ज्ञाः शालग्राममूर्त्तय आद्यानां ब्राह्मणानां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ क्षत्रियाणां पूज्या मूर्त्तयः

राज्ञामाद्यद्व्येकविंशदेकादशनवाष्टमीः। दश द्वाविंशतितमास्सर्वदाऽभीष्टदायकाः॥ लक्ष्मीनारायणानन्तकृष्णानिरुद्धगरुडध्वजगोपालराम श्रीधरसञ्ज्ञामूर्त्तयः क्षत्रियाणां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ वैश्यानां पूजनीया मूर्त्तयः

चतुर्विंशतिसप्तैव त्रयोदश चतुर्दश। एकोनविंशविंशैका नित्ययोग्या

वामन खूब छोटे बिन्दु वाले और महानील होते हैं, क्योंकि ऐसा अग्निपुराण पर लक्षण वाक्य में वामनजी को महानील बताया है। हरिब्रह्म पर जो ब्रह्मशब्द हैं वह हरिशब्द का विशेष्य है। वासुदेवजी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और संन्यासी में सब के लिये पूजाकरने से कामनानुसार फलदायक होते हैं। तीनों वर्ण और अन्त्यजों के भी पूज्य होते हैं। औरतों के कभी नहीं।

उनमें से पहले ब्राह्मण पूज्य मूर्तियाँ कही जाती हैं।

ब्राह्मणों को सर्वदा गण्डकी नदी में उत्पन्न एक, दो, छः, आठ, अट्ठारह वा पन्द्रह-संख्या की शालग्राम शिलाओं की पूजा करनी चाहिये। अर्थात् उक्त चौबीस शिलाओं में पहली शिला लक्ष्मीनारायण १ अनन्त २ एवं क्रमशः हिरण्यगर्भ ६ पुरुषोत्तम १८ चतुर्भुज १५ इन नाम की शिलाएँ पूजक ब्राह्मणों के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

क्षत्रियों की पूज्य मूर्तियाँ—

क्षत्रियों के लिये सर्वदा अभीष्ट फलदायक पूज्य मूर्तियाँ ये हैं—पहली, दूसरी, एक्कीसवीं, एग्यारहवीं, नवीं, अठवीं, दशवीं और बाईसवीं। अर्थात् लक्ष्मीनारायण २ अनन्त २१ कृष्ण ११, अनिरुद्ध ९ गरुडध्वज ८ गोपाल १० राम २२ इन श्रीधर २२ मूर्तियों की पूजा करना क्षत्रियों के लिये खूब अच्छा होता है॥

वैश्यों की पूज्य मूर्तियाँ—

वैश्यों के लिये चौबीसवीं, सातवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, उन्नीसवी, बीसवीं

शिला विशाम् ॥ वासुदेवप्रद्युम्नदामोदरगदाधरपीताम्बरहरिलक्ष्मीनारायण संज्ञा मूर्त्तयो वैश्यानां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

अथ सच्छूद्राणामर्चनीया मूर्तयः

त्रयोविंशैकविंशैकतुर्यैकादशमूर्तयः।
पञ्चमैकोनविंशास्स्युस्सच्छूद्राणां फलप्रदाः॥

माधवकृष्णलक्ष्मीनारायणाच्युतानिरुद्धकेशवपीताम्बरसञ्ज्ञामूर्त्तयः सच्छूद्राणां पूजायामतीव शुभदास्युरित्यर्थः।

चतुर्विंशतिमूर्त्तिष्वेषावशिष्टामूर्त्तयो नृसिंहहयग्रीवमहानीलमुकुन्दसञ्ज्ञा यतीनां पूजने प्रशस्ततरा इत्यर्थः।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति नचान्येषां कदाचन॥

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रा ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः। पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदमिति।

और पहली मूर्तियाँ पूजनकरने में अच्छी होती हैं।

अर्थात् वासुदेव २४ प्रद्युम्न ७ दामोदर १२ गदाधर १४ पीताम्बर १९ हरि २० लक्ष्मीनारायण १ वैश्यों की पूज्य इतनी प्रकार की मूर्तियाँ श्रेष्ठ होती हैं॥

सच्छूद्रों की पूज्य मूर्तियाँ—

सच्छूद्रों के लिये फलदायक मूर्तियाँ ये हैं—

तेईसवीं, एक्कीसवीं, पहली, चौथी, ग्यारहवीं, पचई, और उन्नीसवीं। अर्थात् माधव २३ कृष्ण २१ लक्ष्मीनारायण १ अच्युत ४ अनिरुद्ध ११ केशव ५ और पीताम्बर १९ इन नाम की मूर्तियां सच्छूद्रों के लिये अत्युत्तम शुभ फल दायक होती हैं।

इन चौबीस से बची हुई नृसिंह, हयग्रीव, महानील (वामन) और मुकुन्द नाम की मूर्तियाँ सन्यासी लोग के लिये पूजा करने में अत्युत्तम मानी गयी हैं।

पूजकों का अधिकार—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सच्छूद्रों का ही शालग्राम शिला की पूजामें अधिकार है और लोगों का कभी नहीं।

प्रमाणान्तर—

चाहे स्त्रियाँ हों चाहे शूद्र वा ब्राह्मण, क्षत्रिय और आदिपदेन वैश्य ही क्यों न हो वे सब शालग्राम शिला चक्र की पूजा करके शाश्वत गति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

ननु ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि। स्त्रीशूद्रयोः करस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः॥ पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः। शालग्रामशिलायां तु पूजयेत्पुरुषोत्तमम्॥ वाराहं नारसिंहं च हयग्रीवं च वामनम्। ब्राह्मणः पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्त्तिंच केशवम्॥ क्षत्रियः पूजयेद्रामं केशवम् मधुसूदनम्। नारायणं वासुदेवं वैश्यः सम्पूजयेत्तथा। बालगोपालवेषं च पूजयेत्स्त्री च शूद्रकः। द्विजानामेव नान्येषां शालग्रामशिलार्चनम्॥ स्थण्डिले हृदयेवाऽपि पूजयेच्छूद्रयोनिजः। बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेच्च द्विजः सदेति हारीतवचनाच्च। ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्नपूजयेदिति विष्णुधर्मोत्तरवाक्यात्। प्रणवोच्चारणाच्चैव शालग्रामशिलार्चनात्। ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेदित्यापस्तम्बवचनात्।

अब यहाँ पर कुछ बातों का विचार किया जाता है। शङ्का उठती है कि "ब्राह्मण चाहे शुद्ध हो वा अशुद्ध ही क्यों न हो किन्तु मैं उसी का पूज्य हूँ, स्त्री और शूद्र की तो बात ही न कीजिये क्योंकि उनका करस्पर्श मात्र भी मुझे वज्र स्पर्श से भी अधिक असह्य लगता है। यहां पर क्षत्रिय और वैश्यों के लिये बात नहीं आई क्योंकि वर्तमान मे वे विरले ही होते हैं। लेकिन जो हैं उनका अधिकार आगे जाकर बताया जायगा—

पञ्चसंस्कार (जातकर्म १ नामकरण २ चूड़ा कर्म ३ मौञ्जीवन्धन ४ और उपनयन ५) से युक्त मंत्र रत्नों का ज्ञाता पुरुषही शालग्राम शिलापर पुरुषोत्तम जी की पूजा करे, अर्थात् ब्राह्मण वराह, नृसिंह, हयग्रीव, वामन, विष्णु, यज्ञमूर्ति और केशव की पूजा करें। क्षत्रिय राम, केशव, मधुसूदन, नारायण, वासुदेव इन मूर्तियों की पूजा करे तथा वैश्य भी बालगोपाल मूर्ति की पूजा तो स्त्रियाँ और शूद्र भी कर सकते हैं। परन्तु खास बात तो यह है कि उनको द्विज कहते हैं जो जन्म और संस्कार से निष्पन्न हैं अर्थात् जनेऊ वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) द्विजातियों का ही शालग्राम शिलाकी पूजा में अधिकार होता है शूद्र पूजा करना चाहे तो चबूतरे वा हृदय पर (उनकी कल्पना करके) पूजा कर सकता है। द्विजलोग बालकृष्ण स्वरूपधारी भगवान की सदा पूजा करें", हारीतजी के इस वचन से और "ब्राह्मण नित्य पूजा करे, क्षत्रियादि न करें", विष्णुधर्मोत्तर के इस वाक्य से और भी—"ॐकार का उच्चारण, शालग्राम शिला की पूजा और ब्राह्मणी पर गमन करने से शूद्र हो तो चाण्डाल हो जाता है",

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।
स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मम ॥ इति

पाद्मलिङ्गभविष्यपुराणे क्षत्रियादीनां शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजननिषेधात्क्षत्रियादिभिः शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजनं कर्त्तव्यमित्युक्तं कथमुपपद्यत इतिचेत् सत्यम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां त्रयाणां मुनिसत्तम । अधिकारः स्मृतः सद्भिः शालग्रामशिलार्चने ॥

स्त्रीशूद्राऽनुपनीतानां षण्ढानां च विकर्मिणाम् ।
नैवाधिकारो विज्ञेयः शालग्रामशिलार्चने ॥

विष्णुभक्तैर्वैष्णवैश्च गोब्राह्मणहितेरतैः । शालग्रामशिलाचक्रं पूजनीयंसदा मुने ॥ इत्यादि पद्मपुराणवचनैः पूर्वोदाहृतवचनैश्च क्षत्रियादीनां शालग्रामशिलामूर्तिपूजाभ्यनुज्ञाश्रवणात् ब्राह्मणस्यैव पूज्योहमित्यत्रैवकारोऽशुचिक्षत्रियादिव्यवच्छेदपरोऽवगम्यते । उत्तरत्र शुचेरप्यशुचेरपीत्युक्तत्वात् ।

आपस्तम्बजी के इस वचन से "अशुचि, शुचि जो हो, मैं तो ब्राह्मण का ही पूज्य हूँ, स्त्री शूद्रों का तो करस्पर्श मात्र भी, मुझे वज्रस्पर्श से भी अधिक असह्य हो जाता है," इस तरह से पद्म, लिङ्ग और भविष्य पुराणों पर क्षत्रियादिक के लिये शालग्राम पूजाका निषेध भी बताया गया है, अब कहिये कि, जिन प्रमाणों से शालग्राम की पूजा करना क्षत्रियादि का भी कर्तव्य बतलाया है, (प्रमाण के विरोधसे) वह कैसे बन सकेगा? यदि विधि निषेध दोनों प्रमाण को लेकर ऐसा कहिये तो, ठीक ही है परन्तु मतलब यह है कि—

"हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों का शालग्राम शिला की पूजापर अधिकार है ऐसा सज्जनों ने बताया है। अतः स्त्री, शूद्र, अकृत व्रतबन्ध तथा नपुंसक और कुकर्मियों का शालग्राम शिलापर पूजा करनेका अधिकार नहीं है।

हे मुनीश्वर ! जो वैष्णव हैं, गोब्राह्मणों के लिये हित चाहनेवाले विष्णुभक्त, उनको सदा शालग्राम सम्बन्धी शिला चक्र पर पूजा करनी चाहिये।"
इत्यादि पद्मपुराण के वचन और पूर्वोक्त प्रमाण के वचनों से भी क्षत्रियादियों के लिये भी उक्तशिला पूजनमें अधिकार दिये गये वचन भी सुनने में आये हैं अतः ऐसा भाव मालूम पड़ता है कि "ब्राह्मण का ही मैं पूज्य हूँ" ऐसा मूलमें "निश्चयात्मक ब्राह्मणस्यैव" पर जो एवशब्द आया है उसका अर्थ ऐसा जानना चाहिये कि शुचि वा अशुचि दोनों अवस्थामें ब्राह्मण के लिये पूजा का अधिकार दिया गया है क्षत्रियादि के लिये तो शुचि ही अवस्थामें अधिकार दिया गया है, अशुचिअवस्थामें नहीं। क्योंकि ब्राह्मण को निर्देश करते हुए आगे जाकर कहा है कि—"शुचेरप्यशुचेरपि" इत्यादि। अतः यही कहना

अतोऽयमर्थः। शुचेरप्यशुचेरपि ब्राह्मणस्यैवाहं पूज्योनान्यस्य। क्षत्रियादेस्तु शुचेरेवाहं पूज्यो नाशुचेरिति। उत्तरार्द्धं तु यथाश्रुतमेव।

अतएव विष्णुधर्मोत्तरवाक्येऽपि क्षत्रियादिरित्यशुचिक्षत्रियादिपरो व्यवतिष्ठते। एवं च सति क्षत्रियादिपूजानिषेधकवचनानामशुचिक्षत्रियादिमात्रनिषेधपरत्वात् क्षत्रियादीनां शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजाविधायकानि शुचिक्षत्रियादिपूजाविषयत्वेन योजनीयानि। इयाँस्तु विशेषः। पूर्वोदाहृतवाक्येषु शूद्रादीनामस्पर्शपूजायामधिकारावगमात् तेषां स्पर्शमात्रं निषिद्धमित्यवगम्यते। एवं च सति शूद्रादिपूजानिषेधकवचनानां स्पर्शमात्रनिषेधपरत्वात् शूद्रादीनां शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजाविधायकानि वाक्यानि स्पर्शहीनपूजाविषयत्वेन योजनीयानि।

अतएव बृहन्नारदीयेऽप्युक्तम्–स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर। स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य च॥ शूद्रोवाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा। केशवं वा शिवं वाऽपि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुत इति॥

ठीक है कि ब्राह्मण किसी भी अवस्थामें शालग्राम की पूजा कर सकता है और क्षत्रियादिक शुद्ध अवस्था में ही॥ पूर्वोक्त श्लोक का उत्तरार्द्ध तो सुगमता से ही मालूम पड़ता है।

अतएव यहभी जान लीजिये कि, विष्णु धर्मोत्तर के वाक्य में क्षत्रियादिक के लिये जो निषेधका विधान है। वहाँ पर अशुद्ध क्षत्रियोके लिये विधान किया गया है। अतः क्षत्रियादिक अशुचि अवस्था में उक्त शिलाकी पूजा न करें शुद्ध हों तो स्वलिङ्गोक्त लक्षण के अनुसार करें ही, इत्यादि पूर्वोक्तविधिनिषेध वचनों का भाव यही होता है इत्यादि ऊहापोह कर लीजिये।

इतनी विशेषता है कि पूर्वोदाहृत वाक्यों से यही मालूम होता है शूद्रादियोंके लिये पूजामात्र का निषेध नहीं किन्तु स्पर्शपूजाका निषेध है। अत एव शूद्रादिक के लिये जो निषेध है, स्पर्श का निषेध है, इस उपपत्तिसे यह भी जानना चाहिये कि शूद्र पूज्य मूर्तियों का जो विधान किया है वह स्पर्शहीन पूजाके लिये किया गया है। इत्यादि स्वयं विचार करके समाधान कर लीजिये॥

अत एव बृहन्नारदीय पर भी कहा है कि—

हे राजन्! स्त्रियों का, व्रतबन्ध से रहित व्यक्तियों का और शूद्रों का भी विष्णु स्वरूप शालग्राम और शङ्कर स्वरूप बाणलिङ्ग के स्पर्श के लिए अधिकार नहीं है।

शूद्र हो वा व्रतबन्धहीन व्यक्ति हो, स्त्री हो वा पतित हो, विष्णु (शालग्रामशिला) वा शिव (नर्मदेश्वर लिङ्ग इत्यादि) को छूने पर नरक को जावे

क्षत्रियवैश्ययोरेव स्पर्शवत्पूजायामधिकारो नान्येषामित्याशयः । अतो ब्राह्मणैः शुचिक्षत्रियवैश्याभ्यां च स्पर्शपूर्विका शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजा कार्या नान्यैरितिसिद्धम् । तत्र बृहन्नारदीयवाक्येऽपि शालग्रामशिलार्चने स्त्रीशूद्रविषयको यो निषेधः ससत्स्त्रीसच्छूद्रव्यतिरिक्तो ज्ञेयः । अतः सत्स्त्रीभिः सच्छूद्रैश्च ब्राह्मणद्वारा शालग्रामार्चनं कर्त्तव्यम् ।

तथाचोक्तं वाराहपुराणे—शालग्रामो न स्प्रष्टव्यो हीनवर्णैर्वसुन्धरे। स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन । स याति नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् । यदिभक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे । दूरादेवाऽस्पृशन्पूजां कारयेत्सुसमाहित इति ॥

पद्मपुराणे पुराणसंग्रहेच—दीक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः । कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम् ॥ इति अतः सत्स्त्रीभिः सच्छू-

---

हैं। इत्यादि प्रमाण से यही सिद्ध होता है क्षत्रिय वैश्य तक छूकर पूजा कर सकते हैं और लोगों को छूकर पूजा करने का अधिकार नहीं है। "अतः ब्राह्मण और शुद्ध क्षत्रिय-वैश्य भी छूकर पूजा करें और लोग छूकर न करें, यह फलितार्थ होता है"।

बृहन्नारदीय पर शालग्राम शिला की पूजा के बारेमें जो स्त्री शूद्रों का निषेध बताया है वह सती स्त्री, और सच्छूद्र को छोड़ लर अन्यस्त्री और असत् शूद्रों के लिये निषेध जानना चाहिये। सत्स्त्री, सच्छूद्र भी छूकर कभी पूजा न करें। तब क्या करें ?, बिना छुए ही शालग्राम शिला की पूजा करें वा ब्राह्मण द्वारा करावें ॥

इसी सम्बन्ध में वराहपुराण पर भी कहा है—हे पृथिवी। हीन जातियों को शालग्राम का स्पर्श करना नहीं चाहिये। स्त्री और शूद्रोंका तो करस्पर्श मात्र भी मुझे वज्रस्पर्श से अधिक मालूम पड़ता है। जो स्त्री वा शूद्र मोह से भी कभी छूवे तो जबतक (भूतसंप्लव) महाप्रलय नहीं होगा तबतक घोरनरक में सड़ेंगे। हे पृथिवी ! यदि शालग्राम की पूजापर स्त्री शूद्रों का भी प्रेम हो तो बिना छुए ही सावधान होकर दूरही से पूजा करावें। इत्यादि ॥

पद्मपुराण और पुराण संग्रह पर—

दीक्षामन्त्र से युक्त होकर मद्यपान से रहित शूद्रादियों को ब्राह्मण द्वारा शालग्राम शिलाकी पूजा करनी चाहिये। इत्यादि ॥

उपरोक्त प्रमाणों का सारांश यही सिद्ध होता है कि अच्छे शूद्र वा अच्छी स्त्रियां यदि दीक्षायुक्त भी हो तो (बिना छुए ही अथवा) ब्राह्मण द्वारा उक्त शिलाओं की पूजा करावें।

द्रैश्च ब्राह्मणद्वारा शालग्रामार्चनं कर्तव्यमिति च सिद्धम्। इति ब्राह्मणादि-पूज्यशालग्रामशिलामूर्तिविचारः।

अथेदानीं शालग्राममूर्त्तयः कतिसङ्ख्याकाः पूजानीया इत्यपेक्षायामुच्यते। पद्मपुराणे—शालग्रामाः समाः पूज्या विषमा न कदाचन। समेषु न द्वयं पूज्यं विषमेष्वेकएवहीति॥ अत्र विशेषो वैखानससंहितायाम्—चतुर्मूर्त्तिश्च षण्मूर्त्तिरष्टौच दश सङ्ख्यकाः। आदित्यसङ्ख्यकास्तद्वत्तथैव मनुसङ्ख्याकाः॥ तथा षोडशसङ्ख्यातास्तथाविंशतिरीरिता। द्वात्रिंशद्युद्धतत्वाख्याश्चत्वारिंशद्विशेषतः। चारुवर्णा च शोभाढ्या चतुःषष्ठिस्तथाऽपरा॥ अष्टाशीतिर्महामूर्त्तिः शतमष्टोत्तरं तथा। प्रयत्नेनैव संगृह्य पूजनीया विचक्षणैः॥ चतस्रः पूजिता येन पोषिताः सर्वदेवताः। षण्मूर्त्तिरष्टमूर्त्तिर्वा तथैव दशसङ्ख्यकाः॥ पूजयित्वा विशेषेण शिवतुल्यो भवेन्नरः। द्वादशपूजिता येन द्वादशात्मा भवेच्च सः॥ मूर्त्तीनां षोडशानां तु पूजां कृत्वा विधानतः। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य नात्रकार्या विचारणा॥ गायत्रीवर्णसङ्ख्याया विंशतेश्च तथा ऋषे। पूजनाच्च नरो नित्यमश्वमेधफलं लभेत्॥ द्वात्रिंशत्पूजयित्वा

इस प्रकार ब्राह्मणादि के पूज्य शालग्राम शिलामूर्तियों का विचार समाप्त हो गया।

अब शालग्रामसम्बन्धी कितनी शिलाएँ पूजा करनी चाहिये? इस पर विचार किया जाता है।

पद्मपुराण पर प्रमाण आया है कि—शालग्राम जोड़े जोड़े पूज्य होते हैं बिजोड़े कभी नहीं। जोड़े पर एक जोड़ा ही अर्थात् दो शालग्राम पूज्य नहीं होते हैं, और बिजोड़ोंपर तीन पाँच इत्यादि नहीं किन्तु एक ही पूज्य होता है।

यहाँ पर कुछ विशेष बात है, वैखानससंहिता पर कहा है कि—शालग्राम मूर्तियोंमें चार, छः, आठ, दश, बारह, चौदह, सोरह, बीस, चौबीस, बत्तीस, चालीस, इत्यादि सुन्दर और शोभासम्पन्न महामूर्तियाँ चौंसठ, अट्ठासी तथा एक सौ आठ, पर्यन्त मूर्तियोंका जहाँ तक बने यत्नपूर्वक संग्रह करके विद्वान लोग पूजा करें।

कितनी की पूजा से क्या फल है? सो बात अब कही जाती है। जिसने चार मूर्तियों की पूजा की है समझिये कि उससे सभी देवता लोग प्रसन्न हुए। मनुष्य छः आठ वा दश मूर्तियों की पूजा करके शिवतुल्य हो जाता है। जिसने बारह की पूजा की है जानिये कि वह सूर्य नारायण ही हैं। सोलह मूर्तियों की पूजा करने से पूजक को सर्व सिद्धि मिलती है। हे ऋषे! बीस वा गायत्री संख्यक अर्थात् चौबीस मूर्तियोंकी पूजासे मनुष्य को नित्य ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त

तु शिवसान्निध्यमाप्नुयात् । चत्वारिंशत्पूजयित्वा विष्णोः सालोक्यतां व्रजेत् ॥ चतुःषष्ठिस्तथा मूर्त्तिस्तद्वच्चाशीतिसङ्ख्यकाः । फलं शृणुध्वमेतासां पूजां कृत्वा विधानतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् । मूर्त्तयः शतसङ्ख्याका नानावर्णविभूषिताः ॥ गृहे यस्य प्रपूज्यन्ते तस्य लक्ष्मी स्थिरा भवेत् । नारायणं वासुदेवं शिवनाभं तथैवच ॥ सुदर्शनं विशेषेण पूजयित्वा प्रयत्नतः । सर्वयज्ञफलं तेषां सदा लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ शिलाशुद्धिं चक्रशुद्धिं वर्णशुद्धिं तथैवच । केशराणां च संशुद्धिं ज्ञात्वा पूजां समाचरेदिति ॥ इति पूजनीयशालग्राममूर्त्तिसङ्ख्याविशेषः ।

अथ नानापुराणोक्तशालग्राममाहात्म्यं वर्ण्यते तत्रादौ वाराहपुराणे—

शिलाद्वादशवै देवि शालग्रामसमुद्भवाः ।
विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते ॥

हो जाता है। बत्तीस की पूजा करके शिवजी के सान्निध्य पर पहुँचता है। चालीस मूर्तियों की पूजासे विष्णु भगवान के सालोक्य पर पहुँच जाता है। (सान्निध्य, सालोक्य ये सब मोक्षविशेष के नाम हैं) चौंसठ वा अस्सी (वा पूर्वोक्त प्रमाण से अट्ठासी मूर्तियों की पूजाके फल सुनिये । इनकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य निष्पाप होता हुआ विष्णु सायुज्य को ही प्राप्त हो जाता है । जिसके घर पर नानावर्णसे सुशोभित एकसौ शालग्राम मूर्तियाँ पूजित होती हैं उसके लिये लक्ष्मी अटल रहती है । नारायण, वासुदेव, शिवनाभ एवम् विशेष करके सुदर्शन सञ्ज्ञक मूर्तियों की यत्नपूर्वक पूजा करके (सोम, अग्निष्टोम, अश्वमेध इत्यादि हविर्यज्ञ वा अष्टका, अन्वष्टका, दर्शपौर्ण मास, पार्वण इत्यादि पाकयज्ञ) सभी यज्ञों के फल मिल जाते हैं, और उन पूजकों के घर पर लक्ष्मी सदा अटल रहती है । पूजकों को पूजारम्भ से पहले ही इन बातों का ज्ञान अवश्य रहना चाहिये-जोकि-शिलाशुद्धि, चक्रशुद्धि वर्णशुद्धि, और केसरों की संशुद्धि । मतलब यह है कि इन शुद्धियों को बचा कर पूजा करनी चाहिये । तब यथोक्त फलप्राप्त होता है, अन्यथा विपरीतफल होना सम्भव है ।

॥ इति पूजनीय शालग्राम संख्या विशेषः ॥

अब नाना शास्त्रोक्त शालग्राम का माहात्म्य वर्णन किया जाता है

पहले वराह पुराण के अनुसार—

भगवान वराहजी कहते हैं कि हे पृथिवीदेवि ! जिस सज्जन मनुष्य ने शालग्राम पर्वत के सकाशसे उत्पन्न हुई शिलाओंकी पूजा की है उसके पुण्यों का फल मैं तुमसे कहता हूँ (सुनो) ॥

कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः। यत्स्याद्द्वादशकल्पैस्तु दिनेनैकेन तद्भवेत्॥ यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम्। तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि॥ पद्मपुराणे—देवदूतविकुण्डलसम्वादे। अथवा सर्वदा पूज्यो वासुदेवो मुमुक्षुभिः। शालग्रामशिलाचक्रे वज्रकीटविनिर्मिते। अधिष्ठानं च तद्विष्णोः सर्वपापप्रणाशनम्॥ सर्वपुण्यप्रदं वैश्य सर्वेषां मुक्तिदं परम्। यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे॥ राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम्। यदामनन्ति वेदान्ता ब्रह्म निर्गुणमच्युतम्। तत्प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्चनात्॥ यथाकाष्ठस्थितो वन्हिर्मथ्यमानः प्रकाशते। तथैवात्मस्थितं ज्ञानं पूजनाद्धिप्रकाशते॥ अपि पाप समाचाराः कर्मण्यनधिकारिणः। शालग्रामार्चकावैश्य नैव यान्ति यमालयम्। तत्तथा रमते लक्ष्म्या न तथा

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक लक्षणयुक्त एक सौ शालग्राम शिलाओं की नित्यप्रति पूजा करता है उसे शङ्करजी के द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग पर सुवर्णके सदृश कमलों को चढ़ाकर बारह कल्प पर्यन्त पूजा करने से जो फल होना चाहिये वह फल तो एक दिन की पूजा मात्र से प्राप्त हो जाता है। सैकड़ों वर्षोंसे भी उसफल का मुझसे वर्णन नहीं किया जां सकता है॥ (सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इनके देवताओं की आयु के हिसाब से ७१ वार बीतने पर एक मन्वन्तर वा कल्प हो जाता है)

देव दूत और विकुण्डल के सम्वादमें पद्मपुराण पर कहा है कि—पूर्वप्रसङ्ग के उपरान्त, हेवैश्य! अथवा मुक्ति की इच्छा रखने वालों को चाहिये कि वज्रकीट से निर्मित शिलाचक्र पर भगवान वासुदेवजी की सर्वदा पूजा करें। वह—(शालग्राम पर्वत) सभीपापों का ध्वंस करनेवाला सर्वपुण्यप्रदायक और सब के लिये मुक्तिदायक परमपवित्र विष्णुदेव का स्थान है। जब स्थान ही तो ऐसा है फिर शालग्राम शिला चक्र की पूजा का क्या वर्णन किया जावे, जो नर उसपर हरि की पूजा करता है उसे जानना चाहिये कि उसने प्रतिदिन एक हजार राजसूय यज्ञ कर लिये।

वेदान्तिलोग जिस अच्युत निर्गुणब्रह्म का अभ्यास करते हैं उनका प्रसाद भी शालग्रामशिला की पूजा करने से मनुष्यों को मिल जाता है। जैसे—रगड़ते-रगड़ते लकड़ी की अन्दर से आग प्रकाश होती है वैसे ही आत्मस्थित ज्ञान भी भगवत्पूजा से प्रकाश होता है। जो पापीलोग हैं जिनका कर्मपर अधिकार नहीं है वैसे भी क्यों न हो लेकिन हे वैश्य! शालग्राम के पूजकलोग यमलोक की ओर नहीं जाते हैं। अपने वैकुण्ठ पर हरि भगवान् लक्ष्मी के साथ उस प्रकार का

स्वपुरे हरिः। शालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा। अग्निहोत्रं हुतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा॥ येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे। शिला द्वादश भो वैश्य शालग्रामसमुद्भवाः। विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामिते॥ कोटिद्वादशभिर्लिङ्गैः पूजितैःस्वर्णपङ्कजैः। यत्स्याद्द्वादश-कल्पेपु दिनेनैकेन तद्भवेत्॥ यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम्। उषित्वा स हरेर्लोके चक्रवर्त्तीह जायते॥ कामैः क्रोधैर्मदैर्लोभैर्व्याप्तो योऽ-त्र नराधमः। सोऽपि याति हरेर्लोकं शालग्रामशिलार्चनात्॥ यः पूजयति गोविन्दं शालग्रामे सदा नरः। आभूतसंप्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः॥ विनातीर्थैर्विनादानैर्विनाध्यानैर्विनामखैः। मुक्तिं याति नरोवैश्य शालग्रामशिलार्चनात्॥ नरकं गर्भवासं च तिर्यक्त्वं कृमियोनिताम्। न याति वैश्य पापोऽपि शालग्रामेऽच्युतार्चकः॥ दीक्षाविधानमंत्रज्ञश्चक्रे

विलास नहीं करते हैं जिस प्रकार किसी शालग्राम शिला सम्बन्धि चक्र पर हमेश: रमण करते हैं। जिसने शालग्राम पर्वत पर उत्पन्न शिलासम्बन्ध-चक्र-पर हरिभगवान् की पूजा की उस महापुरुष ने अग्निहोत्र ही नहीं बल्कि सागर के सहित पृथ्वीमण्डल का दानकर डाला। हे वैश्य! शालग्राम सम्बन्धी बारह शिलाओं की जिसने विधिवत् पूजा करली उसका पुण्य मैं तुमसे कहता हूँ शङ्कर जी सम्बन्धी बारह जोतिर्लिङ्गों के सदश करोड़ों लिङ्गोंपर सुवर्णकमलों को चढ़ाकर बारह कल्पपर्यन्त पूजा करने से जो फल होना चाहिये वह तो शालग्राम शिलापर एक दिनमात्र पूजा करने से होता है। फिर जो भक्ति-पूर्वक शालग्राम सम्बन्धी एक सौ शिलाओं की पूजा करता है वह चिरकालतक वैकुण्ठ में रहकर मर्त्यमण्डल में चक्रवर्त्ती होते हुए जन्म लेता है। जो नराधम काम, क्रोध, अभिमान और लोभों से तङ्ग है वह भी यहाँ पर शालग्रामशिला की पूजा करने से वैकुण्ठ को चला जाता है। जो सज्जन मनुष्य शालग्राम पर गोविन्द की भावना रखकर सदा पूजा करता है वह जबतक भूतसंप्लव (भूत प्राणियों का नाशकर महाप्रलय) नहीं होता है तबतक स्वर्ग लोक से च्युत नहीं होता है। हे वैश्य! शालग्रामशिला की पूजा से तीर्थ, दान, ध्यान और यज्ञों के बिना किये भी वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। हे वैश्य! वह पापी ही क्यों न हो परन्तु शालग्राम पर अच्युतभगवान की पूजा करता हो तो नरक, गर्भवास, पशुयोनि वा कृमियोनि पर नहीं जाता है। जो दीक्षा पूजादि का विधान और मंत्रों का ज्ञाता होकर शालग्राम सम्बन्धी शिला के चक्र पर नैवेद्य चढ़ाता है वह वैकुण्ठ धाम को चला जाता है। मैंने बिलकुल

यो दलिमाहरेत् । स याति वैष्णवं धाम सत्यं सत्यं मयोदितम् ।। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योभिषेकं समाचरेत् ।। गङ्गागोदावरीरेवा नद्यो मुक्तिप्रदास्तु याः। निवसन्ति सतीर्थास्ताः शालग्रामशिलाजले ।। नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैर्विलेपनैः । गीतवादित्रस्तोत्राद्यैः शालग्रामशिलार्चनम् ।। कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः । कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरेः ।। लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैः स्तुतैः । शालग्रामशिलायास्तु एकेनापिहि तत्फलम् ।। सकृदभ्यर्चिते लिङ्गे शालग्रामशिलोद्भवे । लभन्ते मनुजा मुक्तिं साङ्ख्ययोगविवर्जिताः ।। शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः । तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश । शालग्रामशिलाग्रेतु यः श्राद्धं कुरुते नरः ।। पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि । ये पिबन्ति नरा नित्यं शालग्रामशिलाजलम् ।। पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किंप्रयोजनम् । यदि पुण्यं पिवेत्तोयं शालग्रामशिलाच्युतम् ।। शालग्रामशिलातोयं चक्राङ्कितशिलाजलम् । मिश्रितं

सत्य कहा है यहाँ तक कि उसने सभी तीर्थों पर गोता लगा ली और सभी यज्ञों पर दीक्षा ग्रहण कर लिये जिसने शालग्राम सम्बन्धी शिलाओं की जल बिन्दुओं से अभिषेक किया । गङ्गा, गोदावरी, रेवा इत्यादि मुक्तिदायक जितनी नदियाँ हैं वे सब तीर्थों के साथ ही शालग्राम शिला के जल पर आ बैठती हैं। जो मनुष्य कलियुग में भक्ति तत्पर होकर अनेकों नैवेद्य, पुष्प, धूप, दीप, चन्दनादि सुगन्धि द्रव्य इत्यादि उपहार चढ़ाकर गान, भजन और स्तोत्रपाठ द्वारा शालग्राम शिला की पूजा करता है वह हजारों कोटि कल्पपर्यन्त विष्णु भगवान् के पास जाकर रमण करता है । करोड़ों शिवलिङ्ग के दर्शन, पूजा, स्तुति वगैरह से जो पुण्य होता है एक मात्र शालग्राम शिला की पूजा से वह फल होता है। यदि शालग्राम-शिलासम्बन्धि लिङ्ग की एक बार भी पूजा की गयी हो तो मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। उन्हें साङ्ख्ययोग (प्रकृति पुरुषवाद) की कोई आवश्यकता नहीं है। उस जगह पर देवगण, दैत्यगण, यक्षगण और चौदह ही भुवन चले आते हैं। जहाँ पर कि शालग्राम शिलारूपी स्वयं केशव भगवान रहते हैं। जो मनुष्य शालग्राम शिला को आगे रखकर श्राद्ध सम्बन्धि पिण्डदान करता है उसके पितर लोग सौ कल्पपर्यन्त स्वर्गलोक में तृप्त होकर रहते हैं जो मनुष्य शालग्राम शिला के पवित्र जलोंका नित्य प्रतिपान करते हैं उन्हें हजारों पञ्चगव्यादि जलों का प्राशन करने की क्या आवश्यकता है ? यदि कोई शालग्राम की शिला से टपके हुए पवित्र जल का पान करता हो तो उसके पुण्य का क्या वर्णन किया जावे ? जो मनुष्य चक्राङ्कित और अचक्राङ्कित

तत्पिबेद्यस्तु शिरसि धारयेत् ।। तस्य चक्राङ्कितोदेहो जायते नात्रसंशयः । तद्गुप्तं तं नपश्यन्ति दूताः केऽपि विना सुरान् ।। अतोऽयं-वारयेद्दूतान् वैष्णवाभिमुखान्हि सः । भीतान्वै विष्णुभक्तानां तत्पादोदक-सेवनात् ।। त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदासमुद्रगाः । समुद्रगास्तुपक्षस्य मासस्य सरितां पतिः । षण्मासफलदा गोदा वत्सरस्यतु जाह्नवी ।। विष्णुपादोदकस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् । तीर्थतोयाद्भवेत्पुण्यं शाल-ग्रामशिलाजलम् । शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम् ।। तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् । शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुमात्र-कम् ।। मातुः स्तन्यं पिबेन्नैव सभवेन्मुक्तिभाङ्नरः । शालग्रामसमीपेतु क्रोशमात्रं समन्ततः । कीटकोपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः ।। शालग्रामशिलाचक्रं योदद्याद्दानमुत्तमम् । भूचक्रं तेन दत्तंस्यात्सशैल-वनकाननम् ।। शालग्रामशिलायास्तु मूल्यमुद्घाटयन्नरः । विक्रेता

दोनों जल को मिला करके पान करता और देह (नाभि से ऊपर) तथा शिर पर धारण करता है उसका शरीर चक्र चिन्हित हो जाता है इस पर सन्देह नहीं है । उन जलरूप (कवच) से गुप्त मनुष्य को देवता के सिवा यमदूत लोग कोई नहीं देख सकते हैं । विष्णुभक्त जब भगवच्चरणोदक का पान करते हैं तब दूत लोग डरने लगते हैं अतएव वह उनके चरणोदक के सेवन से डरते हुए, वैष्णव के सम्मुख पर उपस्थित यमदूतों का निवारण कर सकता है । जो समुद्रतक नहीं पहुँच सकती हैं ऐसी छोटी नदियाँ त्रिरात्र की फलदायिनी होती हैं । समुद्रतक पहुँचने वाली नदियाँ एक पक्ष का फल देती हैं एवम् समुद्र एक महीने का फल देता है, छः मास का गोदा देती है एवम् एक वर्ष का जाह्नवी देती है । परन्तु वे सब विष्णुपादोदक की सोलह कलाओं में एक के लायक भी नहीं हैं । तीर्थजल की अपेक्षा शालग्राम शिलाजल ही अधिक पुण्यदायक है । जहाँ पर शालग्राम की शिला रहती है वह तीन योजन तक तीर्थ कहलाता है । उस स्थान पर दान होम प्रभृति सब शुभ कर्म कोटिगुण अधिक फलदायक होते हैं । शालग्राम की शिला सम्बन्धी जल का विन्दुमात्र भी जो पान करता है वह मनुष्य संसार में आकर फिर से माता का दूध नहीं पीयेगा किन्तु मुक्त ही होगा । शालग्राम के समीप को चारों ओर एक कोश के भीतर जिसकी मृत्यु होती है वह मनुष्य तो क्या कीड़ा भी वैकुण्ठ भवन पर चला जाता है । जिसने उत्तम शालग्राम शिला सम्बन्धी चक्र का दान किया, जानिये कि उसने पर्वत, वन, जङ्गल के सहित (पृथ्वी मण्डल) मात्र का दान कर डाला । शालग्राम शिला की कीमत

चानुमन्ता च परीक्षाकारकस्तथा॥ सर्वे ते नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम्। मूल्योद्‌घाटनार्थं परीक्षाकारक इत्यर्थः। अतस्तु वर्जयेद्वैश्य चक्रस्य क्रयविक्रयौ ॥

तत्रैव कार्तिकमहात्म्ये शिवस्कन्दसम्वादे—

शालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सचराचरम्। मया सह महासेन विष्णुस्तिष्ठति सर्वदा ॥ शालग्रामशिलापूजां प्रकुरुष्व षडानन। गङ्गामिव महापुण्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥ दृष्टा नमस्कृता येन स्नापिता पूजिता तथा। यज्ञकोटिसमं पुण्यं शश्वत्तस्य प्रयच्छति ॥ छिन्नस्तेन महासेन गर्भवासः सुदारुणः। पीतं येन सदाविष्णोः शालग्रामशिलाजलम् ॥ कामासक्तोऽपि नित्यं यो भक्तिभावविवर्जितः। शालग्रामशिलां पुत्र पूजयित्वाऽच्युतो भवेत् ॥ शालग्रामशिलाविम्बं हत्याकोटिविनाशनम्। स्मृतं सङ्कीर्त्तितं ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥ शालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापानि देहिनः। सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणाभयात् ॥ मनः करोति यस्तस्य शालग्रामशिलार्चने। पापानि विलयं यान्ति तमः

लगाकर बेचनेवाला, उसमें सहयोग देने वाला और परीक्षा करने वाला वे सब लोग महाप्रलय तक नरकवास करते हैं। (मूल्योद्घाटन याने दरभाव लगाना)। हे वैश्य! अतः चक्र का क्रीन-बेच करना छोड़ देवे ॥

उसी ग्रन्थ में शिवस्कन्द के सम्वाद पर कार्तिक माहात्म्य में कहा है कि— हे महासेन (स्कन्द)! शालग्राम शिलापर चराचर के सहित तीनों लोक रहते हैं। जो मेरे साथ उन पर विष्णु भगवान् सदा निवास करते हैं। हे षडानन! महापुण्यदायिनी गङ्गा की तरह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों की देनेवाली शालग्रामशिला की पूजा करो। जिस मनुष्य ने शालग्रामशिला के दर्शन, नमस्कार, स्नापन और पूजन किये उसे वह कोटियज्ञों के समान पुण्य को निरन्तर देती है। हे महासेन सदा विष्णु सम्बन्धी शालग्राम शिला पर का जल जिसने पी लिया, उसने गर्भवास सम्बन्धी भयङ्कर दुःख का छेदन कर डाला। हे पुत्र! जो मनुष्य भक्तिभाव से रहित होकर कामासक्त होते हुए भी शालग्राम शिला की पूजा करता है वह अच्युत होता है। शालग्राम शिलारूप मण्डल के स्मरण, कीर्त्तन, ध्यान, पूजा तथा नमस्कार से करोड़ों हत्याएँ नष्ट हो जाती हैं। जैसे जङ्गल में सिंह को देखकर डर के मारे मृगगण भागते हैं। उसी तरह शालग्राम शिला को देखकर देहधारी के पाप देह से भाग जाते हैं ॥ जो नर शालग्राम शिला की पूजा में चित्त देता है उसके पाप सूर्योदय

सूर्योदये यथा ॥ कामासक्तोऽपि यः कुर्याच्छालग्रामशिलार्चनम् । भक्त्या वा यदिवाऽभक्त्या स मुक्तिं समवाप्नुयात् ॥ यः कथां कुरुते नित्यं शालग्रामशिलाग्रतः । वैवस्वतभयं तस्य न स्यान्मरणजन्मनः ॥ शालग्रामशिलाचक्रं पयोदधिघृतोदकैः । यः स्नापयति नूनं स कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥ शालग्रामनमस्कारः शाठ्येनापि न यैः कृतः । मां नत्वा किंकरिष्यन्ति मद्भक्तास्ते महामते ॥ मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्प्रभुं न नमन्ति ये । वासुदेवं न ते ज्ञेया मद्भक्ताः पापमोहिताः ॥ मद्भक्तोऽपिच योमर्त्यो भुङ्क्ते माधववासरे । मल्लिङ्गस्पर्शनं तेन नकार्यं दुष्टबुद्धिना ॥ या तिथिर्दयिता विष्णोः सा तिथिर्मे नमस्कृता । यस्तां नोपवसेन्मर्त्यः स पापी श्वपचाधिकः ॥ शालग्रामशिलायां तु तत्पूजार्थं वसाम्यहम् । दत्तं तुष्टेन देवेन मे स्वस्थानञ्च भक्तितः ॥ पूजितोऽहं न तैर्मर्त्यैः स्नापितोहं न तैर्नरैः । न कृतं मर्त्यलोके

होने पर अन्धकार की तरह नष्ट हो जाते हैं। जो कामासक्त होकर भी शालग्राम शिला की पूजा करता है चाहे भक्ति से करे चाहे अभक्ति से वह मुक्त तो हो ही जाता है। जो पुण्यात्मा शालग्राम शिला को संमुख रखकर नित्य कथा सुनाता है उसे यमराज से जन्म और मरण का कोई भय नहीं होता है, जो मनुष्य शालग्राम शिलाचक्र को दूध, दही, घी, जल वगैरह से (पञ्चामृतसे) स्नान कराता है वह निश्चय ही कोटिकल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास करेगा। जिन्होंने धूर्तभाव से ही हो शालग्राम शिला के लिये नमस्कार नहीं किया है हे महामते! वे लोग मुझे नमस्कार करके मेरे भक्त ही बनकर क्या करेंगे? जो मेरी भक्ति के बल द्वारा अभिमान से चूर होकर मेरे प्रभु भगवान वासुदेव के लिये नमस्कार नहीं चढ़ाते हैं पाप से मोहित उन लोगों को जानना चाहिये कि वे मेरे भक्त नहीं है ॥ जो मनुष्य मेरा भक्त होकर भी हरि * वासर में (व्रत न रहकर) भोजन करता है उस दुर्बुद्धि को मेरे लिङ्ग का नहीं स्पर्शन करना चाहिये। जो तिथि भगवान विष्णु के लिये प्रिय है वह (एकादशी) मुझसे नमस्कार की गयी है। उस तिथि में जो उपवास नहीं रहता है वह चाण्डाल से भी अधिक पापी है। उन्हीं भगवान की पूजा के लिये मैं शालग्राम शिला पर निवास करता हूँ क्योंकि मेरी भक्ति से सन्तुष्ट होकर भगवान ने मुझे अपना स्थान दे रक्खा है। जिन लोगों ने मर्त्यलोक में रहकर शालग्राम

* आभाका शुक्लपक्षेषु मैत्रः श्रवण रेवती। द्वादशी बुधयुक्ता च तद्दिनं हरिवासरम् ॥ इत्युक्तेः।

यैः शालग्रामशिलार्चनम् । किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥ शालग्रामशिलाचक्रं नार्चितं यदि पुत्रक । पद्मकोटिसहस्रेणपूजिते मयि यत्फलम् ॥ तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चनात् । अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलाजुष्टं सर्वं याति पवित्रताम् ॥ नैवेद्यं मे नरो भुक्त्वाऽशुद्धश्चान्द्रायणं चरेत् । भुक्त्वा केशवनैवेद्यं कोटियज्ञ-फलं लभेत ॥ पादोदकेन देवस्य हत्याकोटिसमन्वितः । शोध्यते नात्रसन्देह-स्तथा शंखोदकेनवै ॥ योहि माहेश्वरीभूत्वा वैष्णवं धर्ममुत्तमम् । द्वेष्टा स याति निरयं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ संसारदुःखकान्तारे निमज्जन्ति नराधमाः । वर्षकोटिसहस्राणि कृष्णाराधनवर्जिताः ॥ सकृदप्यर्चितो विष्णुः शालग्रामसमुद्भवः । ददाति विपुलां मुक्तिं सर्वसङ्गविवर्जिताम् ॥ मल्लिङ्गैः कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैः स्तुतैः । शालग्रामशिलाचक्रार्चनेनापि हि तद्भवेत् ॥ शालग्रामशिलाचक्रं यो वै द्वादशसम्मितम् । अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्य पुण्यं निबोध मे ॥ कोटिलिङ्गसहस्रैर्यत्पूजितैर्जाह्नवीतटे ।

की पूजा नहीं की उनसे मैं भी पूजित और स्नापित न हो सका । हे पुत्र ! विष्णुभक्ति से रहित होकर सैकड़ों लिङ्गपूजा से क्या होगा, यदि शालग्राम शिला चक्र को पूजा नहीं किया तो करोड़ों कमल चढ़ाकर मेरी पूजा करने से जो फल है वैसा फल तो शालग्राम शिला की पूजा से कोटिगुण अधिक होता है । मेरा नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल, जलादि जो कुछ भी अयोग्य होता है । परन्तु शालग्राम शिला की सेवा से (सम्पर्क से) सब पवित्र होता है । मनुष्य मेरे नैवेद्य को खाकर अशुद्ध होता है, उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिये, किन्तु विष्णु नैवेद्य के भक्षण से कोटियज्ञों का फल प्राप्त करता है । विष्णुदेव के चरणोदक से करोड़ों जीव का हत्यारा भी शुद्ध किया जाता है एवम् शङ्खजल से भी, इसमें सन्देह नहीं है जो नर शिवधर्मावलम्बी होकर उत्तम विष्णुधर्म के लिये द्वेष करता है वह जबतक महाप्रलय न हो तबतक नरक में सड़ेगा। संसार के दुःखरूपी दुर्गममार्ग में वे ही नराधम फँस जाते हैं जो कोटि हजारों वर्ष तक कृष्णभक्ति से रहित हो चुके हों । जिसने एक बार भी शालग्राम पर विष्णु की पूजा की हो उसे भगवान निःसङ्गविपुलमुक्ति को देते हैं । मेरे सम्बन्धी करोड़ों लिङ्गों के दर्शन, पूजा और स्तोत्रपाठ से जो फल प्राप्त होता है । वह शालग्रामशिला चक्र की पूजामात्र से होता है । बारह संख्याओं के शालग्रामशिला चक्रों की जो वैष्णव नित्य पूजा करता है मुझसे उसका पुण्य सुनो । हजारों करोड़ लिङ्गों को गङ्गातट में रहकर पूजन करने और आठ

काशीवासे युगान्यष्टौ दिनेनैकेन तद् भवेत् ॥ वहुना किम्पुनर्यस्तु पूजये-द्वैष्णवो नरः । ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्य पुण्यं कियद् भवेत् ॥ तस्माद् भक्त्यैव मद्भक्तैः प्रीत्यथ मम पुत्रक । कर्तव्यं सर्वदा मर्त्यैः शालग्राम-शिलार्चनम् ॥ शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः । तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश ॥ शालग्रामशिलाग्रे यैः सकृच्छ्राद्धं कृतं सुतैः । वसन्ति पितरस्तेषां विष्णुलोके न संशयः ॥ ये पिबन्ति नरा नित्यं शालग्राम-शिलाजलम् । पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने किन्दानैः किमुपोषणैः । चान्द्रायणैश्च किन्तीर्थैः पीत्वा पादोदकं शुचिः ॥ विष्णोः करोति यो मर्त्यः प्रतिमां जलशायिनः । मामकैर्ब्रह्मसूर्याद्यैर्दैवतैः किं प्रयोजनम् ॥ यो ददाति शिलां विष्णोः शालग्रामशिलोद्भवाम् । विप्राय विष्णु-भक्ताय तेनेष्टं क्रतुभिः शतैः ॥ गृहेऽपि वसतां तेषां गङ्गास्नानं दिनेदिने । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषिञ्चति वै शिरः ॥ मानुपे दुर्लभा लोके शाल-

---

युगतक काशीवास रहने का जो पुण्य होता है वह एक ही दिन से हो जाता है ॥ इससे अधिक कह कर क्या होगा ? पर भी सुनो, जो वैष्णव मनुष्य उक्तरीत्या पूजन करता है न जाने उसका कितना पुण्य कितना होता है ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान सकते हैं । इसलिये हे पुत्रक ! भक्तिपूर्वक ही मेरे भक्तमनुष्यों को भी मेरी प्रीति के लिये सर्वदा शालग्राम शिला का पूजन करना चाहिये । शालग्राम शिलारूपी भगवान केशवजी जहाँ पर विराजमान हैं जाने कि उस जगह पर देवता, दैत्य, यक्ष इत्यादि चौदहों भुवन आ जाते हैं ।

जिनके पुत्रलोगों ने शालग्रामशिला को संमुख में रखकर एक ही बार श्राद्ध किया है उनके समस्त पितृलोग वैकुण्ठ पर निवास करते हैं । इसमें सन्देह नहीं है । जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्राम शिला का जलपान करते हैं उन्हें हजारों पञ्चगव्यादिक के प्राशन से क्या मतलब है ? किसी प्रायश्चित कर्तव्य के उपस्थित होने पर दान, उपवास, चन्द्रायणादिव्रत, उपवास और तीर्थों से क्या प्रयोजन है ? विष्णुपादोदक पीकर ही वह पवित्र हो जाता है । जो नर जलशायी विष्णु भगवान के प्रतिविम्ब का (पूजनादि) करता है उसे मेरे लिङ्ग और ब्रह्मा, सूर्य इत्यादि देवताओं से क्या काम है ? जिसने शालग्राम पर्वत पर उत्पन्न सालंकृत विष्णुशिला का विष्णुभक्त ब्राह्मण के दान किया, उसने सैकड़ों यज्ञ से देवताओं को सन्तुष्ट किया । उन लोगों को घर पर रह कर ही दिन परदिन गङ्गास्नान का पुण्य मिल जाता है जिन्होंने शालग्राम शिला से जल लेकर शिर पर अभिषेक कर लिया है । मर्त्यमण्डल में शालग्राम शिला को

ग्रामोद्भवा शिला। सा स्याद्यस्य गृहे पुत्र विज्ञेयः सहि वैष्णवः ॥ सन्निरुद्ध्येन्द्रियग्रामं शालग्रामशिलार्चनम्। यः कुर्यान्मानवः पुष्पैः पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधवान्॥ प्रायश्चित्तसहस्राणि कृत्वा व्रतशतानिच। कलौ गच्छन्ति पापानि न विष्णोः शरणं विना॥ भक्त्या भुनक्ति नैवेद्यं शालग्रामशिलार्पितम्॥ यज्ञकोटिफलं सम्यक् स प्राप्नोति न संशयः। काले वा यदिवाऽकाले शालग्रामशिलार्चनम ॥ करोति भक्त्याऽभक्त्यावा न भवेत्सहि पापभाक् द्वेषेणापि च लोभेन दम्भेन कपटेन वा। शालग्रामोद्भवं चक्रं दृष्ट्वा विष्णुपदं व्रजेत्॥ अशुचिर्वाप्यनाचारः सत्यशौचविवर्जितः। शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा प्रसह्य च शुचिर्भवेत्॥ तिलपात्रशतं भक्त्या यो ददाति दिनेदिने। तत्फलं समवाप्नोति शालग्रामशिलार्चनात्॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं मूलं दूर्वाङ्कुरं सुत। जायते मेरुणातुल्यं शालग्रामशिलार्पितम्॥ विधिहीनोऽपि यः कश्चित् क्रीडार्थं प्रकरोति वै। चक्राङ्कपूजामाप्नोति सम्यक्शास्त्रोदितं

पा जाना आसान की बात नहीं है। हे पुत्र ! वह शिला जिसके घर पर है उसे परम वैष्णव जानना चाहिये। जो नर इन्द्रियों के वेग को रोककर फूलों से शालग्राम शिला की पूजा करता है उसे एक एक पुष्पसे एक एक अश्वमेधका फल होता है। कलियुग में हजारों प्रायश्चित और सैकड़ों व्रत वगैरह के करने से भी विष्णु की शरण को छोड़कर पाप नहीं छूट सकते हैं। जो प्रेम से शालग्राम शिला पर अर्पण किये हुये नैवेद्यों का भक्षण करता है वह अच्छी तरह से कोटि यज्ञों का फल प्राप्त करता है। मौके पर हो वा बे मौके पर हो, और भक्तिभाव से हो या अभक्तिभाव से ही हो जो मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा करता है वह पाप का भागी नहीं हो सकता है। द्वेष, लोभ, धूर्तता वा कपट से ही हो शालग्राम सम्बन्धी चक्र के दर्शन से मनुष्य विष्णु पद को प्राप्त होता है। जो मनुष्य अशुचि, भ्रष्टाचारी और सत्य शौच से रहित ही क्यों न हो शालग्राम शिला के स्पर्शमात्र से हठात् शुद्ध हो जाता है (यह वचन स्त्री शूद्र को छोड़कर पूर्ववत् जानना चाहिये) जो प्रतिदिन एक सौ सुवर्णतिल पात्र का भक्तिपूर्वक दान करता है वह शालग्राम शिला की पूजा से उस फल को प्राप्त करता है। हे पुत्र ! शालग्राम पर चढ़ाया हुआ पत्र, पुष्प, फल, जल, कन्द, मूल और दूर्वाङ्कुर (दूब की पखुड़ी) जो भी हो वह सुमेरु पर्वत के तुल्य होता है। जो मनुष्य विधिहीन होकर शालग्राम शिला से खेलवाड़ का काम लेता है उसे अच्छी तरह शास्त्रोक्त चक्र चिह्न की पूजा का फल प्राप्त होता है। शालग्राम संबंधी पवित्र शिला जिसके घर में पूजित नहीं होती है

फलम् ॥ शालग्रामशिला शुद्धा गृहे यस्यास्ति पूजिता । गोरिवातुलश्रृङ्गाग्रैर्भिद्यते तस्य नो तनुः ॥

स्कान्देऽपि कार्तिकमाहात्म्ये शिवस्कन्दसम्वादे—

शालग्रामशिलायां तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
मया सह महासेन लीनं तिष्ठति सर्वदा ॥

दृष्टा प्रणामिता येन स्नापिता पूजिता स्तुता । यज्ञकोटिसमं पुण्यं गवां कोटिफलं लभेत् । छिन्नस्तेन महासेन गर्भवासः सुदारुणः । पीतं येन महासेन शालग्रामशिलाजलम् । कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावसमन्वितः । शालग्रामशिलां पुत्र सम्पूज्यैवाच्युतो भवेत् ॥ शालग्रामशिलाबिम्बं हत्याकोटिविनाशनम् । स्मृतं सङ्कीर्तितं ध्यातं पूजितं च नमस्कृतम् ॥ शालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकशः । सिंहं दृष्ट्वा यथा यान्ति वने मृगगणा भयात् । मनः करोति मनुजः शालग्रामशिलार्चने ॥ पापानि विलयं यान्ति तमः सूर्योदये यथा । कामसक्तोऽथवा क्रुद्धः शालग्रामशिलार्चनम् ॥ भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कृत्वामुक्तिमवाप्नुयात् । वैवस्वतभयं नास्ति

गौ की तरह सम्पूर्ण श्रृंगियों के श्रृंगों की नोख से उसका शरीर पूर्ण हो जाता है। (श्रृङ्गाग्र = पशुश्रृङ्गाग्र वा पर्वत की चोटी)।

स्कन्दपुराणसम्बन्धी कार्तिक माहात्म्य में भी शिवस्कन्द के सम्वाद पर कहा है कि—हे महासेन ! शालग्राम शिला पर मेरे साथ सचराचर तीनों लोक लीन होकर सर्वदा रहते हैं। जिसने उस शिला का दर्शन किया उसे स्नान कराया उसकी पूजा और स्तोत्र पाठ की उस मनुष्य को कोटियज्ञ के समान पुण्य और कोटि गोदान के तुल्य फल होता है। हे महासेन ! उसने भयङ्कर गर्भवास का छेदन कर डाला जिसने शालग्राम शिला सम्बन्धी जल को पी लिया है। हे पुत्र ! कामासक्त ही क्यों न हो भक्तिभाव से युक्त होकर जो नर शालग्राम शिला की पूजा करता है वह अच्युत होता है। शालग्रामशिला सम्बन्धी प्रतिमा कोटि हत्याओं का विनाश करती है। अतएव उसका स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजा और उसे नमस्कार करना चाहिये। जिस तरह जङ्गल में सिंह को देखकर मृगगण मारे डरके भागते हैं उसी प्रकार अनेकों पाप शालग्राम शिला के दर्शन से भाग जाते हैं। जो मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा में दिल लगाता है उसके पाप सूर्योदय पर अन्धकार की तरह विलीन हो जाते हैं। कामासक्त या क्रुद्ध हो और भक्ति से हो वा अभक्ति से ही हो मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा करके मुक्त होता है। न उसे यमराज से भय होगा न तो जन्म

तथा मरणजन्मनोः ॥ यः कथां कुरुते विष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः । गन्ध-मालादि नैवेद्यैर्धूपैर्दीपैर्विलेपनैः ॥ गीतैर्वाद्यैस्तथास्तोत्रैः शालग्रामशिलार्चनम् । कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि रमते विष्णुसद्मनि । शालग्रामनमस्कारे भयेनापि नरैः कृते । भयन्नेवकरिष्यन्ति मद्भक्तास्ते नरा भुवि ॥ शालग्रामनमस्कारः शाठ्येनापि कृतोयदि । मां नत्वा किङ्करिष्यन्ति मद्भक्तास्ते नराभुवि । इति वा पाठः । मद्भक्तिबल-दर्पिष्ठा मत्प्रभुं न नमन्ति ये । वासुदेवं न ते ज्ञेया मद्भक्ताः पापिनो हि ते ॥ मद्भक्तोऽपिच यो भूत्वा भुंक्ते त्वेकादशी दिने । नलिङ्गस्पर्शनं कार्यन्तेन पापेन कर्मणा । या तिथिर्दयिता विष्णोः सा तिथिर्दयिता मम ॥ तस्यां नोपवसेद्यस्तु स पापी श्वपचाधिकः । शालग्रामशिलायां तु सदापुत्र वसास्यहम् ॥ दत्तं देवेन तुष्टेन स्वस्थानं मम भक्तितः । कल्पकोटिसहस्रैस्तु-पूजिते मयि यत्फलम् ॥ तज्ज्ञेयं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चने । पूजितोऽहं नतैर्मर्त्यैः स्नापितोहन्नतैर्नरैः ॥ नक्तं मर्त्यलोके यैः शालग्रामशिला-

---

जन्म और मरण ही से, जो शालग्राम शिला को आगे रखकर विष्णु कथा का व्याख्यान करता है। जो नर कलियुग में भक्तितत्पर होकर सुगन्ध, माला, तुलसी इत्यादि और नैवेद्य धूप, दीप, चन्दन, अपिच गान, भजन, तथा स्तोत्र-पाठ के द्वारा शालग्राम शिला की पूजा करता है वह हजारों कोटि कल्पपर्यन्त विष्णु भवन में रमता है। भयभीत होकर भी मनुष्यों से शालग्राम शिला के लिये नमस्कार किये जाने पर वे सब मेरे भक्त हो जाते हैं अतः उन्हें पृथ्वी पर किसी से भय नहीं होगा। यहाँ पर श्लोकार्थ कुछ ठीक से नहीं बैठता है इसलिये मूल में पाठभेद दर्शाया है। जैसे "मां नत्वा···" मुझे नमस्कार कर मर्त्यमण्डल में ये मनुष्य लोग मेरे भक्त होकर क्या करेंगे? इत्यादि॥ मेरे भक्तिबल के अभिमान से चूर होकर जो लोग मेरे स्वामी भगवान वासुदेव के लिये नमस्कार नहीं चढ़ाते हैं उनको मेरे भक्त नहीं जानना चाहिये क्योंकि वे सब पापी हैं। मेरा भक्त होकर भी जो एकादशी के रोज में भी भोजन करता है उस पापी पुरुष को मेरे लिङ्ग का स्पर्श नहीं करना चाहिये भगवान विष्णु की प्यारी जो एकादशी तिथि है वह मेरी भी है। उस तिथि में जो उपवास नहीं रहता है वह चाण्डाल से भी अधिक पापी हैं। हे पुत्र! मैं शालग्राम शिला पर सदा निवास करता हूँ क्योंकि मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने मुझे अपना स्थान दे रखा है। हजारों कोटि कल्प पर्यन्त मेरी पूजा करने से जो फल होता है शालग्राम शिला की पूजा करने पर उससे भी कोटिगुणित अधिक फल प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये। जिन्होंने मर्त्यलोक में रहकर

र्चनम् । शालग्रामशिलाग्रेतु यः करोति ममार्चनम् । तेनाहमर्चितस्कन्द युगानामेकसप्ततिः ॥ किमर्चितैर्लिङ्गशतैः कृष्णभक्तिविवर्जितैः । शालग्रामशिलाबिम्वं नार्चितं यदि पुत्रक ॥ अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलालग्नं सद्यो याति पवित्रताम् ॥ पादोदकेन देवेश हत्याशतसमन्वितः । विशुध्यते न सन्देहस्तथा शङ्खोदकेन च ॥ यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं लिङ्गमुत्तमम् । द्वेष्टि वै याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ संसारदुःखकान्तारे निमज्जन्ति नराधमाः । वर्षकोटिसहस्राणि कृष्णाराधनवर्जिताः । सकृदप्यर्चिते लिंगे शालग्रामसमुद्भवे । मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नच साङ्ख्येन संयुताः । मल्लिंगैः कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैः स्तुतैः ॥ शालग्रामशिलायास्तु एकेनापि हि तद्भवेत् । द्वादशैव शिला यस्तु शालग्रामसमुद्भवाः । अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्यपुण्यं निबोध मे ॥ कोटिलिङ्गसहस्रैस्तु पूजितैर्जाह्नवीतटे । काशीं वसेद्युगान्यष्टौ दिनेनैकेन तद्भवेत् ॥ किं पुन-

---

शालग्राम शिला की पूजा नहीं की है मैं उन लोगों से न पूजित हुआ न स्नापित ही हो सका । जो नर शालग्राम शिला के सामने मेरी पूजा करता है हे कुमार ! तुम जानो कि उसने चारो युग के एकहत्तर वार (अर्थात् एक मन्वन्तर) तक मेरी पूजा कर ली है ।

हे पुत्र ! कृष्णभक्ति से रहित होकर सैकड़ों लिङ्ग की पूजा से क्या प्रयोजन है ? यदि शालग्राम शिला स्वरूप भगवान के बिम्ब की पूजा नहीं की हो । मेरा पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि नैवेद्य भक्षण योग्य नहीं होता है लेकिन शालग्राम शिला के सम्पर्क से तत्क्षण में पवित्र हो जाता है । हे देवेश ! विष्णु के चरणोदक से सैकड़ों हत्याओं से युक्त मनुष्य भी शुद्ध होता है, सन्देह नहीं है तथा शङ्ख जल से भी । जो शिवभक्ति की भड़क रखकर विष्णु के लिये द्वेष रखता है वह चौदह इन्द्रों की जमाना तक नरक को जाता है । जिन्होंने कोटि सहस्र वर्ष पर्यन्त भगवान कृष्ण की आराधना नहीं की है वे ही नराधम संसार के दुःखदायक अनेकों विषम मार्ग में फँस जाते हैं । एक ही वार भी जिसने शालग्रामोत्पन्न लिङ्ग का पूजन किया है उन्हें सांख्ययोग की आवश्यकता नहीं है वे मनुष्य मुक्त हो जाते हैं । मेरे कोटिसंख्यक लिङ्गों के दर्शन, पूजन और स्तोत्र पाठ करने से जो पुण्य मिलता है वह तो एक शालग्रामशिला से ही हो जाता है । जो वैष्णव शालग्राम सम्बन्धी बारह शिलाओं की नित्यही पूजा करता है मुझसे उसका पुण्य सुनो । हजारों कोटिलिङ्गों की गङ्गाजी के तट में रहकर पूजन करने से और आठ युग तक काशीवास करने से

बहुनोक्तेन योर्चयेद्वैष्णवो नरः। न तां ब्रह्मादयो देवाः सङ्ख्यां विद्युः सुपुत्रक ॥ तस्माद् भक्त्यात्र मद्भक्तैः प्रीत्यर्थं मम पुत्रक। कर्तव्यं सततं भक्त्या शालग्रामशिलार्चनम् ॥ शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः। तत्र देवासुरायक्षा भुवनानि चतुर्दश ॥ सर्वदेवनमस्कारैः कोटिभिर्यत्फलं लभेत् ॥ तत्फलं कीर्तिते दृष्टे केशवाख्ये कलौ युगे। शालग्रामशिलाग्रे तु यः श्राद्धं कुरुते नरः ॥ शतब्रह्माधिकं कालं तृप्ताः स्युः पितरो दिवि ॥ शालग्रामशिलाग्रेतु दत्तैः पिण्डैः प्रहर्षिताः। वदन्ति पितरस्तस्य किमन्यैर्बहुभिः सुतैः ॥ श्राद्धं कुर्यान्महासेन चक्राङ्कितशिलाग्रतः। भवन्ति पितरस्तुष्टा न सङ्ख्या तत्र विद्यते ॥ पिबन्ति ये नरा नित्यं शालग्रामशिलाजलम्। पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किम्प्रयोजनम् ॥ तथा तत्रैव—प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने किन्दानैः किमुपोषणैः। चान्द्रायणैश्च तीर्थैश्च पीत्वा

जो पुण्य होता है वह एक दिन से ही मिल जाता है। बहुत कहने से क्या प्रयोजन है, हे सुपुत्र! जो वैष्णव मनुष्य पूर्वोक्त रूप से पूजन करता है उसकी पुण्य संख्या को ब्रह्मादि देवता लोग भी नहीं जान सकते हैं। अतः हे पुत्र! मर्त्यलोक में रहकर मेरे भक्तों को चाहिये कि मेरी प्रीति के लिये हमेशः भक्तिपूर्वक प्रेम से शालग्रामशिला की पूजा करें। जिस जगह पर शालग्राम शिलारूपी केशव भगवान निवास करते हैं उसी पर देव, दानव, यक्ष और चौदहों भुवन समा जाते हैं। सभी देवताओं के लिए कोटि बार नमस्कार चढ़ाने से जो पुण्य मिलता है वह फल कलियुग में भगवान के दर्शन और कीर्त्तन मात्र करने पर मिल जाता है। जो मनुष्य शालग्राम शिला के सामने श्राद्ध करता है उसके पितृ लोग एक सौ ब्रह्माजी के समयपर्यन्त स्वर्ग में होकर रहते हैं। शालग्राम शिला के सामने दिये गये पिण्डों से प्रसन्न होकर उसके पितृलोग कहते हैं कि (एक ही सत्पुत्र के रहते) और बहुत लड़कों से क्या प्रयोजन है। हे महासेन! यदि मनुष्य चक्रचिह्नित शिला के सम्मुख रह कर श्राद्ध करता हो तो उसके पितृ लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं उस श्राद्ध के बारे में कोई संख्या नहीं हो सकती है। जो मनुष्य शालग्रामशिला सम्बन्धी जल का नित्यप्रति पान करते हैं उन्हें हजारों पञ्चगव्यादिक प्राशन करने का क्या प्रयोजन है?

तथा उसी स्थल पर—

प्रायश्चित्त के विषय उपस्थित होने पर दान, उपवास, चान्द्रायण, तीर्थ वगैरह से क्या है, ज्यों चरणोदक पी लिया त्योंही पवित्र हो गया।

पादोदकं शुचिः ॥ प्रमाणमस्ति सर्वस्य सुकृतस्य हि पुत्रक। फलं प्रमाणहीनं तु शालग्रामशिलार्चने ॥ यो ददाति शिलां विष्णोः शालग्रामशिलोद्भवाम्। विप्राय विप्रमुख्याय तेनेष्टं बहुभिर्मखैः ॥ मानुषे दुर्लभा लोके शालग्रामसमुद्भवा। प्राप्यते न विना पुण्यैः कलिकाले विशेषतः ॥ स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम्। शालग्रामशिला शुद्धा गृहे यस्य च पूजिता ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं शालग्रामशिलार्चनम्। यः कुर्यान्मानवो भक्त्या स याति परमं पदम् ॥ भक्त्या वा यदिवाऽभक्त्या यः करोति स पुण्यभाक् ॥ द्वेषेणापि च लोभेन दम्भेन कपटे न वा। शालग्रामोद्भवं देवं दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ अशुचिर्वा दुराचारः सत्यशौचविवर्जितः। शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥ तिलप्रस्थशतं भक्त्या यो ददाति दिनेदिने। तत्फलं समवाप्नोति शालग्रामशिलार्चनात्। पत्रं पुष्पं फलं मूलं तोयं दूर्वाक्षताः सुत। जायते मेरुणातुल्यं शालग्रामशिलार्पितम् ॥ विधिहीनोऽपि यः कुर्यात्क्रियां मंत्रविवर्जितः। चक्रपूजाम-

---

हे पुत्र! सभी पुण्यों का फल प्रमाण है, परन्तु शालिग्राम शिला की पूजा का फल प्रमाण नहीं हो सकता है। जो नर विष्णुसम्बन्धी शालग्राम शिला को सत्पात्र या ऐसे ही ब्राह्मण के लिये दान करता है जानो कि उसने कई यज्ञ कर लिये। मनुष्य लोक में शालग्राम पर की शिला दुर्लभ है, पुण्य के किये विना विशेषतः कलिकाल में नहीं पायी जा सकती है। संसार में वह मनुष्य धन्य है उसका जीवन भी सफल है जिसके घर पर शुद्ध शालग्राम की शिला पूजित होती है। इन्द्रियों के समूह के वश में रखकर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक शालग्राम शिला की पूजा करता है वह परम पद को जाता है ॥ चाहे भक्ति से चाहे अभक्ति ही से हो शालग्राम शिला की पूजा करने वाला पुण्यभागी होता ही है।

द्वेष से, लोभ से, दम्भ से वा कपट से ही हो शालग्राम सम्बन्धी शिला के दर्शन से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। अपवित्र, भ्रष्टाचारी और सत्य शौच से रहित ही हो तो क्या है शालग्राम शिला के स्पर्श मात्रसे तुरत शुद्ध हो जाता है। जो नर प्रतिदिन एक सौ तिल प्रस्थ का दान करता है उस फल को शालग्राम शिला की पूजा से प्राप्त करता है ॥ हे पुत्र! पत्र, पुष्प, फल, जल, कन्दमूल, दूभ, अक्षता (तिल-यव) इत्यादि जो हो शालग्राम शिला के लिये अर्पण करने पर सुमेरु पर्वत तुल्य हो जाता है ॥ विधि मन्त्रों से रहित होकर भी जो नर शालग्राम शिलाचक्र की पूजनक्रिया को करता है वह अच्छी

वाप्नोति सम्यक् शास्त्रोदितं फलम् ॥ स्कन्धे धृत्वा च योऽध्वानं वहते शैलनायकम् । तेनोढन्तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किञ्चित् कुरुते नरः । तत्सर्वं निर्दहत्याशु शालग्रामशिलार्चनम् ॥

हेमाद्रौ—सूर्यचन्द्र ग्रहे प्राप्ते यत्किञ्चित् क्रियते गृहे । तीर्थकोटिगुणं पुण्यं शालग्रामशिलाऽग्रतः । नित्यं च पुष्करं तत्र प्रयागं च पृथूदकम् । प्रभासं च कुरुक्षेत्रं तथा पिण्डारकं पुनः ॥ कोटितीर्थं शूलभेदं शुक्लतीर्थं तथैव च । वाराणसी गयाचैत्र मथुरा निमिषं तथा ॥ गङ्गाद्वारं शौकरं च गङ्गासागरमेव च । ॐकारं नर्मदायाञ्च केदारञ्चाविमुक्तिकम् । अवन्ती द्वारका काञ्ची यमुना च सरस्वती । गोदावरी तुङ्गभद्रा गङ्गा च नर्मदा तथा ॥ क्षिप्रा तापी पयोष्णी च चन्द्रभागा महानदी ॥ वितस्ताचैव कावेरी सरयूर्गण्डकीनदी । गोमती देविका चैव नदी जाम्बवती तथा । नदी रूपवती पुण्या नदीवेत्रवती तथा । अट्टहासं महाकालं देवं देवेश्वरं शिवम् । महादेवं महानादं देवं रामेश्वरं तथा । रुद्रं हिमालयञ्चैव तथैव शशिशेखरम् ॥ भैरवं भृगुतुङ्गञ्च भीमनादं तथैव च । भूतेश्वरंभस्मगात्रं यानि लिङ्गानि

तरह से शास्त्रोक्त फल को प्राप्त करता है । जो नर शालग्राम पर्वत के नायक भगवान अर्थात् शालग्राम शिला को कन्धे पर उठाये हुए रास्ते पर चलता है कहना चाहिये कि उसने चराचर के सहित तीनों लोकों को ढो लिये हैं । मनुष्य ब्रह्महत्या के समान जो कुछ पाप करता है उस सम्पूर्ण को शालग्राम शिला की पूजा कर मिटा देता है ।

हेमाद्रि पर कहा है कि—

चन्द्र वा सूर्यग्रहण के समय घरपर शालग्राम शिला के संमुख तीर्थ में जो कुछ किया जाता है उसका कोटिगुण अधिक पुण्य होता है उस जगह पर सभी तीर्थों का नित्य ही निवास रहता है—जैसे, प्रयाग, पुष्कर, पृथूदक, प्रभास कुरुक्षेत्र, तथा पिण्डारक फिर कोटितीर्थ, शूलभेद, शुक्लतीर्थ एवम् वाराणसी (काशी) गया, मथुरा, नैमिषारण्य, हरद्वार, वाराह क्षेत्र, गङ्गासागर, नर्मदा में ॐकार, केदार, अविमुक्तिक क्षेत्र, अवन्ती, द्वारका, काञ्ची, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, भागीरथी गङ्गा, नर्मदा, क्षिप्रा, तापी, पयोष्णी, चन्द्रभागा, महानदी, वितस्ता, कावेरी, सरयू , नदी गण्डकी, गोमती, देविका, जाम्बवती, पुण्या, रूपवती, वेत्रवती इत्यादि नदियाँ—एवम् शिवस्वरूप—अट्टहास, महाकाल, देवदेवेश्वर (विश्वनाथ) शंकरजी, महादेव, महानाद देव, रामेश्वर, रुद्र, हिमालय, शशिशेखर, भैरव, भृगुतुङ्ग, भीमनाद, भूतेश्वर और भस्मगात्र

भूतले ॥ स्वर्गे यानि च पाताले चान्तरिक्षे युधिष्ठिर। शालग्रामशिलायां तु प्रत्यहं निवसन्ति च ॥ ब्रह्मतीर्थानि सर्वाणि सूर्यतीर्थानि यानि च। सुरसिद्धमुनीन्द्राणां त्रिषु लोकेषु यानि च ॥ वसन्ति तत्र राजेन्द्र प्रत्यहं पाण्डुनन्दन। शालग्रामशिलायान्तु समीपे केशवस्य हि ॥ वेदाः शास्त्रं मखाः सर्वे अश्वमेधादयश्च ये। व्रतानि यान्यनेकानि पुराणानि तथागमाः। तपांसि नियमाः सर्वे त्रिदशाः पाण्डुनन्दन ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र तिष्ठन्ति प्रत्यहम्। तीर्थापेक्षा न तत्रास्ति यत्र द्वारवतीशिला। शालग्रामशिलामुद्रा यत्र चक्राङ्किता भवेत्। कुरुक्षेत्रेण किन्तस्य संप्राप्ते ग्रहणे रवौ ॥ शालग्रामशिला यत्र दृश्यते चक्रलाञ्छिता। प्रभासे तत्फलं प्रोक्तं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ कृते दाने भवेत्पुण्यं शालग्रामशिलाग्रतः ॥ शालग्रामशिलां हित्वा योऽन्यधर्मसपेक्षते। कलिकाले वेशेषेण मुष्टोऽसौ पापतस्करैः ॥ सुलभं किं न सेवेत शालग्रामशिलाजलम्। यस्य स्पर्शनमात्रेण पूतो भवति मानवः ॥ यो ददाति शिलां विष्णोः शालग्रामशिलोद्भवाम्। वैष्णवो

इत्यादि पृथ्वीमण्डल पर जितने शिवलिङ्ग हैं हे युधिष्ठिर! और भी जितने स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पाताल में नदियाँ, तीर्थ, शिवलिङ्ग वगैरह हैं वे सब नित्य ही शालग्राम शिला पर निवास करते हैं। किञ्च—जितने सब (पुष्करादि) ब्रह्मतीर्थ, (लोलार्कादि) सूर्यतीर्थ और देव सिद्ध तथा मुनीश्वर सम्बन्धी तीनों लोक में प्रसिद्ध तीर्थ हैं, हे राजेन्द्र, पाण्डुनन्दन! सबके सब उस पर प्रतिदिन निवास करते हैं। हे पाण्डव! विष्णुरूप शालग्राम शिला के समीप में निश्चय ही चारों वेद, न्याय व्याकरण मन्वादि धर्मशास्त्र, अनेकों यज्ञ जो अश्वमेधादि हैं सब, अनेकों व्रत, १८ हों पुराण, उपनिषद्, तपस्या, नियम और देवतागण हैं अर्थात् जहाँ पर शालग्राम शिला है, वहाँ पर वे सब नित्य ही रहते हैं। जिस जगह पर चक्रचिन्हित द्वारवती शालग्राम शिला है वहाँ पर अन्य तीर्थों के ढूँढ़ने फिरने की आवश्यकता नहीं है। शालग्राम शिलासम्बन्धी मुद्रा (घुणा लिपी) जहाँ पर चक्राङ्कित प्राप्त है उसे सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र से भी क्या प्रयोजन है? जिस जगह पर चक्रचिन्हित शालग्राम शिला दीखती है उसके आगे दान देनेपर वही फल प्राप्त होता है जो सूर्यग्रहण के समय में प्रभास क्षेत्रपर होता है। शालग्राम शिला को छोड़कर जो अन्य धर्म की अपेक्षा करता है वह कलिकाल में विशेषतः पापरूप चोरों से चुरा लिया गया है॥ मनुष्य सुलभ शालग्राम शिला जल की क्यों नहीं सेवा करेगा? जिसके स्पर्शनमात्र से पवित्र हो जाता है। जिसने विष्णुसम्बन्धी शालग्राम शिला का

विष्णुभक्ताय तेनेष्टं क्रतुभिः शतैः ॥ शालग्रामशिलादानं यः करोति हि पार्थिव ! अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैस्तेनेष्टं तु दिने दिने ॥ शालग्रामशिलादानं कृतं येन च पार्थिव ! स्वर्गे मर्त्ये च पाताले पूज्यते वै स पार्थिव ! ॥ वारेणैकेन तत्पुण्यं स्नानं दत्त्वा तु केशवे । द्वादश्यां शतसाहस्रं पर्वकाले ततोऽधिकम् ॥ पञ्चामृतेन कर्तव्यं तस्य स्नानं प्रयत्नतः । मधुदध्नामभावेतु घृतस्य च नराधिप ! क्षीरस्नानेन चैकेन सर्वं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥ शालग्रामशिलास्पर्शं ये कुर्वन्ति दिने दिने । वाञ्छन्ति करसंस्पर्शं तेषां देवाः सवासवाः ॥ यः पश्यति नरो भक्त्या शालग्रामशिलार्चनम् । जन्मायुतसहस्राणां कृतस्तेनाघसंक्षयः ॥ प्रायश्चित्तसहस्राणि कृत्वा व्रतशतानि च । कलौ गच्छन्ति पापानि न विष्णोः स्मरणं विना ॥ काले वा यदि वा काले शालग्रामशिलार्चनम् । करोति भक्त्याऽभक्त्या वा न भवेत्सहि पापभाक् ॥ अशुचिश्चाप्यनाचारः सत्यशौचविवर्जितः । शालग्रामोद्भवं शैलं

विष्णुभक्त के लिये दान किया है याने कि उसने सैकड़ों यज्ञ कर लिये हैं ॥ हे राजन् ! जो नर शालग्राम शिला का दान करता है उसने दिन पर दिन अग्निष्टोमादि यज्ञ कर लिये हैं । हे राजन् ! जिस मनुष्य ने शालग्राम शिला का दान दिया है वह स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोक में पूजित होता है । (यदि दान का करना असंभव होता हो तो) भगवान को एक ही बार स्नान करा करके भी उसी पुण्य को लूट सकता है ॥ द्वादशी में स्नान कराना शत सहस्र गुण अधिक पुण्य होता है । उसी तरह पर्व काल में उससे भी अधिक ॥ शालग्राम शिलारूपी भगवान को पञ्चामृत से यत्नपूर्वक स्नान कराना चाहिये । शहद, दही (बहुवचनात्-चीनी) वगैरह, न हो तो घी से ही, यदि ये सब न हों तो केवल दूध से मात्र स्नान कराने पर भी.. पञ्चामृत स्नान कराने पर भी पञ्चामृत स्नान का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है । जो लोग शालग्राम शिला का प्रतिदिन स्पर्श किया करते हैं, उनसे इन्द्रादि देवगण हाथ मिलाना चाहते हैं । जो नर शालग्राम शिला की पूजा का प्रेम से दर्शन करता है, उसने दशों हजार जन्म के पापों का नाश कर डाला है । पायश्चित्तों के हजारों, व्रतों के सैकड़ों बार करने से भी बिना विष्णु के स्मरण किये पाप नहीं छूट सकते हैं। मौके पर हो वा बे मौके पर और भक्ति से हो वा अभक्ति ही से हो जो शालग्राम शिला की पूजा करता है वह पापभागी नहीं हो सकता है । अपवित्र, दुराचारी और सत्य शौच से रहित ही क्यों न हो किन्तु शालग्राम सम्बन्धी शिला के स्पर्श से वह भी शुद्ध हो जाता है । (अथवा शैल = पर्वत, उसके स्पर्श से ऐसा भी शब्दार्थ होता है) ॥

स्पृष्ट्वा सोऽपि शुचिर्भवेत् ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं भक्त्या दूर्वाङ्कुरं नृप । जायते मेरुणा तुल्यं शालग्रामशिलार्पितम् ॥ विधिहीनोऽपि याङ्काञ्चित् क्रियां मंत्रविवर्जितः । कुर्यादितिशेषः । चक्राङ्कपूजनात्सम्यक् लभेच्छास्त्रोदितं फलम् ॥ चक्राङ्कितशिलाग्रेतु कुर्याज्जागरणं हि सः । एकादश्यां नरश्रेष्ठ ! देवास्तस्य वरप्रदाः ॥ यत्र सन्तिष्ठते सम्यक् देवो द्वारवती भवः । तीर्थकोटिसहस्राणि तत्र सन्निहितानि वै ॥ यत्रयत्र नरश्रेष्ठ देवश्चक्राङ्कचिह्नितः । तत्र गच्छन्महाभागं संसाराब्धिं तरिष्यति । कलिकालकृतात्तस्य को विभेति नराधिप ॥ नावेक्षितुं शक्नुवन्ति सर्वे तं यमकिङ्कराः । शालग्रामोद्भवं शैलं द्वारकायां समुद्भवम् ॥ कलिकालेऽपि राजेन्द्र न जहाति जनार्दनः । यदीच्छसि हि दुष्पारं तर्तुं संसारसागरम् ॥ शालग्रामभवं शैलं द्वारकायां समुद्भवम् । अर्चितः पूजितो ध्यातः संस्कृतः शैलनायकः ॥ पापिनामुपकाराय किम्पुनधर्मशालिनाम् । जन्मप्रभृति यस्यापि दुष्कृतानि

हे राजन् ! शालग्राम शिला पर प्रेम से चढ़ाया हुआ पत्र, पुष्प, फल, जल और दूर्वांकुर जो कुछ भी हो वह सुमेरु के तुल्य हो जाता है । जो नर विधि मन्त्र से रहित होकर (जैसे-तैसे) भी उक्त चक्र चिह्नित शिला की पूजा के सम्बन्ध में जो कुछ काम करता है वह भी अच्छी तरह से शास्त्रोक्त फल को प्राप्त करता है । हे नरश्रेष्ठ ! जो मनुष्य उक्त शिला के आगे एकादशी की रातको जागरण करता है उसे सभी देवतालोग वरदायक होते हैं । जिस जगह पर उक्त क्षेत्र में उत्पन्न द्वारवाली शिला के स्वरूप भगवान रहते हैं । अथवा द्वारकावाले भगवान रहते हैं । वहाँ पर कोटि सहस्रों तीर्थ नजदीक ही में आकर बैठते हैं । हे राजन् ! जहाँ-जहाँ पर चक्रचिन्हित शालग्राम शिलास्वरूप भगवान् रहते हैं, हे महाभाग ! उस स्थान पर की यात्रा करता हुआ मनुष्य भवसागर को पार कर लेता है । हे राजन् ! कलिकाल रूप यमराज से कौन भयभीत नहीं होता है परन्तु शालग्राम का पूजन करता हो तो उसे यमदूत सब देख तक नहीं सकते हैं । हे राजेन्द्र ! द्वारका पर उत्पन्न याने शालग्राम पर्वत सम्बन्धी मूर्ति को भगवान जनार्दन जी कलिकाल में भी नहीं छोड़ते हैं । हे राजन् ! यदि दुरन्त पार संसार सागर से पार होना चाहते हों तो द्वारका में उत्पन्न गोमती चक्र और शालग्राम शिला सम्बन्धी मूर्ति की पूजा कीजिये (अर्चितः पूजित इति उभयनिर्देशः पौनःपुनिकः) क्योंकि उन स्थान-सम्बन्धी शिला के अधिष्ठाता भगवान बार-बार वा विशेष पूजा, ध्यान और संस्कारों के किये जाने पर पापियों के तो उपकार के लिये होते हैं फिर धार्मिक लोग के लिये

त्वनेकशः ।। इमां मुद्रां समभ्यर्च्य मुच्यते सोऽपि तत्क्षणात् । स्वमन्त्रेण बुधैः पूज्यः स्वकैर्ध्यानैः स्वमुद्रया ।। हरिस्तत्र समाविष्टः सर्वदा नात्र संशयः। लक्ष्मीर्मेधा स्वधा कान्तिः पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती ।। सिद्धिर्ऋद्धिस्तथा सर्वा- मुद्रायां नित्यसंस्थिताः । सततं चैव यत्कृत्यं हरेर्देशे समाश्रितः ।। स्नानं पूजा तथा ध्यानमग्निकार्यं जपादिकम् । तस्याग्रतस्तु यः कुर्यात्तत्सर्वमक्षयं भवेत् ।। दावदाहो विषं चैव चौरवह्निभयं तथा । सर्वाणि प्रशमं यान्ति यत्र चक्राङ्किता भवेत् ।। द्वारवत्याः शिलादेवी मुद्रया मम मुद्रिता । यत्रापि नीयते तत्स्यात्तीर्थं द्वादशयोजनम् । शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।। तत्सन्निधौ त्यजेत्प्राणान्विष्णुलोके महीयते ।

पुराणसंग्रहेऽपि--शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः । कीकटे- ऽपिमृतो याति वैकुण्ठभवनं परम् ।। शालग्रामभवो देवो देवो द्वारवतीभवः ।

क्या कहना है ?. कितने लोग द्वारका पर उत्पन्न होकर गण्डकी की तपश्चर्या से उसके समीप पर भगवान् आ बैठे हैं अतएव मूल में "द्वारकायां समुद्भवम्" ऐसा कहा है, कहते हैं वस्तुतस्तु उन-उन स्थानपर उत्पन्न गोमतीचक्र और गण्डकीमणि दोनों का ग्रहण करना चाहिये। शिलायां जातः शैलः इत्यादि जिसके जिन्दगी भर जो अनेकों अपराध हैं वह भी उक्त इस शिला मुद्रा की पूजा करके उसी क्षण में पाप से मुक्त हो जाता है । विद्वान लोग को चाहिये कि लक्षणोक्त अपने-अपने मन्त्र और ध्यान और मुद्रा के अनुसार हरि की पूजा करें क्योंकि वहाँ पर हरि भगवान सर्वदा प्रविष्ट रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ! उक्त मुद्रापर लक्ष्मी, बुद्धि, स्वधा, कान्ति, पुष्टि, श्रद्धा, सरस्वती, सिद्धि और ऋद्धि इत्यादि और भी वे सब सदा रहती हैं। हरि भगवान के समीप में रहकर उनके संमुख में स्नान, पूजा, ध्यान, होमादि तथा जप इत्यादि जो कुछ कर्म हो निरन्तर जो करता है उसे वह सब अक्षय होता है । जङ्गल की दाह, जहर, चोर और अग्नि से भय इत्यादि, के सब शान्त हो जाते हैं जहाँ पर की चक्राङ्कित शिला रहती है ।। द्वारका से सन्बन्ध रखती हुई शालग्राम पर्वत पर उत्पन्न, मेरी मुद्रा से अङ्कित जो देव- स्वरूप शिला है वह जिस स्थान पर ले गयी जाती है उस स्थान के आसपास बारह योजन तक तीर्थ जानना चाहिये जहाँ पर शालग्राम शिला है उसके समीप में हरि भगवान रहते हैं जो उस शिला के समीप में प्राणों को छोड़ देता है वह विष्णुलोक में जाकर पूजित होता है ।।

पुराण संग्रह पर वचन--

शालग्राम क्षेत्र के समीप में अर्थात् चारों ओर एक कोश के भीतर मरा हुआ कीट भी परम वैकुण्ठ भवन को चला जाता है जहाँ पर शालग्राम पर्वत

उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ स्नानोदकं पिबेत्तोयं चन्दनं धारयेत्सदा । प्रक्षाल्य तत्पिबेत्तोयं शालग्रामशिलां हरेः॥ शालग्रामशिला-तोयमपीत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥ प्रत्यहं द्वादशशिलाः शालग्रामस्य चार्चयेत् । द्वारवत्याः शिलायुक्ताः सवैकुण्ठं महीयते ॥ शालग्रामशिलां दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकधा । सिंहत्रासाद्यथा यान्ति वने वरगजा यथा ॥ सकृत्करोति मनुजः शालग्रामशिलार्चनम् । पापानि तस्य नश्यन्ति तमः सूर्योदये यथा ॥ किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णु-भक्तिविवर्जितैः । शालग्रामशिलाविम्बं नार्चितं यदि पुत्रक ॥ किम्पुनर्बहुधा यस्तु पूजयेद्वैष्णवो नरः । नाहं ब्रह्मादयो देवाः सङ्ख्यां जानन्ति पुत्रक ॥ तस्मात्मद्भजनं नित्यं प्रीत्यर्थं ममपुत्रक । कर्त्तव्यं सततं भक्त्या शालग्राम-शिलाग्रतः ॥ दुर्जना बलदर्पिष्ठा विष्णुभक्तिविहीनकाः । ममलोकं नगच्छन्ति ते नराः पापमोहिताः॥ अभक्तो बुद्धिहीनश्च न कृतैकादशीव्रतः । मल्लिङ्गदर्शनं तेन नकार्यं पापबुद्धिना ॥ मल्लिङ्गकोटिभिर्यैस्तु यत्फलं

पर तथा द्वारका पर उत्पन्न दोनों देवमूर्तियों का संगम है, उस जगह पर मुक्ति रहती है, इसमें सन्देह नहीं है । हरि सम्बन्धी शालग्राम शिला को नहलाकर के उस जल का पान करे, उसपर चढ़ाये हुए चन्दन का सदा धारण करे, फिर उस शिला का प्रक्षालन कर उस जल को भी पी लेवे । जो नर शालग्राम शिला के स्नान सम्बन्धी जल को पीकर केवल शिरपर प्रक्षेपण करे वह ब्रह्मघाती कहा जाता है । द्वारका की शिला (गोमती चक्र) के साथ शालग्राम-सम्बन्धी बारह शिलाओं की प्रतिदिन जो नर पूजा करता है वह वैकुण्ठ में जाकर पूजित होता है । शालग्राम शिला के दर्शन से अनेकों पाप हट जाते हैं, जैसे—जङ्गल में सिंह के त्रास से अच्छे-अच्छे हाथी भी भाग जाते हैं । जिस मनुष्य ने एक बार मात्र शालग्राम शिला की पूजा की है उसके भी समस्त पाप सूर्योदय से अन्धकार की तरह नष्ट हो जाते हैं ॥ हे पुत्र, विष्णुभक्ति से रहित होकर सैकड़ों मेरे लिङ्गों की पूजा से क्या फल होता है । यदि शालग्राम शिलास्वरूप भगवान की प्रतिमा का पूजन न करता हो ! हे पुत्र, अधिक क्या कहें; जो वैष्णव मनुष्य शालग्राम की पूजा करता है, उस पुण्य की संख्या तो ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते हैं। अतः हे पुत्र मेरी प्रीति के लिए नित्य प्रति शालग्राम शिला के सामने ही निरन्तर मेरा भजन करना चाहिये। जो लोग बल से उन्मत्त (मेरी भक्ति से गर्वित) होकर विष्णु भक्ति से पराङ्मुख हैं वे पाप से मोहित मनुष्य मेरे लोक की ओर नहीं जाते हैं । जो मनुष्य अभक्त वा बुद्धिहीन होकर एकादशी का उपवास नहीं करता है उस पापबुद्धि को मेरे लिङ्ग का

पूजितैः स्तुतैः। शालग्रामशिलायां तु एकेनापिच तत्फलम् ॥ शालग्राम-शिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः। तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश ॥ कामक्रोधभयान्नित्यं भक्तिभावविवर्जितः। शालग्रामशिलां चेत्तु पूजयित्वाऽच्युतो भवेत् ॥ येषां नास्ति गुरुर्मन्त्रो न च दीक्षाविधिक्रमः। तेषामपि परं नास्ति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ शालग्रामशिलातोयं हित्वा योऽन्यदुपासते। कलिकाले विशेषेण नष्टोऽसौ पापतस्करैः॥ शालग्रामशिला यस्तु क्रोशमात्रं समन्ततः। कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठसदनं नरः॥ स्नाने वाऽऽचमने चैव भोजनादौ तथैव च। तथैव भोजनान्ते च शालग्रामजलं पिवेत् ॥ शालग्रामशिलायत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम्। तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत्। शालग्रामशिलाविन्दुर्हत्याकोटिविनाशनम्। पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके धारयेत्सदा। भुक्तशेषं तु यो भुङ्क्ते तुलसीदलमिश्रितम्। कल्पकोटिसहस्राणि वैकुण्ठं वसते सदा। न मंत्रो न च पूजा च न विधिर्न च भावना। शालग्राम-

---

दर्शन नहीं करना चाहिये। मेरे कोटि-कोटि लिङ्गों की स्तुति और पूजा से जो फल होता है शालग्राम शिला के विषय में एक ही से उतना फल हो जाता है। जिस जगह पर शालग्राम शिलारूपी केशव भगवान रहते हैं वहाँ पर देव, दानव और यक्ष इत्यादि चौदहों भुवन रहते हैं। भक्तिभाव से रहित होकर केवल कामक्रोध के भय से ही हो मनुष्य शालग्राम शिला की पूजा करके अच्युत होता है। जिन लोगों के गुरु, मन्त्र, दीक्षा और विधिक्रम कुछ नहीं है इनका शालग्राम शिला की पूजा के सिवाय दूसरा निस्तार नहीं है। शालग्राम शिला सम्बन्धी जल को छोड़कर जो नर दूसरी चीज की सेवा करता है वह विशेष करके कलिकाल में पाप रूप चोरों से नष्ट हुआ है। शालग्राम शिला की चारों ओर एक कोश भर में मरा हुआ कीड़ा भी वैकुण्ठ भवन को जाता है फिर मनुष्य की क्या वात है ?। स्नान, आचमन और भोजन करते समय वा भोजन के बाद भी शालग्राम जल का पान किया करे। जिस स्थान पर शालग्राम शिला रहती है उसकी चारोंओर तीन योजन तक तीर्थ जानना चाहिये। वहाँ पर दान, होम वगैरह सब कोटि गुण होता है। शालग्राम शिला सम्बन्धी जलकी बूँद कोटि हत्याओं का विनाश करती है। चरणोदक और निर्माल्य का सदा मस्तक पर धारण कर लिया करे। भगवान को नैवेद्य चढ़ाकर तुलसी के पत्ते के साथ जो भोजन करता है वह हजारों कोटिकल्प पर्यन्त वैकुण्ठ पर निवास करता है। जहाँ पर शालग्राम

शिला यत्र तत्र दोषो न विद्यते ।। ब्रह्महत्यादिकं पापं मनोवाक्काय-कर्मजम् । तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं शालग्रामशिलार्चनात् ।। अगम्यागमनं पापं पापं विश्वासघातकम् । तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं शालग्रामशिलार्चनात् ।। शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्घाटयेन्नरः विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षितमोचकः ।। ते सर्वे नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ । शालग्रामस्य संस्पर्शः कोटियज्ञफलप्रदः ।। मरणं तत्समीपेतु काशीतुल्यफलं लभेत् । गंधमाल्यादिनैवेद्यैः पुष्पधूपाऽनुलेपनैः ।। अर्चयेन्मानवो यस्तु कलौ भक्ति-परायणः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ।। कल्पकोटिसह-स्रैस्तु पूजितैरपि यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चनम् ।। पादोदकेन देवस्य हत्याऽयुतसमन्वितः । शुध्यते नात्रसन्देहो यथा शङ्खोदके स्थिते ।। सुलभं को न सेवेत शालग्रामशिलाजलम् । यस्य स्पर्शनमात्रेण पूतो भवति मानवः ।। पिबन्ति ये नरानित्यं शालग्रामशिलाजलम् । पञ्च-गव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ।। शालग्रामशिलाचैव पूजनीया

शिला रहती है वहाँ पर मन्त्र, पूजा, पूजाविधि और भावना इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उस जगह में दोष नहीं ठहर सकता है। मन, वचन, शरीर और कर्म से किया गया ब्रह्महत्यादिक पाप भी हो तो शालग्राम शिला की पूजा से वह सब शीघ्र नष्ट हो जाता है। अगम्या स्त्री पर गमन करना एवं विश्वास का घात करना महापाप है परन्तु वह सब शालग्राम के पूजन से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो नर शालग्राम शिला पर दर भाव लगाता है वह ही नहीं किन्तु बेचनेवाला, सहानुभूति के देनेवाला और उस शिला की जाँच करके छोड़नेवाला वे सब जब तक सूर्य चन्द्र रहते हैं तब तक नरक में जाकर पचते हैं। शालग्राम का स्पर्श मात्र भी करोड़ों यज्ञों का फलदायी होता है। उसके समीप में मृत्यु हो तो काशी मरण के समान फल मिलता है। जो मनुष्य कलियुग में भक्ति से तत्पर होकर शालग्राम शिला की गन्धमाल्य इत्यादि नैवेद्य, पुष्प, धूप, अनुलेपन वगैरह से पूजा करता है वह सभी पापों से छूट कर चिरकाल तक वैकुण्ठ में निवास करता है। सहस्रकोटि कल्प पर्यन्त अन्य पूजाओं से जो पुण्य होता है वह शालग्राम शिला की पूजा से कोटि गुण अधिक होता है। जैसे शंख जल से शुद्ध होता है उसी तरह भगवान के चरणोदक से दशों हजार हत्याओं से युक्त भी हो तो शुद्ध हो जाता है। इस विषय में सन्देह नहीं है। कौन मनुष्य सुलभ शालग्राम शिला सम्बन्धी जल की सेवा नहीं करेगा, क्योंकि जिसके स्पर्शमात्र से मनुष्य पवित्र होता है। जो मनुष्य नित्य ही शालग्राम शिला जल को पी लिया करते हैं उन्हें हजारों पञ्चगव्य वगैरह के प्राशन से क्या मतलब है? उत्तम द्विज लोग

द्विजोत्तमैः। पदेपदेतु यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः। युक्तं पादोदकेनैव यस्य नित्यं कलेवरम्। तीर्थकोटिसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्। शालग्रामशिलातोयं यः पिवेद्विन्दुनासमम्। मातुःस्तन्यं पिवेन्नैव स भवेन्मुक्तिभाङ् नरः॥ भक्तिं भागवते नित्यं किंकरोषि नराधिप। शालग्रामशिलाविम्बं किं न पश्यस्यहर्निशम्॥ शालग्रामनमस्कारं ये कुर्वन्ति सदा नराः। ते यान्ति परमं स्थानं यत्र देवो जनार्दनः। शालग्रामशिलाग्रेतु यः करोति ममार्चनम्॥ तेनाऽर्चितः कार्तिकेय युगानामेकविंशतिः। अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्॥ शालग्रामशिलालग्नं सर्वं याति पवित्रताम्। मक्षिकापादमात्रं हि अमृतं विषमेव च॥ शिवस्वं नैव भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि। शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यधारिणः॥ शिवनिर्माल्यदातारः स्पर्शस्तेषांत्वपुण्यकृत्। शिवनिर्माल्यपुष्टाङ्गः स्पर्शनीयो न साधुभिः॥ महादुष्कृतिकर्तारस्ते नरा नरकौकसः। श्रवणद्वादशीयोगे शालग्रामसमुद्भवम्॥ अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्य पुण्यफलं

शालग्राम शिला की पूजा करें, शालग्राम शिला की पूजा के लिए जाता हुआ मनुष्य कदम कदम पर यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

जिसका शरीर भगवान के चरणोदक से युक्त है उसे सहस्रों कोटि तीर्थों की सेवा करने की क्या जरूरत है? विन्दुमात्र भी शालग्राम शिला सम्बन्धी जल का जो पान करता है, वह फिर स्तनन्धय होकर माता के गर्भ से जन्म नहीं लेता है क्योंकि वह तो मुक्ति का भागी है। हे राजन्! आप भगवान की क्या भक्ति करते हैं? क्योंकि शालग्राम शिला का प्रतिदिन क्यों दर्शन नहीं करते हैं। शालग्राम के लिये जो मनुष्य सदा नमस्कार किया करते हैं वे लोग उस स्थान पर चले जाते हैं जहाँ पर भगवान जनार्दन जी विराजमान हैं। शालग्राम शिला के सामने जो मेरी पूजा करता है हे कार्तिकेय! उससे एकहत्तर युग तक मैं पूजित होता हूँ। मेरा पत्र पुष्प फल जलादिक नैवेद्य अयोग्य होता है परन्तु शालग्राम शिला के सम्पर्क से सब पवित्र होता है। चाहे अमृत हो वा विष ही हो मक्खी का पाद के बराबर मात्र भी कण्ठ तक प्राण चले आये हों तब भी शिवस्व को नहीं खाना चाहिये। शिव प्रसाद के खाने वाले, शिव निर्माल्य के धारण करने तथा देने वाले जो हैं इनके तो स्पर्शमात्र से भी पाप लगता है। सज्जनों को शिव निर्माल्य से जीविका चलाने वाले का स्पर्श नहीं करना चाहिये।

मर्त्यलोक के निवासी वे मनुष्य लोग महान् दुष्कर्म के करने वाले हैं। भाद्रशुक्ल द्वादशी का श्रवण नक्षत्र के साथ योग हो जाने पर अर्थात् हरि वासर योग में जो वैष्णव नर सदा शालग्राम शिला की पूजा करता है उसके पुण्य का

शृणु। कोटिलिङ्गसहस्रैस्तु पूजितैर्जाह्नवीतटे ॥ शालग्रामार्चनान्मर्त्यो दिनेनैकेन तत्फलम्। यः पुनः पूजयेद्भक्त्या चक्रवर्त्ती हि जायते॥ सम्पूजयेच्छतशिलां स हरेर्लोकमाप्नुयात्। प्रयागे यत्फलं प्रोक्तं पितृणां पिण्डपातने॥ तत्फलंकोटिगुणितं शालग्रामशिलाग्रतः। वैवस्वतभयं नास्ति नास्ति जन्मभयं तथा। शालग्रामार्चनात्सद्यः सर्वोयाति पवित्रताम्॥ अग्निहोत्रं कृतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा। येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्राम-समुद्भवे ॥ विनादानैर्विनामंत्रैर्विनातीर्थैर्विनामखैः। मुक्तिं याति नरः सद्यः शालग्रामशिलार्चनात्॥ स याति वैष्णवं धाम सत्यमेतन्मयोदितम्। कौतुकं शृणु मे देवि विष्णोर्निर्माल्यवन्दनात्॥ लेपनान्नाशमायान्ति ब्रह्महत्या-दिकान्यपि। विष्णोर्निर्माल्यशेषेण योऽङ्गानि परिमार्जयेत् ॥ दुरितानि विनश्यन्ति व्याधयो यान्ति खण्डशः। स्नानोदकं पिबेन्नित्यं चक्राङ्कित-शिलां हरेः। प्रक्ष्याल्य वा पिबेत्तोयं ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ भोजनानन्तरं

फल सुनो। गङ्गा तट में रहकर हजारों कोटि शिव लिङ्ग के पूजन से जो फल मिलता है वह एक दिन मात्र शालग्राम शिला की पूजा करने से ही उतना फल मिल जाता है। फिर जो नर प्रेम से सदा पूजन करता है वह निश्चय चक्रवर्ती हो जाता है। जो एक सौ शिलाओं की पूजा करता है वह हरि लोक को प्राप्त करता है। तीर्थराज प्रयाग में पितरों के लिये पिण्डदान करने से जो पुण्य होता है वह शालग्राम शिला के सामने में कोटिगुण अधिक हो जाता है। उसे न यम से भय होगा न तो पुनर्जन्म का ही भय रहेगा। शालग्राम शिला की पूजा से तत्काल सब पवित्र हो जाता है। उसने अग्निहोत्र कर लिया, उसी ने ससागर पृथ्वी भी दान कर डाली, जिसने शालग्राम शिला चक्र पर हरि भगवान की पूजा की है। मनुष्य दान, मंत्र, जप, तीर्थ और यज्ञों के किये बिना ही तत्काल शालग्राम शिला की पूजा से मुक्त होता है। वह वैकुण्ठ धाम को चला जाता है, यह मेरा कहना सत्य है। हे देवि! एक अचम्भे की बात मुझसे सुनो—विष्णु भगवान के निर्माल्य की वन्दना और लेपन करने से भी ब्रह्म-हत्यादिक पाप भी नष्ट हो जाते हैं। विष्णु पूजा सम्बन्धी निर्माल्य के शेष से जो अङ्गों की सफाई करता है उसके पाप व्याधि वगैरह ऐसे नाश होते हैं कि टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। हरि की चक्राङ्कित शिला सम्बन्धी स्नान किये हुए जल को नित्य ही पी लिया करे अथवा उस शिला को पखार करके जल को पीवे तो ब्रह्महत्या को भी दूर करता है। भोजन के बाद विष्णु भगवान के लिये अर्पण

विष्णोरर्पितं तुलसीदलम्। भक्षणात्पापनिर्मुक्तश्चान्द्रायणशताधिकम् ॥ अपि पापी दुराचारः प्रणमेच्च हरिं सदा। नेक्षन्ते किङ्करायाम्या जलौकास्ता-रजं यथा ॥ विष्णुभक्तिं विना नृणां पापिष्ठानां च सर्वदा। उपायो नास्ति नास्त्यन्यः सततं नरकांबुधौ ॥ शालग्रामशिलातोयं सोमपानमनुत्तमम्। पात्रान्तरे पतत्तोयं न पिवेच्च कदाचन ॥

अत्र पात्रान्तर इति पदेऽन्यत्पात्रं पात्रान्तरमिति विग्रहस्वारस्या-दपतत्तोयमित्यकारविश्लेषः कार्यः। तथा चान्यस्मिन्पात्रेपतद्धृतं तोयं न पिवेत् किन्तु धृतमेवपिवेदिति स्वरससिद्धोऽयमर्थः। अन्यथा यस्मि-न्पात्रे शालग्रामशिलामूर्त्तिपूजनं कृतं तेनैव पात्रेण तत्तोयं पिवेदिति स्वारस्य हीनोऽर्थः स्यात्।

विष्णुपादाभिषिक्तं यः करेण पिवते यदि।
समूढो नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दशेति ॥

प्रयोगपारिजातादि धृतस्मार्तवाक्याच्चोक्तएवार्थः समीचीन इति।

किये गये तुलसी के पत्ते का प्राशन करने से मनुष्य पाप से मुक्त होता है। वह सैकड़ों चान्द्रायण व्रत के फल से भी अधिक का होता है। कैसा भी दुराचारी पापी क्यों न हो सदा हरि के लिये प्रणाम करता हो तो ताड़ी वा सुर्ती की जोंक की तरह उसे यमदूत देखना नहीं चाहते हैं। सिवाय विष्णु भक्ति के सर्वदा ही मनुष्यों का विशेषतः पापियों का निरन्तर नरक सागर से पार होने का कोई उपाय है ही नहीं। शालग्राम शिला सम्बन्धी जल सोमपान से भी उत्तम होता है। उस जल को अन्य पात्र पर बिना गिराये कभी न पीवे।

अन्यपात्र = पात्रान्तर। "पात्रान्तरेपतत्" पर पात्रान्तरे के आगे 'ऽ' ऐसा खण्डाकार जानना चाहिये। अतएव पात्रान्तरे अपतत् इस प्रकार का छेद कीजिये। इसका मतलब ऐसा होता है कि जिस पात्र पर शालग्राम शिला की पूजा की गयी है उसमें नहीं किन्तु इससे अलग दूसरे पात्र में उस जल को डालकर पान करे। यह अर्थ ठीक बैठता है नहीं तो उसमें पूजा हुई है उसी पात्र से पीवे ऐसा असङ्गत (गड़बड़) अर्थ हो जायगा।

जो नर विष्णु के चरण पर चढ़ाये हुए जल को यदि हाथ से पीता हो तो वह मूढ़ जबतक चौदह इन्द्र न हो (अर्थात् चौदह इन्द्र तक) तब तक नरक को जाता है। इत्यादि ॥

प्रयोग पारिजात प्रभृति धर्मग्रन्थों के वचन से भी उपरोक्त अर्थ ही ठीक बैठता है। इत्यादि ॥

त्रिरात्रफलदा नद्यः काश्चिदप्यसमुद्रगाः ।
समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितांपतिः ॥
षाण्मासफलदा गोदा वत्सरस्य तु जाह्नवी ।
विष्णुपादोदकस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
गङ्गाप्रयागगयपुष्करनैमिषाणि
संसेवितानि बहुशः कुरुजाङ्गलानि ।
काले न तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं
पादोदकं भगवतः प्रपुनाति सद्यः ॥

नित्यं च पुष्करं तत्र प्रयागं च प्रहस्तकम् । प्रभासं च कुरुक्षेत्रं रुद्रं विश्वं हिमालयम् ॥ कोटितीर्थं शूलभेदं शुक्लतीर्थं तथैव च । वाराणसी गया चैव मथुरा नैमिषं तथा । पिण्डारकं भृगुक्षेत्रं रामक्षेत्रं तथैव च । गङ्गा द्वारंपुष्करञ्च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ॐकारं नर्मदायास्तु केदारञ्चाविमुक्तिदम् । अवन्ती द्वारका काञ्ची यमुना च सरस्वती ॥ गोदावरी तुङ्गभद्रा गङ्गा रेवा च गण्डकी । क्षिप्रा तापी पयोष्णी च चन्द्रभागामहानदी ॥ वितस्ताचैव कावेरीसरयूर्देविकानदी । विशाला गोमतीचैव नदी वेत्रवती

वे छोटी नदियाँ जिनकी समुद्र तक पहुँच नहीं है त्रिरात्र की फलदायक होती हैं। समुद्र तक पहुँचनेवाली एक पक्ष की, समुद्र एक महीने का, गोदा छः महीने की तथा गङ्गा एक वर्ष की फलदायिनी होती है। परन्तु वे नदी, समुद्र सब विष्णु के चरणोदक सम्बन्धी सोलह कलाओं में एक के लायक भी नहीं होते हैं।

गङ्गा, प्रयाग, गया, पुष्कर क्षेत्र, नैमिष क्षेत्र और कुरुक्षेत्र इत्यादि अनेकों तीर्थों की सेवा किये जाने पर वे सब तीर्थ जल कुछ काल से पाप का संशोधन करते हैं परन्तु भगवान का चरणोदक सम्बन्धी तीर्थ तो तत्काल पवित्र करता है।

नित्य ही शालग्राम शिलापर इतने तीर्थ रहते हैं। वे ये हैं—पुष्कर, प्रयाग, प्रहस्तक, प्रभास, कुरुक्षेत्र, रुद्रतीर्थ, विश्व, हिमालय, कोटितीर्थ, शूल-भेद (त्रिशूली), शुक्लतीर्थ, वाराणसी, (काशी), गया, मथुरा, नैमिषक्षेत्र, पिण्डारक, भृगुक्षेत्र, रामक्षेत्र (अयोध्या) भागीरथी गङ्गा का द्वार (हरद्वार, कनखल) 'भास्कर'—पुष्कर, गङ्गासागर का संगम, नर्मदेश्वर ॐकार, केदार, अविमुक्तिक, अवन्ती, द्वारका; काञ्ची, यमुना, सरस्वती, गोदावरी तुङ्गभद्रा, गङ्गा, रेवा, गण्डकी, क्षिप्रा, तापी, पयोष्णी, चन्द्रभागा, महानदी, वितस्ता, कावेरी, सरयू, देविका, विशाला, गोमती नदी, वेत्रवती, नदी रूपवती, पुण्या

तथा ॥ नदी रूपवतीपुण्या नदीवेदवती तथा । रुद्रञ्चैव महाकालं तथैव शशिशेखरम् ॥ भैरवं भृगुतुङ्गञ्च भीष्मं नारदमेव च । भूतेश्वरं भस्मगात्रं यानि लिङ्गानि भूतले ॥ स्वर्णलिङ्गं पयोलिङ्गमन्तरिक्षं च भावितम् । शालग्रामशिलायां तु प्रत्यहं निवसन्ति च ॥ ब्रह्मतीर्थन्तु यच्चास्ते सूर्यतीर्थं तथैव च । वसन्ति तत्रगाङ्गेय सर्वतीर्थानि सुव्रत । शालग्रामशिलायां तु समीपे केशवस्य हि ॥ वेदास्त्रयो मखाः सर्वे चाश्वमेधादयस्तथा । व्रतदानानि सर्वाणि पुराणानि तथागमाः ॥ दमाः शमादयः सर्वे वर्णाश्रमपदं तथा । शालग्रामशिलायां तु नित्यं तिष्ठन्ति ते स्वयम् ॥ शालग्रामशिलायत्र यत्रद्वारवतीशिला । शङ्खश्च तुलसी यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । यत्पुण्यं लभते नित्यं विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् । जप्तं हुतं तथा दत्तमर्चनं च तथा कृतम् ॥ शालग्रामसमीपेतु सर्वं कोटिगुणं भवेत् । अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ।

नैवेद्यशेषं तुलसीविमिश्रं विशेषतः पादजलेन विष्णोः ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम् ॥

एवं नदी वेदवती इत्यादि नदियाँ और रुद्र भी—महाकाल, शशिशेखर, भैरव, भृगुतुङ्ग, भीष्म, नारद, भूतेश्वर, भस्मगात्र इत्यादि जितने भूमण्डल पर लिङ्ग हैं और स्वर्ण लिङ्ग, पयोलिङ्ग इत्यादि प्रसिद्ध जितने अन्तरिक्षगत लिङ्ग हैं वे सब (नदीनद सागर शिवलिङ्ग इत्यादि) शालग्राम शिलापर प्रति दिन निवास करते हैं। हे गङ्गा पुत्र ! और भी जो ब्रह्मतीर्थ, सूर्यतीर्थ इत्यादि अनुक्त भी सभी तीर्थ केशव सम्बन्धी शालग्राम शिला पर समीप में ही आकर बैठते हैं। हे सुव्रत ! तीनों वेद, पाक-हविरादि सभी यज्ञ अश्वमेध वगैरह, व्रत, दान, अठारहो पुराण, उपनिषद्, शमदमादि षड्विध सम्पत्ति, सभी वर्णाश्रम पद इत्यादि वे सब स्वयं शालग्राम शिलापर नित्य ही रहते हैं। जिस स्थानपर शालग्राम पर्वत की शिला (गण्डकी मणि), द्वारका की शिला (गोमती चक्र) शङ्ख और तुलसी हैं वहाँ पर मुक्ति ही होती है इसमें सन्देह नहीं है। एक हजार अग्निष्टोम और एक सौ वाजपेय यज्ञ का जो पुण्य है वह विष्णु भगवान के नैवेद्य भक्षण से नित्य ही लाभ होता है। शालग्राम शिला के समीप में रहकर जप, होम, दान, पूजा इत्यादि जो किया जाता है सब कोटि गुण होता है। मैं अकाल की मृत्यु के हरण करनेवाले सभी व्याधियों के विनाशकारी विष्णु भगवान के चरणोदक को पीकर के शिर से धारण करता हूँ॥

जो मनुष्य शालग्राम रूपी मुरारि भगवान के संमुख में रहकर विशेषतः भगवान के चरणोदक से तुलसीपत्र को मिलाकर नित्य प्रति नैवेद्य शेष का भक्षण करता है वह अयुत कोटि यज्ञों के पुण्य को प्राप्त करता है॥

इत्यादीनि नानाशास्त्रोक्तानि शालग्राममाहात्म्यप्रतिपादकवाक्यानि बहूनि सन्ति ग्रन्थविस्तरभयान्नलिख्यन्ते। इति शालग्राममाहात्म्यम्।

अथ शालग्रामशिलामूर्त्तिदानफलम्

वाराहे—

दद्याद्भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः।
सुवर्णसहिता तस्य यत्पुण्यं तच्छृणुष्व मे॥
सुवर्णसहिता भूमिः सपर्वतवनाकरा।
ससमुद्रा भवेद्दत्ता सत्पात्राय वसुन्धरे इति॥

प्रतिग्रहे तु दोषः।

तिलधेनुर्गजोवाजी प्रेतान्नमजिनं मणिः। सुरभिः सूयमाना तु घोराः सप्त प्रतिग्रहा इतिवचनात्॥

इत्यादि अनेकों शास्त्रोक्त शालग्राम माहात्म्य विषयक कई प्रमाण हैं परन्तु ग्रन्थविस्तार के भय से इतने ही लिखे गये हैं।

शालग्राम माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

शालग्रामशिलामूर्ति का दान फल—

वाराहपुराण पर वचन है कि—

हे देवि! जो मनुष्य सुवर्ण के साथ ही सालंकृत शालग्राम सम्बन्धी शिला का विष्णुभक्त के लिये दान देता है मुझसे उसके पुण्य का फल सुनो। हे वसुन्धरे! सत्पात्र के लिये देने पर उसने पर्वत, वन, खान और समुद्र के साथ-साथ सुवर्ण से भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर डाला। इत्यादि॥

सुवर्ण नाम है सोने का, परन्तु शास्त्र प्रमाण से सोलह मासे के परिमाण को सुवर्ण जानना चाहिये॥

पारिभाषिक ग्रन्थ में कहा है कि—

"शाणौ द्वौ द्रङ्क्षणं विद्यात्कोलं वटकमेव च॥
कर्षार्द्धं द्विगुणं कर्षं सुवर्णं चाक्षमेव च॥
द्वे सुवर्णे पलार्द्धं स्यात्·············॥" इत्यादि॥

प्रतिग्रह पर दोष—

"तिल, धेनु, हाथी, घोड़ा, मरे घर का अन्न (शय्या वगैरह) चर्म, मणि और उभयमुखी (वियाती हुई गाय) ये सात घोर प्रतिग्रह हैं।" ऐसा वचन है, इसलिये दान लेने पर महान् दोष लगता है।

नचास्य शिलात्वेनमणित्वाभावादितिवाच्यम् ।

विज्ञाय भगवद्रूपं स्वरूपं गण्डकीमणेः । प्रतिमाद्यपिविज्ञाय तथा पुण्यादिसंस्थितिम् ॥ आत्मानमपि विज्ञाय यो भजेन्निरवग्रही । विष्णुमेकान्तया भक्त्या द्विजन्मापरमेश्वरम् । इष्टं यज्ञादिभिस्तेन पृथिवीसागरमेखला ॥ दत्तापूर्त्तं कृतं चापि यस्यास्ते गण्डकीमणिः । उपवासदिने येन पूज्यते गण्डकीमणिः ॥ इहचक्रीपरत्रापि स मुकुन्दश्चतुर्भुजः । सुषिरंद्वारदेशे स्याच्चक्रद्वन्द्वं मनोरमम् ॥ देवकीतनयाह्वाने क्षणं वै गण्डकीमणौ ॥

इत्यादिपञ्चरात्रागमे शालग्रामस्य मणित्वेनाभिधानात् ।

अथ गोमतीचक्रप्रशंसाया अप्युक्तत्वाल्लक्षणमुच्यते स्कान्दे—

ऐसा कहिये कि इन सातो में शालग्राम का नाम ही नहीं है फिर प्रतिग्रह में क्या दोष है ? सो नहीं, शालग्राम शिला को मणि मानने पर दोष है ॥

फिर यह कहिये कि शिला तो शिला ही है, वह मणि कैसे ?

यह भी नहीं क्योंकि—"विज्ञाय ······स्वरूपं गण्डकीमणेः" गण्डकी के मणि को भगवान का स्वरूप जानकर प्रतिमादिकों का निरूपण और पुण्यादि की संस्थिति को समझकर तथा आत्मा (आत्मबल) को, पहिचान करके जो द्विजाति मनुष्य एकान्त भक्ति से परमेश्वर विष्णुभगवान का भजन करे वह निरवग्रही (प्रतिबन्ध शून्य अर्थात् मुक्त) है । उसने सभी यज्ञादि कर लिये, ससागर पृथिवी का दान कर डाला और इष्टापूर्त भी कर लिया, जिसके पास गण्डकी का मणि है । पूर्त्त का लक्षण यह है—"वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते, इति स्मृतेः" उपवास के दिन जो गण्डकी मणि (शालग्राम) की पूजा करता है वह इस लोक में चक्रधारी तो है ही परलोक में भी जाकर खास चतुर्भुज मुकुन्द हो जाता है । भगवान देवतनय नामक गण्डकी मणि (शालग्राम) पर क्षण याने संलग्न सुन्दर दो चक्रों के साथ द्वारभाग में छिद्र भी होता है । (अथवा वासुदेव के आह्वान में उत्सव जानना चाहिये ऐसा भी अर्थ होता है क्योंकि क्षण शब्द का उत्सव भी अर्थ है ।)

इत्यादि वचन से पञ्चरात्रागम पर शालग्राम शिला को मणि ही कहा है ॥

प्रसंगवश गोमतीचक्रों की प्रशंसा भी आई है अतः उनके लक्षण भी बताये जाते हैं—

स्कन्दपुराण का वचन है कि—

एकः सुदर्शनोद्वाभ्यां लक्ष्मीनारायणः परः ।
त्रिभिस्त्रिविक्रमो नाम चतुर्भिस्तु जनार्दनः ॥

पञ्चभिर्वासुदेवश्च षड्भिः प्रद्युम्न उच्यते । सप्तभिर्बलदेवश्च अष्टाभिः पुरुषोत्तमः ॥ नवभिश्चनवव्यूहोदशभिर्दशमूर्त्तिकः । एकादशाऽनिरुद्धो हि द्वादश द्वादशात्मकः ॥ अन्यैस्तु बहुभिश्चक्रैरनन्तः परिकीर्तितः । सुदर्शनाद्यास्तु शिलाः पूजिताः सर्वकामदाः ॥ कृष्णा मृत्युप्रदानित्यं कपिला च भयावहा । रोगार्त्तिकर्बुरादद्यात्पीता वित्तविनाशिनी ॥ धूम्राभा पुत्रनाशाय भग्ना भार्यावियोगकृत् । पुत्रपौत्रधनादीनि स्वर्गमोक्षौ सदा प्रियम् । ददाति शुक्लवर्णस्तु तां यत्नेन समर्चयेदिति ॥ इति गोमतीचक्रलक्षणम् ।

अथ संग्रहीतुरुपसंहृतेरवतारः

अत्रादौ कथितोग्रन्थे गण्डकीमणिलक्षणे ।
शालग्रामशिलामूर्त्तिप्रादुर्भावः सहेतुकः ॥१॥

क्षेत्रं तन्महिमायुक्तं तत्प्रमाणं समीरितम् । निरुक्तिः कथिता शालग्रामगोचरिका तथा ॥ २ ॥ शालग्रामार्चनस्याऽथनित्यत्वं समुदीरितम् ।

गोमतीचक्र का लक्षण इस प्रकार का है । एक चक्र से सुदर्शन जानना चाहिये, दो चक्र से भगवान लक्ष्मीनारायण, तीन से त्रिविक्रम, चार से जनार्दन, पाँच से वासुदेव, छः से प्रद्युम्न, सात से बलदेव, आठ से पुरुषोत्तम, नौ से नवव्यूह, दश से दशमूर्ति, ग्यारह से अनिरुद्ध, बारह से द्वादशात्मा (सूर्य) एवम् रीत्या बारह से ऊपर और बहुत चक्रों से अनन्त कहे जाते हैं । सुदर्शनादि लक्षणों की शिलाएँ सभी कामनाओं की देनेवाली होती हैं । उनमें भी काली शिला मृत्युदायक, कपिल वर्ण की भयकारिणी, कर्बुर चित्रवर्ण) की रोग और दुःख की देनेवाली, पीतवर्ण की धननाशिनी, धूम्रवर्ण की पुत्रघातिनी और फूटी-टूटी हुई भार्या वियोगकारिणी होती है । सुफेद वर्ण की शिला ही पुत्र, पौत्र, धन आदि शब्द से धान्य, पशु, आयु, आरोग्य, हर्ष, विजय इत्यादि के साथ सदा प्रिय एवम् भावना के अनुसार स्वर्ग और मोक्ष को भी देती है, इसलिये उसकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ।

गोमतीचक्र के लक्षण समाप्त हुए ।

ग्रन्थकर्ता का उपसंहार

यहाँ पर ग्रन्थ के आदि में गण्डकी मणि के लक्षणों के विषय पर सकारण शालग्राम सम्बन्धी शिलामूर्तियों का प्रादुर्भाव बताया गया है । उनकी महिमा के साथ शालग्राम क्षेत्र, उसका प्रमाण (विस्तार) भी कहा गया है, उसके बाद शिलाओं का निर्वाचन प्रकार और शालग्राम की पूजा के सम्बन्ध में

मुद्रादिलक्षणं पश्चाद्विशेषारंभणं ततः ॥३॥ चक्रसंस्थानभेदश्चह्येकचक्राद्यनुक्रमः। उद्देशो लक्ष्यमूर्त्तीनां ततो मत्स्यादिलक्षणम् ॥ ४ ॥ केशवादेरनन्तादेर्लक्षणं समुदारितम्। एवं विष्णोर्ब्रह्मणश्च शङ्करस्य तथा रवेः ॥ ५ ॥ धर्मराजस्य च तथा विघ्नराजस्य चैवहि। कुण्डलिन्याश्चमूर्त्तीनां भेदा लक्षणमेव च ॥ ६ ॥ ततोग्राह्याग्राह्यलक्ष्मब्राह्मणादिर्विधिस्ततः। संख्याफलं दानविधिः प्रतिग्रहनिषेधनम् ॥७॥ इत्येवं गण्डकीचक्रलक्षणं विशदीकृतम्। प्रसंगाद्गोमतीचक्रलक्षणं समुदीरितम् ॥८॥ इत्येवं लक्षणं प्रोक्तं नानाशास्त्रनिदर्शनात्। त्रिपुरानाथ विदुषा गण्डकीमणिगोचरम् ॥ ९ ॥ पुराणसंग्रहमतं समालम्ब्य तु यत्कृतम्। दृष्ट्वा संशोध्य धीमद्भिः क्षम्यतां मम साहसम् ॥ इति। अत्रानुवादकश्लोकाः—

तत्रेश्वरीप्रसादस्य तनयः साग्रजानुजः। नर्मदागर्भसञ्जातो भवानीशङ्करः

निरर्थत्व कथन इत्यादि दर्शाया गया है। उसके बाद मुद्रादिका (घुणा लिपि) के लक्षण, फिर विशेष बातों (मूर्तिभेद, स्थूल-सूक्ष्मादिक) का आरंभ, तदनन्तर चक्र और संस्थिति के भेद, तत्पश्चात् एक चक्रादि का उपक्रम एवम् लक्ष्य की गयी मूर्तियों का वस्तु सङ्केर्तन इत्यादि किये गये हैं। तब जाकर मत्स्य-कूर्मादिकों का लक्षण किया गया है। इसी सम्बन्ध में केशव, अनन्त और आदि से नृसिंहादि का लक्षण भी बताया गया है। इस प्रकार विष्णुमूर्ति सम्बन्धी विभिन्न मूर्तियों के लक्षणों को बताते हुए उससे आगे जाकर ब्रह्मा, शङ्कर, सूर्य, धर्मराज और विघ्नराज (गणेशजी) के लक्षण भी दर्शाये गये हैं। उसके बाद कुण्डलिनियाँ और मूर्तियों के भेद एवम् लक्षण भी कहे गये हैं। तत्पश्चात् शालग्राम के सम्बन्ध में ग्राह्य ग्राह्य विवेक, फिर ब्राह्मणादि विशेष जातियों के लिये पूजाधिकार वा विधान उसके पीछे पूज्य मूर्तियों की संख्या, पूज फल, माहात्म्य, दान विधि, प्रतिग्रह का निषेध इत्यादि विषय, गण्डकीचक्र वा शालग्राम शिला के लक्षणों के साथ स्पष्ट रूप से बताया गया है, इसी प्रसङ्ग से गोमतीचक्रों के लक्षण भी बताये गये हैं। इस प्रकार पण्डित त्रिपुरानाथजी से अनेकों शास्त्र के उदाहरण द्वारा गण्डकी मणि याने शालग्राम शिला के विषय में यह लक्षण ग्रन्थ बनाया गया है ॥ ग्रन्थकर्ता का अनुरोध—

अनेकों पुराण से संगृहीत मत का अवलम्बन करके जो किया गया है उसे देखकर त्रुटियों के संशोधन करते हुए विद्वान लोग मेरे साहस की क्षमा करें।

यहाँ पर कुछ अनुवादक का भी लेख है—

मैं श्रीमती माता नर्मदा देवी के गर्भ से उत्पन्न, बड़े और छोटे भाइयों से युक्त, पूज्यपाद पं० ईश्वरीप्रसाद उपाध्यायजी का सुपुत्र, नृसिंह द्विवेदी, शुकदेव, शिवबालक, सूर्यनारायण, रामयशःशास्त्री इत्यादि विद्वानों का प्रिय शिष्य पर्वतीय "काफले" उपाधि का ब्राह्मण, बहुत शास्त्रों का विशारद ब्राह्मण "भवानी

सुधी ॥ १ ॥ पर्वतीय उपाध्यायः कफल्लकाउपाभिधः । नृसिंहादिक-सच्छात्रो बहुशास्त्रविशारदः ॥२॥ वासो मे मध्यनेपालमिलामपुटभेदनम् । राजधानीं समासाद्य कार्यकारणतस्ततः ॥ ३ ॥ स्थितवान् वैद्यराजस्य गृहे विष्णुधरस्य ह । छत्रच्छायां प्रपन्नोऽहं श्रीश्रीश्री मोहनप्रभोः ॥४॥ तत्रैकदा तु सम्प्राप्तो ग्रन्थस्यास्य प्रकाशकः । मया सह थकलिति कश्चित्सुब्बाभि-धोनरः ॥५॥ तेनाहमर्थितोहिन्द्यां संस्कृतस्यानुवादने । ममानुरूपमेवैतज्ज्ञात्वा सा धरणीधरः ॥ ६ ॥ शालग्रामपरीक्षाया निर्मिताया बहुश्रमैः । त्रिपुरानाथ कृतिना भाषायापरिवर्तने ॥ ७ ॥ सस्वानुजः प्रवृत्तोऽहं पक्षेणैकेन केवलम् । खण्डितैर्गलितैर्वाक्यैर्यत्किञ्चिल्लिखितं शुभम् ॥ ८ ॥ तपस्यगच्छत्पूर्णत्वं पौर्णमास्यां तु पौषतः । वत्सरे वैक्रमीये च बाणशून्यखलोचने ॥ ९ ॥ कुटिलोऽपि भवेत्स्वादुः शर्कराघृतपूरितः । मोदकस्तु तथैवेयं भाषापि कुटिला भवेत् ॥ १० ॥

शङ्कर" उपाध्याय हूँ । मेरा वासस्थान नेपाल राज्यान्तरगत "इलाम बाजार" पर है । इधर-उधर घूमते-फिरते कुछ कार्यकारण से वहाँ से मैं नेपाल राजधानी पर आकर श्रीश्रीश्री मोहन नरेश की छत्रच्छाया में रहता हुआ वैद्यराज विष्णुधर के घर पर ठहरा रहा, इसी बीच में इस ग्रन्थ के प्रकाशन की इच्छा रखनेवाले थकाली सुब्बा (मोहनमान सेरचन्द) नाम के एक मनुष्य मुझसे मिले, उन्होंने मुझसे इस ग्रन्थ का संस्कृत से हिन्दी भाषा में अनुवाद करने का अनुरोध किया, तब मेरे छोटे भाई पं० धरणीधर के साथ रहकर मैंने सोचा कि यह तो मेरे लिये अच्छा काम है सो क्या है ? पुराने पण्डितजी त्रिपुरानाथ से अत्यधिक परिश्रम द्वारा संग्रह किया गया "शालग्राम परीक्षा" नामक ग्रन्थ का असंस्कृतज्ञ लोग के लिये भाषा में अनुवाद करना है । अतएव मैं उसपर मेरे भाई को साथ लेकर एक पक्ष भर अनुवाद के काम में डट गया । इस तरह टूटे-फूटे एवम् गलित वाक्य ही क्यों न हों, परन्तु जो लिखा हूँ सो शुभ काम सोच करके ही । अतः (शीघ्रता से बिना सोचे ही लिखने के कारण बहुत जगह पर त्रुटियाँ रह जा सकती हैं लेकिन जैसे भी हो) पौष में आरम्भ होकर वैक्रमीय संवत् २००५ माघ शुक्ल पौर्णमासी के रोज पर यह शीघ्रानुवाद समाप्त हुआ । बस, अधिक क्या कहना है । जैसे चीनी और घी से भरा हुआ लड्डू टेढ़ा भी हो तो स्वादिष्ट ही होता है । उसी तरह यह भाषा भी जाननी चाहिये ॥

ज्ञानतोऽज्ञानतोवाऽपि यन्मया सुकृतं कृतम्। प्रसीदतां ततस्तेन पार्वती-परमेश्वरौ ॥ ११ ॥

इति श्री नेपालक्षेत्रे त्रिपुरानाथविदुषा संगृहीतं शालग्रामलक्षणम्

॥ शुभमस्तु सर्वजगताम् । शुभम् ॥

चाहे जान बूझकर हो चाहे अज्ञान से ही हो जो मैं (अनुवाद रूप) इस सुकर्म पर प्रवृत्त हो गया हूँ, इस कारण उससे भगवान पार्वती परमेश्वर प्रसन्न हों। (पार्वतीप = गौरीशङ्कर। रमेश्वर = लक्ष्मीनारायण) शुभ हो, सब जगत भरका कल्याण हो॥

अनुवादक व्याकरणाचार्य-धर्मशास्त्राचार्य-साहित्यरत्न-आयुर्वेदोपाध्याय-धर्म-प्रचारक भवानीशङ्करशास्त्री ॥

❀ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ❀

॥ इति ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥